CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE - Grant 2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

छोटेलाल [illegible]नपुर वाराणसी
द्वारा प्रदत्त

प्रमोद कुमार दीक्षित
राजगुरु मठ
शिवाला घाट

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भारत का संवैधानिक विकास

(1600 - 1950 ई0)

डा0 जितेश नागोरी
श्रीमती कान्ता नागोरी

ग्रीन लीफ पब्लिकेशन्स
बुलानाला, वाराणसी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

भारत का संवैधानिक विकास
(1600 - 1950 ई0)

डा0 जितेश नागोरी
श्रीमती कान्ता नागोरी

प्रकाशक :
ग्रीन लीफ पब्लिकेशन
सी.के. 59/5, राधा चित्र मन्दिर बिल्डिंग
बुलानाला, वाराणसी
फोन : 0542 - 2400150
E-mail : glp_india@yahoo.in

प्रथम संस्करण : 2011

© प्रकाशकाधीन

मूल्य : ₹ 495 /-

लेजर टाइप :
प्रिंटवेल ग्राफिक्स
बुलानाला, वाराणसी

मुद्रक :
आनन्द कानन
वाराणसी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विषय - सूची

1-	ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि	1-8
2-	बंगाल में द्वैध शासन	9-14
3-	रेग्यूलेटिंग एक्ट (1773 ई0)	15-21
4-	पिट्स इण्डिया एक्ट (1784 ई0)	22-24
5-	1793 ई0 से 1853 ई0 तक के चार्टर एक्ट्स	25-33
6-	भारत का संवैधानिक विकास (1858 ई0 से 1909 ई0 तक)	34-42
7-	भारतीय शासन अधिनियम, 1919 ई0	43-110
8-	संवैधानिक विकास (1920-1935 ई0 तक)	111-140
9-	भारतीय शासन अधिनियम, 1935 ई0	141- 192
10-	द्वितीय विश्व युद्ध एवं संवैधानिक विकास	193 - 216
11-	स्वतंत्रता की ओर – संवैधानिक विकास	217 - 233
12-	संविधान सभा एवं संविधान निर्माण	234 - 253
13-	भारतीय संविधान की विशेषताएँ	254 - 263
	सन्दर्भ ग्रन्थ सूचि	264 - 273

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

1 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना- 1498 ई. में वास्को-डी-गामा नामक पुर्तगाली नाविक ने यूरोप से भारत को जाने वाले सामुद्रिक मार्ग की खोज की । यह खोज एक युगान्तकारी घटना सिद्ध हुई । डॉ. ईश्वरी प्रसाद के अनुसार, "गामा की इस खोज ने भारत और यूरोप के पारस्परिक इतिहास के सम्बन्ध में एक नये अध्याय का सूत्रपात किया, उसके फलस्वरूप यूरोप के लोग भारतीय इतिहास के रंगमंच पर पहले व्यापारियों के रुप में और फिर बस्तियों के बनाने वालों के रुप में उतर आये।" इस सम्बन्ध में डॉडवेल ने इस प्रकार लिखा है, "सम्भवतः मध्य युग की अन्य किसी भी घटना का सभ्य संसार पर इतना गहरा प्रभाव नहीं पड़ा, जितना कि भारत जाने के समुद्र मार्ग खुलने का"

वास्को-डी-गामा ने कालीकट के हिन्दू शासक जमोरिन से पूर्तगालियों के लिये व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त कीं। इसके बाद पुर्तगालियों का भारत में व्यापार आरम्भ हुआ । सोलहवीं शताब्दी में उन्होंने दक्षिणी भारत के पश्चिमी तट पर कालीकट, कोचीन और कनानौर के स्थानों पर अपने व्यापारिक केन्द्र स्थापित किये तथा गोआ, दमन एवं दीव आदि स्थानों,पर अपनी बस्तियाँ स्थापित कर ली । इतना ही नहीं, उनकी सुरक्षा के लिये वहाँ सुदृढ़ नौ सेना भी रखी ।

पुर्तगालियों की बढ़ती हुई शक्ति तथा व्यापार से प्रभावित होकर अन्य यूरोपियन देशों ने भी भारत के साथ व्यापार करने के लिये अपनी व्यापारिक कम्पन्याँ स्थापित कीं। 1602 ई. में हालैण्ड के डच व्यापारियों ने भारत में व्यापार के लिये एक कम्पनी स्थापित की । अब भारतीय व्यापार के लिये पुर्तगालियों एवं डचों से संघर्ष आरम्भ हो गया, जिसमें डचों को सफलता प्राप्त हुई ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस समय इंगलैण्ड के व्यापारियों ने भी पूर्वी देशों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने का निश्चय किया। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु 24 सितम्बर, 1599 को लन्दन के कुछ प्रमुख व्यापारियों ने फाउण्डर्स हॉल में एक सभा की, जिसकी अध्यक्षता नगरपालिका के अध्यक्ष लार्ड मेयर ने की। गम्भीर सोच विचार के बाद इन व्यापारियों ने व्यापार सम्बन्धी अधिकार प्राप्त करने के लिये महारानी एलिजाबैथ की सेवा में एक प्रार्थना पत्र भेजा। महारानी ने इस प्रार्थना पत्र पर 31 दिसम्बर,1600 ई. को अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी। इस प्रकार, भारत के साथ व्यापार करने के लिये 'इस्ट इण्डिया कम्पनी' की स्थापना हुई, जिसका नाम 'गवर्नर एण्ड कम्पनी ऑफ मर्चेण्ट्स ट्रेडिंग इन्टू द ईस्ट इण्डीज' (पूर्वी इण्डीज में व्यापार करने वाले व्यापारियों की कम्पनी और प्रशासक) रखा गया।

कम्पनी का संविधान- महारानी के अधिकार पत्र में कम्पनी के संविधान तथा उसके विशेषाधिकारों का उल्लेख किया गया था। इसके अनुसार कम्पनी के कार्य का संचालन करने के लिये इंग्लैण्ड में दो समितियाँ थीं-स्वामी मण्डल (Court of Proprietors) एवं संचालक मण्डल (Court of Directors)

कम्पनी के समस्त हिस्सेदार स्वामी मण्डल के सदस्य होते थे। मण्डल को यह अधिकार था कि वह कम्पनी और इसके कर्मचारियों के लिये उपनियम बना सके और आदेश एवं अध्यादेश जारी कर सके। इसके अतिरिक्त वह नियमों की अवहेलना करने वालों पर जुर्माना करता था एवं उन्हें दण्ड भी देता था। यह धन उधार देता था और सदस्यों के बीच लाभ का वितरण करता था। कत्पनी के व्यापारिक केन्द्रों का प्रशासन तथा कर्मचारियों के नियन्त्रण का अन्तरिम उत्तरदायित्व स्वामी मण्डल के हाथ में था। यह मण्डल संचालक मण्डल के निर्णयों में संशोधन, परिवर्तनों तथा रद्द भी कर सकता था।

संचालक मण्डल में चौबीस सदस्य होते थे। इसका चुनाव स्वामी मण्डल के सदस्यों द्वारों उन्हीं के बीच से होता था। जिस सदस्य का कम्पनी में दो हजार पौण्ड या इससे अधिक मूल्य का हिस्सा रहता था, वह संचालन मण्डल का सदस्य बनने के लिये चुनाव लड सकता था। जिस सदस्य का कम्पनी मे पाँच सौ पौण्ड हिस्सा होता था, वह केवल निर्वाचन में वोट दे सकता था। वस्तुतः यह कम्पनी के कार्यों का संचालन स्वामी मण्डल द्वारा निर्मित कानूनों, विधियों, नियमों और उप नियमों द्वारा करता था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कम्पनी के शासन प्रबन्ध पर नियन्त्रण रखने के लिये एक परिषद होती थी, जिसमें पाँच सदस्य होते थे। गवर्नर उसका प्रधान होता था। इस प्रकार वह, प्रेसीडेन्सी का सर्वोच्च अधिकारी था। गवर्नर और उसकी परिषद का मुख्य कार्य शासन प्रबन्ध पद नियन्त्रण रखना, भारतीय शासन से सम्बन्ध स्थापित करना एवं न्याय प्रबन्ध आदि की देखभाल करना था।

कम्पनी के कार्यों का संचालन करने के लिये इसके निजी कर्मचारी होते थे, जिनको वेतन दिया जाता था। उन्हें व्यापार करने का निजी अधिकार भी दिया गया था। यह व्यवस्था कम्पनी के लिये कम खर्चीली तथा आकर्षित करने वाली थी। कर्मचारियों ने अपने अधिकारों का दुरुपयोग करते हुए अपार धनराशि संग्रहित की थी। उन्होंने भारतीयों का बहुत अधिक आर्थिक शोषण किया। कम्पनी के सदस्यों के बारे में ब्रूस ने लिखा है कि "स्थापना के समय ईस्ट इण्डिया कम्पनी को साहसी लोगों की मण्डली कहा गया था, जिसके सदस्य लूट के लिये निकलते थे और जो धन कमाने के लिसे झूँठ, बेईमानी और फरेब करने में जरा भी संकोच नहीं करते थे। कम्पनी के मालिकों ने शुरु में ही निश्चय कर लिया था कि कम्पनी की नौकरी में वे किसी शरीफ व्यक्ति को नहीं रखेंगे। इस तरह एक ऐसा गुट कायम हुआ, जिसके सदस्य सच-झूंठ, इमानदारी-बेईमानी और न्याय-अन्याय का ख्याल नहीं रखते थे।"

कम्पनी की शक्ति में वृद्धि-1600 से 1765 ई. तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी मुख्यतः व्यापारिक संस्था थी। इसका अपना कोई राजनीतिक प्रभाव नहीं था, परन्तु ब्रिटिश पार्लियामेंट और भारतीय सभाओं के उदारतापूर्ण संरक्षण के कारण कम्पनी खूब फूली-फली और वह धीरे-धीरे एक व्यापारिक संस्था से राजनीतिक शक्ति बन गई। इस काल में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की शक्ति में असाधारण वृद्धि हुई। उसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है -

जेम्स प्रथम तथा चार्ल्स प्रथम के शासन काल में कम्पनी की उन्नति-कम्पनी स्थापना के केवल तीन वर्ष बाद अर्थात 1603 ई. में महारानी एलिजाबैथ की मृत्यु हो गई और जेम्स प्रथम इंगलैण्ड का राजा बना। उसने 1609 ई. में महारानी द्वारा कम्पनी को दिये गये अधिकार-पत्र की अवधि में वृद्धि की और कम्पनी के जहाजों की लम्बी यात्राओं में उन पर अनुशासन बनाये रखने के उद्देश्य से अधिकारियों को कुछ अधिकार भी प्रदान किये।

जेम्स प्रथम का उत्तराधिकारी चार्ल्स प्रथम कम्पनी के हितों के प्रति उदासीन था

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

। उसके शासनकाल में 1623 ई. में डचों ने कुछ अंग्रेजों का सम्बोना में वध दिया, जिसके कारण ब्रिटेन में तीव्रगति से रोष फैल गया । परन्तु चार्ल्स प्रथम इस दिशा में कोई कदम तक नहीं उठाया । इसके विपरीत उसने अपने कृपापात्र सर विलियम कोर्टन को पूर्वी देशों के साथ व्यापार करने के लिये नई कम्पनी की स्थापना का अधिकार देकर जले पर नकम छिड़का । कोर्टन असाडा कम्पनी की स्थापना की, जिसके कारण ईस्ट इण्डिया कम्पनी को ब नुकसान उठाना पड़ा ।

क्रामवैल और कम्पनी-चार्ल्स प्रथम की मृत्यु के पश्चात् आलिवर क्राम इंगलैण्ड की राजगद्दी पर बैठा । उसने कम्पनी के हितों की रक्षा के लिये हर सम्भ प्रयास किया । उसने डचों से लड़ाई लड़ी और बैटमिन्स्टर की 1654 की सन्धि अनुसार कम्पनाी की डचों से 85,000 पौण्ड की धनराशि क्षतिपूर्ति के रूप दिलवाई । इस राशि में से क्रामवैल ने 50,000 पौण्ड अपने युद्धों का खर्च पू करने के लिये कम्पनी से उधार लिये । ए.सी.बनर्जी ने इस सम्बन्ध में लिखा "कम्पनी को उसके विशेषाधिकारों के लिये मूल्य चुकाने के लिये विवश करने नीति का श्री गणेश किया ।"

क्रामवैल ने 1657 ई. में एक चार्टर द्वारा ईस्ट इण्डिया कम्पनी तथा अस कम्पनी को मिलाकर एक बना दिया । हण्टर के शब्दों में, "इस प्रकार लंदन यह कम्पनी मध्ययुगीन श्रेणी (Guild) के एक निरर्थक अवशेष से बदल आधुनि संयुक्त पूँजी कम्पनी का एक सशक्त अग्रदूत बन गई।" इस प्रकार, क्रामवैल कम्पनी की सराहनीय सहायता की ।

चार्ल्स द्वितीय का उदारतापूर्वक संरक्षण - 1657 ई. में क्रामवैल की मृत्यु पश्चात उसका पुत्र रिचर्ड क्रामवैल इंगलैण्ड का स्वामी बना, परन्तु वह अयोग्य दुर्बल शासक सिद्ध हुआ । इस पर इंग्लैण्ड की प्रजा ने चार्ल्स प्रथम के पुत्र चा द्वितीय को निर्वासन से वापिस बुलाकर 1660 ई. में देश का राजा बना दिया चार्ल्स द्वितीय के उदारतापूर्ण संरक्षण के कारण कम्पनी ने असाधारण समृद्धि काल में प्रवेश किया । उसने अपने शासनकाल में कम्पनी को पाँच अधिकार-प (चाटर्स) प्रदान किये । परिणामस्वरुप कम्पनी के हिस्सों का मूल्य बहुत बढ़ ग और उसे सिक्के बनाने, किले बनाने और उनमें सेना रखने, गैर ईसाई शक्तियों साथ युद्ध छेड़ने और सन्धि करने के सभी अधिकार मिल गये । 1688 में चा द्वितीय ने बम्बई का नगर, जो उसे पुर्तगाल की राजकुमारी कैथराइन ऑफ ब्रैगें

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

साथ हुए विवाह में दहेज में मिला था, 10 पौण्ड वार्षिक किराये पर कम्पनी को दिया। कम्पनी को इस बन्दरगाह और नगर के तथा इसके निवासियों के लिए नून, आदेश तथा अध्यादेश और संविधान बनाने का अधिकार दिया गया। प्रकार कम्पनी एक व्यापारिक संस्था से भू-स्वामिनी शक्ति बन गयी। इसके तिरिक्त कम्पनी ने पदाधिकारियों को अपने कर्मचारियों को दण्ड देने के अधिकार दिये गये।

म्स द्वितीय और कम्पनी - 1685 ई. में जेम्स द्वितीय इंग्लैण्ड की राजगद्दी पर ा। उसके शासनकाल में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने बहुत उन्नति की। सन् 1686 चार्टर द्वारा उसने कम्पनी को नौ सेना बनाने का और युद्ध काल में उन पर निक कानून लागू करने का अपने किलों में मुद्राएँ ढालने का और नौ अधिकरण ायालय स्थापित करने का अधिकार दिया गया। 1687 में ब्रिटिश सरकार ने म्पनी को मद्रास में नगरपालिका, तथा मेयर्स कोर्ट (Mayor's Court) स्थापित रने की आज्ञा दे दी। इस प्रकार, इस काल में कम्पनी को सैनिक और न्यायिक क्तियाँ प्राप्त हो गयीं। इससे कम्पनी के विकास पर गहरा प्रभाव पड़ा।

इसके अतिरिक्त कम्पनी के प्रसिद्ध संचालक सर जोसिया चाईल्ड ने भी इसके तों की हर प्रकार से रक्षा करने के लिये बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य किया। एस.सी.इल्बर्ट खते हैं, सर जोसिया चाईल्ड ने कमपनी को एक ह्विग (Whig) समुदाय से टोरी ory) समुदाय में परिवर्तित कर दिया और इंग्लैण्ड के शासक, जेम्स द्वितीय को सका हिस्सेदार बना दिया। इसके अतिरिक्त, उसने खुले दिल से रिश्वतें देकर म्पनी के हितों को विरोधी तत्त्वों के प्रभाव से सुरक्षित रखा।"

1688 की शानदार, क्रान्ति और कम्पनी को हानि - 1688 की शानदार क्रान्ति ईस्ट इण्डिया कम्पनी पर एक भीषण आघात किया। जेम्स द्वितीय के इंग्लैण्ड भाग जाने के पश्चात ह्विग दल (Whig Party) के नेता बहुत शक्तिशाली हो ये, जो कम्पनी के व्यापारिक एकाधिकार के कट्टर विरोधी थे। सर जोसिया ाईल्ड का प्रभाव भी पहले की अपेक्षा बहुत कम हो गया था। इन परिस्थितियों से त्साहित होकर बहुत से व्यापारियों ने, जिन्हें कम्पनी की समृद्धि से ईर्ष्या थी, सके एकाधिकारों को भंग करनो शुरु कर दिया। उन्होंने एक नई व्यापारिक म्पनी बनाई, जो 'न्यू कम्पनी' (New Company) के नाम से प्रसिद्ध है। इस ई कम्पनी ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के विरुद्ध संघर्ष आरम्भ कर दिया।

सन् 1691 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी को एक विचित्र संकट का सामना करना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पड़ा । इस वर्ष पार्लियामेन्ट ने यह निश्चय किया कि पुरानी और नई दोनों कम्पनियों को मिलाकर एक कर दिया जाए, परन्तु सर जोसिया चाईल्ड हठधर्मी के कारण यह प्रयत्न विफल रहा । इस पर पार्लियामेन्ट ने ईस्ट इण्डि कम्पनी को तीन् वर्ष के भीतर अपना व्यापार समेट लेने का नोटिस दिया और कम्पनी (New Company) के पक्ष में एक चार्टर जारी करने का निश्चय कि । इस विचित्र स्थिति से सर जोसिया चाईल्ड ने बड़ी चतुराई से काम लिया अ राजा के मन्त्रियों को उपहार या रिश्वत आदि देकर अपने पक्ष में कर लिय परिणामस्वरुप सम्राट ने 1693 ई. में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के पक्ष में एक अधिक पत्र जारी कर दिया, जिसमें कुछ विशेष शर्तों पर कम्पनी के विशेषाधिकारों पुष्टि की गई थी । इसके बाद कम्पनी को 1698 में एक अधिकार पत्र (चार्टर) अ मिला, जिससे उसकी स्थिति और भी दृढ़ हो गई ।

पुरानी तथा नई कम्पनी का विलय-यद्यपि न्यू कम्पनी अभी तक अपने प्रयास में सफल नहीं हुई थी, तथापि उसके संचालक ईस्ट इण्डिया कम्पनी के व्यापारि एकाधिकार का विरोध करते रहे और उसे प्रत्येक क्षेत्र में हानि पहुँचाने की कोशि भी की । उनकी आपसी शत्रुता का ब्रिटिश सरकार ने लाभ उठाया और दो कम्पनियों से काफी धन ऋण के रुप में ले लिया । धीरे-धीरे इन दोनों कम्पनि के बीच विनाशकारी प्रतियोगिता शुरु हुई । इस पर इस संघर्ष को समाप्त करने लिये लार्ड गोल्ड़पिन को हस्तक्षेप करना पड़ा । अन्ततः 1708 ई. में दोनों कम्पनि को मिलाकर एक बना दिया गया । इस प्रकार, एक नई कम्पनी बन गई, जिस नाम 6 पूर्वी इण्डीज के साथ व्यापार करने वाले इंग्लैण्ड के व्यापारियों की संयु कम्पनी **(The United Company of Marchants of England to Eas Indies)** रखा गया ।

1711 और 1758 के बीच अधिनियम और चार्ट्‌र्स- इसके बाद के वर्षों में ब्रिटि सरकार ने 1709, 1711, 1730 एवं 1744 में विभिन्न ऐक्ट्‌स पास किये, जिन फलस्वरुप कम्पनी के विशेषाधिकारों की अवधि 1780 ई. तक हो गई । 1709 1726, 1754, 1756 एवं 1758 में पास होने वाले चार्टर से भी उसकी शक्तियों वृद्धि हुई । इस प्रकार, कम्पनी को उसके व्यापार काल (1600-1758) में इंग्लै की सरकार की ओर से बहुत अधिक सहायता प्राप्त हुई, जिसके कारण वह ए समृद्धिशाली संस्था बन गई ।

भारतीय राजाओं द्वारा संरक्षण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भारत में मुगल सम्राटों तथा देशी शासकों ने भी कम्पनी को व्यापार काल में उदारतापूर्ण संरक्षण दिया और इसे समय-समय पर बहुमूल्य रियायतें दीं । 1608 ई. में इस कम्पनी का पहला जहाज हाकिन्स के नेतृत्व में सूरत बन्दरगाह पर पहुँचा। वह अपने ब्रिटेन के राजा का पत्र भी लाया था। वह मुगल सम्राट जहाँगीर के समक्ष अत्यन्त नम्रतापूर्वक उपस्थित हुआ । इस स्थिति का वर्णन करते सुन्दरलाल ने ठीक ही लिखा है, "जहाँगीर के दरबार में उस समय किसी को इस बात का गुमान नहीं हो सकता था कि दूर पश्चिम की एक छोटी सी निर्बल अर्द्ध सभ्य जाति का, जो दूत उस समय दरबार में दो जानू होकर जमीन को चूम रहा था, उसी के वंशज, एक रोज मुगल साम्राज्य का अंग-भंग हो जाने पर हिन्दुस्तान के ऊपर शासन करने लगेंगे ।"

हाकिन्स ने ब्रिटिश राजा का पत्र मुगल सम्राट जहाँगीर को दिया। 6 फरवरी 1613 ई. को एक शांही फरमान द्वारा अंग्रेजों को सूरत में एक व्यापारिक कोठी स्थापित करने की आज्ञा दी एवं मुगल दरबार में एक प्रतिनिधि रखने की अनुमति दे दी गई। कम्पनी की ओरसे सर टॉमस को इस पद पर नियुक्त किया गया। टामस रो के प्रयासों से सूरत की कोठी की अत्याधिक उन्नति हुई। इसी समय अंग्रेजों ने भड़ौच, अहमदाबाद तथा आगरा में भी अपनी व्यापारिक कोठियाँ स्थापित कर दीं।

पी.ई.रॉबर्ट्स ने टॉमस रो के कार्यों का मूल्यांकन करते हुए लिखा है, "वह अपनी आशा के अनुसार, विधिवत् और निश्चित सन्धि प्राप्त करने में असफल रहा, परन्तु उसे मुगल साम्राज्य के नगरों में कारखाने स्थापित करने की आज्ञा मिल गई। इतना ही नहीं, उसने तो अपनी राजनीतिक प्रतिभा और बुद्धि कौशल से मुगलों के हृदय में, एक राष्ट्र के रुप में, अंग्रेजों के प्रति श्रद्धा उत्पन्न कर दी। उसका सबसे बड़ा काम तो यह था कि उसने कम्पनी के लिये एक ऐसी नीति निर्धारित की,जो आक्रमण भावना से रहित और बिल्कुल व्यावसायिक थी। कम्पनी ने सत्तर वर्ष तक इस नीति का पालन किया।" इसका परिणाम यह हुआ कि भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थिति उत्तरोत्तर दृढ़ होती गई ।

मद्रास पर अधिकार-1639 ई. में चन्द्रगिरि के हिन्दू राजा ने मसौलीपट्टम के दक्षिण में लगभग 230 मील की भूमि कम्पनी को प्रदान की, जहाँ कि आजकल मद्रास नगर स्थित है। उसने कम्पनी को इस स्थान को किलेबन्दी करने, मुद्रा ढालने न्याय करने और कुछ विशेष शर्तों के अनुसार शासन करने का अधिकार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भी दिया। तीन वर्ष पश्चात कम्पनी को मद्रास में शासन सम्बन्धी कई अन्य अधिकार भी प्रदान किये गये, जिससे उसका नियन्त्रण और अधिक दृढ़ हो गया, परन्तु इस पर कम्पनी पर मुगल सरकार का आधिपत्य था और इसके चिन्ह स्वरुप कर्नाटक के मुगल सूबेदार को वार्षिक कर देती थी। कम्पनी के मद्रास में ढाले जाने वाले सिक्कों पर भी मुगल सम्राट का पूर्ण नियन्त्रण था। सन् 1752 ई. में जब कर्नाटक के सूबेदार ने कम्पनी से वार्षिक कर लेना बन्द कर दिया, तो कम्पनी पूर्णरुप से मद्रास की शासक बन गयी।

कलकत्ता की नींव रखना-1690 ई. में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने हुगली नदी पर 26 मील नीचे की ओर सुन्तनती नामक गाँव में एक बस्ती की नीवं रखी, जिसने बाद में कलकता नगर का रुप धारण कर लिया। छह वर्ष बाद इस बस्ती की किलेबन्दी की गई और उसका नाम फोर्ट सेंट विलियम (इस जगह आज कलकत्ता बसा हुआ है) रखा। सन् 1698 ई. में कम्पनी ने बंगाल के सूबेदार को वार्षिक कर देने का वचन देकर तीन गाँव (सुन्तनती, कलकत्ता और गोविन्दपुर) की जमींदारी खरीद ली। कम्पनी को इन गाँवों से लगान इकट्ठा करने तथा दीवानी मुकदमों का निर्णय करने का अधिकार भी प्राप्त हो गया। सर सर्मन ने इन गाँवों के सम्बन्ध में शाही फरमान प्राप्त करने का प्रयत्न किया, परन्तु स्थानीय सूबेदार के विरोध के कारण उसे सफलता प्राप्त नहीं हो सकी। 1756 ई. बंगाल के नवांब सिराजुद्दौला ने एक औपचारिक सन्धि द्वारा कम्पनी के विशेषाधिकारों की पुष्टि की और उसे मुद्रायें ढालने तथा कलकत्ता की किलेबन्दी करने की अनुमति दे दी। इसके बाद ऐसी राजनीतिक घटनाँ घटीं, जिनसे कम्पनी एक राजनीतिक शक्ति बन गयी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

2 बंगाल में द्वैध शासन (1765 - 1772 ई.)

जब क्लाइव दुबारा अंग्रेज कम्पनी का गवर्नर बनकर भारत आया, उस समय मीर कासिम को नवाब की गद्दी को हटा दिया गया था, मीर जाफर की मृत्यु हो चुकी थी और उसका अल्पवयस्क पुत्र नज्मुद्दौला बंगाल का नवाब था। इसी समय कम्पनी ने शिशु नवाब पर एक नई संधि थोप दी, जिसके अनुसार 53 लाख रुपया वार्षिक के बदले में कम्पनी ने निजामत (फौजदारी) के अधिकार प्राप्त कर लिए। अब नवाब केवल शांति व्यवस्था के लिए आवश्यक सेना को ही रख सकता था। कम्पनी के अधिकारी ही नवाब के अधिकारियों की नियुक्ति करते थे और उन पर अपना नियंत्रण रखते थे। नवाब द्वारा निजामत के अधिकार त्यागना वस्तुतः बंगाल में ब्रिटिश राज्य की स्थापना की दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम था।

अगस्त, 1765 ई. की इलाहाबाद की संधि के अनुसार मुगल सम्राट ने एक फरमान (आदेश-पत्र) के द्वारा बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी अंग्रेज कम्पनी को दे दी। इसके बदले में कम्पनी ने 26 लाख रुपया प्रतिवर्ष मुगल सम्राट को देने का वायदा किया। यद्यपि मुगल सम्राट स्वयं इस समय अंग्रेजों की दया पर निर्भर था, परन्तु सैद्धान्तिक और वैधानिक दृष्टि से वह अब भी सम्पूर्ण मुगल साम्राज्य का अधिकारी था। अतः उसके आदेश से कम्पनी को वैधानिक अधिकार प्राप्त हो गए। वैसे भी बंगाल का नवाब अंग्रेजों के हाथों की कठपुतली बना हुआ था। इस प्रकार कम्पनी को बंगाल में निजामत तथा दीवानी दोनों ही तरह के अधिकार प्राप्त हो गए।

निजामत के अधिकार के अनुसार शांति व्यवस्था, बाह्य आक्रमणों से रक्षा, विदेश मामले, फौज तथा फैजदारी के मामलों में न्याय देने का अधिकार कम्पनी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

को प्राप्त हो गया। दीवानी अधिकारों के अनुसार सूबों से लगान वसूल करने तथा दीवानी मामले में निर्णय देने का अधिकार भी कम्पनी को प्राप्त हो गए। कम्पनी ने दीवानी अधिकार अपने पास रखे और निजामत के अधिकार बंगाल के नवाब को दे दिए। शासन को इन दो भागों में बांटकर दो विभिन्न शक्तियों के हाथों में दे देने के कारण ही इस शासन को द्वैध शासन या 'दोहरा शासन' (**Dual Government**) के नाम से पुकारते हैं।

क्लाइव की द्वैध या दोहरी व्यवस्था : कम्पनी को शासन सम्बन्धी अधिकार मिल गए, परन्तु शासन चलाने अथवा मालगुजारी वसूल करने का अनुभव कम्पनी के कर्मचारियों को नहीं था। वस्तुतः क्लाइव कम्पनी को प्रत्यक्ष उत्तरदायित्व से दूर रखना चाहता था। इसलिए क्लाइव ने अधिकारों का विभाजन किया। उसने भारतीय अधिकारियों के माध्यम से दीवानी का काम चलाने का निश्चय किया इस कारण उसने दो नायब दीवान नियुक्त किए। एक बंगाल के लिए और दूसरा बिहार के लिए। बंगाल के लिए मुहम्मद रजा खां और बिहार के लिए राजा सिताबराय को नियुक्त किया गया। रजा खां का केन्द्र मुर्शिदाबाद और सिताबराय का केन्द्र पटना में रखा गया। इस प्रकार कम्पनी ने अपना उत्तरदायित्व दो भारतीय अधिकारियों पर डाल दिया। उसे केवल अधिक से अधिक आय प्राप्त करने से मतलब था। अधिक आय को जुटाना इन दो नायब दीवानों का कार्य था।

निजामत के अधिकार (सेना, वैदेशिक मामले व फौजदारी मामलों का निर्णय) नवाब के हाथों में थे, जिसके व्यय के लिए कम्पनी को एक निश्चित धनराशि नवाब को देनी थी। परन्तु चूंकि सैनिक शक्ति कम्पनी के हाथ में थी, अतः नवाब आन्तरिक और बाह्य आक्रमण से सुरक्षा प्राप्त करने के लिए कम्पनी पर निर्भर था अर्थात निजामत की सर्वोच्च शक्ति अब कम्पनी के पास थी, परन्तु उत्तरदायित्व नवाब का था। चूंकि इस समय बंगाल का नवाब अल्पायु था, इस कारण कम्पनी ने नवाब की ओर से उसके कार्यों का देखभाल करने के लिए नायब की नियुक्ति की और इस पद पर मुहम्मद रजा खां को नियुक्त किया गया, जो कम्पनी की ओर से बंगाल का नायब दीवान भी था। वह कम्पनी के हाथों का कठपुतला था, अतः प्रशासन की सभी शक्तियां कम्पनी के हाथों में आ गईं।

क्लाइद की इस शासन व्यवस्था को दोहरा शासन इसलिए कहते हैं कि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सिद्धांत में शासन का भार कम्पनी और नवाब में विभाजित हो गया, परन्तु व्यावहारिक रुप में अंग्रेजी कम्पनी ने उन सूबों की शासन व्यवस्था का कोई भी उत्तरदायित्व स्पष्टतया अपने हाथों में नहीं लिया था। वास्तविक सत्ता कम्पनी की थी, लेकिन शासन अभी भी भारतीयों के हाथों में था, और भारतीय, कम्पनी के हाथ के कठपुतले बने हुए थे। इस प्रकार वास्तविक सत्ता होते हुए भी कम्पनी ने दूर रहकर अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास किया। इस प्रकार सूबों में दो सत्ताओं-(एक भारतीय और दूसरी विदेशी सत्ता) की स्थापना हुई। विदेशी सत्ता वास्तविक थी, जबकि भारतीय सत्ता उसकी परछाई मात्र थी ।

दोहरे शासन से लाभ : कम्पनी के हितों के दृष्टिकोण से यह प्रणाली काफी अंशों में लाभदायक सिद्ध हुई । दोहरे शासन से कम्पनी को निम्नलिखित लाभ प्राप्त हुए :

(1) कम्पनी के कर्मचारियों को शासन चलाने अथवा मालगुजारी वसूल करने का काई अनुभव नहीं था और उनसे यह आशा करना कि वे रातों-रात योग्य प्रशासक बन जाएगें, निरर्थक था। यदि कम्पनी अपने कर्मचारियों और अधिकारियों को प्रशासनिक पदों पर नियुक्त करती, तो शासन में अव्यवस्था फैल जाती। ऐसी स्थिति में कम्पनी ने शासन का पूर्ण उत्तरदायित्व भारतीयों पर डाल दिया। ऐसा करके उसने बुद्धिमानी का परिचय दिया। भारतीयों को प्रशासनिक अनुभव पर्याप्त मात्र में होने से शासन सुविधाजनक ढंग से चलने लगा।

(2) इंग्लैण्ड में कम्पनी को अभी भी मूलतः एक व्यापारिक कम्पनी समझा जाता था। यदि इस समय वह बंगाल का शासन अपने हाथ में ले लेती, तो इससे कई प्रकार की अड़चनें पैदा हो सकती थीं।

(3) यदि कम्पनी बंगाल में सीधी अपनी प्रभुसत्ता स्थापित करती, तो निश्चित रुप से उसे अन्य यूरोपियन शक्तियों के साथ संघर्ष करना पड़ता। रॉबर्ट्स ने भी लिखा है कि "अंग्रेजों द्वारा खुले आम बंगाल के शासन की बागडोर सम्हाल लेने का अर्थ होता, दूसरी यूरोपीय शक्तियों के साथ झगड़ा मोल लेना।" लेकिन दोहरा शासन अत्यन्त जटिल होने से वे यूरोपीय प्रतिस्पर्द्धियों के ईर्ष्या-जन्य संघर्ष से बच गए।"

(4) इससे मराठे भी भड़क सकते थे। मराठों की संयुक्त शक्ति का सामना करना कम्पनी के बस की बात नहीं थी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(5) बंगाल की जनता अंधेरे में रखने के लिए अभी दोहरी व्यवस्था आवश्यक थी। यह व्यवस्था भारतीय जनता, कम्पनी के अन्य यूरोपियन शत्रुओं एवं ब्रिटिश सरकार की आखों में धूल डालने के लिए लागू की गई थी।

दोहरे शासन के दोष : बंगाल के दोहरे शासन में अनेक गम्भीर दोष विद्यमान थे, जिसके कारण जनता को बहुत कष्ट उठाना पड़ा। नवाब ने द्वैध शासन व्यवस्था की आलोचना करते हुए अंग्रेज रेजीडेण्ट को 24 मई, 1769 ई. को एक पत्र लिखा, "बंगाल का सुन्दर देश, जब तक भारतीयों के अधीन था, जब तक प्रगतिशील और महत्त्वपूर्ण प्रदेश था। अंग्रेजों की अधीनता में आने के कारण उसका अधःपतन अन्तिम सीमा तक पहुँच गया।"

बंगाल के इस दोहरे शासन में प्रमुख दोष निम्नलिखित थे :

1. द्वैध शासन व्यवस्था में कम्पनी के अधिकारियों के अधिकारों एवं कर्तव्यों का स्पष्ट रुप से उल्लेख नहीं किया गया था। चूंकि कम्पनी के कर्मचारियों के वेतन बहुत कम थे, अतः वे हरसंभव तरीके से अधिक से अधिक धन कमाने के प्रयास में लगे रहते थे। उनके निजी व्यापार के दोष भी अपनी चरम सीमा पर पहुँच गए, क्योंकि अब उन पर कोई बन्धन नहीं था। उन्होंने अपने दस्तकों **(Free Pass)** का इतना अधिक दुरुपयोग किया कि भारतीय व्यापारियों का अंग्रेजों के मुकाबले में व्यापार करना असंभव हो गया। बंगाल, बिहार एंव उड़ीसा के व्यापार पर कम्पनी का एकाधिकार हो गया और भारतीय व्यापारियों को अपना पैतृक धन्धा भी छोड़ने के विवश होना पड़ा। स्वयं क्लाइव ने कॉमन्स सभा में कहा था कि, "कम्पनी के व्यापारी एक व्यापारी की भंति व्यापार न करके संप्रभु के समान व्यवहार करते थे और उन्होंने हजारों व्यापारियों के मुख से रोटी छीन ली थी और जो भारतीय पहले व्यापार करते थे, वे भीख मांगने लगे हैं।"

2. आर्थिक शोषण में इंग्लैण्ड की सरकार भी पीछे नहीं रही। 1767 ई. में उसने कम्पनी से 4 लाख पौण्ड कर्ज की मांग की। इससे कम्पनी की आर्थिक स्थिति और भी अधिक दयनीय हो गई। इस रकम को एकत्रित करने के लिए भी भारतीय सूबों को ही चुना गया।

3. दोहरे शासन का सबसे बड़ा दोष यह था कि वास्तविक सत्ता कम्पनी के हाथ में थी, परन्तु उसने शासन का उत्तरदायित्व सम्भालने से इन्कार कर दिया और अपने कठपुतलों को शासन करने और उसका उत्तरदायित्व सम्भालने के लिए

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विवश किया। ऐसी शासन व्यवस्था कभी भी सफल नहीं हो सकती थी कि जिसमें शासन का उत्तरदायित्व उठाने वालों के हाथ में वास्तवितक सत्ता न हो। इससे चारों ओर अराजकता, अव्यवस्था तथा भ्रष्टाचार बढ़ा। कम्पनी अधिक से अधिक धन वसूल करने में ही अपनी शक्ति को व्यय कर रही थी। उसने जनता की देखभाल नवाब को सौंप दी थी। इससे जनता की हालत दिन-प्रतिदिन बिगड़ती चली गई।

4. दोहरे शासन के अन्तर्गत बंगाल के उद्योग धन्धे नष्ट हो गए। कम्पनी ने अपनी शोषण नीति के द्वारा बंगाल के रेशमी और सूती वस्त्र उद्योग को चौपट कर दिया। कम्पनी के अधिकारी तथा उनके प्रतिनिधि भारतीय जुलाहों को एक निश्चित समय में एक निश्चित प्रकार का कपड़ा बनाने के लिए बाध्य करते थे और अपनी इच्छानुसार उनको कम से कम मूल्य देते थे। ऐस अनेक कारीगरों के अंगूठे काट दिए गए, जो निश्चित समय पर अंग्रेजों की मांग की पूर्ति नहीं कर सके अथवा उनकी कम कीमत को लेने से इन्कार कर दिया था। बंगाल का मुख्य उद्योग कपड़ा था और उसी उद्योग को अपनी बेइमानी और अत्याचार के कारण अंग्रेजों ने समाप्त कर दिया।

5. दोहरे शासन के अन्तर्गत कृषि का भी सर्वनाश हो गया। भूमि कर वसूली का काम अधिक से अधिक लगान वाले ठेकेदारों को दिया जाने लगा। ठेकेदार उस भूमि से अधिक से अधिक लगान वसूल करना चाहते थे, जिससे सरकार का हिस्सा चुकाने के पश्चात उनको अधिक से अधिक मुनाफा प्राप्त हो सके और फिर इस बात की कोई गारण्टी नहीं होती थी कि अगले वर्ष उन्हें मौजूद क्षेत्रों से राजस्व वसूली का काम मिल ही जाएगा। कम्पनी भी अधिक से अधिक आय प्राप्त करना चाहती थी और ठेकेदारों से अधिक से अधिक मांग करती थी इस प्रकार कम्पनी और ठेकेदारों के लगान की मांग निरन्तर बढ़ती गई, जिसके कारण किसानों का शोषण भी बढ़ता चला गया। डॉ. एम.एस. जैन ने लिखा है कि, कम्पनी को दीवानी देने से पूर्व बंगाल व बिहार से 80 लाख रुपया का भू-राजस्व प्राप्त होता था, वहां 1766-67 में 2,24,67,500 रुपये ही भू-राजस्व के प्राप्त हुए। स्पष्ट है कि इससे कृषकों की कमर टूट गई। कम्पनी और ठेकेदारों दोनों ही भूमि की उन्नति में रुचि नहीं रखते थे। अतः कृषि और किसानों की स्थिति दयनीय हो गई थी। अनेक किसान खेती छोड़कर भाग गए और चोर बन गए तथा खेती योग्य भूमि जंगल में परिवर्तित हो गई 1770 ई. में बंगाल में भयंकर अकाल पड़ा, जिसमें बंगाल की करीब एक-तिहाई जनता समाप्त हो गई। इस समय भी सरकारी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कर्मचारियों ने लगान माफ करने के स्थान पर दुगुना कर दिया। इतना ही नहीं, किसानों के घरों का सामान बिकवाकर उन्हें बेघरबार बना दिया गया।

दोहरे शासन के अन्तर्गत कम्पनी के कर्मचारी व्यक्तिगत व्यापार के द्वारा धनवान होते चले गए, परन्तु स्वयं कम्पनी की स्थिति दयनीय हो गई । उसका व्यापार नष्ट हो गया था और आय में भारी कमी हो गई थी। 1770 में वह स्वयं दिवालिया की स्थिति में पहुँच गई।

मुर्शिदाबाद के अंग्रेज रेजीडेन्ट ने 1769 ई. में लिखा था कि, "यह देश जो कि अत्यधिक निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी शासक के अन्तर्गत भी फलता-फूलता रहता था। आज विनाश की ओर अग्रसर है।" लार्ड कार्नवालिस ने इंग्लैण्ड की संसद में द्वैध शासन व्यवस्था के बारे में कहा था कि, "मैं पूर्ण विश्वास के साथ इस मत का हूं कि विश्व में कोई भी ऐसी सभ्य सरकार नहीं रही, जो इतनी भ्रष्ट, विश्वासघाती और लोभी हो, जितनी कि भारत में कम्पनी की सरकार थी।"

यहि कारण है कि जब 1772 ई. में वारेन हेस्टिग्ज अंग्रेज कम्पनी का गवर्नर बनकर बंगाल आया, तो उसे दोहरे शासन को समाप्त करने के स्पष्ट आदेश दिए गए थे।

□ □ □

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

3 रेग्युलेटिंग एक्ट
(1773 ई0)

इंग्लैण्ड में कम्पनी का प्रबन्ध संचालक समिति (Court fo Directors) द्वारा किया जाता था। जिन हिस्सेदारों के पास 500 पौण्ड के हिस्से होते थे, वे इन संचालकों का चुनाव करते थे इंग्लैण्ड की संसद कम्पनी के ममलों में प्रायः हस्तक्षेप नहीं करती थी 1756 ई. में कम्पनी को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी प्राप्त हुई। इसके बाद कम्पनी के जो कर्मचारी भारत में अपना कार्यकाल समाप्त कर इंग्लैण्ड लौटते थे, वे अपने साथ अत्याधिक धन ले जाते थे। इससे इंग्लैण्ड में यह आम भावना उत्पन्न हुई कि कम्पनी आर्थिक दृष्टि से मजबूत है। अतः यदि कम्पनी पर सरकार का नियंत्रण स्थापित कर दिया जाए तो इससे सरकार को अच्छी आय प्राप्त हो सकती है।

वस्तुतः कम्पनी की आर्थिक स्थिति अत्यन्त ही चिन्ताजनक थी। उसकी आर्थिक नींव खोखली हो चुकी थी। कम्पनी को अर्थिक स्थिति बिगड़ने के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे :

(1) कम्पनी ने भारत में निरन्तर युद्ध लड़े थे, जिसके कारण उसके सामने घोर अर्थिक संकट उत्पन्न हो गया। इन युद्धों के कारण उसे कोई विशेष लाभ प्राप्त नहीं हुआ था।

(2) यद्यपि कम्पनी को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी वसूल करने का अधिकार प्राप्त हो गया था, किन्तु द्वैध शासन व्यवस्था के कारण कम्पनी को, जो राजस्व प्राप्त होना चाहिए था, वह प्राप्त नहीं हो रहा था।

(3) कम्पनी के कर्मचारी निजी व्यापार भी करते थे, जिसमें उन्हें बहुत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अधिक लाभ प्राप्त होता था। अतः वे कम्पनी के व्यापार की उपेक्षा कर रहे थे, जिसके कारण कम्पनी को व्यापार में कोई लाभ नहीं मिल पा रहा था।

उपर्युक्त कारणों से कम्पनी की आर्थिक स्थिति बहुत शोचनीय हो गई। अतः कम्पनी ने इंग्लैण्ड की सरकार के पास 14 लाख पौण्ड ऋण देने का आवेदन-पत्र भेजा। ऐसी स्थिति में ब्रिटिश सरकार ने कम्पनी पर अपना नियंत्रण स्थापित करने के लिए उसके कार्यों में हस्तक्षेप करना आवश्यक समझा।

कम्पनी के ऋण आवेदन-पत्र पर विचार करने हेतु सरकार ने यह मामला दो समितियों-सीक्रेट समिति तथा सलेक्ट समिति-को सौंपा। इन समितियों के प्रतिवेदन के आधार पर ब्रिटिश संसद ने 1773 ई. में इस सम्बन्ध में दो विधेयक पारित किए प्रथम विधेयक में कम्पनी को 4 प्रतिशत वार्षिक ब्याज की दर से 14 लाख पौण्ड ऋण देने की व्यवस्था की गई। दूसरा विधेयक, जो लार्ड नार्थब्रुक ने ब्रिटिश संसद में प्रस्तुत किया था, भी पारित हो गया। दूसरे विधेयक को रेग्यूलेटिंग एक्ट कहा जाता है। इस एक्ट का उद्देश्य कम्पनी के कार्यों की विधिवत व्यवस्था करना था। इंग्लैण्ड की संसद ने इस एक्ट को 1773 ई. में पारित किया था। इस एक्ट के बारे में जी.एन.सिंह ने लिखा है कि यह एक्ट "महान संवैधानिकता महता का है क्योंकि इसने निश्चित रुप से कम्पनी के राजनैतिक कार्यों को स्वीकार किया क्योंकि इसने पहली बार संसद को यह अधिकार दिया कि वह जिस तरह की चाहे, उस तरह की सरकार स्थापित करने का आदेश भारत में दे, जो अधिकार अभी तक कम्पनी का व्यक्तिगत अधिकार बना हुआ था, और क्योंकि संसदीय संविधियों की लम्बी परम्पराओं में से यह एक्ट प्रथम है, जिसने भारत में सरकार का स्वरुप बदल दिया।"

रेग्यूलेटिंग एक्ट की धाराएं - इस एक्ट की प्रमुख धाराएँ निम्नलिखित थीं :

(1) अभी तक उन व्यक्तियों को कम्पनी के संचालकों (डाइरेक्टर्स) को चुनने का अधिकार था, जिनके पास कम्पनी के 500 पौण्ड के शेयर थे। इस एक्ट के अनुसार यह निश्चित कर दिया गया कि कम्पनी के संचालकों के चुनाव में वही व्यक्ति मत देने का अधिकारी होगा, जिसके पास कम्पनी के 1,000 पौण्ड के शेयर होंगे।

(2) कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स की अवधि चार वर्ष निश्चित कर दी गई। प्रतिवर्ष एक चौथाई सदस्यों (6 सदस्य) को हटा दिया जाएगा और उसके स्थान पर नये

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सदस्यों को चुना जाएगा। एक ही सदस्य को दुबारा चुने जाने के पूर्व एक वर्ष का अवकाश आवश्यक होगा।

(3) कम्पनी को ब्रिटिश सम्राट के पूर्ण नियंत्रण में ले लिया गया। कम्पनी के कर्मचारियों, भारत के सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों तथा समिति के सदस्यों को मनोनीत करने का अधिकारी इंग्लैण्ड के सम्राट को प्राप्त हुआ।

(4) जिन व्यक्तियों के पास 3, 6 व 10 हजार पौण्ड मूल्य के शेयर थे, उन्हें क्रमशः 2, 3 और 4 मत देने का अधिकार दिया गया।

(5) बंगाल के गवर्नर को भारत का गवर्नर जनरल बनाया गया और बम्बई तथा मद्रास के प्रान्त के गवर्नरों को उसके अधीन कर दिया गया। गवर्नर जनरल की अनुमति के बिना इन गवर्नरों को किसी भी शक्ति के साथ युद्ध एवं संधि करने का अधिकार नहीं रहा।

(6) गवर्नर जनरल की सहायता के लिए चार सदस्यों की एक कौंसिल का निर्माण किया गया। कौंसिल के चार सदस्यों के लिए बारवेल, फ्रान्सिस, क्लेवरिंग व मॉन्सन के नामों का उल्लेख किया गया। इस समिति की अवधि पांच वर्ष रखी गई तथा इनके रिक्त स्थानों की पूर्ति का अधिकार संचालक मंडल को दे दिया गया। यह भी कहा गया कि कौंसिल के निर्णय बहुमत के आधार पर होंगे। गवर्नर जनरल केवल उसी समय निर्णयात्मक मत दे सकेगा, जबकि परिषद् के सदस्यों के मत बराबर संख्या में विभजित हो जाएंगे। गवर्नर जनरल का वेतन 25 हजार पौण्ड तथा कौंसिल के सदस्यों का वेतन 10 हजार पौण्ड वार्षिक रखा गया।

(7) कलकत्ता में एक सर्वोच्च न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट) **(Supreme Court)** की स्थापना की गई। इसमें एक मुख्य न्यायाधीश और तीन अन्य न्यायाधीशों के पद रख गए। न्यायाधीशों की नियुक्ति इंग्लैण्ड के सम्राट द्वारा की जाती थी। वही उन्हें पदच्युत भी कर सकता था। मुख्य न्यायाधीश के पद के लिए सर एलिंग इम्पे के नाम का उल्लेख किया गया। सुप्रीम कोर्ट के निर्णय के विरुद्ध इंग्लैण्ड की प्रिवी कौंसिल में अपील की जा सकती थी। मुख्य न्यायाधीश का वेतन 8,000 पौण्ड वार्षिक रखा गया।

(8) गवर्नर जनरल को अपनी कौंसिल के परामर्श से कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो गया, किन्तु उन्हें लागू करने से पूर्व अंग्रेज सरकार की अनुमति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्राप्त करना आवश्यक कर दिया गया।

(9) इस एक्ट द्वारा यह भी निश्चित कर दिया गया कि कम्पनी को सैनिक और राजनीतिक कार्यों की रिपोर्ट सेक्रेटरी ऑफ स्टेट (विदेश मंत्री) को और धन सम्बन्धी रिपोर्ट अर्थ मंत्री को प्रस्तुत करनी पड़ेगी।

(10) कम्पनी के कर्मचारियों के निजी व्यापार पर कठोर नियंत्रण स्थापित कर दिया गया तथा निजी व्यापार करना दण्डनीय अपराध घोषित किया गया। कर्मचारियों के वेतन में भी वृद्धि कर दी गई और उनको उपहार भेंट आदि लेने से वंचित कर दिया गया।

एक्ट के गुण : इस एक्ट में अनेक गुण विद्यमान थे, जिनकी व्याख्या निम्न प्रकार से की जा सकती है :

(1) इस एक्ट द्वारा पहली बार भारत में ब्रिटिश अधिकृत क्षेत्रों पर कम्पनी के शासन का एक व्यवस्थित विधान तैयार किया गया, जिससे शासन की एक स्पष्ट रुपरेखा निश्चित की गई। सर्वाधिक महत्त्व की बात यह है कि भविष्य में बनाए जाने वाले सभी संवैधानिक नियमों के लिए अधिनियम ने ढांचा तैयार कर दिया।

(2) इस एक्ट के द्वारा संचालकों के कार्यकाल में वृद्धि कर दी गई, जिसके कारण अब वे अपनी नीतियों को ठीक ढंग से कार्यान्वित कर सकते थे। पुन्नियह ने इस सम्बन्धमें लिखा है कि इस "एक्ट के द्वरा डाइरेक्टरों के लिए प्रदान लम्बी अवधि और अंशकालिक नीवनीकरण ने उनमें सुरक्षा की भावना तथा नीति में निरन्तरता उत्पन्न की।"

(3) इस एक्ट द्वारा कम्पनी तथा कम्पनी के कर्मचारियों पर ब्रिटिश सरकार को नियंत्रण स्थापित कर दिया गया। इससे अन्याय एवं अत्याचारों का अन्त हो गया। धीरे-धीरे यह नियंत्रण कठोर होता गया और 1858 ई. में कम्पनी के शासन का ही अन्त कर दिया गया। इस प्रकार, इस एक्ट के परिणाम बड़े दूरगामी व स्थायी सिद्ध हुए।

(4) कम्पनी भारत में राजनीतिक शक्ति के रुप में कार्य कर रही थी। इस एक्ट द्वारा उसे मान्यता प्रदान कर दी गई।

(5) यह प्रथम अवसर था, जबकि ब्रिटिश सरकार ने यूरोप के बाहर भू-क्षेत्र

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के शासन का दायित्व ग्रहण किया। यह एक्ट वास्तव में "कम्पनी के भारतीय क्षेत्र में बिना क्राउन के उत्तरदायित्व संभाले अच्छी सरकार लाने का एक अच्छा प्रयास था।"

(6) इस एक्ट द्वारा कम्पनी के कर्मचारियों के भ्रष्टाचार, निजी व्यापार और उपहार लेने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था। यह कम महत्त्वपूर्ण बात नहीं थी।

(7) केन्द्रीय कार्यकारिणी का आरम्भ इसी एक्ट द्वारा किया गया, जिसका ब्रिटिश शासनकाल में उत्तरोत्तर विकास होता गया।

(8) इस एक्ट द्वारा भारत के प्रशासनिक ढांचे का केन्द्रीयकरण करने की दिशा में प्रथम प्रयास किया गया। बम्बई व मद्रास के गवर्नरों को जनरल के अधीन कर ब्रिटिश अधिकृत क्षेत्र को एक सूत्र में बांधने का प्रयास किया गया। इस प्रकार भारत में कम्पनी की विभिन्न शाखाओं पर एक सर्वोच्च सत्ता स्थपित कर दी गई थी।

इस एक्ट के महत्त्व का वर्णन करते हुए प्रो.कीथ ने लिखा है कि "इस एक्ट ने कम्पनी के इंग्लैण्ड में स्थित संस्थाओं के विधान में परिवर्तन किया। भारत सरकार के स्वरुप में कुछ सुधार किए। कम्पनी को किसी अंश तक ब्रिटिश मंत्रिमण्डल की देखरेख में रखने का प्रयत्न किया गया।" एस. आर. शर्मा ने ठीक ही लिखा है कि "रेग्यूलेटिंग एक्ट ने भारत में कम्पनी के शासन को उन्नत करने के लिए बिना 'ताज' के महत्त्वपूर्ण प्रयत्न किया और उसका उत्तरदायित्व प्रत्यक्ष रुप से धारण किया। इसकी सबसे महत्त्वपूर्ण धारा सुप्रीम कोर्ट की स्थापना (बंगाल में उत्त्च्चतम न्यायालय की स्थापना के लिए) थी। इसके द्वारा 'ताज' को समय-समय पर समाचार ज्ञात होते रहते थे, जिसके कारण वह कम्पनी के शासन का निर्माण कर सकता था। इसके द्वारा व्यक्तिगत व्यापार तथा भेंट व उपहार स्वीकार करने पर प्रतिबन्ध लगाए गए। गवर्नर जनरल की कौंसिल को सम्मिलित अधिकार प्राप्त हुए, जो सन् 1787 ई. तक चलते रहे। इसके द्वारा कम्पनी के प्रशासित प्रदेशों में एक उच्च सत्ता की स्थापना हुई।"

एक्ट के दोष : इस एक्ट में **अनेक दोष थे,** जिनके कारण कम्पनी का शासन सुचारु रुप से संचालित नहीं हो सका। इस एक्ट के पारित होने के पश्चात् हाउस ऑफ कॉमन्स के स्पीकर ने इस पर टिप्पणी करते हुए कहा था कि यह कानून एक कठिन समस्या का हल करने का सच्चा प्रयत्न था, लेकिन सुधार लाने के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तरीके में पार्लियामेन्ट ने जल्दबाजी से काम लिया और लोगों ने असंयम से... वास्तव में जल्दीबाजी में यह एक्ट पारित किया गया था, जिसके कारण इ... अनेक दोष रह गए थे। इस एक्ट के प्रमुख दोष निम्नलिखित थे :

(1) इस एक्ट द्वारा एक हजार पौण्ड के हिस्सेदारों को ही संचालक मंडल (... सदस्यों के चुनाव में भाग लेने का अधिकार था। इससे 1246 हिस्सेदार, जिनके... हिस्से एक हजार पौण्ड से कम मूल्य के थे, मताधिकार से वंचित हो गए। ... हिस्सेदारों को एक से अधिक मत देने का अधिकार दिया गया, जिसके कारण... भ्रष्टाचार को प्रोत्साहन मिला।

(2) कम्पनी के मामलों पर संसद का पर्याप्त नियंत्रण स्थापित नहीं किया गया। कम्पनी अपने कार्यों की रिपोर्ट ब्रिटिश सरकार को भेजती थी, किन्तु सरकार ने उन रिपोर्टों की जांच के लिए कोई व्यवस्था नहीं की।

(3) एक्ट द्वारा गवर्नर जनरल को पर्याप्त शक्ति नहीं दी गई। उसे अप... कौंसिल के निर्णय को रद्द करने का अधिकार नहीं था। कौंसिल के बहुमत द्वा... लिए गए निर्णण को मानने के लिए वह बाध्य था। कौंसिल के चार सदस्यों में ती... सदस्य हेस्टिंग्ज के विरोधी थे। इस कारण जो कार्य वह चाहता था, वे नहीं क... सकें और जो कार्य वह नहीं चाहता था, उन्हें करने के लिए उसे विवश होना प... स्वयं वारेन हेस्टिंग्ज ने कहा था कि "मेरी स्थिति सचमुच कष्टदायी और अपमानज... है। मेरे पास एक्ट के कानून के अन्तर्गत कोई अधिकार नहीं है। मेरी जगह ... काम करने वाले मेरे जैसे चरित्र वाले व्यक्ति को कोई आदर प्राप्त नहीं है और मु... उस उत्तरदायित्व के लिए भी जिम्मेदारी लेनी पड़ती है, जिसको मैं स्वयं न... चाहता हूँ"[7]

(4) इस एक्ट द्वारा बम्बई और मद्रास की सरकारों पर गवर्नर जनरल औ... उसकी कौंसिल का पूरा नियंत्रण स्थापित नहीं किया गया। इन सरकारों को म... युद्ध व संधि सम्बन्धी मामलों में ही हस्तक्षेप किया जा सकता था। अन्य माम... में बम्बई व मद्रास की सरकारें कार्य करने के लिए स्वतंत्र थीं। इससे कालान्तर... अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा ।

(5) सर्वोच्च न्यायालय और बंगाल कौंसिल में सर्वोच्च कौन था। इसकी क... स्पष्ट व्याख्या नहीं की गई थी, जिससे प्रान्तीय न्यायालय व सर्वोच्च न्याया... के बींच विवाद उत्पन्न हो गए।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(6) इस एक्ट द्वारा सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियों और अधिकार क्षेत्र की स्पष्ट रुप से व्याख्या नहीं की गई थी, जिससे प्रान्तीय न्यायालय व सर्वोच्च न्यायालय के बीच विवाद उत्पन्न हो गए।

(7) इस एक्ट में यह भी स्पष्ट नहीं किया गया था कि कौन से कानून (भारतीय या अंग्रेजी) के आधार पर न्याय किया जाएगा। सर्वोच्च न्यायालय के जज अंग्रेजी विधि से नागरिकों के मामलों की सुनवाई करते थे। वे भारतीय कानूनों एवं रीति रिवाजों से अनभिज्ञ थे। इसलिए भारतीय जनता को काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

यद्यपि रेग्यूलेटिंग एक्ट में अनेक दोष थे, यद्यपि जिन परिस्थितियों में उसका निर्माण हुआ, सर्वथा सराहनीय था। सप्रे ने ठीक ही लिखा है कि "यह अधिकार नियम संसद द्वारा कम्पनी के कार्यों में प्रथम हस्तक्षेप था, अतः उसकी नम्रतापूर्वक आलोचना की जानी चाहिए।" यह प्रथम अवसर था, जबकि एक्ट के द्वारा ब्रिटिश संसद ने कम्पनी की व्यवस्था को सुधारने के लिए कार्यों में हस्तक्षेप किया था।

इस एक्ट द्वारा कम्पनी के राजनीतिक लक्ष्य व अस्तित्व को स्पष्ट रुप से स्वीकार किया गया। इतना ही नहीं, इस एक्ट के आधार पर आगे आने वाले कानूनों की रुपरेखा तैयार की गई।

अतः यह एक्ट कम्पनी के संवैधानिक इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

□ □ □

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

4 पिट्स इंडिया एक्ट (1784 ई.)

रेग्यूलेटिंग एक्ट शीघ्रता में पारित किया गया था। अतः इसके लागू होने के कुछ समय पश्चात ही इसके दोष स्पष्ट रुप से प्रकट होने लग गए थे। मद्रास व बम्बई की प्रेसीडेन्सियों पर बंगाल का पर्याप्त नियंत्रण नहीं था, जिसके कारण कम्पनी को अनावश्यक युद्धों में उलझना पड़ा था। 1789 ई. में एक संशोधन अधिनियम पारित किया गया था, जिसके द्वारा सार्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार की स्पष्ट रुप से व्याख्या कर दी गई, किन्तु प्रशासन सम्बन्धी दोष अभी भी विद्यमान थे। 1781-82 ई. में ब्रिटिश संसद वारेन हेस्टिंग्ज को इंग्लैण्ड बुलाना चाहती थी, परन्तु कम्पनी के हिस्सेदारों की सभा के विरोध के कारण नहीं बुला सकी। इससे कम्पनी पर संसद का अपर्याप्त नियंत्रण भी स्पष्ट हो गया। अतः रेग्यूलेटिंग एक्ट के दोषों को दूर करने के लिए एक सुधार विधेयक लागू करने की असवश्कता महसूस की जाने लगी। इस सम्बन्ध में डूण्डास का 'भारत बिल' तथा फाक्स का 'ईस्ट इंडिया बिल' अस्वीकृत हो चुके थे। अतः ब्रिटेन के प्रधानमंत्री पिट ने एक विधेयक प्रस्तुत किया, जिसे संसद ने 1784 ई. में पारित कर दिया। यह अधिनियम भारत के संवैधानिक इतिहास में पिट्स इंडिया एक्ट के नाम से प्रसिद्ध है। इस एक्ट की धाराएं निम्नलिखित थीं :

(1) कम्पनी के शासन पर नियंत्रण रखने के लिए 6 सदस्यों की एक समिति का निर्माण किया गया, जिसे 'बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल' कहा गया। इस बोर्ड में विदेशमंत्री (सेक्रेट्री ऑफ स्टेट) तथा वित्त मंत्री के अतिरिक्त चार अन्य सदस्य रखे गए, जिसकी नियुक्ति और पदमुक्ति का अधिकार इंग्लैण्ड के सम्राट को दिया गया। सदस्यों के वेतन आदि का खर्चा भारत के राजस्व से वसूल करने का निर्णय लिया गया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(2) संचालक मंडल (कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स) के लिए बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल की आज्ञाओं का पालन करना अनिवार्य कर दिया गया।

(3) इस एक्ट द्वारा संचालकों में से तीन सदस्यों की एक गुप्त समिति गठित की गई, जिसका कार्य भारत में गोपनीय आदेश प्रेषित करना था। ये आदेश अन्य संचालकों को नहीं बताए जाते थे।

(4) इस एक्ट द्वारा गवर्नर जनरल की कौंसिल के सदस्यों की संख्या चार से घटा कर तीन कर दी गई, जिसमें एक प्रधान सेनापति को भी सम्मिलित किया गया। अब गवर्नर जनरल केवल एक सदस्य को अपने पक्ष में करके जैसा चाहे कर सकता था।

(5) गवर्नर जनरल की कौंसिल के समान ही बम्बई व मद्रास प्रेसीडेन्सियों के लिए भी तीन सदस्यों की कौंसिल का निर्माण किया गया। मद्रास तथा बम्बई की सरकार के लिए बंगाल की सरकार के आदेश का पालन करना अनिवार्य कर दिया गया।

(6) गवर्नर जनरल तथा गवर्नरों की नियुक्ति संचालकों द्वारा की जाती थी, किन्तु उन्हें वापस बुलाने का अधिकार इंग्लैण्ड के सम्राट को दिया गया। गवर्नर जनरल की नियुक्ति के लिए संचालक़ को सम्राट की पूर्व स्वीकृति लेना आवश्यक था।

(7) यह भी निश्चित कर दिया गया कि गवर्नर जनरल तथा उसकी कौंसिल बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल की अनुमति के बिना कोई युद्ध अथवा संधि नहीं कर सकेगा। इस एक्ट में यह घोषणा की गई थी कि 'भारत में राज्य विस्तार और विजय की योजनाओं को चलाना, ब्रिटिश राष्ट्र की नीति, मान और इच्छा के विरुद्ध है।'

(8) मद्रास व बम्बई के गवर्नरों को संधि, युद्धि तथा लगान के सम्बन्ध में पूर्णतया गवर्नर जनरल के अधीन कर दिया गया। बंगाल तथा इंग्लैण्ड के अधिकारियों की आज्ञाओं का उल्लंघन करने पर प्रेसीडेन्सी के गवर्नर को निलम्बित किया जा सकता था।

एक्ट का महत्त्व : पिट्स इंडिया एक्ट का भारत के संवैधानिक इतिहास में बहुत महत्व है। इस एक्ट के द्वारा पहली बार कम्पनी के भारतीय प्रदशों को अंग्रेजी राज्य के प्रदेश कहा गया और उन पर ब्रिटिश सरकार का नियंत्रण स्थापित करने के लिए बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल की स्थापना की गई। कम्पनी की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कार्यकुशलता बढ़ाने के लिए गुप्त समिति का गठन किया गया। इस एक्ट के द्वारा मद्रास और बम्बई के गवर्नर पूर्णतया गवर्नर जनरल के अधीन कर दिए गए तथा कम्पनी के समस्त सैनिक और असैनिक मामलों पर ब्रिटिश संसद का अंतिम नियंत्रण स्थापित हो गया। इस प्रकार, इस एक्ट द्वारा कम्पनी पर ब्रिटिश संसद का वास्तविक नियंत्रण हो गया। इतना ही नहीं, इस एक्ट ने कम्पनी की विदेश नीति को भी एक नई दिशा दी।

इस एक्ट ने रेग्यूलेटिंग एक्ट के दोषों को काफी मात्रा में दूर किया। कम्पनी के शासन पर अब दोहरा नियंत्रण स्थापित कर दिया गया। कम्पनी के राजनीतिक व शासन सम्बन्धी कार्यों पर नियंत्रण बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल का था तथा व्यापारिक कार्यों पर संचालकों (कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स) का था। बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल के बनने और उसमें अंग्रेज केबिनेट के दो सदस्य होने से भारत के शासन में अंग्रेज सरकार के अधिकार बढ. गए। बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल संचालकों द्वारा नियुक्त किसी भी कर्मचारी को वापस बुला सकता था। इसका परिणाम यह हुआ कि संचालक मंडल सिर्फ उसी व्यक्ति की नियुक्ति करते थे, जिसे बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल चाहता था। यही कारण था कि भारत के गवर्नर जनरल संचालकों के आदेशों को अधिक महत्त्व देते थे। अल्बर्ट ने पिट्स इंडिया एक्ट के बारे में लिखा है कि ब्रिटिश प्रधानमंत्री पिट ने कम्पनी के संविधान में परिवर्तन किए बिना ही कम्पनी पर ब्रिटिश सरकार का वास्तविक नियंत्रण स्थापित कर दिया।

इस एक्ट द्वारा कम्पनी के शासन पर दो संस्थाओं-संचालक मंडल और बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल-का नियंत्रण स्थापित किया गया, जिससे अनेक कठिनाइयां उत्पन्न हो गईं चूँकि इन दोनों संस्थाओं को शक्तियां स्पष्ट रुप से निश्चित नहीं की गई थीं, अतः किसी भी मामले में जिम्मेदारी निश्चित करना कठिन था। परिणाम स्वरुप इससे गैर-जिम्मेदारी की भावना उत्पन्न हो गई। इस एक्ट में रेग्यूलेटिंग एक्ट के प्रमुख दोष का निवारण नहीं किया जा सका। वह था कि गवर्नर जनरल अपनी कौंसिल के निर्णण को रद्द नहीं कर सकता था, लेकिन 1786 ई. में कुछ अन्य कानून बनाए गए, जिनमें से एक अनुसार गवर्नर जनरल को अपनी कौंसिल की राय के विरुद्ध कार्य करने का अधिकार दिया गया। इन दोषों के होते हुए भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि पिट ने जो दोहरी नियंत्रण व्यवस्था लागू की थी। वह सन् 185[illegible] ई.तक जारी रही।

□ □ □

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

5 1793 से 1853 ई. तक के चार्टर ऐक्ट्स

1784 ई. में ईस्ट इण्डिया ऐक्ट के द्वारा बोर्ड ऑफ कण्ट्रोल की स्थापना हुई थी। उसके द्वारा कम्पनी के प्रशासन पर संसदीय नियंत्रण स्थापित हो चुका था, परन्तु ब्रिटिश सरकार इससे पूर्णतया सन्तुष्ट नहीं थी। अतः आगामी 70 वर्षों में ब्रिटिश सरकार ने कम्पनी की प्रशासन पर प्रभावशाली नियन्त्रण स्थापित करने का प्रयत्न किया। अपनी इसी नीति के अनुसार ब्रिटिश सरकार ने 1784 ई. से 1853ई. के बीच चार चार्टर ऐक्ट्स पारित किये, जिससे कम्पनी की शक्तियाँ कम होती गईं और भारत में एक शासकीय पद्धति का विकास हुआ।

(1) 1793 का चार्टर ऐक्ट

लार्ड कार्नवालिस के शासन काल के अन्तिम दिनों में संसद ने 1793 का चार्टर ऐक्ट पारित किया। इस ऐक्ट की धाराएँ संख्या में बहुत अधिक थीं, परन्तु इसके द्वारा कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुए। कीथ ने लिखा है कि यह ऐक्ट संगठन की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण पग था, जिसमें पूर्वगामी ऐक्टों की बहुत सी धाराओं को सम्मिलित किया गया था।

ऐक्ट के पास होने के कारण-1773 ई. में कम्पनी को बीस वर्ष के लिए पूर्वी देशों के साथ व्यापार करने की आज्ञा दी गई थी। यह समय 1793 ई. में समाप्त हो गया था। अतः कम्पनी के अधिकारियों ने चार्टर ऐक्ट के नवीनीकरण के लिए ब्रिटिश सरकार से प्रार्थना की। कम्पनी के सौभाग्य से उस समय सारे राष्ट्र की रुचि फ्रान्स के साथ हो रहे युद्ध में थी। अतः इंग्लैण्ड के कुछ ही नगरों (ग्लासगो, लिवरपूल, मैनचेस्टर) के व्यापारियों ने यह माँग की कि भारत के साथ व्यापार करने की स्वतंत्रता सबको दी जाए लेकिन बोर्ड ऑफ कण्ट्रोल का अध्यक्ष तथा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पिट कम्पनी के पक्ष में थे, इसलिए ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने बिना किसी विशेष आनाकानी के 1793 के ऐक्ट को पारित कर कम्पनी के चार्टर का बीस वर्ष के लिए नवीनीकरण कर दिया। पिट् के शब्दों में, यह ऐक्ट इतनी शान्ति से पास हुआ कि उसका उदाहरण संसद के इतिहास में उपलब्ध नहीं होता। यहाँ तक कि समाचार पत्रों में भी इस ऐक्ट को कोई विशेष महत्त्व नहीं दिया गया। कीथ के शब्दों में, "यह सारतः एक संघटित करने वाली कार्यवाही थी, और इसमें जो परिवर्तन हुए थे, उसका असर तफसील की बातों पर पड़ता था।" डॉ. बनर्जी ने भी कहा है कि, "इस संघटन के अधिनियम (स्टेच्यूट) द्वारा कोई संवैधानिक परिवर्तन नहीं किया गया।"

ऐक्ट की प्रमुख धाराएँ

1. इस ऐक्ट द्वारा कम्पनी को 20 वर्ष के लिए दुबारा पूर्वी देशों से व्यापार करने का एकाधिकार दिया गया।

2. इस अधिकार पत्र के द्वारां कम्पनी के आर्थिक ढाँचे को नियमित किया गया यह अनुमान लगाया गया कि कम्पनी को प्रतिवर्ष 12,39,241 पौण्ड की बचत होगी। इस वार्षिक बचत में से पाँच लाख पौण्ड तो कम्पनी के ऋणों को चुकाने के लिए दिये ज़ायेंगे और पाँच लाख पौण्ड का उपयोग लाभांश को 8 से 10 प्रतिशत करने के लिए किया जायेगा। लेकिन जी.एन.सिंह के शब्दों में, "यह कल्पित बचत कभी फलीभूत नहीं हुई और हालांकि अंशधारियों को यह लाभ हो गया कि लाभांश 8 से बढ़ाकर 10 प्रतिशत कर दिया गया, किन्तु ब्रिटेन को अपने हिस्से के पाँस लाख पौण्ड प्रतिवर्ष कभी प्राप्त नहीं हुए।"

3. नियंत्रण बोर्ड के सदस्यों (Board of Control) और कर्मचारियों को भारतीय कोष से वेतन देने की व्यवस्था की गई। इस प्रथा के कई दुष्परिणाम निकले, परन्तु यह प्रथा 1919 के अधिनियम के लागू होने तक जारी रही।

4. प्रत्येक प्रान्त का शासन एक गवर्नर और तीन सदस्यों की कौंसिल को सौंप दिया गया। प्रान्तीय कौंसिल के सदस्य केवल वही व्यक्ति हो सकते थे, जिन्हें नियुक्ति के समय कम्पनी के कर्मचारी के रूप में काम करते हुए भारत में कम से कम बारह वर्ष हो गये हों।

5. गवर्नर जनरल तथा गवर्नरों को अपनी कौंसिल के उन निर्णयों की उपेक्षा करने का अधिकार दिया गया, जिनसे भारत में शान्ति-व्यवस्था, सुरक्षा तथा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अंग्रेजी प्रदेशों के हितों पर किसी प्रकार का भी प्रभाव पड़ने की सम्भावना हो। उन्हें न्याय, विधि तथा कर सम्बन्धी मामलों में कौंसिल के निर्णयों को रद्द करने का अधिकार नहीं था।

6. प्रधान सेनापति किसी भी कौंसिल का सदस्य नहीं होगा, जब तक उसको विशेष रूप से संचालकों द्वारा सदस्य नियुक्त न किया जाए। इससे पूर्व प्रधान सेनापति के लिए कौंसिल का सदस्य होना जरूरी था।

7. सपरिषद गवर्नर जनरल को प्रान्तीय सरकारों के सैनिक तथा असैनिक शासन प्रबन्ध, राजस्व संग्रह तथा भारतीय सियासतों के साथ युद्ध और सन्धि से सम्बन्धित मामलों पर नियन्त्रण तथा निर्देशन का अधिकार दिया गया।

8. गवर्नर जनरल, गवर्नर, प्रधान सेनापति तथा कम्पनी के उच्च पदाधिकारियों को भारत के बाहर जाने की छुट्टी नहीं मिल सकती थी, जब तक कि वे अपने पद पर कार्य करेंगे। यदि क़ोई अधिकारी बिना अनुमति लिए भारत से बाहर जायेगा, तो उसका त्यागपत्र समझा जायेगा।

9. यह व्यवस्था की गई कि जब गवर्नर जनरल किसी प्रान्त का दौरा करेगा, तो उस समय प्रान्तीय शासन प्रबन्ध गवर्नर के स्थान पर गवर्नर जनरल के हाथों में होगा। गवर्नर जनरल बंगाल में अपने अनुपस्थिति के समय का काम चलाने के लिए किसी भी कौंसिल के सदस्य को अपनी कौंलिस का उपाध्यक्ष नियुक्त कर देगा।

10. क़लकत्ता के सर्वोच्च न्यायालय का नौ-सैनिक क्षेत्राधिकार बढ़ाकर खुले समुद्रों तक कर दिया गया।

11. इस अधिनियम में यह बात फिर दुहराई गई कि भारत में कम्पनी द्वारा राज्य विस्तार करना और विजय की योजनाओं को चलाना ब्रिटिश राष्ट्र की नीति, प्रतिष्ठा और उसके मान के विरुद्ध है। परन्तु जैसा कि जी.एन.सिंह ने लिखा है, "परिस्थितियों के दबाव के कारण और मौके पर काम कर रहे व्यक्तियों की महत्त्वाकांक्षाओं के कारण वास्तविक व्यवहार में इससे ठीक उल्टी ही नीति अपनाई गई।"

12. यह व्यवस्था की गई कि नियन्त्रण बोर्ड के दो सदस्यों की नियुक्ति के लिए इंग्लैण्ड के सम्राट की स्वीकृति अनिवार्य कर दी गई।

13. गवर्नर जनरल, गवर्नरों और प्रधान सेनापति की नियुक्ति के लिए इंग्लैण्ड

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के सम्राट की स्वीकृति अनिवार्य कर दी गई।

14. कम्पनी के कर्मचारियों के सम्बन्ध में ज्येष्ठता के सिद्धान्त का कठोरता से पालन किया जायेगा। दूसरे शब्दों में, यदि गवर्नर जनरल या गवर्नर का पद रिक्त हो जाए, तो उस पद पर स्थायी नियुक्ति होने तक परिषद के सदस्यों में सबसे ऊँचे ओहदे वाला सदस्य (प्रधान सेनापति के सिवाय) उस पद पर काम करेगा।

15. शराब बेचने वालों के लिए लाइसेन्स आवश्यक कर दिया करेगा।

16. सपरिषद गवर्नर जनरल को किसी भी प्रेसीडेन्सी (बम्बई तथा मद्रास) में नागरिक सेवा (Civil Service) के किसी भी सदस्य को शान्ति के न्यायाधीश (Justice of Peace) नामक न्यायाधिकारी नियुक्त करने का अधिकार प्रदान किया गया। ये अधिकारी कम्पनी के सम्मति-पत्रित कर्मचारियों में से नियुक्त किये जाने थे।

17. उपहार आदि लेना दुराचरण तथा अपराध घोषित किया गया और इसके लिए दोषी व्यक्ति को कठोर दण्ड देने की व्यवस्था की गई।

18. कम्पनी के असैनिक कर्मचारियों को पदोन्नति देने के सम्बन्ध में भी नियम बनाये गये।

19. गवर्नर जनरल तथा उसकी कौंसिल को प्रेसीडेन्सी नगरों (बम्बई तथा मद्रास) में सड़कों की सफाई, देख-रेख और मरम्मत करने के लिए मेहतरों की नियुक्ति करने का अधिकार दिया गया। वे इन बस्तियों में स्वच्छता कर उपशुल्क लगाकर इस कार्य के लिए आवश्यक धन भी प्राप्त कर सकते थे।

20. कम्पनी को 20 वर्ष के लिए पूर्वी देशों के साथ व्यापार करने का अधिकार दिया गया था, परन्तु साथ ही निज़ी व्यापार के लिए तीन हजार टन तक का माल व्यापार करने की अनुमति दे दी गई थी, परन्तु इस अधिकार के प्रयोग में अनेक प्रतिबन्ध थे। अतः इसका कभी भी प्रयोग नहीं किया गया।

ऐक्ट का महत्त्व

इस एक्ट का कोई संवैधानिक महत्त्व नहीं है। इसके द्वारा भारतीय शासन व्यवस्था में कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किया गया। फिर भी, भारतीय संविधान पर इसका प्रभाव बहुत लम्बी अवधि तक रहा। इस चार्टर की मुख्य विशेषता यह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

थी कि इसके द्वारा बोर्ड ऑफ कण्ट्रोल कें सदस्यों को भारतीय कोष से वेतन देने की व्यवस्था की गई। यह गन्दी प्रथा 1919 का ऐक्ट पास होने तक जारी रही। इसके परिणाम स्वरुप भारत को भारी आर्थिक हानि उठानी पड़ी। जी.एन.सिंह ने लिखा है कि, "इस चार्टर के साथ बुरी रूढ़ि स्थापित हुई, जो 1919 ई. तक अपने बुरे परिणामों के साथ चलती रही।"

(II) 1813 का चार्टर ऐक्ट

1793 के चार्टर ऐक्ट के बाद सन् 1813 में एक और ऐक्ट पास किया गया। यह ऐक्ट पहले चार्टर ऐक्ट की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण था। इस ऐक्ट से कम्पनी के एकाधिकार को आघात पहुँचा। इसमें भारतीयों के लिए शिक्षा की व्यवस्था की गई। इसके अतिरिक्त इस ऐक्ट में कम्पनी के भारतीयों प्रदेशों पर ब्रिटिश सम्राट की प्रभुसत्ता पर बल दिया गया।

ऐक्ट के पास होने के कारण

1793 ई. के ऐक्ट के द्वारा कम्पनी को पूर्वी देशों (भारत एंव चीन आदि) के साथ व्यापार करने का एकाधिकार 20 वर्ष के लिए दिया गया था। यह अवधि 1813 ई. .में समाप्त हों गई थी। अतः कम्पनी के संचालकों ने अधिकार पत्र के नवीनीकरण के लिए संसद से प्रार्थना की। उस समय परिस्थिति बहुत बदल चुकी थी तथा अनेक नई समस्याएँ उत्पन्न हो गई थीं। निम्नलिखित कारणों से कम्पनी कें व्यापारिक विशेषाधिकारों को जारी रख पाना सम्भव नहीं था।

1813 ई. का चार्टर एक्ट की धाराएँ : लार्ड मिण्टो के शासनकाल में ब्रिटिश संसद ने 1813 ई. का चार्टर एक्ट पारित किया, जिसकी प्रमुख धाराएं निम्नलिखित थी :

(1) इस एक्ट द्वारा ब्रिटिश संसद ने कम्पनी को आगामी 20 वर्ष के लिए भारत में व्यापार करने का आज्ञा-पत्र प्रदान कर दिया।

(2) इस एक्ट द्वारा कम्पनी के व्यापारिक एकाधिकार को समाप्त कर दिया गया और सभी अंग्रेज व्यापारियों को भारत से व्यापार करने की आज्ञा दे दी गई।

(3) कम्पनी का चीन से अफीम और चाय के व्यापार का एकाधिपत्य सुरक्षित रहा।

(4) बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल की शक्तियों में वृद्धि कर दी गई। कम्पनी के मामलों में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अन्तिम निर्णय ब्रिटिश सम्राट का माना जाएगा, किन्तु दीवानी प्रबन्ध कम्पनी के पास ही रखा गया।

(5) भारत में ईसाई धर्म के प्रचार की अनुमति दे दी गई तथा कलकत्ता में एक बिशप तथा तीन पादरी इस कार्य हेतु नियुक्त किए गए।

(6) कम्पनी ने पहली बार भारत में शिक्षा का प्रचार करने के लिए एक लाख रुपया प्रतिवर्ष खर्च करने की व्यवस्था की।

इस एक्ट द्वारा सम्पूर्ण ब्रिटिश प्रजा को भारत से व्यापार करने का अधिकार दे दिया गया, जिसके कारण भारतीयों का तीव्र शोषण आरम्भ हो गया। भारत से कच्चा माल सस्ती दरों पर इंग्लैण्ड जाने लगा तथा मशीनों द्वारा निर्मित माल भारतीय बाजारों में आने लगा। इससे भारत के लघु एवं कुटीर उद्योग-धन्धे पतन की ओर अग्रसर हो गए।

1833 का चार्ट्र एक्ट : लार्ड विलियम बैन्टिक के शासनकाल की एक अन्य महत्त्वपूर्ण घटना ब्रिटिश संसद द्वारा 1833 ई. का चार्टर एक्ट पारित करना था। इस चार्टर द्वारा भारत के शासन में निम्नलिखित परिवर्तन किए गए :

(1) इस एक्ट द्वारा कम्पनी की अवधि 20 वर्षों तक के लिए बढ़ा दी गई, किन्तु कम्पनी के व्यापारकि एकाधिकार को सीमित कर दिया गया इस एक्ट द्वारा चीन से व्यापार करने का कम्पनी का एकाधिपत्य समाप्त कर दिया गया।

(2) इस एक्ट द्वारा कम्पनी को 20 वर्ष के लिए शासन करने का अधिकार दिया गया था, लेकिन उसने शासन सम्बन्धी अधिकारों को भी सीमित कर दिया गया इस एक्ट के अनुसार यह निश्चित किया गया कि यद्यपि अगले 20 वर्षों तक भारतीय प्रदेशों पर कम्पनी का शासन होगा, लेकिन कम्पनी अपने उन अधिकारों को ब्रिटिश सम्राट, उसके उत्तराधिकारी तथा भारत सरकार की सेवा में धरोहर (अमानत) के रूप में रखेगी।

(3) इस एक्ट द्वारा बंगाल के गवर्नर. जनरल को समस्त भारत का गवर्नर जनरल बना दिया गया, क्योंकि पंजाब के अतिरिक्त शेष भारत अंग्रेजों के अधीन हो चुका था ।

(4) गवर्नर जनरल और उसकी कौंसिल को सम्पूर्ण ब्रिटिश भारत के लिए कानून बनाने का अधिकार दे दिया गया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(5) गवर्नर जनरल की परिषद् में एक चौथा सदस्य कानूनी सदस्य के रुप में बढ़ा दिया गया।

(6) इस एक्ट द्वारा बम्बई व मद्रास के गवर्नरों और उनकी कौंसिलों को कानून बनाने के अधिकार से वंचित कर दिया गया।

(7) इस एक्ट से पूर्व अंग्रेज व्यापारियों एवं मिश्नरियों को भारत आने के लिए लाइसेन्स लेना पड़ता था, परन्तु 1833 ई. के एक्ट के द्वारा लाइसेन्स लेने का प्रतिबंध हटा दिया गया तथा अंग्रेजों को भारत के किसी भीं भाग में बसने तथा बस्तियां बनाने का अधिकार दे दिया।

(8) भारत में सिंचाई जनता के लाभ के लिए मद्रास, कलकत्ता, बम्बई में बिशपों की नियुक्ति की व्यवस्था की गई।

(9) इस एक्ट द्वारा गवर्नर जनरल को आदेश दिया गया कि वह अपनी कौंसिल के सदस्यों की सहायता से भारत में दास प्रथा को समाप्त करने का प्रयत्न करें तथा दासों के सुधार के लिए अच्छे नियम बनाए।

(10) एक्ट में यह भी उल्लेख किया गया कि सरकारी सेवाओं में प्रत्येक व्यक्ति को बिना किसी भेदभाव के योग्यतानुसार नौकरी दी जाएगी अर्थात् धर्म, जन्म स्थान, वंश, जाति और रंग के आधार पर सरकारी सेवा में प्रवेश के लिए कोई भेदभाव नहीं बरता जाएगा। किन्तु यह एक्ट का केवल सैद्धान्तिक पहलू ही था, व्यावहारिक दृष्टि से इसको विशेष महत्त्व नहीं दिया गया।

इस एक्ट द्वारा केन्द्रीय सरकार को शक्तिशाली बनाया और अंग्रेजों को भारत में आने और वहां बसने की आज्ञा प्रदान की गई।

1853 ई. का चार्टर एक्ट : 1833 के चार्टर की अवधि पूरी होने पर ब्रिटिश संसद ने 1853 ई. में एक नया चार्टर एक्ट पारित किया, जिसकी मुख्य शर्तें निम्नलिखित थीं :

(1) इस एक्ट में संसद ने कम्पनी को 20 वर्ष तक भारत पर शासन करने की आज्ञा नहीं दी थी। इस एक्ट में यह स्पष्ट कर दिया गया कि कम्पनी का शासन भारत में तब तक चलता रहेगा, जब तक कि संसद कोई अन्य व्यवस्था न कर दे अर्थात ब्रिटिश संसद को यह अधिकार प्राप्त हो गया कि वह जब चाहे कम्पनी से भारत का शासन अपने हाथ में ले सकती थी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(2) गवर्नर जनरल की परिषद् में कानून निर्माण में सहायता देने के लिए छः नवीन सदस्यों की नियुक्ति की गई। बंगाल का मुख्य न्यायाधीश, सर्वोच्च न्यायालय का एक जज तथा बंगाल, मद्रास, बम्बई, उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त की सरकारों के प्रतिनिधि सदस्य बने। इस प्रकार विधायी परिषद् में 12 सदस्य हो गए, जिनका कार्य कानूनों का निर्माण करना था।

(3) इस एक्ट द्वारा सिविल सिर्विस में भर्ती के लिए प्रतियोगिता परीक्षा की व्यवस्था की गई।

(4) बंगाल के लिए एक अलग लेफ्टिनेन्ट गवर्नर की नियुक्ति की गई, जिससे गवर्नर जनरल को बंगाल के शासन के भार से मुक्ति मिल गई।

(5) कौंसिल ब्रिटिश संसद की भांति कानूनों का निर्माण करेगी, परन्तु गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी कौंसिल के किसी भी विधेयक को रद्द कर सकती थी।

(6) इस एक्ट में संचालक मंडल की शक्ति कम करने के लिए उनकी सदस्य संख्या 24 से घटाकर 18 कर दी गई और इनमें से 6 संचालकों की नामजदगी ब्रिटिश ताज द्वारा होती थी। इसका परिणाम यह हुआ कि कम्पनी के मामलों में ब्रिटिश सरकार का नियंत्रण और अधिक प्रभावी हो गया।

इस एक्ट के द्वारा भारत में संसदीय पद्धति का आरम्भ हुआ था, अबकि इस एक्ट के निर्माता इस बात के विरुद्ध थे।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 1772 ई.से 1856ई.के. मध्य कम्पनी ने अपने साम्राज्य विस्तार किया और विजित क्षेत्रों में प्रशासन का पुनर्गठन भी किया गया। प्रशासनिक पुनर्गठन और प्रशासनिक सुधारों का यह सिलसिला लार्ड डलहौजी के समय तक चलता रहा। इन सुधारों का प्रमुख लक्ष्य ब्रिटिश हितों की रक्षा करना और कम्पनी शासन को दृढ़ता प्रदान करना था। अतः भारतीयों का शोषण दिन प्रतिदिन तीव्र होता गया तथा कम्पनी शासन को दृढता प्राप्त होने से भारतीयों की दासता की बेड़िया भी दृढ़ होती गई। इसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय जनता में अंग्रेजी शासन के विरुद्ध तीव्र गति से असन्तोष फैला, जिसके कारण निर्धारित समय से पहले ही 1857 ई. का विद्रोह आरम्भ हो गया।

1854 का गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया ऐक्ट

ब्रिटिश संसद ने 1854 ई. में भारत अधिनियम पास किया। इसके द्वारा कुछ महत्त्वपूर्ण प्रशासनिक परिवर्तन किये गये।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस ऐक्ट द्वारा सपरिषद गवर्नर जनरल को यह शक्ति प्रदान की गई थी कि वह संचालक मण्डल तथा विधान मण्डल की स्वीकृति से कम्पनी के किसी भी क्षेत्र की व्यवस्था और नियंत्रण को अपने हाथ में ले सकता है। उसे उस क्षेत्र के प्रशासन के सम्बन्ध में सब आवश्यक आदेश तथा निर्देश जारी करने का अधिकार भी दिया गया।

उपर्युक्त उपबन्धों के आधार पर असम, मध्य प्रदेश, उत्तर निश्चित सीमान्त प्रान्त, बर्मा, बिलोचिस्तान और दिल्ली में चीफ कमिश्नरों की नियुक्ति की गई।

सी. एल. आनन्द के शब्दों में, "इस अधिनियम का प्रभाव यह हुआ कि सपरिषद गवर्नर जनरल को किसी भी प्रान्त के ऊपर सीधा नियन्त्रण रखने के कार्य से छुटकारा मिल गया। इसके बाद से भारत सरकार ने देश के समूचे प्रशासन पर केवल पर्यवेक्षक और निदेशक प्राधिकारी का ही रुप धारण कर लिया।"

इस ऐक्ट द्वारा सपरिषद गवर्नर जनरल को यह शक्ति भी प्रदान की गई कि वह प्रान्तों की सीमाओं को सीमित और निर्धारित कर सके। इस ऐक्ट में यह भी कहा गया था कि गवर्नर जनरल अब से बंगाल का गवर्नर की उपाधि धारण नहीं करेंगा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

6 भारत का संवैधानिक विकास
(1858 ई0 से 1909 ई0 तक)

भारत के संवैधानिक विकास का इतिहास ब्रिटिश शासन के इतिहास से जुड़ा है। भारत में 1858 ई. के बाद संवैधानिक विकास की प्रक्रिया आरम्भ हुई। 1858 ई. मे ब्रिटिश सरकार ने एक अधिनियम पारित किया, जिसके द्वारा कम्पनी की शासन सत्ता समाप्त कर दी गई तथा भारत का प्रशासन ब्रिटिश ताज के अधीन कर दिया गया। 1858 में इलाहाबाद दरबार में महारानी विक्टोरिया की घोषणा प्रसारित की गई, जिसमें भारतीयों को यह आश्वासन दिया गया कि अब भारत का प्रशासन प्रजा के हितों को ध्यान में रखकर चलाया जायेगा। यह भी कहा गया कि ब्रिटिश सरकार भारतीय जनता पर न तो कोई विशेष धार्मिक विचार थोपने का प्रयास करेगी और न ही भारतीयों के धार्मिक मामलों में कोई हस्तक्षेप करेगी। इस घोषणा का सर्वत्र स्वागत हुआ, किन्तु वास्तव में यह अधिनियम द्वारा किया गया परिवर्तन मात्र सैद्धान्तिक था। फलस्वरूप भारतीयों में असन्तोष उत्पन्न होने लगा और भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन जोर पकड़ने लगा। इसिलिए ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों के असन्तोष को दूर करने के लिए समय-समय पर अधिनियम पारित किये, जिससे भारत में संसदीय प्रथा तथा प्रतिनिधि संस्थाओं का विकास सम्भव हो सका। इस प्रकार 1858 से 1957 तक के संवैधानिक विकास का इतिहास ब्रिटिश साम्राज्य और भारतीय राष्ट्रवाद के बीच संघर्ष का परिणाम था।

ब्रिटिश सरकार ने राष्ट्रीय आन्दोलन के दबाव से विवश होकर 1861 ई. को भारतीय कौंसिल अधिनियम पारित किया। 1885 से 1891 ई. के बीच राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व उदारवादियों के हाथों में रहा। उन्होंने वैधानिक सुधार की माँग की। अतः उन्हें सन्तुष्ट करने के लिए 1892 का भारतीय कौंसिल अधिनियम पारित किया गया। 1909 का मार्लेमिण्टो सुधार अधिनियम उग्रवादी आन्दोलन का परिणाम था। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान राष्ट्रीय आन्दोलन तीव्र हो गया। सरकार को विवश होकर भारत सचिव मोण्टेग्यू की घोषणा के आधार पर 1919 का अधिनियम पारित करना पड़ा। इसके बाद असहयोग, स्वराज्य दल के कार्य, साईमन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कमीशन की असफलता, सविनय अवज्ञा आन्दोलन और गोलमेज सम्मेल के फलस्वरुप 1935 का अधिनियम पारित हुआ। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान 1942 में महात्मा गाँधी के नेतृत्व में भारत छोड़ो आन्दोलन चलाया गया। इस समय राष्ट्रीय आन्दोलन की तीव्र गति हो गई थी। अतः ब्रिटिश सरकार ने विवश होकर भारतीय स्वाधीनता पारित किया। इस प्रकार हमारे संवैधानिक विकास पर राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रभाव स्पष्ट रुप से दिखाई देता है।

भारतीय कौंसिल अधिनियम, 1861

1861 ई. का अधिनियम भारत के संवैधानिक विकास के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण कदम था। इस अधिनियम के द्वारा सर्वप्रथम भरतीयों को शासन में सम्मिलित करने का प्रयत्न किया गया। 1853 ई. के कानून से प्रान्तों को कानून निर्माण के अधिकार दिये गये थे, उससे वे सन्तुष्ट नहीं थे। गवर्नर जनरल की कौंसिल जिस तरह से व्यवस्थापिका सभा से रुप में कार्य कर रही थी, उससे अंग्रेज शासक असन्तुष्ट थे। इसके अलावा 1858 में कम्पनी शासन की समाप्ति के बाद भारत के प्रशासनिक ढाँचे में कुछ परिवर्तन करना भी आवश्यक हो गया था, क्योंकि 1858 ई. के कानून द्वारा भारत के शासन में कोई परिवर्तन नहीं किया गया था। अतः 1861 में भारतीय कौंसिल अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम की मुख्य धाराएँ निम्नलिखित थीं -

1. इस अधिनियम द्वारा गवर्नर की कार्यपालिका में एक सदस्य और बढ़ा दिया गया। इससे अब सदस्यों की संख्या 5 हो गई। इसके अतिरिक्त सदस्य के लिए वित्त सम्बन्धी ज्ञान आवश्यक था। प्रधान सेनापति को पहले की भाँति कौंसिल का असाधारण सदस्य बनाने की व्यवस्था की गई।

2. कार्यपालिका की कार्यवाही का सुचारु रुप से संचालन करने हेतु गवर्नर जनरल को नियम व उपनियम बनाने का अधिकार दिया गया। गवर्नर जनरल को कौंसिल के सदस्यों में कार्य वितरण करने का अधिकार दिया गया महत्त्वपूर्ण मामले गवर्नर जनरल की कौंसिल के समक्ष रखे जाते थे, जहाँ निर्णय बहुमत के आधार पर लिया जाता था। किन्तु स्वीकृति गवर्नर जनरल के हाथ में थी ।

3. कानून निर्माण के कार्य में सहयोग के लिये गवर्नर जनरल को अपनी कौंसिल में 6 से 12 तक सदस्यों की वृद्धि करने का अधिकार दिया गया। इनमें से कम से कम आधे सदस्य गैर-सरकारी रखे गये और इनका कार्यकाल 2 वर्ष रखा गया। इन सदस्यों को कार्यपालिका पर नियन्त्रण रखने का कोई अधिकार न था। गवर्नर जनरल को इनकी राय ठुकराने का पूर्ण अधिकार था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

4. विधान परिषद् द्वारा पारित विधेयक पर गवर्नर जनरल की स्वकृति आवश्यक थी। इसके बाद ही वह अधिनियम ब्रिटिश भारत से समस्त क्षेत्रों में लागू होता था। गवर्नर जनरल द्वारा स्वीकृत अधिनियमों को भारत सचिव रद्द कर सकता था।

5. गवर्नर जनरल को आवश्यकता पड़ने पर अध्यादेश जारी करने का अधिकार दिया गया। यह अध्यादेश छह माह तक लागू रह सकते थे। किन्तु छह महीने से पहले भी भारत सचिव तथा उसका कौंसिल और गवर्नर जनरल की विधान परिषद् उसे रद्द कर सकती थी।

6. इस अधिनियम द्वारा प्रान्तों को स्थानीय या प्रान्तीय विषयों के सम्बन्ध में कानून बनाने का अधिकार दिया गया। प्रान्तीय गवर्नरों को एक प्रान्तीय महाधिवक्ता तथा 4 से 8 तक अतिरिक्त सदस्य मनोनीत करने का अधिकार दिया गया। इन अतिरिक्त सदस्यों में से कम से कम आधे सदस्यों का गैर-सरकारी होना आवश्यक था। इन सदस्यों का कार्यकाल दो वर्ष निर्धारित किया गया। प्रान्तों द्वारा पारित प्रत्येक कानून पर गवर्नर जनरल की स्वीकृति आवश्यक थी।

7. इस अधिनियम के द्वारा प्रान्तों की सीमाओं में परिवर्तन करने का अधिकार भी गवर्नर जनरल को दिया गया था।

अधिनियम की समीक्षा - 1861 के अधिनियम द्वारा विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति आरम्भ हुई। इस अधिनियिम द्वारा प्रान्तों की विधान परिषदों को पुनः कानून बनाने के अधिकार दे दिये गये थे तथा भारतीयों के लिये भी विधायी क्षेत्र में प्रवेश हेतु मार्ग खोल दिया गया था। गुरुमुख निहाल सिंह ने लिखा है कि, "इस अधिनियम से उस नीति का आरम्भ हुआ, जिसके कारण 1937 में, 1935 के अधिनियम के अनुसार प्रान्तों को आन्तरिक मामलों में स्वराज्य दे दिया गया।"

इस कानून द्वारा केन्द्र में व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों की संख्या में वृद्धि की गई थी। प्रथम बार गैर-सरकारी सदस्यों को मनोनीत करने की व्यवस्था की गई थी। इसी प्रकार प्रान्तों में विधायी परिषदों को कानून बनाने का अधिकार दिया गया था, लेकिन यह स्पष्ट है कि प्रान्तीय विधान परिषदें नाम मात्र की ही विधान परिषदें थीं।

इस अधिनियम से भारतीयों को विधान परिषदों में वास्तविक प्रतिनिधित्व नहीं मिला, क्योंकि सदस्यों को नियुक्त करने का अधिकार गवर्नर जनरल को था तथा वह ऐसे व्यक्तियों को नियुक्त करता था, जो ब्रिटिश सरकार की हाँ में हाँ मिलाते थे। ये लोग भारतीय जनता के प्रतिनिधि नहीं होते थे। भारतीय सदस्यों के सम्बन्ध में डॉ. एस.आर. शर्मा ने लिखा है कि, "सरकार का यह विचार नहीं था कि वे कानून निर्माण में कोई कारगर भाग लें। वे तो का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निर्माण की प्रक्रिया के साक्षी भी ही थे" कृपाराम बम्बवाल ने इस सम्बन्ध में लिखा है किं "इस अधिनियम की सबसे बड़ी त्रुटि यह थी कि विधान परिषदें, कार्यपालिका के ऊपर कोई नियन्त्रण नहीं रखती थी। उनपर इतने प्रतिबन्ध लगे हुए थे कि उनका सारा महत्त्व दिखावटी मालूम पड़ता था।" संक्षेप में, भारतीय इस ऐक्ट से असन्तुष्ट थे। अतः उन्होंने कुछ समय पंश्चात ही व्यवस्थित तरीके से राजनीतिक आन्दोलन आरम्भ किया। अतः ब्रिटिश सरकार को विवश होकर 1892 में एक अधिनियम पारित करना पड़ा।

भारतीय कौंसिल अधिनियम, 1892

1861ई. के कानून से भारतीय सन्तुष्ट न हो सके। इस समय भारत में पाश्चात्य शिक्षा के प्रचार से भारतीयों में अपेक्षाकृत अधिक जागृति आई थी। फलस्वरुप 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई। काँग्रेस ने 1861 के सुधारों को अपर्याप्त बताया और विधान परिषदों के विस्तार की मांग की। विधान परिषदों के अधिकांश सदस्य सरकारी अधिकारी होते थे। अतः काँग्रेस ने माँग की कि इनमें अधिकांश सदस्य जनता द्वारा निर्वाचित होने चाहिये। काँग्रेस ने यह भी मांग की कि विधान परिषद सदस्यों को प्रशासन के समस्त विभागों के विषय में प्रश्न पूछने और बजट पर बहस करने का अधिकार दिया जाय। लार्ड डफरिन की काँग्रेस की माँग से कोई सहानुभूति नहीं थी, लेकिन वह राजाओं, महाराजाओं, जागीरदारों और सामन्तों के स्थान पर पाश्चात्य विचारों से प्रभावित भरतीयों को स्थान देना चाहता था। अतः डफरिन ने भारत में सुधारों के बारे में सुझाव देने के लिये सर जॉन चेनी की अध्यक्षता में एक कमेटी नियुक्त की। इस समिति ने सिफारिश की कि विधान कौंसिल को एक छोटी संसद के रुप में विकसित कर दिया जाए। इधर कांग्रेस भी प्रतिवर्ष प्रस्ताव पारित कर दिया परिषद के ढाँचे में सुधार करने हेतु सरकार से आग्रह कर रही थी। प्रमुख समाचार-पत्र भी विधान परिषदों में अधिक भारतीयों की नियुक्ति तथा कौंसिल के अधिकारों में वृद्धि करने की माँग कर रहे थे। अतः लार्ड डफरिन ने चेनी कमेटी की रिपोर्ट के आधार पर गृह सरकार को अपने सुझाव भेजे। ब्रिटिश सरकार ने इन सुझावों के आधार पर 1892 का भारतीय कौंसिल अधिनियम पारित किया। इस अधिनियम की मुख्य धाराएँ निम्नलिखित थीं -

1. इस अधिनियम द्वारा केन्द्रीय व्यवस्थापिका के सदस्यों की संख्या में वृद्धि की गई। गवर्नर जनरल की कौंसिल में अतिरिक्त सदस्यों की संख्या कम से कम 10 और अधिक से अधिक 16 निश्चित की गई। इनमें से 10 स्थान गैर सरकारी सदस्यों हेतु रखे गये।

2. इस अधिनियम द्वारा मद्रास तथा बम्बई की प्रान्तीय कौंसिलों में अतिरिक्त सदस्यों की संख्या 8 से लेकर 20 तक रखी गई। बंगाल कौंसिल में 20 तथा उत्तर पश्चिमी प्रान्त में 15

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अतिरिक्त सदस्य नियुक्त करने की व्यवस्था की गई।

3. गैर-सरकारी सदस्यों की नियुक्ति के लिये प्रणाली अपनाई गई, वह निर्वाचित अ मनोनीत के मध्य की प्रणाली थी। इस सम्बन्ध में यह निश्चित किया गया कि कुछ गै सरकारी, सदस्यों को तो मनोनीत किया जाए तथा शेष को नगरपालिकाओं जिला बो कॉरपोरेशन, विश्वविद्यालय अथवा व्यापारिक मण्डलों की सिफारिशों के आधार पर मनोनी किये जाएँ।

4. गवर्नर जनरल को सदस्यों की नियुक्ति के सम्बन्ध में नियम बनाने का अधिकार दि गया, किन्तु उसके लिये भारत सचिव की अनुमति लेना अनिवार्य था।

5. इस अधिनियम द्वारा विधान परिषद के सदस्यों के अधिकारों में वृद्धि कर दी गई थ इस अधिनियम के अन्तर्गत सदस्यों को सार्वजनिक प्रश्नों के विषय में कार्यकारिणी से प्र पूछने का अधिकार प्राप्त हुआ तथा वार्षिक बजट पर बहस करने का अधिकार भी मिल गय सदस्यों को न तो पूरक प्रश्न पूछने का और नहीं प्रश्न के उत्तर पर बहस करने का अधिक दिया गया। विधान परिषद के अध्यक्ष को यह अधिकार दिया गया कि वह बिना कारण बत किसी प्रश्न के पूछने की अनुमति न दें।

अधिनियम की समीक्षा- 1892 का अधिनियम भारत में वैधानिक विकास की दिशा में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कदम था। इसने व्यवस्थापिका सभा के भारतीय सदस्यों की संख्या में उनके अधिकारों में वृद्धि की, जिससे उन्हें वार्षिक बजट पर बहस करने तथा प्रश्न पूछने अधिकार मिला। परोक्ष निर्वाचन की प्रथा का आरम्भ इस अधिनियम से हुआ। यह कहा है कि, "वस्तुतः उत्तरदायी शासन की स्थापना 1861 ई. से नहीं, बल्कि 1892 ई. से आर हुई।"

इतना होने पर भी यह अधिनियम भारतीयों को सन्तुष्ट नहीं कर सका। इसमें जि निर्वाचन पद्धति को अपनाया गया था, वह नितान्त अस्पष्ट एवं असंतोषजनक थी। कार्यकारि अपनी नीतियों के लिये विधान परिषद के प्रति उत्तरदायी नहीं थी। व्यवस्थापिका के अधिक में तो वृद्धि की गई, परन्तु उन पर प्रतिबन्ध लगाकर अधिकारों को निरर्थक बना दिया उदाहरण स्वरुप, सदस्यों को पूरक प्रश्न पूछने की अनुमति न दे और अध्यक्ष के इस नि के विरुद्ध कोई नहीं बोल सकता था। सदस्यों को बजट के प्रस्तावों पर मत देने का अधि नहीं था। स्वयं कांग्रेस भी इस अधिनियम से असन्तुष्ट थी। इस प्रकार यह अधिनि जागरुक भारतीयों की आकांक्षाओं को पूरा नहीं कर सका।

भारतीय कौंसिल अधिनियम, 1909

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(मार्ले-मिण्टो सुधार)

1892 ई. का अधिनियम भारतीयों को सन्तुष्ट नहीं कर सका। इसके बाद राष्ट्रीय आन्दोलन में भी तीव्रता आ गई थी कांग्रेस में अब गरम दल का बहुमत होता जा रहा था। इस कारण सरकार ने नरम दल को सन्तुष्ट करने और कांग्रेस को गरम दल के प्रभाव में जाने से बचाने के लिये कुछ सुधार करना आवश्यक समझा। इधर लार्ड कर्जन ने 'फूट डालो और शासन करो' की नीति पर चलते हुए बंगाल का विभाजन कर दिया। इसी समय अबीसीनिया ने इटली और जापान ने रुस को पराजित किया। इससे भारतीयों में एक नई चेतना का संचार हुआ। बंगाल विभाजन के कारण बंग-भंग आंदोलन आरम्भ हुआ, जिसने धीर-धीरे राष्ट्रीय आन्दोलन का रुप धारण कर लिया, जिसको सरकार ने आनी शक्ति से कुचल दिया। फलस्वरुप देश में आतंकवादी आन्दोलन का विकास हुआ। सरकार ने जनता को क्रान्तिकारियों के प्रभाव से बचाने के लिये भी सुधार करना आवश्यक समझा। परिणामतः 1909 में भारतीय कौंसिल अधिनियम परित हुआ, जिसे 'मार्ले मिण्टो' सुधार कहते हैं। मार्ले भारत का सचिव था तथा मिण्टो भारत का गवर्नर जनरल था। रॉलिन्सन ने लिखा है कि, "1909 के ' इण्डियन कौंसिल ऐक्ट ने कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन न करते हुए भी भारत को स्व-शासन की सड़क के प्रथम चरण तक पहुँचा दिया।"

अधिनियम की धाराएँ

इस अधिनियम की मुख्य धाराएँ निम्नलिखित थीं -

1. इस अधिनियम के अनुसार गवर्नर जनरल की कौंसिल तथा प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओं में तीन प्रकार के सदस्यों की व्यवस्था की गई थी- सरकारी सदस्य, गैर-सरकारी सदस्य तथा निर्वाचित सदस्य।

2. इस अधिनियम द्वारा गवर्नर जनरल की विधान परिषद के सदस्यों की संख्या बढ़ाकर 69 कर दी गई जिनमें 9 पदेन (कार्यकारिणी के सदस्य) तथा 60 अतिरिक्त सदस्य रखे गये। अतिरिक्त सदस्यों में से 28 सरकारी सदस्य गवर्नर जनरल द्वारा मनोनीत किये जायेंगे। 32 सरकारी सदस्यों में से 27 निर्वाचित सदस्यों में से 5 मुसलमानों द्वारा, 6 हिन्दू जमींदारों द्वारा, एक-एक मुस्लिम जमीदारों, एक बंगाल चेम्बर ऑफ कॉमर्स द्वारा तथा बम्बई चेम्बर ऑफ कामर्स द्वारा चुने जाते थे। शेष 13 सदस्यों का चुनाव प्रान्तीय विधान परिषदों के गैर सरकारी सदस्यों द्वारा किये जाने का निश्चय हुआ। अतिरिक्त सदस्यों का कार्यकाल तीन वर्ष रखा गया।

3. इस अधिनियम द्वारा बम्बई, मद्रास और उत्तर प्रदेश की प्रान्तीय परिषदों में अतिरिक्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सदस्यों की संख्या 50 तथा अन्य प्रान्तों के लिये 30 रखी गई। इन सदस्यों में गैर सरकारी सदस्यों का बहुमत होता था। पर यह बहुमत गैर सरकारी निर्वाचित सदस्यों का नहीं था। मनोनीत, गैर-सरकारी और निर्वाचित सदस्यों को मिलाकर सरकारी सदस्यों की संख्या से अधिक रखी गई।

4. इस अधिनियम द्वारा विधान परिषदों के कार्यों और अधिकारों में वृद्धि की गई। सदस्यों को प्रश्न एवं पूरक प्रश्न पूछने का भी अधिकार दिया गया। पूरक प्रश्न केवल वही सदस्य पूछ सकता था, जिसने मूल प्रश्न पूछा हो। स्पष्ट है कि दूसरे सदस्यों को पूरक प्रश्न पूछने का अधिकार नहीं दिया गया। सदस्यों को बजट पर बहस करने और प्रस्ताव पेश करने का अधिकार दिया गया, किन्तु वे बजट पर मतदान नहीं कर सकते थे। सैनिक तथा कुछ अन्य मतों पर सदस्यों को बहस करने का अधिकार भी नहीं था। विधान परिषद के अध्यक्ष को किसी भी प्रस्ताव को प्रस्तुत करने पर रोक लगाने का भी अधिकार प्राप्त था। प्रस्ताव प्रस्तुत करने के सम्बन्ध में कहा गया कि, "वे स्पष्ट तथा निश्चित होने चाहिए, उनमें दलील, अनुमान तथा आक्षेप की चर्चा नहीं होनी चाहिये।" इसके अतिरिक्त किसी प्रश्न विशेष का उत्तर देने के लिए कार्यकारिणी बाध्य नहीं थी।

5. भारत सचिव को मद्रास और बम्बई की कार्यकारिणी के सदस्यों की संख्या 2 से बढ़ाकर 4 कर देने का अधिकार दिया गया।

6. इस अधिनियम द्वारा सम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली को अपनाया गया। निर्वाचन प्रणाली अप्रत्यक्ष थी। मुसलमानों को सामान्य निर्वाचन में भाग लेने का अधिकार दिया गया तथा साथ ही उन्हें पृथक मत देने का अधिकार भी दिया गया मुसलमानों को पृथक प्रतिनिधित्व देने के लिए विभिन्न व्यवस्थापिकाओं में स्थान सुरक्षित रखे गये। इस प्रकार जमींदारों डिस्ट्रिक्ट बोर्डों, व्यापारियों एंव नगरपालिकाओं आदि को पृथक प्रतिनिधित्व दिया गया।

अधिनियम की समीक्षा - यह अधिनियम 1892 के ऐक्ट की अपेक्षा निःसन्देह एक प्रगतिशील कदम था। गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी और भारत सचिम की कौंसिल में भारतीयों को स्थान दिया गया। विधान परिषदों का विस्तार किया गया और इसके सदस्यों के अधिकारों में भी वृद्धि की गई। इस अधिनियम द्वारा अप्रत्यक्ष निर्वाचन पद्धति को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया था। विधान परिषद के सदस्यों को सार्वजनिक हित के मामलों पर प्रस्तावों को प्रस्तुत करने का अधिकार दिया गया। भारतीयों को सरकार की आलोचना करने तथा सुझाव देने का अधिकार प्राप्त हुआ। किन्तु सरकार पर कोई नियन्त्रण नहीं था। रैम्जे मेकडोनाल्ड ने इस अधिनियम के सम्बन्ध में लिखा है कि, "मार्ले-मिण्टो सुधार जनतन्त्रवाद

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और नौकरशाही के बीच एक अधूरा और अल्पकालीन समझौता था।"

वस्तुतः उदारवादियों को सन्तुष्ट करने एवं उनका समर्थन प्राप्त करने के लिए मार्ले-मिण्टो सुधार अधिनियम पारित किया गया था। यदि किसी वजह से उदारवादी भी अंग्रेजों का साथ नहीं दे सके, तो मुसलमानों को पृथक् प्रतिनिधित्व देकर उनका समर्थन प्राप्त करने का प्रयास किया गया था। इस अधिनियम ने भारतीयों की उत्तरदायी सरकार की माँग को पूरा नहीं किया। इस अधिनियम का उद्देश्य भारत में संसदीय सरकार की स्थापना करना नहीं था। जैसा कि ब्रिटिश लोक सभा में भाषण देते हुए लार्ड मार्ले ने कहा था कि, "यदि इन सुधारों के विषय में यह कहा जाए कि इनमें प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रुप से भारत में संसदीय सरकार की स्थापना होती है, तो मेरा ऐसा कार्यों से कोई सम्बन्ध नहीं।"

इस अधिनियम के बाद भी कार्यकारिणी पूर्व की भाँति स्वेच्छाचारिता बनी रही। व्यवस्थापिका सभाएँ कार्यकारिणी को परामर्श दे सकती थी, परन्तु कार्यकारिणी उनके परामर्श को मानने को विवश नहीं थी। इस प्रकार कार्यकारिणी की नीतियों पर उनका किसी प्रकार का अंकुश नहीं था। विधान परिषद के अतिरिक्त सदस्यों की संख्या बढ़ाने का कोई प्रभाव नहीं पड़ा, क्योंकि मनोनीत गैर-सरकारी सदस्य सरकारी सदस्यों के साथ ही रहते थे। इसलिए सरकार को कानून पारित करने में तथा व्यवस्थापिका का अनुमोदन प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं होती थी। इस प्रकार विधान परिषदें सरकार के हाथ की कठपुतली बनी रही। विधान परिषदों के सदस्यों के अधिकारों में वृद्धि की गई। किन्तु उनपर विभिन्न प्रकार के प्रतिबन्ध लगाकर उन अधिकारों को सीमित कर दिया गया। सदस्य प्रश्न पूछ सकते थे, परन्तु कार्यकारिणी को उत्तर देने के लिए बाध्य नहीं कर सकते थे। सदस्यों को सार्वजनिक हित के प्रस्ताव पेश करने का अधिकार था, परन्तु विधान परिषद का अध्यक्ष ऐसे किसी प्रस्ताव को प्रस्तुत करने के लिए अस्वीकृति दे सकता था। इस अधिनियम में ऐसे नियम बनाये गये, जिससे उग्रवादी राष्ट्रीय नेता चुनावों में भाग नहीं ले सके। इस अधिनियम पर अपनी प्रक्रिया व्यक्त करते हुए 'अमृत बाजार पत्रिका' ने 17 नवम्बर 1909 को लिखा कि "शून्य के साथ यदि कोई शून्य जोड़ भी दिया जाये, तब भी वह शून्य, शून्य ही रहता है।" कूपलैण्ड ने इस अधिनियम के बारे में लिखा है कि, "विधान परिषदें संसद न होकर केवल दरबार थी।"

इस अधिनियम ने साम्प्रदायिक निर्वाचन की व्यवस्था कर भारत में साम्प्रदायिकता के बीज बो दिये, जो क्रमशः बढ़ते ही गये तथा उसके परिणामस्वरूप 1947 में भारत का विभाजन हुआ। पृथक निर्वाचन प्रणाली द्वारा विभिन्न हितों एवं सम्प्रदायों में परस्पर फूट डालने का प्रयास किया गया। मुसलमानों को अलग प्रतिनिधित्व प्रदान करने उन्हें सर्वदा के लिए भारत के अन्य नागरिकों से पृथक कर दिया। अंग्रेजों ने साम्प्रदायिकता की भावना को हमेशा प्रोत्साहन दिया,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जिसका अन्तिम परिणाम भारत का विभाजन हुआ। इस अधिनियम में निर्वाचित सदस्यों की संख्या मनोनीत सदस्यों की संख्या की अपेक्षा बहुत कम थी। इस कारण निर्वाचित सदस्यों की राय पर किसी भी कार्य के होने की संम्भावना नहीं हो सकती थी।

यह अधिनियम भी भारतीयों को सन्तुष्ट करने में असमर्थ रहा। 1909 में कांग्रेस के उदारवादी नेता स्वयं गोखले ने इन सुधारों को असंतोषजनक बताया। गोखले ने कहा था कि इन सुधारों में कुछ अच्छी बातें थीं, जिन्हें सरकारी नियमों द्वारा नष्ट कर दिया गया। उन्होंने साम्प्रदायिक चुनाव प्रणाली की घोर निन्दा की। श्री बी.एन.धर ने लिखा है कि, "ये सुधार कई प्रकार से अपूर्ण तथा दोषपूर्ण थे, किन्तु हमारी शिकायत उन नियमों तथा दोषपूर्ण व्यवस्था के विरुद्ध है तथा अधिनियम के उद्देश्य को कार्यान्वित करने के लिये जो नियम तथा व्यवस्था अपनायी गयी है, उनसे सुधार योजना वास्तव में नष्ट हो गयी है।" इसी प्रकार जकारिया ने लिखा है कि, "सदस्यों की संख्या बहुत बढ़ा दी गयी, किन्तु तत्काल ही एक जोरदार चेतावनी प्रकाशित कर दी गयी कि नयी परिषदों का किसी भी प्रकार यह अभिप्राय नहीं था कि संसदीय प्रणाली को आरम्भ किया जाए। भारतीय परिषद तथा वायसराय कार्यकारिणी परिषद में केवल कुछ चुने हुए भारतीयों के लिये प्रवेश मिल सका, किन्तु भारतीयों को सरकारी क्षेत्र में प्रविष्ट करने का उदार दृष्टिकोण इस तथ्य को न छिपा सका कि वास्तविक शक्ति ब्रिटिश हाथों में सुरक्षित रही।" मार्ले-मिण्टो सुधार अधिनियम का मुख्य उद्देश्य उदारवादियों को शान्त करना था, किन्तु इस उद्देश्य की प्राप्ति में यह पूर्णतः असफल रहा।

□ □ □

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

7 भारतीय शासन अधिनियम (1919 ई0)

जी. एन. सिंह के अनुसार " ब्रिटिश राज्याधीन भारत के इतिहास में 1909 से 1919 तक का युग सबसे छोटा है किन्तु यह काल अत्यन्त महत्त्व की घटनाओं से परिपूर्ण है।" ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों से सहयोग प्राप्त करने के लिए 1861, 1862 एवं 1909 ई. में अधिनियम पारित किये, लेकिन उसकी भारत में सहयोग की नीति असफल सिद्ध हुई। अतः ब्रिटिश सरकार ने भारत में उत्तरदायी शासन की स्थापना करना आवश्यक समझा। इस हेतु 1919 ई में दूसरा अधिनियम पारित कर आंशिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त को अपनाया गया। इस अधिनियम के जन्मदाता भारत सचिव माण्टेग्यू तथा भारतीय गवर्नर जनरल लार्ड चैम्सफोर्ड थे। अतः इसे माण्टेग्यू चैम्सफोर्ड सुधार या 1919 ई. का भारत सरकार अधिनियम भी कहते हैं। 1919 का ऐक्ट पूर्ववर्ती ऐक्टों की अपेक्षा अधिक व्यापक तथा महत्वपूर्ण था। प्रो. एस.एन. श्रीनिवासन के शब्दों में, इस ऐक्ट द्वारा भारत की नौकरशाही पद्धति को पहली बार गहरा आघात पहुँचा और इसके द्वारा ही भारत में उत्तरदायी शासन वास्तविक रूप में आरम्भ हुआ। इसके अतिरिक्त इस ऐक्ट ने संवैधानिक सुधारों का एक ऐसा बीज बोया जो सन 1947 में भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता के रूप में विकसित हुआ।"[1]

अधिनियम पारित होने के कारण

1919 ई. में भारत सरकार अधिनियम पारित होने के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे-

(1) मार्ले-मिण्टो सुधार के प्रति असन्तोष- मार्ले मिण्टो सुधार त्रुटिपूर्ण, अपर्याप्त तथा अर्द्धमार्गीय थे। उनसे भारतवासियों का कोई भी वर्ग सन्तुष्ट नहीं हुआ। माण्ट फोर्ड रिपोंट में इन सुधारों की व्यर्थता पर प्रकाश डालते हुए कहा गया था, "मार्ले-मिण्टो संविधान से 10 वर्षों

1. श्री निवाससन, एस.एन. डेमोक्रेटिक गवर्नमेंट इन इण्डिया पृष्ठ 43

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की छोटी सी अवधि में ही भारत की राजनीतिक भूख मिटनी बन्द हो गयी। नई संस्थाएँ बड़ शुभ लक्षणों के साथ शुरु हुईं और दोनों ही पक्षों की ओर से उन्हें सौहार्द के साथ चलाने की इच्छा भी थी। किन्तु सफलता के लिए आवश्यक कुछ पूर्ववर्ती दशाएं विद्यमान ही नहीं थीं। स्थानीय निकायों में कोई सामान्य प्रगति नहीं हुई थी; प्रान्तीय वित्त व्यवस्था को वस्तुतः स्वतन्त्र नहीं किया गया था और यद्यपि इस दिशा में प्रगति अवश्य हुई थी, फिर भी लोक-सेवा (Public Services) में व्यापक रुप से भारतीयों को पहले से अधिक संख्या में भर्ती नहीं किया गया था।"

1906 ई. में भारतवासी पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति हेतु आन्दोलन कर रहे थे, किन्तु मार्ले-मिण्टो सुधार ने उनकी आशा पर पानी फेर दिया। भारत सचिव लार्ड मार्ले ने 17 दिसम्बर 1908 ई. को बड़ जोरदार शब्दों में यह घोषणा की थी कि, "मेरे इन सुधारों का उद्देश्य भारतवर्ष में संसदीय शासन की स्थापना करना नहीं है।" इस घोषणा से राष्ट्रवादियों को बहुत निराशा हुई और उन्होंने भारत में उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिए आन्दोलन तेज कर दिया।

1909 का अधिनियम कई अर्थों में प्रतिगामी थी। इसके द्वारा साम्प्रदायिक चुनाव प्रणाली जारी की गई थी, जिससे मुसलमान राष्ट्रीय हितों के लिए घातक थी। प्रान्तीय तथा स्थानीय संस्थाओं पर केन्द्र के नियन्त्रण को और अधिक बढ़ा दिया गया, जिसके कारण केन्द्रीयकरण की नीति को बढ़ावा मिला। अतः 1909 के सुधारों के प्रति भारतीयों में असन्तोष था, जिसके कारण सुधारों के लिए उनका आन्दोलन और तीव्र हो गया।

(2) सरकार की दमन नीति- ब्रिटिश सरकार ने सुधारों द्वारा उदारवादियों को सन्तुष्ट करने और उग्रवादियों को दमनचक्र द्वारा कुचलने की नीति अपनायी, लेकिन वह न तो उदारवादियों को प्रसन्न कर सकी और न ही उग्रवादियों को कुचल सकी। इसके विपरीत उसके दमनकारी कार्यों की घोर प्रतिक्रिया हुई।

विधान परिषदों में गैर सरकारी सदस्यों के कटु विरोध के बावजूद भी सरकार ने कई दमनकारी कानून पास किये। 1910ई. में इण्डियन प्रेस एक्ट पास किया गया, जो पूर्ववर्ती ऐक्टों की अपेक्षा अधिक कठोर था। इसी प्रकार,1913 ई. में क्रिमिनल लॉ (ऐमेन्डमेन्ट) एक्ट पास किया गया। इसके द्वारा कार्यपालिका के षड्यन्त्रों को कुचलने के सम्बन्ध में व्यापक अधिकार दिये गये। इन दमनकारी कानूनों के परिणामस्वरुप राष्ट्रीय आन्दोलन और भी तीव्र हो गया तथा क्रांतिकारी और आतंकवादी गतिविधियों को बढ़ावा मिला। राजनीतिक डकैतियां, हत्याएँ और बमबारियां आम बात हो गयीं। अतः सरकार ने भारतीयों को सन्तुष्ट करना आवश्यक समझा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(3) जातीय-भेदभाव की नीति- दुर्भाग्यवश ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों के प्रति जातीय भेदभाव की नीति को जारी रखा। उसने यूरोपीय और ऐंग्लो इण्डियन को बिना लाइसेन्स गोला बारुद रखने अधिकार दिया, जबकि भारतीयों को इस अधिकार से वंचित रखा गया। सेना के उच्च पदों से भारतीय अधिकारियों को निकाल दिया गया और स्वयं सेवक कोर में उन्हें भर्ती करने से इन्कार कर दिया। दक्षिणी अफ्रीका में भारतीयों के साथ अपमानजनक व्यवहार किया गया और अन्य ब्रिटिश उपनिवेशों में भारतीयों के साथ भेद-भाव की नीति अपनाई गई। इस भेद-भावपूर्ण नीति के कारण भी अंग्रेजों के विरुद्ध भारतीयों में असंतोष की ज्वाला प्रचण्ड हुई।

(4) भारतीयों की अन्य शिकायतें- 1907 ई. में विकेन्द्रीकरण आयोग (डिसेन्ट्रलाइजेशन कमीशन) और 1915 में पब्लिक सर्विस कमीशन की स्थापना से भारतीयों के मनमें बड़ी-बड़ी आशाए उठने लगीं, लेकिन बहुत जल्दी ही उनकी आशा निराशा में बदल गई। विकेन्द्रीकरण आयोग की सिफारिशें अपर्याप्त सिद्ध हुई। स्थानीय संस्थाओं पर भारतीय सरकार के नियंत्रण को ढीला करके उनको स्वायत्त शासन प्रदान करने का बिल्कुल प्रयास नहीं किया गया। लोक सेवा आयोग ने अपना कार्य करने में बड़ी शिथिलता दिखाई, जिसके कारण लोग आग-बबूला हो गये।

(5) लार्ड क्रो की नीति से भारतीयों को निराशा- 1910ई. में लार्ड मार्ले के स्थान पर लार्ड क्रो भारत सचिव बना। वह अनुदारवादी दृष्टिकोण का प्रबल समर्थक था। भारतीयों के प्रेम और वफादारी को जीतने के लिए 1911 ई. में सम्राट जार्ज पंचम और रानी मेरी ने भारत का दौरा किया। इस अवसर पर बंगाल विभाजन को रद्द कर दिया गया। दिल्ली दरबार में सम्राट ने भारतीयों को कुछ रियायतें देने की घोषणा की। इससे भारती राष्ट्रवादियों द्वारा की गई इन व्याख्याओं का खण्डन करते हुए 1912 में लार्ड सभा में कहा कि, "भारत में एक वर्ग जो यह सोचता है कि भारत में संविधानिक सुधार का अगला कदम ऐसा स्वशासन के लिए होगा, जो अन्य उपनिवेशों को दिया दिया गया था। इस दिशा में भारत का कोई भविष्य नहीं दिखता। भारत सचिव होने के नाते मेरे द्वारा ऐसा गलत विचार का खण्डन करना आवश्यक है।" ऐसे अप्रगतिवादी दृष्टिकोण के राष्ट्रवादियों को घोर निराशा हुई और उन्होंने अंग्रेजों से कहा कि वे स्पष्ट शब्दों में इस बात की घोषणा कर दें कि वे भारतीयों को पूर्ण स्वराज्य देने को अपना लक्ष्य स्वीकारते हैं।

(6) सरकार के प्रति मुसलमानों के रुख में परिवर्तन- पृथक निर्वाचन पद्धति के शुरु हो जाने से मुसलमान ब्रिटिश सरकार की ओर से काफी झुक गये। अंग्रेजों के साथ अपनी मित्रता पर उन्हें गर्व था, लेकिन मार्ले-मिण्टो सुधार के बाद कुछ ऐसी घटनाऐं घाटीं, जिनसे मुसलमानों में राष्ट्रीय जागरण हुआ तथा वे अंग्रेज विरोधी हो गये। इसका प्रथम कारण यह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

था कि 1911 ई. में बंगाल विभाजन को रद्द कर दिया गया, जिससे भारतीय मुसलमान रुष्ट हो गये। उन्होंने ऐसा अनुभव किया कि सरकार ने हिन्दुओं की क्रांतिकारी गतिविधियों से डरकर यह शासकीय कदम उठाया है और राजभक्त मुसलमानों के साथ बड़ा द्रोह किया है। इससे मुसलमानों का सरकार पर से विश्वास उठने लगा। दूसरे 1911ई. में तुर्की तथा इटली का समर्थन किया। तीसरे 1912 ई. में बाल्कन युद्धों में अंग्रेजों ने तुर्की के विरुद्ध नीति अपनाई, जिससे भारतीय मुसलमानों में यह सन्देह उत्पन्न हो गया कि यूरोप के ईसाई देश तुर्की की राजनीतिक शक्ति का अन्त करना चाहते हैं। पुन्निया के शब्दों में, "इसे ईसाई मतावलम्बी शक्तियों की ओर से तुर्की को यूरोप से निकल बाहर करने और इस्लाम को एक लौकिक शक्तियों की ओर से तुर्की को यूरोप से निकाल बाहर करने और इस्लाम को एक लौकिक (Temporal) शक्ति के रुप में समाप्त कर देने का प्रबल षड़यन्त्र समझा गया था" दूसरी ओर राष्ट्रवादी पत्रों और पत्रिकाओं ने मुसलमानों के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की। परिणामस्वरुप मुसलमान भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के निकट आने लगे। मुस्लिम तीग पर अलीगढ़ आन्दोलन का प्रभाव कम हो गया तथा कुछ राष्ट्रवादी मुसंलमानों-मौलाना अब्बुल कलाम आजद, मौलाना मुहम्मद अली का प्रभाव बढ़ गया। इन नेताओं ने हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बल दिया। दूसरी ओर मुस्लिम लीग के नेताओं ने नीति में परिवर्तन करने की आवश्यकता अनुभव की। परिणामस्वरुप मुस्लिम लीग ने 1913 में यह घोषणा कर दी कि अंग्रेजों की छत्र के नीचे रह कर ही उत्तरदायी शासन की प्राप्ति उनका प्रमुख उद्देश्य है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस तो पहले ही यह अपना लक्ष्य बनाये हुए थी। उसने मुस्लिम लीग के उद्देश्यों और नीति में हुए परिवर्तनों का स्वागत किया। इस प्रकार 1909 के ऐक्ट द्वारा जो साम्प्रादायिक एकता भंग हो गई थी, वह एक बार फिर पनप गई।

(7) प्रथम महायुद्ध तथा उसके प्रभाव- इसी निराशा और असन्तोष के वातावरण में 1914 में प्रथम महायुद्ध आरम्भ हुआ। ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों का युद्ध में सहयोग प्राप्त करने के लिए उनके साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना शुरु कर दिया और अनेक घोषणाएँ भी कीं। भारतीयों ने भी उदारता दिखलाई और ब्रिटिश सरकार के पक्ष में युद्ध लड़ने के लिए गये। उन्होंने मिस्र, सूडान, फ्रान्स, बेल्जियम एवं अफ्रीका आदि देशों में अपनी राजभक्ति और वीरता का ऐसा प्रदर्शन किया, जिससे कर्जन जैसा अनुदार व्यक्ति भी प्रभावित हुए बग़ैर नहीं रह सका। कर्जन ने इस सम्बन्ध में यह शब्द कहे, "समुद्र पार के अभियानों में भारतीयों ने जो प्रसन्नता, राज्यभक्ति, सुन्दर अनुशसन तथा सैनिक साहस प्रकट किया है, उसकी जितनी भी प्रशंसा की जाये थोड़ी है।[1]"

---

1. शर्मा, एस.आर.: द मेकिंग ऑफ माडर्न इण्डिया, पृष्ठ 546.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भारतीयों ने सरकार को धन से भी सहायता की। उन्होंने युद्ध में व्यय के लिए 14 करोड़ 60 लाख पौण्ड की राशि उपहार स्वरुप महामहिम की सरकार को भेंट की। इतना ही नहीं, समुद्र पार लड़ने वाले भारतीयों के लिए लगभग 3 करोड़ पौण्ड का खर्च देना भी स्वीकार किया। रेडक्रास संस्थाओं को बड़े-बड़े चन्दे दिये गये। उस समय भारत कुछ समय के लिए इंग्लैण्ड का साहूकार भी बना रहा। इंग्लैण्ड खरीद करता था और भारत कीमत चुकाता था। इन अद्वितीय सेवाओं के कारण भारतीयों को आशा थी कि ब्रिटिश सरकार युद्ध की समाप्ति के बाद उनके साथ दूसरे उपनिवेशों के समान व्यवहार करेगी। ब्रिटिश राजनीतिज्ञों के हृदय में भी उनके तथा उनकी मांगों के प्रति विशेष सहानुभुति उत्पन्न हुई। इसलिए लार्ड हार्डिंग ने भारतीयों के साथ प्रेम और सहानुभूति का बर्ताव किया और दक्षिणी अफ्रीका में भारतीयों के प्रति अन्यायपूर्ण व्यवहार का विरोध किया। इतना ही नहीं, ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने भारतीय समस्या को परिवर्तित दृष्टिकोण से सुलझाने की आवश्यकता अनुभव की।

प्रथम विश्व युद्ध ने राष्ट्रीय आन्दोलन तथा उत्तरदायी शासन की मांग को असाधारण बल दिया। युद्ध शुरु होते ही ब्रिटिश प्रधान मन्त्री एसक्विथ ने घोषणा की थी कि "सभी राष्ट्रों को अपना-अपना भाग्य निर्णय करने का अधिकार होगा। मित्र राष्ट्रों ने भी घोषणा की कि वे संसार के लोकतन्त्र की रक्षा के लिए युद्ध लड़ रहे हैं। चूंकि ब्रिटिश सरकार ने बार-बार इस बात पर जोर दिया कि जनतन्त्र की रक्षा करने और पराधीन राष्ट्रों को आत्म-निर्णय का अधिकार देने के लिए वह युद्ध कर रही है। इसलिए भारतीयों को आशा थी कि युद्ध समाप्ति के पश्चात भारत को स्वशासन का अधिकार दिया जायेगा। सारांश यह है कि भारतीयों ने अपनी युद्ध सम्बन्धी सेवाओं के बदले आत्मनिर्ण के अधिकार और उत्तरदायी शासन की माँग की। ब्रिटिश सरकार के लिए इन माँगों के प्रति उदासीन रहना कठिन था, क्योंकि भारतीयों ने युद्ध काल में सेवा करने में किसी भी प्रकार की कसर नहीं रखी थी। इसलीए ब्रिटिश राजनीतिज्ञ अपने आपको भारतीयों का आभारी मानते थे।

प्रथम विश्व युद्ध में भारतीय सैनिकों ने यूरोप की बहुत सी रणभूमियों में अपनी वीरता तथा दक्षता के आधार पर ख्याति प्राप्त की। इससे उनके अन्दर आत्मससम्मान की भावना जागृत हुई। अब वे हीन भावना से ग्रस्त न रहे। अतः उन्होंने ब्रिटिश सरकार से माँग की कि भारतीयों कें साथ अन्य डोमिनियनों के समान व्यवहार किया जाये और तुरन्त वैधानिक सुधार किये जायें। इस प्रकार, प्रथम महायुद्ध के प्रवाह के अन्तर्गत भारतीयों में राष्ट्रीय जागरण और चेतना आयी। इन सबके परिणामस्वरुप भी राष्ट्रीय आन्दोलन को असाधारण बल प्राप्त हुआ।

(8) कांग्रेस-लीग समझौता (1916)- प्रथम विश्व युद्ध के दौरान मुसलमान भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के निकट आने लगे। 1917 ई. में कांग्रेस और मुस्लिम लीग के अधिवेशन एक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ही समय बम्बई में हुए, जहाँ कि महात्मा गाँधी, सरोजिनी नायडू और पण्डित मदन मोहन मालवीय जैसे प्रसिद्ध राष्ट्र नेताओं ने विचार-विमर्श में भाग लिया। इससे साम्प्रादायिक एकता और सुदृढ़ हो गई। इस समय एक कमेटी नियुक्त की गई, जिसे कांग्रेस के परामर्श से भारत के लिए एक संवैधानिक योजना तैयार कराने का काम सौंपा गया। 1916 में लखनऊ में कांग्रेस और लीग का संयुक्त अधिवेशन हुआ, जिसमें कमेटी द्वारा तैयार की गई योजना प्रस्तुत की गई। इस योजना के आधार पर दोनों दलों में समझौता हुआ, जिसे कांग्रेस-लीग समझौता अथवा लखनऊ समझौता कहते हैं। इस समझौतें के अनुसार कांग्रेस ने लीग के पृथक प्रतिनिधित्व और मुसलमानों को उनकी आबादी से अधिक प्रतिनिधित्व को स्वीकार कर लिया और इसके बदले में लीग ने कांग्रेस की स्वराज्य की माँग का समर्थन किया।

1916 का यह समझौता भारत के राष्ट्रीय इतिहास की एक महान घटना है, जिसने भारत के दो बड़े सम्प्रादयों को एकता के सूत्र में बांध दिया। यद्यपि इस एकता को प्राप्त करने के लिए भारी मूल्य चुकाना पड़ा और वह था साम्प्रदायिकता को प्रश्रय। जी.एन.सिंह के शब्दों में, "इस प्रकार, भारत के दो बड़े सम्प्रदायों और भरत की दो बड़ी राजनीतिक संस्थाओं में कार्य करने की दृष्टि से एकता स्थापित कर ली गई, ये दोनों-विशेष रुप से 1916 के नरमदली और गरमदली गुटों के पुनर्मिलन के बाद-राजनीतिक दृष्टि से सजग सम्पूर्ण ब्रिटिश भारत का प्रतिनिधित्व करते थे।[1]"

(9) नरम दल तथा गरम दल में समझौता (1916)- 1907 ई. में सूरत के कांग्रेस अधिवेशन में कांग्रेस के दो दल बन गये थे- नरम दल तथा गरम दल। इन दोनों दलों को मिलाने के लिए सर विलियम वैडरवर्न के प्रयत्न असफल रहे थे। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान तिलक की रिहाई के समय पुनः दोनों दलों को मिलाने के प्रयत्न आरम्भ हुए। उस समय तक गोपाल कृष्ण गोखले और फीरोजशाह मेहता जो मिलाप के विरुद्ध थे, मृत्यु हो चुकी थी। अतः श्रीमती एनीबीसेन्ट तथा कुछ अन्य देशभक्तों के प्रयासों से भी राष्ट्रीय अन्दोलन को बहुत बल प्राप्त हुआ। डॉ. ईश्वरी प्रसाद के शब्दों में, " इन वर्षों में लीग और कांग्रेस के बीच और कांग्रेस के भीतर नरमपंथी पक्षों के बीच जो राष्ट्रीयं एकता हो गई थी, वह भविष्य के लिए आशा बंधाने वाली थी।"

(10) होम-रूल आन्दोलन- युद्ध की समाप्ति के पश्चात अंग्रेजों ने अपने आश्वासनों को पूरा नहीं किया। इसलिए श्रीमती एनीबीसेन्ट ने मद्रास में तथा तिलक ने बम्बई में होम रूल लीग की स्थापना की और अपने-अपने क्षेत्र मे होम रुल आन्दोलन शुरु कर दिया। इस आन्दोलन का उद्देश्य भारत में स्वशासन की स्थापना करना था। एनीबीसेन्ट और तिलक

1. सिंह, जी.एन.: लैण्डमार्क्स इन इण्डियन कॉन्स्टिट्यूशनल एण्ड नेशनल डवलपमेन्ट, पृष्ठ 267.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रयासों से यह आन्दोलन शीघ्र ही बहुत प्रबल हो गया। सरकार ने इस आन्दोलन को कुचलने के लिए कड़ा कदम उठाया। सभाओं और भाषणों पर रोक लगा दी। यद्यपि ब्रिटिश सरकार ने इस आन्दोलन को कुचल दिया, तथापि इससे भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना तथा जागृति का असाधारण रूप से विकास हुआ। इतना ही नहीं, इस आन्दोलन के दौरान राष्ट्रीय एकता अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई।

(11) मैसोपोटामिया की दुर्घटना- मैसोपोटामिया की दुर्घटना का भी भारत के संवैधानिक विकास पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। तुर्की विरुद्ध ब्रिटिश अभियान पूरी तरह भारत सरकार के हाथों में छोड़ दिया गया था, जिसमें भारत सरकार पूर्णतः असफल रही। इसलिए जुलाई 1917 में मैसोपोटामिया कमीशन द्वारा पेश की गई रिपोर्ट में भारतीय राज्य प्रणाली की घोर निन्दा की गई थी और मैसापोटामिया अभियान के विनाशकारी अन्त के लिए भारतीय सरकार को पूरी तरह से उत्तरदायी ठहराया गया था। इस रिपोर्ट के परिणामस्वरुप भारत में राजनीतिक सुधारों की मांग को बल मिला। इस कमीशन ने भारतीयों को पूर्ण स्वशासन देने की सिफारिश की। इसके आधार पर माण्टेग्यू ने भारत सरकार के बारे में कहा कि, "वह अत्याधिक आधुनिक कड़ा, अत्यधिक अनमनीय है, जिसके कारण वह आधुनिक दृष्टिकोण से अनुपयोगी हो गई है।"

माण्टेग्यू ने वायसराय को कार्य करने की अधिक स्वतन्त्रता भारत की विधान सभाओं को आंशिक नियन्त्रण सौंपने, भारतीय परिषद की शक्ति में कमी करने और भारतीय ऑफिस में सुधार का सुझाव दिया। माण्टेग्यू ने जो उस समय उपभारत सचिव थे, एक भाषण में इस प्रकार कहा, "यदि आप भारतीयों की राज्य-भक्ति का लाभ उठाना चाहते हैं तो आपको अवश्य ही उन्हें शासन का अधिकार देना होगा...। यदि आप प्रचलित पद्धति से उचित सुधार नहीं करेंगे, तो आपको शासन-प्रबन्ध में कठिनाइयां होंगी।" माण्टेग्यू ने अपनी टिप्पणी एक चेतावनी के साथ समाप्त करते हुए कहा, "आधुनिक अनुभव को दृष्टि में रखते हुए यदि आप इस सदियों पुरानी और भारी-भरकम मशीन को नया रूप देने को तैयार नहीं है, तो मैं समझता हूँ कि आप भारतीय साम्राज्य के भाग्य पर नियन्त्रण रखने के अपने अधिकार खो बैठेंगे।"

(12) केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों द्वारा ज्ञापन- जब केन्द्रीय विधान परिषद के निर्वाचित सदस्यों को यह ज्ञात हुआ कि लार्ड चैम्सफोर्ड ने ब्रिटिश सरकार के पास सुधारों के लिए प्रस्ताव भेजा, तो उनमें से 19 सदस्यों ने सरकार को एक ज्ञापन दिया। इसमें युद्ध के बाद सुधारों के लिए प्रस्ताव दिये गये थे। पण्डित मदन मोहन मालवीय, मुहम्मद अली जिन्ना और सर तेजबहादुर सप्रू जैसे व्यक्तियों ने यह ज्ञापन दिया था। उनके कुछ सुझाव इस प्रकार थे-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(i) कार्यकारिणी और विधान परिषदों में कम से कम आधी संख्या भारतीय सदस्यों की होनी चाहिये।

(ii) विधान परिषदों में निर्वाचित सदस्यों का बहुमत होना चाहिये।

(iii) विधान परिषदों में अल्पसंख्यकों को समुचित प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिये।

(iv) भारत-सचिव का पद समाप्त किया जाना चाहिये।

(v) प्रान्तों को स्वयत्ता दी जानी चाहिये।

(vi) स्थानीय स्वशासन फौरन लागू किया जाना चाहिये।

(vii) सेना में भारतीयों को बड़े पदों पर यूरोपियन लोगों की शर्तों पर नियुक्ति देनी चाहि

ज्ञापन देने वालें सदस्यों ने घोषणा की कि केवल उत्तम सरकार या कुशल शासन ही प नहीं है, बल्कि ऐसी सरकार की आवश्यकता है, जिसे जनता स्वीकार करें और जो जनत प्रति उत्तरदायी हो। इस ज्ञापन के बारे में प्रधान ने लिखा है, "यह बहुत योग्यता और तर्क लिखा गया है औरउस समय भारतीय जनता की जो मांगे थीं, उनका एक महत्वपूर्ण विव है।"

(13) ड्यूक द्वारा ज्ञापन- बंगाल के भूतपूर्व लेफ्टिनेण्ट गवर्नर तथा भारत परिषद सदस्य विलियम ड्यूक ने 1915 में भारतीय समस्याओं से सम्बन्ध में एक ज्ञापन प्रस्तुत कि उसने भारत में द्वैध शासन व्यवस्था लागू करने का सुझाव दिया, जो आंशिक रुप से उत्तर होगी। उनकी सम्मति में पूर्ण उत्तरदायी सरकारी की मंजिल तक पहुँचने के लिए यह आवश्यक बीच का कदम थ, क्योंकि भारत जैसे देश में एकाएक पूर्ण उत्तरदायी सरकार स्थापना सम्भव नहीं थी। के.वी. पुन्निया के शब्दो में, "यद्यपि इस ड्यूक ज्ञापन का किसी सरकारी कागज में उल्लेख नहीं किया गया था, फिर भी 1919 के सुधार वस्तुतः इसी आधारित है"[1]

माण्टेग्यू की घोषणा (20 अगस्त 1917)

1917 ई. में मित्र राष्ट्रों की हारपर हार हो रहीं थी। दूसरी ओर भारत में होम आन्दोलन अपनी चरम सीमा पर था। अतः ब्रिटिश सरकार ने भारतीय समस्या पर गम्भीरता से विचार करनां शुरु किया।. सरकार ने एक नीति की घोषणा करके भारतीय जन को अपने पक्ष में करने की तीव्र आवश्यकता अनुभव की, ताकि युद्ध में भारतीयों का हा सहयोग प्राप्त हो सके। ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल ने इस पर विचार-विमर्श किया और भारत-स चेम्बरलेन ने त्यागपत्र दे दिया। अतः उसके स्थान पर माण्टेग्यू भारत सचिव बना। वह उदारवादी व्यक्ति था और भारत का सच्चा मित्र था। उसने चेम्बरलेन द्वारा तैयार किये

1. पुन्निया, के.वी.: द कौंस्टिट्यूशनल हिस्ट्री इण्डिया, पृष्ठ 144.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ारुप प्रस्ताव में कोई बड़ा परिवर्तन नहीं किया, लेकिन लार्ड कर्जन ने उसमें 'उत्तरदायी शासन' ़ स्थान पर 'स्वायत्त शासन' शब्द लिख दिया। 20 अगस्त 1917ई. को माण्टेग्यू ने अपनी सिद्ध घोषणा की, जिसे अगस्त-घोषणा कहते हैं। यह घोषणा इस प्रकार थी-

"महामहिम सरकार की नीति, जिससे कि भारत सरकार पूरी तरह सहमत है, यह है कि शासन ने प्रत्येक विभाग में भारतीयों को अधिकाधिक सम्मिलित किया जाए और स्वायत्त ासित संस्थाओं का इस उद्देश्य से क्रमिक विकास किया जाये कि भारत में अधिकाधिक त्तरदायी सरकार बनाई जा सके, जो ब्रिटिश साम्राज्य का अभिन्न अंग हो। उसने निर्णय किया कि इस दिशा में महत्वपूर्ण बड़े कदम यथाशीघ्र उठाये जाएँ ......।"

"मैं इसमें यह और जोड़ना चाहता हूँ कि इस नीति की प्रगति केवल क्रमिक सोपानों द्वारा ी की जा सकती है। ब्रिटिश सरकार और भारत सरकार को, जिन पर भारत के लोगों को ल्याण और प्रगति की जिम्मेदारी है, प्रत्येक कदम को उठाने और उसके लिये उपयुक्त समय ा निर्णय करने का अधिकार होना चाहिये और जिनको सेवा करने का यह नया सुयोग प्रदान ़्या जायेगा। उनसे प्राप्त सहयोग द्वारा, तथा सीमा तक यह पता चले, कि उनकी जिम्मेदारी ी भावना पर भरोसा किया जा सकता है, उसके अनुसार उनका मार्गदर्शन होना चाहिये।"

अगस्त घोषणा का महत्व- 1917 की घोषणा भारतीय इतिहास में एक विशेष स्थान खती है। यह कम्पनी से सम्राट को हस्तान्तरण के बाद अंग्रेजों द्वारा जारी की गई पहली ातिशील महत्वपूर्ण घोषणा थी। यह ऐतिहासिक घोषणा भारतवर्ष के स्वतंत्र होने तक ब्रिटिश रकार की भारत सम्बन्धी नीति की आधारशिला बनी रहीं।[1] मौरिस जोन्स के अनुसार "1917 उपरान्त प्रमुख समस्या यह नहीं थी कि अधिराज्य को सुचारु रुप से कैसे चलाया जाए, मस्या अब सत्ता के हस्तान्तरण के मार्ग को खोजने की थी।"

इस घोषणा में केवल 'उत्तरदायी शासन' शब्द का प्रयोग किया गया। औपनिवेशिक ाराज्य या स्वशासन शब्द का कहीं भी प्रयोग नहीं किया गया था। फिर भी, इस घोषणा में ह बात बिल्कुल स्पष्ट थी कि एक दिन भारत को स्वायत्त शासन दिया जायेगा। इस घोषणा बाद ब्रिटिश सरकार के पास भारत में उत्तरदायी शासन की स्थापना के अतिरिक्त अन्य कोई कल्प नहीं रह गया था। अतः 1919 के ऐक्ट के द्वारा उत्तरदायी शासन स्थापित करने की शा में प्रथम पग उठाया गया।

प्रो. कूपलैण्ड के अनुसार, माण्टेग्यू की यह घोषणा एक दृष्टि से क्रान्तिकारी थी। 1909 में र्ड मार्ले ने जोर देकर यह कहा कि, "भारत में संसदीय सरकार स्थापित करने का मेरा नेक भी विचार नहीं है, और ही आगामी कई पीढ़ियों तक भारत को स्व-शासनिक उपनिवेश

1. स्पीयर : इण्डिया, पृष्ठ 342.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बनाने की आशा हो सकती है।" उसके उत्तराधिकारी लार्ड क्रो ने भी 1912 में इसी प्रका भाव प्रकट किया था, लेकिन कुछ वर्षों पश्चात इन घोषणाओं के विपरीत माण्टेग्यू घोषणा की कि, "भारत में उत्तरदायी शासन स्थापित करना अंग्रेजी राज्य का अन्तिम है।" निस्सन्देह ब्रिटिश सरकार की नीति में यह एक क्रान्तिकारी परिवर्तन था। 1909 1912 में जो बात बिल्कुल असम्भव समझी जाती थी, 1917 में वहीं व्यवहार्य और वांछ प्रतीत होने लगी। इसलिए उदारवादी दल के नेताओं ने इसका स्वागत किया और इसे का 'महाधिकारी-पत्र' (मेग्ना कार्टा) कहा।

माण्टेग्यू की इस घोषणा से यह स्पष्ट हो गया है कि एक संयुक्त मोर्चे का निर्माण भारतीय ब्रिटिश सरकार को अपनी मांगे मानने के लिए बाध्य कर सकते हैं। हिन्दू-मु संयुक्त मोर्चे की मांगों की अवलेलना करना ब्रिटिश सरकार के लिए सम्भव नहीं था घोषणा हिन्दू-मुस्लिम एकता की विजय की भी सूचक थी। डॉ. ईश्वरी प्रसाद के श "1916 में राष्ट्रीय आन्दोलन इतना प्रबल हो चुका था कि उसका कुछ परिणाम नि अनिवार्य था।"

इस घोषणा से भारतीयों ने अनुभव किया कि अब आगे से सेना सहित प्रशासन के विभागों में उनको सम्मिलित किया जायेगा। इसके अतिरिक्त अब अपने ही देश में उनके अपरिचितों जैसा व्यवहार नहीं किया जायेगा।

माण्टेग्यू की इस घोषणा ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को राजनीतिक संघर्ष के लि बहुमूल्य आधार प्रदान किया। इस घोषणा के पश्चात कांग्रेस ब्रिटिश सरकार से मांग रही कि वह विकेन्द्रीकरण की दिशा में उचित कदम उठाये। इस प्रकार, इस घो भारतीय राष्ट्रीय कांगेस के नैतिक बल में काफी वृद्धि हुई, जिसके कारण वह अ लोकप्रिय हो गई। दूसरी ओर, इस घोषणा के प्रश्चात ब्रिटिश सरकार का भी यह कर्त गया कि वह अपने वचन को पूरा करने का प्रयत्न करें।

इस घोषणा का महत्व इस तथ्य में भी निहीत है कि इसने अंग्रेजों के संकटकाल विरुद्ध चल रहे भारतीयों के आन्दोलन को कुछ समय के लिए शान्त कर दिया।

डॉ एस.आर.शर्मा के अनुसार, इस घोषणा के फलरुवरुप भारत के संवैधानिक इ में एक अध्याय की समाप्ति हुई और दूसरे का आरम्भ हुआ।

माण्ड फोर्ड रिपोर्ट में इस घोषणा को युगान्तकारी कहा गया है। यह कहा गया है घोषणा द्वारा एक युग का अन्त होता है और एक नये युग का आरम्भ। श्री प्रधान घोषणा को क्रान्तिकारी उद्घोषणा कहा है औरलिखा है कि, "20 अगस्त 1917 की घो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

धुनिक भारत अपने इतिहास के एक नये काल में प्रविष्ट हुआ।"

अगस्त घोषणा के दोष- यद्यपि इस घोषणा में अनेक गुण थे, तथापि उसमें अनेक दोष भी इसमें कई बातें अस्पष्ट एवं अनिश्चित थीं-

(i) इस घोषणा में उत्तरदायी शासन की स्थापना की नीति के क्रियान्वयन के लिए कोई श्चित अवधि निर्धारित नहीं की गई थी।

(ii) प्रत्येक प्रगति का एक-मात्र निर्णायक ब्रिटिश सरकार थी। यह व्यवस्था स्वतंत्रता की ना के प्रतिकूल थी।

(iii) घोषणा में यह भी कहा गया था कि भविष्य की प्रगति भारतीयों के सहयोग और की उत्तरदायित्व की भावना पर निर्भर करेगी। यह इस बात का संकेत था कि यदि भारतीयों हयोग नहीं दिया, तो भारत की संवैधानिक प्रगति नहीं हो सकेगी।

यद्यपि इस घोषणा में कई दोष विद्यमान थे। फिर भी, यह एक महान संवैधानिक घोषणा

माण्ट-फोर्ड योजना

अगस्त घोषणा के केवल तीन माह पश्चात श्री माण्टेग्यू भारत आये। आने से पूर्व उन्होंने था, "मेरी भारत यात्रा का तात्पर्य यह है कि हम कुछ करने जा रहे हैं। इंग्लैण्ड खाली तथा कोई साधारण वस्तु लेकर नहीं लौट सकता। जिस वस्तु को लेकर मैं लौटूंगा, उससे युग का निर्माण होना चाहिये अन्यथा मेरे प्रयत्न निष्फल होंगे। उस वस्तु को भारत के भावी हास में कुंजी के समान होना चाहिये।"

इस प्रकार, माण्टेग्यू सुधार लाने के दृढ निश्चय को लेकर भारत आये थे। इन्हें भारत में टेश नौकरशाही के विरोध का सामना करना पड़ा, क्योंकि अधिकांश अंग्रेज शासक भारत में रदायी शासन की स्थापना के विरुद्ध थे। माण्टेग्यू ने लार्ड चैम्सफोर्ड तथा भारतीय नेताओं विचार-विमर्श किया। नौकरशाही से भी उन्होंने भारतीय समस्या के सम्बन्ध में कुछ चीत की। तत्पश्चात उन्होंने वायसराय तथा कुछ अधिकारियों के परामर्श से 8 जुलाई 18 में सुधार सम्बन्धी अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की। इसे माण्टेग्यू-चैम्सफोर्ड रिपोर्ट अथवा ट-फोर्ड कहते है।

इस रिपोर्ट में सुधार-सम्बन्धी निम्नलिखित मूल सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया

(i) स्थानीय संस्थाओं पर जनता का नियन्त्रण स्थापित किया जाए और यथासम्भव उन्हें री नियंत्रण से मुक्त रखा जाए।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(ii) प्रान्तों में तुरन्त उत्तरदायी सरकार की स्थापना के लिए कदम उठाया ज
उतरदायितव के कुछ अधिकार तो तुरन्त दिये जाएँ और पूर्ण उत्तरदायित्व जैसे ही परि
अनुकूल हो, सौंप दिये जाएँ।

(iii) प्रान्तीय सरकारों को केन्द्रीय सरकार के नियन्त्रण से यथासम्भ स्वतन्त्र किये ज

(iv) भारत सरकार ब्रिटिश संसद के प्रति पूर्ण उतरदायी हो, लेकिन अनिवार्य विष
उसकी शक्ति सर्वोपरि हो।

(v) केन्द्रीय विधान परिषदों के सदस्यों तथा कार्यों में वृद्धि की जाए और
निर्वाचित सदस्यों की संख्या बढ़ाई जाए।

(vi) धीरे-धीरे भारत सरकार तथा प्रान्तीय सरकारों पर भारत सचिव ओर
निर्वाचित सदस्यों की संख्या बढ़ाई जाए।

माण्टेग्यू-चैम्सफोर्ड रिपोर्ट पूर्णतः उदारवाद पर आधारित थी। कूपलैण्ड के शब्द
"भारत-सरकार की सम्पूर्ण समस्याओं से सम्बन्धित यह पहला व्यापक लेख है, यह राज
शास्त्र की एक स्थायी देन है।[1]"।

अधिनियम का पारित होना

माण्टेग्यू-चैम्सफोर्ड रिपोर्ट के आधार पर ब्रिटिश संसद ने 1919 ई. में एक अधि
पारित किया, जिसे भारत सरकार अधिनियम, 1919 अथवा माण्टेग्यू-चैम्सफोर्ड सुधार अधि
कहते हैं। अधिनियम को 1921 में क्रियान्वित किया गया।

1919 का ऐक्ट हमारे संवैधानिक विकास में नये दौर के आरम्भ का सूचक था। इ
द्वारा भारत के प्रशासनिक ढांचे में उल्लेखनीय सुधार हुए। प्रो. श्रीनिवासन के शब्दों में
ऐक्ट से भारत की प्रतिनिधि संस्थाओं के विकास में एक नये युग का प्रारम्भ हुआ।[2]" कूप
ने इस ऐक्ट द्वारा किये गये परिवर्तनों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि, "इसने कार्य
और विधायी प्राधिकार के बीच की रेखा को लांघ लिया। पहले के कानूनों में भार
अधिकाधिक अपनी विधान सभाओं का नियन्त्रण कर सकते थे, पर अपनी सरकार का निय
नहीं कर सकते थे। यह सच है कि कुछ भारतीय उन सरकारों के सदस्य थे, प
अधिकारियों द्वारा नियुक्त होते थे और अपने अंग्रेज सहायोगियों की तरह पार्लियामेन्ट
भारत मन्त्री के प्रति उतरदायी होते थे। अब कहने के लिए भारतीयों को अपना शासन

---

1. कूपलैण्डः द इण्डियन प्रोबलम, पृष्ठ 54.
2. श्रीनिवासनः डेमोक्रेटिक गवर्नमेन्ट इन इण्डिया, पृष्ठ 43.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रना था उन्हें प्रान्तीय प्रशासन के बड़े विभागों का उतरदायित्व सरकारी नियुक्त व्यक्तियों के प में नहीं, अपितु अपने विधान मण्डलों के निर्वाचित बहुमतों के नेताओं के रुप में सम्भालना । और उनके प्रति उत्तरदायी रहना था।[1]

अधिनियम की प्रस्तावना

1919 के ऐक्ट की प्रस्थावना में इसके सार तत्व की चर्चा की गई थी। प्रस्तावना इस कार थी-

"जबकि संसद की यह घोषित नीति है कि भारतीयों को भारतीय प्रशासन की प्रत्येक शाखा अधिकाधिक स्थान दिया जाय और ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत ब्रिटिश भारत में उत्तरदायी सन की क्रमिक उन्नति के लिए शनैः शनैः स्वायत संस्थाओं का विकास किया जाय।

और जबकि इस नीति की प्रगति धीमे-धीमे भी सकती है और यह आवश्यक एवं उचित कि इस दिशा में वास्तविक कदम इसी समय उठाये जाएँ;

और जबकि आगे की ओर उठाये जाने वाले प्रत्येक कदम का समय और प्रकार, संसद हो, स पर भारतीय जनता की उन्नति और कल्याण का उतरदायित्व है, निश्चित कर सकती है,

और जबकि उन लोगों का सहयोग, जिन्हें सेवा के नये अवसर मिलेंगे और यह बात कि न पर किस हद तक विश्वास किया जा सकता है, इन मामलों में संसद का मार्ग-दर्शन करेंगे;

और जबकि प्रान्तों में स्वायत संस्थाओं के क्रमिक विकास के साथ-साथ इन प्रान्तों को नीय विषयों में भारत-सरकार के नियन्त्रण से उस अंश तक स्वाधीनता देना उचित है जिस श तक अपने उत्तरदायित्वों को निभाने में बाधा न पड़े।

यह कानून बनाया जाता है।"

इस प्रस्तावना से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होवी हैं-

(i) भारत ब्रिटिश साम्राज्य का अभिन्न अंग बना रहेगा।

(ii) ब्रिटिश सरकार का उद्देश्य धीरे-धीरे भारत में उतरदायी शासन की स्थापना होगा।

(iii) भारतीयों को प्रशासन के प्रत्येक विभाग में अधिक से अधिक संख्या में सम्मिलित या जायेगा।

(iv) स्वशासन सम्बन्धी संस्थाओं का क्रमिक विकास किया जायेगा।

इस प्रस्तावना का संवैधानिक विकास के दृष्टिकोण से काफी महत्व है। यह 1947 तक रतीय संवैधानिक कानून का आधार बना रहा ।

कूपलैण्डः इण्डिया-ए रिस्टेटमेन्ट, पृष्ठ 113.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अधिनियम की मुख्य विशेषताएँ
अथवा
अधिनियम की मुख्य धाराएँ

1919 के ऐक्ट की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित थीं-

(1) प्रान्तों में आंशिक रुप से उत्तरदायी शासन- इस अधिनियम की सर्वाधि महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि प्रान्तों में आंशिक रुप से उत्तरदायी सरकार की स्थापना गई। इसके अनुसार प्रान्तीय कार्यपालिका को दो भागों में बांट दिया गया था-पार्षद (Councillors) तथा मान्त्रिगण (Ministers) कार्यपालिका का एक भाग ऐसा था, जो गर्वनर प्रति ही उत्तरदायी रहता था, और दूसरा भाग ऐसा था, जो प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा के प्र उत्तरदायी रहता था। प्रान्तीय विषयों को भी दो भागों में बांट दिया गया था- संरक्षित वि (Reserved Subjects) एवं हस्तान्तरित विषय (Transferred Subjects) संरक्षि विषय कार्यकारिणी परिषद के सदस्यों के जिम्मे थे, जो गवर्नर के प्रति उत्तरदायी होते थे अ इन पर व्यवस्थापिका सभा का कोई नियन्त्रण नहीं होता था, लेकिन हस्तान्तरित वि लोकप्रिय मन्त्रियों के जिम्मे थे, जो व्यवस्थापिका के निर्वाचित बहुमत में से चुने जाते थे अ व्यवस्थापिका के प्रति ही उत्तरदायी होते थे। इस प्रकार, प्रान्तों में द्वैध शासन प्रणाली के स ही आंशिक रुप से उत्तरदायी शासन व्यवस्था लागू की गई।

(2) विकेन्द्रीकरण की नीति- प्रान्तों में आंशिक रुप से उतरदायी शासन व्यव स्थापित करने के लिए उन पर केन्द्रीय सरकार के नियन्त्रण को कम करना आवश्यक सम गया। इसके लिए केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों के बीच विषयों का विभाजन किया गय हस्तान्तरित विषयों के प्रशासन में प्रान्तों को काफी स्वायत्तता प्रदान की गई। केन्द्र सरकार पूर्व अनुमति के बिना भी प्रान्तीय विषय पर विधेयक प्रस्तुत किये जा सकते थे। प्रान्तीय बज को केन्द्रीय बजट से अलग कर दिया गया। प्रान्तों को प्रथम बार ऋण लेने तथा कर लगाने अधिकार भी प्रदान किया गया। यद्यपि भारत सरकार की सर्वोच्चता कायम रही। फिर प्रान्तों को निजी क्षेत्रों में कार्य करने की पर्याप्त स्वतन्त्रता प्रदान की गई।

(3) केन्द्र में अनुत्तरदायी सरकार - इस ऐक्ट द्वारा केन्द्रीय सरकार के मूल ढांचे कोई परिवर्तन नहीं किया गया। यद्यपि केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा का विस्तार कर दिया ग और उसके अधिकारों में भी वृद्धि की गई, परन्तु गर्वनर जनरल और उसकी कार्यकारिणी सदस्य केद्रीय विधान मण्डल के नियन्त्रण से मुक्त थे अर्थात् गर्वनर जनरल की कार्यकारि परिषण्द के सदस्य भारत सचिव के प्रति उत्तरदायी थे, केन्द्रीय व्यस्थापिका सभा के प्रति न इस प्रकार, केन्द्र में पूर्ववत् अनुत्तरदायी सरकर बनी रही।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(4) केन्द्रीय विधान परिषद् की कायापलट- 1919 के अधिनियम द्वारा केन्द्रीय विधान परिषद् के स्थान पर पहली बार एक द्विसदनात्मक विधान मण्डल की स्थापना की गई। इन दोनों सदनों के नाम केन्द्रीय विधान सभा तथा राज्य परिषद रखे गये। राज्य परिषदों में 60 सदस्य होते थे, जिनमें से 27 मनोनीत और 33 निर्वाचित होते थे। केन्द्रीय विधान सभा में 140 सदस्य होते थे, जिनमें से 57 सदस्य निर्वाचित ओर शेष मनोनीत होते थे। केन्द्रीय विधान मण्डल की शक्तियों में वृद्धि कर दी गई, ताकि वह कार्यपालिका को प्रभावित कर सके। निर्वाचित सदस्यों का बहुमत रख गया। प्रत्यक्ष निर्वाचन पद्धति का सूत्रपात किया गया। मताधिकार को बढ़ा दिया गया, जिससे भारत की दस प्रतिशत जनता को मताधिकार मिल गया सदस्यों को प्रश्न और पूरक प्रश्न पूछने का पूर्ण अधिकार दिया गया, वे स्थगन प्रस्ताव पेश कर सकते थे और कोई भी प्रस्ताव पास कर सकते थे। वे किसी भी विधेयक तथा सरकार के किसी भी खर्च को अस्वीकार कर सकते थे। यद्यपि गवर्नर जनरल को कुछ विशेषाधिकार प्रदान किया गया, जिससे वह विधान मण्डल की उपेक्षा कर सकता था। फिर भी व्यवस्थापिका के पास इतनी शक्तियां अवश्य थीं, जिससे कि वह कार्यपालिका को पर्याप्त मात्रा में प्रभावित कर सकती थी।

(5) साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व का विस्तार- 1909 ई. के अधिनियम द्वारा भारतीय राजनीति में साम्प्रदायिकता का बीजारोपण किया गया । 1919 में अधिनियम में मुसलमानों के साथ-साथ अन्य सम्प्रदायों को भी विशेष प्रतिनिधित्व की सुविधा देकर भारत में सम्प्रादायिक प्रतिनिधित्व का और अधिक विस्तार कर दिया गया । मुसलमानों, सिक्खों, आंग्ल-भारतीयों, यूरोपियनों और ईसाइयों को विशेष प्रतिनिधत्व प्रदान किया गया।

(6) भारत सचिव तथा ब्रिटिश संसद के नियंत्रण में कमी- माण्ट-फोर्ड रिपोर्ट में भारतीय शासन में प्रस्तावित परिवर्तनों को कार्यरुप देने के लिए गृह सरकार के नियन्त्रण में कमी करने का सुझाव दिया गया था, उसे 1919 के ऐक्ट के अन्तर्गत स्वीकार किया गया। सिद्धान्ततः भारत सचिव का निरीक्षण, निर्देशन और नियन्त्रण का अधिकार पूर्ववत बना रहा, लेकिन व्यवहार में भारत सचिव और ब्रिटिश संसद ने भारतीय प्रशासन में कम से कम हस्तक्षेप करने का निश्चय किया। प्रान्तों में द्वैध शासन प्रणाली लागू हो जाने से हस्तान्तिरित विषयों के प्रशमसन में उनका हस्तक्षेप लगभग बन्द हो गया। संरक्षित विषयों पर उनका वैधानिक नियन्त्रण पूर्ववत् बना रहा लेकिन यह परम्परा बन गई कि यदि किसी मामंले में गर्वनर जनरल तथा केन्द्रीय विधान मण्डल एकमत हों, तो भारत-मंन्त्री और ब्रिटिश संसद द्वारा उसमें हस्तक्षेप नहीं किया जायेगा।

(7) शक्यिों का विभाजन- अधिनियम के द्वारा केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों के बीच

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शक्तियों का विभाजन कर दिया गया। वे विषय जो सम्पूर्ण भारत के हितों से सम्बन्धित थे, केन्द्रीय सरकार के अन्तर्गत रख गये। जो विषय प्रान्तीय हितों से विशेष संम्बन्ध रखते थे, प्रान्तीय सरकार के अन्तर्गत रखे गये। केन्द्र सरकार के अधिकार में वैदेशिक मामले, सेना, रेल, डाक व तार, सुरक्षा, दीवानी व फौजदारी कानून, आय-कर, मुद्रा, टंकण, व्यापार, जहाजरानी एवं चुंगी आदि विषय रखे गये। प्रान्तीय सरकार के अधिकार में कृषि, जंगल, `पुलिस, जल, स्थानीय स्वशासन, सार्वजनिक स्वास्थ्य तथा चिकित्सा, सार्वजनिक निर्माण व सिंचाई, भू-राजस्व, सार्वजनिक कार्य, शिक्षा एवं अकाल पीड़ित सहायता आदि विषय रखे गये। इस प्रकार, प्रान्तों को प्रशासन और व्यवस्थापना सम्बन्धी अनेक अधिकार दे दिये गये।

(8) भारत परिषद् का पुनर्गठन- भरतीयों की यह मांग थी कि भारत परिषद् (India Cluncil) को समाप्त कर दिया जाय। यद्यपि इस ऐक्ट में यह मांग स्वीकार नहीं की गई, लेकिन भारत-परिषद का पुनर्गठन कर दिया गया। इसमें कम से कम 8 और अधिक से अधिक 12 सदस्य नियुक्त करने की व्यवस्था की गयी। इसमें कम से कम आधे सदस्य ऐसे होने आवश्यक थे, जो नियुक्ति के समय से पूर्व भारत में कम से कम 10 वर्ष व्यतीत कर चुकें हों और जिनको भारत छोड़े 5 वर्ष से अधिक न हुए हों। इस परिषद् का कार्यकाल 7 वर्ष से घटाकर 5 वर्ष कर दिया गया और उसके कार्य संचालन के नियमों में भी संशोधन किये गये।

(9) नरेश मण्डल की स्थापना - माण्ट-फोर्ड रिपोर्ट में देशी राजाओं के महत्व को ध्यान में रखते हुए एक नरेश मण्डल (Chamber of Princes) के निर्माण का सुझाव दिया गया था। तदनुसार 8 फरवरी 1921 को दिल्ली में इस मण्डल की स्थापना की गयी। इस मण्डल के 121 देशी राज्य सदस्य थे। मण्डल का अध्यक्ष वायसराय था। मण्डल वास्तव में एक परामर्श सभा के समान था।

(10) प्रान्तीय विधान परिषदों का पुनर्गठन- इस ऐक्ट द्वारा प्रान्तीय विधान परिषदों का पुनर्गठन किया गया। उनकी सदस्य संख्या में वृद्धि की गई। बड़े प्रान्तों की परिषदों में अधिक से अधिक 140 और छोटे प्रान्तों में कम से कम 60 सदस्य रखने की व्यवस्था की गई। इन सदस्यों में से कम से कम 70 प्रतिशत सदस्य निर्वाचित होने आवश्यक थे। सरकारी सदस्यों की संख्या 20 प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकती थी। शेष 10 प्रतिशत गैर-सरकारी सदस्य होते थे, जिन्हें प्रान्तीय गवर्नर मनोनीत करता था। इस प्रकार, विधान सभाओं का स्वरुप अधिक लोकतंत्रात्मक बनाने के लिए न केवल निर्वाचित सदस्यों का बहुमत रखा गया, अपितु उनके अधिकारों में भी वृद्धि की गई।

(11) प्रान्तीय कार्यकारिणी परिषदों में अधिक भारतीयों को सम्मिलित करना- इस ऐक्ट द्वारा प्रान्तों की कार्यकारिणी परिषदों में भारतीय सदस्यों की संख्या पहले से बढ़ा दी गई।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मद्रास, बम्बई और बंगाल की सरकारों के आरक्षित भाग के 4 सदस्यों में से 2 भारतीय सदस्य लेने की व्यवस्था की गई। शेष 6 प्रान्तों में जहाँ कार्यकारिणी परिषद में रक्षित भाग के लिए केवल 2 सदस्य होते थे, एक भारतीय सदस्य लेने की व्यवस्था की गई। इन सदस्यों की नियुक्ति भारत सचिव की सिफारिश पर ब्रिटिश सम्राट द्वारा की जाती थी।

(12) केन्द्रीय कर्यकारिणी परिषद में अधिक भारतीयों की नियुक्ति- यद्यपि इस ऐक्ट द्वारा गवर्नर जनरल को पहलें की तरह स्वेच्छाचारी तथा शक्तिशाली बना रहने दिया गया, लेकिन उसकी कार्यकारिणी परिषद के गठन के सम्बन्ध में कुछ नवीन नियम बनाये गये। इनके अनुसार अब

(i) कार्यकारिणी पर से पूर्व निर्धारित संख्या सम्बन्धी प्रतिबन्ध हटा दिया गया।

(ii) भारतीय उच्च न्यायालय के उन वकीलों को, जिन्हें उनमें काम करते हुए 10 वर्ष हो चुके हों, कौंसिल लॉ मेम्बर नियुक्ति होने के योग्य ठहराया गया। श्री तेजबहादुर सप्रू पहले भारतीय थे, जिन्हें लॉ मेम्बर बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

(iii) कार्यकारिणी परिषद में भारतीय सदस्यों की संख्या एक से बढ़ाकर तीन कर दी गयी।

लेकिन व्यवहार में जिन व्यक्तियों को कार्यकारिणी परिषद का सदस्य नियुक्त किया गया, वे सरकार के पिट्ठू (Yes-Men) थे। वे अपने आपको भारतीय जनता का प्रतिनिधि नहीं समझते थे। इसलिए इस सुधार का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा।

अधिनियम का मूल्यांकन

अधिनियम की आलोचना

यह अधिनियम भारतीयों को संतुष्ट न कर सका और इनकी इस असंतुष्टता ने असहयोग आंदोलन को जन्म दिया। भले ही कुछ उदारवादी तत्वों ने अधिनियम के अनुरूप ब्रिटिश सरकार के साथ सहयोग का प्रयत्न किया हो, किन्तु राष्ट्रवादी वर्ग इस पक्ष में कदापि नहीं था। कालान्तर में हालांकि इसका उद्देश्य ब्रिटिश सरकार को अन्दर से खोखला करना था, अधिनियम के प्रति निष्ठा प्रदर्शित करना नहीं।

इस अधिनियम द्वारा प्रस्तावित 'द्वैध शासन' व्यवस्था बुरी तरह विफल रही। इसने भारतीयों की निराशा को और अधिक बढ़ा दिया। कांग्रेस ने अपने बम्बई के विशेष अधिवेशन (1918) में मॉण्टेग्यू प्रतिवेदन (1919) के लागू होने के मध्य में हुई रॉलेट ऐक्ट, जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड, असहयोग सत्याग्रह के प्रति सरकार का दमनकारी रवैया, आदि घटनाओं ने वातावरण को पूरी तरह बिगाड़ दिया। अतः अधिनियम की असफलता की संभावनाँ और अधिक बढ़ गयी, जो कि उसके दोषों के कारण पहले से ही निश्चित थी। इस अधिनियम के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दोष इस प्रकार थे -

(1) न तो, भारतीय शासन को ब्रिटिश शासन के निरंकुश नियंत्रण से कोई मुक्ति दी गयी और न भारत मंत्री की शक्तियों को सीमित किया गया।

(2) गृह प्रशासन यथावत बना रहा।

(3) भारत शासन की स्थिति व प्रकृति पूर्ववत अनुतरदायी बनी रहीं।

क) गवर्नर जनरल को असीमित विधायी, प्रशासकीय तथा वित्तीय शक्तियां प्राप्त थीं, जिन्होंने उसे निरंकुश बना दिया था। वह अपनी कार्यकारिणी के बहुमत के निर्णय को मानने के लिये बाध्य नहीं था।

ख) केन्द्रीय विधानमंडल द्विसदनात्मक था। गवर्नर जनरल की व्यापक विधायी शक्तियों तथा तत्कालीन परिस्थतियों में द्वितीय सदन की उपयोगिता संदिग्ध थी। राज्यपरिषद निर्बल होने के कारण व्यवहार में कोई प्रभाव नहीं डाल सकती थी। इसके अलावा-

(i) केन्द्रीय विधान मंडल में चयनित सदस्यों की तुलना में मनोनीत सदस्यों की संख्या अधिक थी।

(ii) विधान मंडल की शक्तियां सीमित व स्थिति निर्बल थी। कार्यपालिका पर व्यवस्थापिका के नियन्त्रण के बजाय व्यवस्थापिका पर कार्यपालिका के नियंत्रण का उल्टी परम्परा थी। बजट का 80 प्रतिशत भाग विधानमंडल के नियंत्रण से मुक्त था। हालाकि सदन को 20 प्रतिशत अर्थ अनुदान पर चर्चा एवं मतदान करने का अधिकार था, किन्तु गवर्नर जनरल को विधान मंडल द्वारा अस्वीकृत वित्तीय विधेयकों को अपने विशेषाधिकारों के प्रयोग से विधि बनाने की शक्ति होने के कारण यह भी व्यर्थ था।

(iii) केन्द्रीय विधानमंडल वस्तुतः प्रजातांत्रिक होने के बजाय कुलीनतंत्रीय था, जो देश की मात्र 10 प्रतिशत जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करता था। इसमें मताधिकार का आधार नागरिकता नहीं थी, बल्कि उच्च सम्पत्तिवान होना, सम्प्रदायवाद आदि के आधार पर मताधिकार दिया जाता था। सरकार के चापलूस वर्गो-बड़े-बड़े जमीदारों, व्यापारियों और उद्योगपतियों को भी प्रतिनिधित्व दिया गया था, जिन्हों नें सरकार के प्रति अपनी जी-हजूरी एवं स्वामीभक्ति का परिचय देते हुए राष्ट्रीय आंदोलन को दुर्बल बनाने का प्रयास किया। इस सदन में स्वतंत्रता, समानता एवं भातृत्व जैसे लोकतंत्रीय आदर्शों के लिये कोई स्थान नहीं था। साम्प्रदायिक मताधिकार ने हिन्दू-मुस्लिम दरार को और चौड़ा करते हुए, देश के अन्ततोगत्वा दो टुकड़े कर दिये।

(4) प्रान्तों में हालांकि उत्तरदायी शासान की व्यवस्था की गयी थी, किन्तु यह भी मात्र ऊपरी एवं दोषपूर्ण था। इसके दोष इस प्रकार थे -

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(i) प्रान्तीय गवर्नरों को व्यापक विधायी प्रशासनिक एवं वित्तीय शक्तियां प्राप्त होने से व्यवहार में वे निरंकुश शासक के समान थे।

(ii) द्वैध शासन के अन्तर्गत भी गवर्नरों की शक्तियां यथावत् रहीं।

(iii) प्रान्तीय विधान मंडल के गठन में भी वे सभी दोष (सीमित शक्ति आलेकतंत्रीय, वर्गीय प्रतिनिधित्व, साम्प्रदायिक प्रतिनिधत्व) मौजूद थे, जो केन्द्रीय विधानमंडल में थे।

(iv) द्वैध शासन प्रणाली के दोष इस प्रकार से थे-

(क) द्वैधा शासन का सैद्धान्तिक ढांचा ही हास्यास्पद था। प्रशासनिक विषयों को संरक्षित एवं हस्तान्तरित विषयों के वर्गों में नहीं बांटा जा सकता ।

(ख) प्रान्तीय विषयों का संरक्षित एवं हस्तान्तरित विषयों में किया गया विभाजन अव्यावहारिक व असंगत था। यथाकृषि विभाग में सिंचाई को नहीं रखा गया था।

(ग) गवर्नर हस्तान्तरित विषयों में इच्छानुसार हस्तक्षेप कर सकते थे। मंत्रियों का अपने पदों पर बने रहना भी गवर्नर की कृपादृष्टि पर ही निर्भर था।

(घ) मंत्रियों एवं लोकसेवा के सदस्यों के मध्य प्रतिद्वंदिता की भावना थी। उच्च सरकारी पदाधिकारी यथा विभागीय सचिव, उप सचिव मंत्रियों से अपने को योग्य तथा उच्च समझते थे एवं उनके आदेशों की परवाह नहीं करते थे।

(ङ) मंत्रियों तथा कार्यकारिणी के सदस्यों में भी सहयोग तथा सामंजस्य नहीं था। इन दोनों की स्थिति में भी अन्तर था। मन्त्री जहां प्रान्तीय विधानपरिषद के प्रति उत्तरदायी थे, वहां कार्यकारिणी के पार्षदों का उत्तरदायित्व गवर्नर के प्रति था। इसके अलावा मंत्रियों का उत्तरदायित्व भी सामूहिक न होकर व्यक्तिगत ही था।

(च) देश में चारों तरफ रोष का तूफान था। जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड से जनता का खून खौल उठा था, जो अभी तक ठण्डा नहीं हुआ था। इसके अलावा असहयोग आंदोलन तथा खिलाफत आंदोलन ने देश की जनता में राजनीतिक चेतना जागृत कर दी थी। अतः द्वैध शासन की सफलता का विचार कल्पना मात्र था।

(छ) इनके अलावा ब्रिटिश सरकार की सुधारों के प्रति उदासीनता तथा कांग्रेस के असहयोग के रवैये ने भी अधिनियम को विफल बनाया। ब्रिटिश सरकार का उद्देश्य भारतीयों को कम से कम स्वशासन देना था। कूपलैण्ड का मत है कि अधिनियम भारतीयों को राजनीतिक प्रशिक्षण देने के अपने उद्देश्य में असफल रहा।[1]

अधिनियम का महत्व

1. Sir Regionalad Coupland: The constitutional problem in india, part I, P.73

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भारतीय शासन अधिनियम 1919 की उपर्युक्त आलोचनाओं के बावजूद भी विद्वानों ने इसके महत्व को स्वीकार किया है।

(1) यद्यपि इस अधिनियम के द्वारा कुख्यात द्वैध शासन व्यवस्था का सूत्रपात किया गया था, तथापि यह स्वीकार करना पड़ेगा कि यह अधिनियम भारतीय संविधान के इतिहास की एक युगान्तकारी घटना है। प्रान्तों के क्षेत्र में सर्वप्रथम उत्तरदायी शासन की स्थापना का शुभारम्भ इसी अधिनियम के द्वारा की गयी थी। जी.एन.सिंह के अनुसार 1919 के सुधार ब्रिटिश भारतीय इतिहास में उत्तरदायी शासन के समारम्भ, भारतीय प्रशासन से नरेशों को भारतीय रियासतों सम्बन्धी मामलों से संयुक्त करने एवं शासन में द्वैध शासन पद्धति से प्रारम्भ करने के लिये विख्यात रहेंगे।[1]

(2) इस अधिनिय के प्रस्ताव में प्रथम बार भारत में ब्रिटिश शासन के उद्देश्य की स्पष्ट घोषणा कीं गयी थी। इस दृष्टि से यह ऐक्ट अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

(3) अधिनियम के द्वारा मताधिकार में वृद्धि की गयी।

(4) शासकीय सेवाओं के भारतीयकरण की दिशा में भी विशेष प्रगति हुई थी।

(5) भारतीयों को राजनीतिक प्रशिक्षण का अवसर प्राप्त हुआ।

(6) विधान मण्डलों का विस्तार हुआ एवं

(7) स्थानीय स्वशासन के क्षेत्र का विस्तार किया गया।

सर रीजनेल्ड कूपलैण्ड ने इस अधिनियम के महत्व के सम्बन्ध में लिखा है, 1861 ई. से प्रारम्भ संवैधानिक विकास प्रक्रिया विषयक ब्रिटश संसद द्वारा स्वीकृत भारतीय शासनतंत्र सम्बन्धी प्रयासों में भारत शासन अधिनियम सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इसके द्वारा विधायी एवं कार्यपालिका सत्ता में विभाजक रेखा खींच दी गयी थी। इससे पूर्व प्रयासों द्वारा भारतीयों को शासन को अधिकाधिक नियंत्रित करने की शक्ति प्रदान की गयी थी, न कि शासन को नियमित करने का शक्तियां। यह सत्य है कि कुछ भारतीयों को शासन का सदस्य नियुक्त किया गया था, परन्तु वे शासन द्वारा नियुक्त थे एवं अपने अन्य सहयोगियों की भांति भारत मंत्री एवं संसद के प्रति उत्तरदायी थे। अत भारतीयों को स्वयं शासन का उत्तरदायित्व सौंपा गया था। अब उन्हें बड़े विभागों के मनोनीत सरकारी कर्मचारी के रूप में नहीं, अपितु विधानमण्डल के बहुमत दल के निर्वाचित नेताओं के रूप में स्वयं अपने प्रति उत्तरदायी रहते हुए शासन भार वहन करना था। भले ही यह अधिकार सीमित एवं प्रतिबन्धित है, परन्तु यह सत्ता का यथार्थ हस्तान्तरण है और इन मंत्रियों की नियुक्ति ने सबसे अधिक यह स्पष्ट कर दिया है कि ब्रिटिश राज्य द्वारा सत्ता का

1. सिंह, जी.एन.लेण्डमार्क्स इन इण्डियन कॉन्स्टिट्यूशनल एण्ड नेशनल डवलपमेंट, पृष्ठ 288.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परित्याग प्रारम्भ हो गया है। कार्यपाक सत्ता के हस्तान्तरण से भी अधिक महत्वपूर्ण तो ब्रिटेन की स्वीकृत एवं व्यवहार्य संवैधानिक पद्धति अर्थात उत्तरदायी शासन प्रणाली है।[1]

इस अधिनियम पर मिश्रित प्रतिक्रिया हुई थी। उदारवादियों ने इस अधिनियम का स्वागत करते हुए कहा कि यह स्वशासन की दिशा में महत्वपूर्ण एवं प्रथम किस्त है। इस अधिनियम से ब्रिटिश कर्मचारी बहुत निराश हो गये थे। उन्हें ऐसा लगा कि जैसे इस अधिनियम ने अतीत से सम्बन्ध तोड़ दिये हैं। इसने उनकी आशाओं पर पानी फेर दिया और उनमें से अनेक ने नवीन परिस्थितियों में सेवा करने की अपेक्षा सेवानिवृत्ति लेना अधिक उचित समझा। कांग्रेस ने अमृतसर कांग्रेस (1919ई.) में चितरंजन के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया एवं इस अधिनियम के सुधारों को अस्वीकार कर दिया था। कांग्रेस ने "सुधार कानून को अपूर्ण, असंतोषजनक एवं निराशापूर्ण बताया तथा, उत्तरदायी शासन की अपनी पूर्व मांग को फिर दोहराया। इसी अधिवेशन में लार्ड चेम्सफोर्ड का वापस बुलाने सम्बन्धी प्रस्ताव भी पारित किया गया था।[2]

इस अधिनियम के अनुसार 1921 में निर्वाचन हुए, जिनमें कांग्रेस ने भाग नहीं लिया। लेकिन 1923 के चुनावें में स्वराज्यवादियों ने भाग लिया। इस अधिनियम के अनुसार 1937 ई. तक प्रान्तीय शासंन व्यवस्था चलती रहीं। केन्द्रीय शासन का संचालन 1946ई. तक इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार होता रहा।

ब्रिटिश लेखक पर सीविल स्पीयर के अनुसार यह अधिनियम अब इतिहास का विषय हो जाने से हम आज उसका सही मूल्यांकन कर सकते हैं। उन्होंने लिखा है, "इसमें कोई दो मत नहीं है कि सुधारों में अनेक त्रुटियां एवं दोष थे।" उस समय की परिस्थितियों में भारतीय जनता द्वारा शासकीय पक्ष को सन्देह की दृष्टि से देखना स्वाभाविक था। वित्तीय प्रावधानों में अनेक दोष विद्यमान थे'। स्पीयर ने इस अधिनियम का मूल्यांकन करते हुए लिखा है, "ये सुधार ठोस एवं वास्तविक उपलब्धि सिद्ध हुए थे।" स्वाशासन के मार्ग पर वे निःसन्देह प्रगति चिन्ह थे। इसके द्वारा प्रगति को अनिवार्य बना दिया था।[3]

1919 के ऐक्ट के प्रावधान

अब हम इस ऐक्ट के प्रावधानों का विस्तारपूर्वक विवेचन करेंगे। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से अधिनियम के प्रावधानों को मुख्यतः तीन भगों में विभक्त किया जा सकता है। वे भाग हैं-(अ) गृह सरकार (ब) भारत सरकार एवं (स) प्रान्तीय सरकार।

(अ) गृह सरकार (Home Government)

1. सर रीजनेल्ड कूपलैण्ड : इण्डिया-ए रिस्टेटमेन्ट, पृष्ठ 113.
2. डॉ. पट्टाभि सीतारमैया : संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ 103.
3. परसीविल स्पीयर : इण्डिया, पृष्ठ 355-356.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उस समय भारत सरकार के दो भाग थे। इसका एक भाग इंग्लैण्ड में कार्य करता था और दूसरा भारत में। भारतीय प्रशासन की सम्पूर्ण व्यवस्था का संचालन इंगलैण्ड से ही होता था। शासन का जो भाग इंगलैण्ड में कार्य करता था, वह गृह सरकार कहलाता था। 1784 ई. तक भारतीय मामलों का नियंत्रण संचालक मण्डल (Court of Directors) और स्वामी मण्डल (Court of Proprietors) के हाथ में था। 1784 में संचालक मण्डल के अतिरिक्त बोर्ड ऑफ कण्ट्रोल की स्थापना हुई। यह द्वैध शासन व्यवस्था 1858 ई. तक चलती रही। 1858 ई. में जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथ से शासन की सत्ता निकल कर प्रत्यक्ष रुप से ब्रिटिश सम्राट के हाथ में आयी, तब भारतीय प्रशासन का नियंत्रण भारत सचिव तथा भारतीय परिषद के जिम्मे सौंप दिया गया।

गृह सरकार के मुख्य अंग

गृह सरकार के पाँच मुख्य अंग थे- सम्राट, मन्त्रिमण्डल, संसद, भारत सचिव और इण्डिया कौंसिल। इन पाँचों अंगों को सामूहिक रुप से गृह सरकार के नाम से पुकारा जाता है। इनमें भारत-सचिव तथा इण्डिया कौंसिल सर्वाधिक महत्वपूर्ण थी।

1. भारत सचिव - 1858 ई. के भारत सरकार अधिनियम द्वारा भारत सचिव के पद का सृजन किया गया। भारतीय प्रशासन का पूर्ण नियंत्रण उसे सौंप दिया गया। उसे अपनी नीति तथा सभी कार्यों के लिए ब्रिटिश संसद के प्रति उत्तरदायी बनाया गया था। भारत सचिव ब्रिटिश मंत्री-परिषद का सदस्य होता था। सर तेज बहादुर सप्रू के अनुसार "सरकार के सम्बन्ध में भारत सचिव के शासन सम्बन्धी और आर्थिक नियंत्रण के क्षेत्र इतने विशाल हैं कि यह कहना असम्भव है कि वैधानिक रुप से भारत सरकार कुछ स्वतंत्रता का भोग कर रही है।"

भारत-सचिव का पतन- 1919 के ऐक्ट से पूर्व भारत सचिव को भारतीय राजस्व से वेतन मिलता था, जिसके विरुद्ध भारतीयों ने आवाज उठाई। अतः 1919 के ऐक्ट के द्वारा भारत सचिव का वेतन इंगलैण्ड के कोष से दिये जाने की व्यवस्था की गई। इसका परिणाम यह हुआ कि ब्रिटिश संसद भारत के कार्यों की भी आवश्यक जाँच पड़ताल करने लगी।

भारत-सचिव के अधिकार- भारत के शासन के सम्बन्ध में भारत सचिव की शक्तियाँ अत्यधिक व्यापक थीं। उसे भारतीय सरकार और उसके राजस्व से सम्बन्धित सभी मामलों तथा भारतीय राजस्व से दिये जाने वाले समस्त वेतन तथा अन्य मदों के खर्चों पर 'निरीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण' का अधिकार दिया गया था। भारत सचिव की अनुमति के बिना कोई खर्च नहीं हो सकता था। माण्ट-फोर्ड रिपोर्ट में भारत सचिव की अनुमति के बारे में कहा गया कि वे बहुत विस्तृत हैं तथा उन्हें सूची-बद्ध करना कठिन है। उसकी व्यापक शक्तियों के का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उसे 'इण्डिया ऑफिस का महान मुगल' (The Great Mughal of India Office) कहते हैं। भारत सचिव के अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत प्रमुख विषय निम्नलिखित थे, जिनके लिए उसकी स्वीकृति अनिवार्य थी-

(i) केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधान सभाओं के समक्ष प्रस्तुत किये जाने वाले समस्त विधायी प्रस्ताव;

(ii) कर अथवा राजस्व में किसी प्रकार का संशोधन;

(iii) मुद्रा और ऋण से सम्बन्धित कोई कानून या आदेश;

(vi) नीति या प्रशासन सम्बन्धी मामलों में महत्वपूर्ण संशाधन;

(v) सार्वजनिक कार्य तथा रेलवे;

(vi) नेये उच्च पदों का सृजन;

(vii) प्रान्तीय सरकारों को अनुदान तथा देशी रियासतों को ऋण;

(viii) धार्मिक तथ दान-सम्बन्धी उद्देश्य के लिए बड़े अनुदान;

(ix) सेना पर अतिरिक्त व्यय आदि।

भारत सचिव के नियंत्रण में कमी- इस अधिनियम द्वारा प्रान्तों में आंशिक उत्तरदायी सरकार की स्थापना की गयी तथा केन्द्र की व्यवस्थापिका सभा में निर्वाचित सदस्यों का बहुमत रखा गया। अतः भारत सचिव की शक्तियों में कुछ कमी की गई। इस ऐक्ट के अन्तर्गत जो विषय प्रान्तों में भारतीय मंत्रियों को दे दिये गये थे, उसको हस्तान्तरित विषय कहा गया। जो विषय गवर्नर ने अपने पास रखे, उनको आरक्षित विषय कहा गया। हस्तान्तरित विषयों में भारतीयों को अधिक अधिकार दिये गये थे। अतः भारत सचिव का इन विषयों पर नियंत्रण कम कर दिया गया। उसे ऐक्ट द्वारा यह निर्देश दिया गया कि वह अपने बिनाये हुए नियमों द्वारा ही अपना नियंत्रण निश्चित कर दे और हस्तान्तरित विषयों पर प्रान्तीय विधान मण्डलों को स्वायतता प्रदान करे, ताकि प्रन्तों में उत्तरदायी मंत्री निर्विघ्न रूप से कार्य कर सकें। भारत सचिव ने जो नियम बनाए, उनके अनुसार उसका (भारत सचिव का) नियंत्रण निम्नलिखित बातों तक सीमित कर दिया गया-

(i) ब्रिटिश साम्राज्य के हितों की रक्षा

(ii) प्रान्तों द्वारा न सुलझाए जा सकने वाले प्रश्नों का निर्णय।

(iii) केन्द्रीय विषयों के शासन की देखभाल।

(iv) भारतीय हाई-कमिश्नर, भारतीयों तथा अपने ऋण लेने के अधिकारों की रक्षा करना।

(v) गवर्नर जनरल तथा उसकी कौंसिंल को सौंपे गये कार्यों की देखभाल तथा उनके उचित

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कार्यों का समर्थन करना।

केन्द्र तथा प्रान्तों के रक्षित विषयों पर भारत सचिव के नियंत्रण में भी कुछ कमी की। इस अधिनियम से पूर्व केद्रीय तथा प्रान्तीय विधान सभाओं में विधेयक प्रस्तुत करने से भारत सचिव की स्वीकृति लेनी आवश्यक थी। इस ऐक्ट में यह व्यवस्था की गई कि विशेष मामलों से सम्बन्धित विधेयक जैसे-विदेशी मामलों, सीमा शुल्क, सैनिक मामले, एवं सार्वजनिक ऋण आदि को छोड़कर शेष मामलों में भारत सचिव की पूर्व स्वीकृति आवश्यक नहीं होगी। प्रान्तों के मामलों के सम्बन्ध में यह नियिश्चित किया गया कि किसी भी विधेयक को भारत संचिव के पास तब तक नहीं भेजा जायेगा, जब तक कि गवर्नर जनरल अपनी स्वीकृति के बारे में कोई बाधा उत्पन्न न करे।

गृह-सरकार तथा भारत सरकार के सम्बन्ध- भारत सचिव ब्रिटिश संसद के एजेन्ट के रूप में कार्य करता था। वैधानिक दृष्टि से वह भारतीय शासन के प्रमुख गवर्नर जनरल का अधिपति होता था। गवर्नर जनरल भारत सचिव के आदेशों तथा निर्देशों का पालन करने के लिए बाध्य था। गृह सरकार की वैधिक सर्वोच्चता में किसी प्रकार का शक नहीं था। भारत सचिव ने लार्ड मेयो की सरकार को लिखते हुए इस स्थिति को बहुत पहले स्पष्ट कर दिया था। उसने कहा था, "भारतीय मामलों का अन्तिम नियंत्रण और निर्देशन गृह-सरकार के हाथों में है न कि भारत के अधिकारियों के हाथों में। गवर्नर जनरल और उसकी सरकार के सदस्यों को गृह-सरकार का आदेश मानना होगा।"

1870 ई. में स्वेज-नहर बन के जाने के बाद इंगलैण्ड और भारत एक दूसरे के निकट आ गये। दोनों के बीच सीधी तार लाइन स्थापित हो जाने से सन्देशवाहन के साधन सरल हो गये थे। इससे भारतीय मामलों पर भारत सचिव के नियंत्रण में काफी वृद्धि हो गई थी, जिससे बहुत से गवर्नर जनरल तथा भारत सचिव का सम्बन्ध कटु हो गया। लार्ड ... और लार्ड कर्जन ने भी इस बात की शिकायत की थी कि गृह सरकार उनके कार्यों में अत्यधिक हस्तक्षेप करती है। लार्ड मिण्टो ने भी इसी प्रकार का असन्तोष व्यक्त किया था। भारत सरकार अनेक बार यह शिकायत करती थी कि उसे गृह सरकार का एजेन्ट मात्र ही समझा जाता है। भारत सचिव की नीति से असहमत गवर्नर जनरल के सम्मुख त्यागपत्र देने के अतिरिक्त अन्य कोईचारा नहीं था। यह सम्बन्ध बहुत कुछ भारत सचिव तथा गवर्नर जनरल के व्यक्तित्व पर निर्भर करता था। चूँकि गवर्नर जनरल वस्तुस्थिति से परिचित रहता था, इसलिए कमजोर व्यक्तित्व वाले भारत के समक्ष उसके परामर्श को मानने के अलावा अन्य कोई विकल्प नहीं था। यह सत्य है कि, "भारत पर दिल्ली के बजाय व्हाइट हॉल से शासन किया जाता था।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सप्रू का स्पष्ट मत था कि, "भारत सचिव के शेष नियन्त्रण के अधिकार भी इतने विशाल हैं कि भारत सरकार को बहुत कम स्वतंत्रता मिल पाती है।"

भारत सचिव संसार के समस्त देशों के पदाधिकारियों से अधिक प्रभावशाली व्यक्ति था। डॉ. इकबाल नारायण ने लिखा है कि, "यदि कोई व्यक्ति यह प्रश्न करे कि सन् 1919 के ऐक्ट के अन्तर्गत भारत-सचिव के क्या कार्य थे, तो उसका सबसे अधिक उचित उत्तर एक प्रश्न के रूप में ही हो सकता है कि ऐसे कौन से कार्य थे, जिन्हें भारत-सचिव सन् 1919 के ऐक्ट के अन्तर्गत नहीं कर सकता था।"[1]

सर जॉन स्ट्रेची ने गृह सरकार तथा भारत सरकार के सम्बन्धों का वर्णन करते हुए लिखा है, "बहुधा यह कहा गया है कि भारतीय शासन के सम्राट के हाथ में हस्तान्तरित होने का एक परिणाम यह हुआ है कि भारतीय शासन में गृह-शासन द्वारा हस्तक्षेप में अधिक वृद्धि हुई और भारत में स्थित सरकार की शक्ति क्षीण पड़ गई है। संसार की बढ़ी हुई सुविधाओं तार व्यवस्था, भारतीय मामलों में ब्रिटिश जनता और संसद द्वारा अधिक दिलचस्पी लेने, भारत में अत्यधिक ब्रिटिश पूँजी लगाने के फलस्वरुप गृह-शासन के कार्यों में वृद्धि होने तथा अन्य कारण से दोनों देशों को बीच सम्बन्ध पहले से अधिक निकटवर्ती हो गये हैं और उन अवसरों में वृद्धि हुई, जिनमें कि अन्तिम आदेश भारत में नहीं दिये जा सके, किन्तु यह समझना भूल होगी कि भारत मंत्री भारतीय प्रशासन के साधारण कार्यों में सदैव हस्तक्षेप करता है।"

2. इण्डिया कौंसिल

उद्देश्य- 1858 ई. में भारत सचिव को प्रशासन के विषय में परामर्श एवं सहायता देने के लिए इण्डिया कौंसिल की स्थापना की गई। इसकी आवश्यकता एवं कार्यों पर प्रकाश डालते हुए लार्ड डर्बी ने अपने भाषण में कहा था, "भारत के सुशासन के लिए यह आवश्यक है कि भारत-सचिव और संसद के बीच एक पर्दे के समान न होगी, वरन् यह एक ऐसे सदस्यों का निकाय होगी, जिन्हें भारतीय मामलों की अच्छी जानकारी हो, जिससे कि वे भारत सचिव को परामर्श दे सकें और जिसे मानने अथवा न मानने की स्वतंत्रता भारत-सचिव को हो। मैं विश्वास करता हूँ कि प्रस्तावित परिषद् न तो भारत-सचिव की स्वामी ही होगी और न उसके हाथ की कठपुतली, अपितु परिषद् के सदस्य भारतीय मामलों में भारत-सचिव के मूल्यवान परामर्शदाता होंगे।"

प्रारम्भ में परिषद का स्वतंत्र अस्तित्व था और इसे व्यापक शक्तियाँ प्राप्त थीं। धीरे-धीरे इसके संगठन में कई परिवर्तन किये, जिसके कारण यह भारत सचिव की परामर्शदात्री समिति मात्र बन कर रह गई।

1. नारायण, इकबाल (डॉ.) : द्वैध शासन से स्वराज्य की ओर, पृष्ठ 75.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इण्डिया कौंसिल का संक्षिप्त इतिहास- 1858 के ऐक्ट के उपबन्धों की अधीन इ कौंसिल में 15 सदस्य होते थे। इन सदस्यों में से 8 की नियुक्ति सम्राट के द्वारा और निर्वाचन निर्वाचन-मण्डल के द्वारा होता था। रिक्त स्थानों की पूर्ति का अधिकार भारत को था। इन सदस्यों का कार्यकाल अनिश्चित था। 1889 ई. में इसके सदस्यों की संख से घटाकर 10 कर दी गई। 1907 ई. में इसकी सदस्य संख्या 10 से 14 की बीच निय दी गई और उनका कार्यकाल 7 वर्ष निश्चित कर दिया गया।

1919 के ऐक्ट के अनुसार इण्डिया कौंसिल के गठन में कुछ पिरिवर्तन किये गये ऐक्ट द्वारा भारत सचिव, अवर अचिव और उसके विभाग का पूर्ण व्यय ब्रिटिश कोष से व्यवस्था की गई। इस ऐक्ट द्वारा इण्डिया कौंसिल के सदस्यों की संख्या 8 से 12 निश्चि दी गई। इनमें से आधे सदस्य ऐसे होने चाहिए थे, जिन्होंने कम से कम 10 वर्ष तक भा नौकरी की हो और जिनको नियुक्ति के समय भारत छोड़े 5 वर्ष से अधिक न हुए हों। के सदस्यों का कार्यकाल 7 वर्ष से घटाकर 5 वर्ष कर दिया गया तथा उनका वेतन 1000 से बढ़कर 1200 पौण्ड वार्षिक कर दिया गया। परिषद् में भारतीय सदस्यों की संख्या दी गई। उन्हें 600 पौण्ड वार्षिक अतिरिक्त भत्ते की भी सुविधा प्रदान की गई। परि सदस्यों को संसद का चुनाव लड़ने का अधिकार नहीं था। परिषद् के रिक्त स्थानों क करना भारत सचिव के हाथ में था। कोई भी सदस्य अपने पद से त्यागपत्र दे सकता था किसी भी सदस्य को दोनों सदनों की ओर से सम्बोधन किये जाने पर उसे पद से हट सकता था।

कार्य एवं अधिकार- इण्डिया कौंसिल मूल रूप से एक परामर्शदात्री संस्था मा भारत सचिव द्वारा कोई प्रश्न सामने लाने पर ही यह अपना मत दे सकती थी। परि बैठक एक महीने में एक बार होनी आवश्यक थी। पहले गणपूर्ति के लिए पाँच सद उपस्थिति आवश्यक थी, लेकिन 1919 के ऐक्ट द्वारा गणपूर्ति का प्रश्न पूर्णतया भारत स इच्छा पर निर्भर छोड़ दिया गया। भारत सचिव इसका प्रधान होता था। इण्डिया कौं मुख्य कार्य भारत सचिव के निर्देशन में भारतीय शासन से सम्बन्धित कार्यों को क भारतीय राजस्व के अनुदान या व्यय और अखिल भारतीय सेवाओं के लिए नियम सम्बन्धित विषयों का निर्णय बहुमत से होता था। इन विषयों को छोड़कर बाकी सब के ऊपर भारत सचिव का पूर्ण प्रभुत्व था। वस्तुतः परिषद् की सलाह मानना या न मान सचिव की इच्छा पर निर्भर था। "अगर वह परिषद् की सलाह लेता भी तो उसे मान मानना उसके ही अधिकार की बात थी।"[1] बैठकों की अध्यक्षता भारत सचिव करता

1. एनीबीसेन्ट : [illegible]

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

र्णायक मत का अधिकार था। भारत सचिव की अनुपस्थिति में बैठकों की अध्यक्षता अन्य ोई सदस्य करता था, लेकिन बैठक की कार्यवाहियों पर भारत सचिव की लिखित स्वीकृति ावश्यक थी। भारत सचिव को परिषद् के कार्य संचालन के लिए नियम बनाने का अधिकार दिया गया था।

आलोचन- इण्डिया कौंसिल को एक निरर्थक तथा अनावश्यक संस्था बताया गया था। सके कई कारण थे। प्रथम, इण्डिया कौंसिल की स्थापना का उद्देश्य भारतीयों के हितों की क्षा करना तथा भारत सचिव पर नियंत्रण रखना था, लेकिन कौंसिल बहुत कमजोर संस्था न गई। यह केवल परामर्शदात्री संस्था मात्र थी। द्वितीय, इस परिषद् के सदस्य प्रायः वानिवृत्त अधिकारी होते थे, जिनका दृष्टिकोण नौकरशाही पूर्ण और प्रतिक्रियावादी होता था। नकी भारत में अपेक्षित सुधारों के प्रति कोई दिलचस्पी नहीं होती थी। तृतीय, यदि संयोगवश रत सचिव कभी प्रगतिशील विचारों का होता, तो भारत परिषद् उसे अपने विरोध से रुत्साहित कर देती थी। इस प्रकार भारत परिषद् भारत की राजनैतिक एवं संवैधानिक प्रगति मार्ग में कंटक का कार्य करती थी। सर तेजबहादुर सप्रू ने परिषद् के बारे में ठीक ही कहा , कि "यह भारत के लिए एक कलंक तुल्य है।" चतुर्थ, यद्यपि 1919 ऐक्ट में तीन भारतीयों े भारत परिषद् का सदस्य बनाने का प्रस्ताव रखा गया, परन्तु इन सदस्यों की संख्या कम ने के कारण वे भारत परिषद् के किसी भी निर्णय पर प्रभाव डालने में प्रायः असमर्थ रहते थे।

इण्डिया कौंसिल के उपर्युक्त दोषों के कारण भारतीयों तथा अधिकारियों द्वारा भी इसके मूलन की मांग की जाती रही। भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस ने अपने प्रथम अधिवेशन में ही इसे ग कर देने की मांग की थी। इस सम्बन्ध में एक प्रमुख प्रतिनिधि आनन्द चार्लू ने कहा था, रिषद का अन्त दूसरे सभी सुधारों का प्राथमिक आधार है।" 1919 के ऐक्ट के पूर्व भी रतीयों ने इण्डिया कौंसिल की समाप्ति की मांग को दोहराया गया। केन्द्रीय विधान परिषद् के सदस्यों ने परिषद् की समाप्ति की मांग को लेकर वायसराय को एक स्मृति पत्र प्रेषित या। लार्ड क्यू समिति ने प्रस्तावित सुधारों में परिषद् के स्थान पर एक परामर्शदात्री समिति ी स्थापना की सिफारिश की, जिसकी नियुक्ति भारत सचिव द्वारा होनी चाहिए। रैम्जे डोनल्ड ने परिषद् की समाप्ति का सुझाव दिया और इसके स्थान पर विभागीय परामर्शदात्री मिति की स्थापना की सिफारिश की। इस समिति के सदस्य संसद सदस्य होने चाहिए, कि संसद का भारतीय प्रशासन से अधिक निकटतम सम्पर्क रह सके, लेकिन कुछ परिवर्तन साथ इण्डिया कौंसिल बनी रही।

3. हाई कमिश्नर (High Commissioner)- 1919 के पूर्व भारत सचिव भारत रकार के लिए व्यवसायिक एजेन्टों का भी कार्य करता था। भारत के सैनिक और असैनिक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रशासन के लिए भारी मात्रा में आवश्यक सामानों को भारत-सचिव ही खरीदता था। करते समय वह भारतीयों के हितों की अपेक्षा ब्रिटिश व्यापारिक और औद्योगिक हितों अधिक ध्यान रखता था। इस प्रकार एक ही पदाधिकारी भारत की राजनैतिक एवं व्यावसा गतिविधियों का अधिपति था। इस असंगति को दूर करने हेतु 1919 के ऐक्ट द्वारा लन्द भारत के लिए एक हाई कमिश्नर की नियुक्ति की व्यवस्था की गई, ताकि भारत व्यावसायिक हितों के प्रति भारतीयों में नया विश्वस जाग्रत किया जा सके। गवर्नर जनरल वर्ष की अवधि के लिए हाई कमिश्नर की नियुक्ति करता था और उसे भारतीय कोश से दिया जाता था। उसका कार्यालय लंदन में रखा गया था। वह भारत सरकार का सेवक और भारत सरकार द्वारा उसके कार्यों का पूरा-पूरा निरीक्षण और नियंत्रण रखा जाता उसके प्रमुख कार्य थे- भारत सरकार की ओर से आवश्यक विदेशी वस्तुएँ और मशीनरी खरीदना, ठेके देना, स्टोर विभाग की देखभाल करना, भारतीय ट्रेड कमिश्नर के कार्य निरीक्षण करना, ब्रिटेन में पढ़ने वाले भारतीय विद्यार्थियों के हितों की देख-रेख कर अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में भारत का प्रतिनिधित्व करना आदि। यह उलेखनीय है कि वह वि में भारत के राजनैतिक अभिकर्त्ता के रूप में कोई कार्य नहीं करता था।

हाई ममिश्नर की नियुक्ति से भारतीयों को कोई विशेष लाभ नहीं हुआ, क्योंकि खरीद-बिक्री के सम्बन्ध में भारतीय हितों की अपेक्षा ब्रिटिश हितों की ओर अधिक ध्यान था। इसके अतिरिक्त इसकी नियुक्ति गवर्नर जनरल द्वारा की जाती थी और वह उसके उत्तरदायी होता था। अतः हाई कमिश्नर गवर्नर जनरल को प्रसन्न रखने के लिए इंगलैण्ड हितों को ही प्राथमिकता देता था।

यद्यपि इस अधिनियम द्वारा उपर्युक्त परिवर्तन किये गये थे, तथापि गृह सरकार वैधानिक सर्वोच्चता ज्यों-कीत्यों बनी रही। गवर्नर जनरल और उसकी सरकार के सभी स गृह सरकार के आदेश को मानने के लिए विवश थे।

(ब) भारत सरकार (Government of India)

केन्द्रीय कार्यपालिका

माण्ट-फोर्ड सुधार के द्वारा केन्द्र में अनुत्तरदायी सरकार की स्थापना की गई थी। के सरकार को केन्द्रीय विधान मण्डल के स्थान पर ब्रिटिश संसद के प्रति उत्तरदायी बनाया ग माण्ट-फोर्ड रिपोर्ट में भारत की केन्द्रीय सरकार के मूल सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए गया था कि, "यह पूर्णतः ब्रिटिश संसद के प्रति उत्तरदायी रहेगी और इस उत्तरदायित्व छोड़कर विषयों में इसकी शक्ति सर्वोपरि होगी, जब तक प्रान्तों के अनुभव के आधार पर परिवर्तन न लाये जायँ। इस बीच भारतीय विधान परिषद के आकार में उसके प्रतिनिधि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तथा उसकी सरकार को प्रभावित करने के अवसरों में वृद्धि करनी चाहिए।" इस प्रकार, अनुत्तरदायी रहते हुए भी केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा के गठन तथा कार्यों में ऐसा परिवर्तन कर दिया था, जिससे कि वह कार्यपालिका को अधिक प्रभावित करने की स्थिति में हो गई।

केन्द्रीय कार्यपालिका में गवर्नर जनरल और उसकी कार्यकारिणी परिषद् एवं सर्वोच्च शासनाधिकारी थे। गवर्नर जनरल भारत सरकार का उच्चतम पदाधिकारी था। उसे परामर्श और शासन कार्य में सहायता देने के लिए कार्यकारिणी परिषद् की स्थापना की गई थी। परिषद् गवर्नर जनरल को भारत के नागरिक तथा सैनिक प्रशासन पर अधीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण के सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त थे।

गवर्नर-जनरल
(Governor General)

कम्पनी के शासनकाल के प्रारम्भ में बम्बई, मद्रास और बंगाल के प्रान्तों के लिए अलग-अलग गवर्नर थे। 1773 ई. के रेग्यूलेटिंग ऐक्ट द्वारा इन प्रदेशों के एकीकरण की दिशा में कदम उठाया गया। बंगाल के गवर्नर को 'गवर्नर जनरल ऑफ बंगाल' का पद प्रदान किया गया और उसे बम्बई व मद्रास प्रेसीडेन्सियों के प्रशासन पर निर्देशन व अधीक्षण के अधिकार दिये गये। 1833के चार्टर एक्ट द्वारा उसे भारत का गवर्नर जनरल बना दिया गया। 1858 में भारतीय शासन के सीधे ब्रिटिश सम्राट और संसद के हाथ में आने पर गवर्नर जनरल को सम्राट के प्रतिनिधि अर्थात 'वायसराय' की अतिरिक्त उपाधि प्रदान की गई। सम्राट के प्रतिनिधि के रूप में गवर्नर जनरल भारत की देशी दियासतों पर भी ब्रिटिश अधिसत्ता के अधिकारों का प्रयोग करता था। देश रियासतों साथ व्यवहार करते समय गवर्नर जनरल को वायसराय कहा जाता था।

नियुक्ति कार्यकाल एवं वेतनादि– गवर्नर जनरल की नियुक्ति ब्रिटिश प्रधानमंत्री के परामर्श पर सम्राट द्वारा की जाती थी। इसका कार्यकाल 5 वर्ष होता था, परन्तु इसमें आवश्यकतानुसार वृद्धि की जा सकती थी। साधारणतया किसी सुविख्यात ब्रिटिश राजनीतिज्ञ, विशेष रूप से उच्च कुलीन व्यक्ति इस पद पर नियुक्त किये जाते थे। उसका वार्षिक वेतन 2 लाख 57 हजार रुपये और वार्षिक भत्ते एक लाख 72 हजार रुपए था। इसके अतिरिक्त उसे सुसज्जित निवासगृह की सुविधा प्रदान की जाती थी।

वस्तुतः गवर्नर जनरल का पद संसार के अधिकतम गौरवशाली, प्रतिष्ठित एवं शोभनीय पदों में से कदाचित सर्वोच्च था। "पद के गौरव का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि बिस्मार्क जैसे व्यक्ति भी इस पद के प्रति आकर्षण का अनुभव करते थे।"[1] संसार में किसी

1. रूसेल : फ्रीडम एण्ड ओरगेनाइजेशन, पृष्ठ 416 से उद्धत.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भी राजनीतिक पदाधिकारी को उसके समान शक्तियाँ और विशेषाधिकार प्राप्त नहीं थे। इकबाल नारायण के अनुसार, "उपनिवेशों के गवर्नर मन्त्रियों की सम्मति मानने के लिए बाध्य थे, परन्तु गवर्नर जनरल को कुछ विषयों में अपनी कार्यकारिणी परिषद् की सम्मति को ठुकरा देने का अधिकार था।" लावेल ने इस सम्बन्ध में लिखा था, "रूस के जार और भारत के गवर्नर जनरल अथवा वायसराय कभी-कभी विश्व के महान तानाशाह कहे गये हैं।"[1]

गवर्नर जनरल के कार्य एवं शक्तियाँ- 1919 का अधिनियम, जो मॉण्ट-फोर्ड रिपोर्ट पर आधारित था, उसमें गवर्नर जनरल की शक्तियों में कोई विशेष परिवर्तन नहीं किया गया था। अतः 1919 के ऐक्ट में गवर्नर जनरल की शक्तियाँ अपरिवर्तित रहीं। वह पूर्व की भाँति निरंकुश और अनुत्तरदायी बना रहा। अन्ततः वह अब भी भारतीय शासन का सर्वोच्च पदाधिकारी था। उसके कार्यों के विषय में मेक्डोनल्ड ने कहा था, "वायसराय तीन महान कार्य करता है। वह ताज का मूर्तरूप प्रस्तुत करता है, वह गृह सरकार का प्रतिनिधित्व करता है और वह प्रशासन का प्रधान है।"[2]

गवर्नर जनरल सम्राट प्रतिनिधि, गृह शासन का प्रतिनिधि एवं भारतीय प्रशासन का अध्यक्ष था। वह ब्रिटिश या प्रभुसत्ता का भारत में सार्वोच्च अधिकारी था। अतः उसे ब्रिटिश साम्राज्य की प्रतिष्ठा के अनुकूल कार्य करने पड़ते थे। वह गृह सरकार का प्रतिनिधि था। इस रूप में वह भारत सचिव के अधीन होता था तथा उनके द्वारा निर्देशित नीतियों का पालन करना पड़ता था। वह भारतीय प्रशासन का वास्तविक अध्यक्ष था। इसके संचालन हेतु उसे कानून बनाने का भी अधिकार प्राप्त था। इतना ही नहीं, उसे कार्यपालिका, विधायी और वित्तीय क्षेत्र में अनेक विशेष शक्तियाँ प्राप्त थीं, जिनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है-

(अ) कार्यकारिणी शक्तियाँ- गवर्नर जनरल भारतीय प्रशासन का वास्तविक अध्यक्ष होता था। उसे सम्पूर्ण भारतीय प्रशासन पर 'अधीक्षण, निर्देशन आर नियंत्रण का अधिकार' प्राप्त था। उसे कार्यकारिणी परिषद् के उप-प्रधान, परिषद् के सचिव, लेफ्टिनेन्ट गवर्नरों और राज्य परिषद् के प्रधान आदि की नियुक्ति के अधिकार प्राप्त थे। कार्यपालिका प्रधान के रूप में वह केन्द्रीय विधान मण्डल के दोनों सदनों के कुछ सदस्यों को भी नामजद करता था। देश में शान्ति एवं व्यवस्था बनाये रखने का उत्तरदायित्व उस पर था। इसके लिए वह आदेश जारी कर सकता था तथा सभी प्रकार की उचित कार्यवाही भी कर सकता था। वह कार्यकारिणी परिषद् की बैठकें जिस स्थन पर चाहता, बुला सकता था।

भारत की शान्ति व सुरक्षा तक साम्राज्य के हितों से सम्बन्धित मामलों में परिषद्

---

2. इकबाल नारायण : डायार्क ऑफ सेल्फ गवर्नमेन्ट से उद्धत
3. मेक्डोनल्ड आर : गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया, पृष्ठ 57

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परामर्श की अवहेलना कर सकता था। केन्द्र एवं प्रान्तों की उच्च स्तरीय सेवाएँ उसके नियंत्रण में थीं। विभागों के सचिव उसे विभागीय सूचनाएँ देते थे। वह वैदेशिक एवं राजनैतिक विभाग का भी अध्यक्ष होता था। उसे युद्ध की घोषणा करने की शक्ति नहीं थी, परन्तु वह ऐसी दशाएँ उत्पन्न कर सकता था, जिनमें युद्ध करना आवश्यक हो जाता। वह भारत के न्यायालयों के क्षेत्राधिकार से बाहर था। उसे न्याय और दया की अनेक शक्तियाँ प्राप्त थीं। उसे स्वविवेक से क्षमा प्रदान करने की शक्ति प्राप्त थी। साथ ही उसे उपाधियाँ देने की शक्ति भी प्राप्त थी। वह राजा, नवाब, सर, राय साहब, राय बहादुर, खां साहब और खान बहादुर आदि उपाधियाँ प्रदान करने का अधिकार रखता था।

(ब) विधायी शक्तियाँ- गवर्नर जनरल को विधायी क्षेत्र में भी विस्तृत अधिकार प्राप्त थे। उसे विधान मण्डल के दोनों सदनों का अधिवेशन बुलाने, स्थगित करने एवं भंग करने का अधिकार था। वह उनके निर्वाचन समय को निश्चित करता था तथा उनकी अवधि भी बढ़ा सकता था। वह दोनों सदनों में भाषण दे सकता था और उन्हें सन्देश भेज सकता था। विशिष्ट प्रकार के विधेयकों पर उसकी पूर्व स्वीकृति लेनी आवश्यक थी। वह विशिष्ट प्रकार के प्रश्नों को पूछे जाने तथा प्रस्तावों को पास होने से रोक सकता था तथा सम्राट् की सरकार के विचारार्थ रोक सकता था।

केन्द्रीय विधान मण्डल द्वारा पारित प्रत्येक विधेयक पर उसकी स्वीकृति अनिवार्य थी। वह विधेयक को स्वीकृत अथवा अस्वीकृत कर सकता था । वह (गवर्नर जनरल) विधेयक को सम्राट् की स्वीकृति के लिए रोक सकता था अथवा विधान मण्डल को पुनर्विचार के लिए लौटा सकता था। इस प्रकार विधेयक के सम्बन्ध में उसे निशेधाधिकार की शक्ति प्राप्त थी।

निषेधाधिकार के समान ही गवर्नर जनरल को प्रमाणित करने का महत्वपूर्ण अधिकार (Powers of Certification) भी प्राप्त था। जब कभी केन्द्रीय कार्यालिका किसी विधेयक को प्रशासन के लिए आवश्यक समझती थी, परन्तु केन्द्रीय विधान मण्डल के दोनों अथवा एक सदन उसे पेश करने की अनुमति न देते या उसे अस्वीकृत कर देते या उसके किसी महत्वपूर्ण प्रावधान में गवर्नर जनरल की इच्छा के विरुद्ध संशोधन कर देते, तो ऐस विधेयक को गवर्नर जनरल प्रमाणित करके कानून का रूप दे सकता था। उसे अपने हस्ताक्षर के साथ यह प्रमाण-पत्र देना होता था कि उस विधेयक का पास किया जाना भारत की सुरक्षा, शान्ति और ब्रिटिश हितों के लिए आवश्यक है। निष्कर्षतः गवर्नर जनरल अपनी इच्छानुसार कानून बना सकते थे और जिस विधेयक को वे ठीक नहीं समझते थे, उसे अस्वीकृत कर सकते थे।

संकटकाल में गवर्नर जनरल को ब्रिटिश भारत की शान्ति और प्रशासन हेतु अध्यादेश जारी करने का अधिकार था, जिनका प्रभाव कानूनों के समान होता था। अध्यादेशों की अवधि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

छः मास होती थी, परन्तु आवश्यकता पड़ने पर इसकी अवधि 6 मास के लिए और बढ़ाई जा सकती थी। गवर्नर जनरल द्वारा जारी किया गया कोई भी अध्यादेश सपरिषद् सम्राट द्वारा लागू होने से रोका जा सकता था। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के समय ऐसे अध्यादेशों का बहुत प्रयोग किया गया।

प्रान्तीय विधान मण्डलों द्वारा निर्मित कानूनों के सम्बन्ध में भी गवर्नर जनरल को कुछ विशेष शक्तियाँ प्राप्त थीं। सार्वजनिक ऋण, नया कर, सेना से सम्बन्धित विधेयकों पर उसकी पूर्व स्वीकृति लेनी आवश्यक थी। गवर्नर जनरल प्रान्तीय विधान मण्डलों द्वारा परित विधेयक को अस्वीकृत कर सकता था। साथ ही, प्रान्तीय विधान परिषद् द्वारा पारित किसी विधेयक को सम्राट् की अनुमति के लिए रोक सकता था। वह केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधान सभाओं में प्रस्तुत किसी विधेयक अथवा प्रस्ताव पर बहस रोक सकता था, यदि वह समझता कि इससे भारत की शान्ति पर कुप्रभाव पड़ेगा।

(स) वित्तीय शक्तियाँ- गवर्नर जनरल की वित्तीय शक्तियाँ भी बहुत व्यापक और प्रभावशाली थीं। केन्द्रीय बजट का निर्माण सपरिषद् गवर्नर जनरल द्वारा होता था और केन्द्रीय विधान सभा में बजट उसकी विकृति से ही प्रस्तुत हो सकता था। व्यय की कोई भी मद (Item) गवर्नर जनरल की अनुमति के बिना बजट में सम्मिलित नहीं की जा सकती थीं। बजट की मदे दो प्रकार की होती थीं- मत साक्षेप (Votable) और मत निरपेक्ष (Non-Votable)। किस मद को मत साक्षेप अथवा मत निरपेक्ष रखा जाय, यह निर्णय भी गवर्नर जनरल करता था। बजट की 80 प्रतिशत मदें मत निरपेक्ष होती थीं, अर्थात् जिन पर व्यवस्थपिका सभा के सदस्यों को मतदान का अधिकार प्राप्त नहीं था। दूसरे शब्दोंमें गवर्नर जनरल बजट की 80 प्रतिशत राशि बिना विधान मण्डल की अनुमति के स्वेच्छानुसार खर्च कर सकता था। केवन 20 प्रतिशत मदें मत साक्षेप होती थीं, अर्थात जिन पर विधान मण्डल के सदस्यों को मतदान का अधिकर प्राप्त था, परन्तु इस पर भी गवर्नर जनरल को विशेषाधिकार प्राप्त था। वह विधान मण्डल द्वारा अस्वीकृत या कटौती की गई अनुदान मांगों को अपने प्रमाण पत्र द्वारा यथापूर्व कर सकता था। इस प्रकार, भारत के सम्पूर्ण बजट पर गवर्नर जनरल का एकाधिकार था।

मूल्यांकन- गवर्नर जनरल को असीम शक्तियाँ प्राप्त थीं। वह भारत का वास्तविक एवं स्वेच्छाचारी शासक था। यद्यपि ब्रिटिश संसद भारत सचिव के द्वारा उस पर अपना नियंत्रण रखती थी, लेकिन इस नियंत्रण के बावजूद भी गवर्नर जनरल को पर्याप्त स्वतंत्रता प्राप्त थी। भौगोलिक दूरी के कारण गृह सरकार उस पर प्रभावशाली नियंत्रण रहीं रख सकती थी। भारत में गवर्नर जनरल को अपनी कार्यकारिणीं परिषद् की सलाह से कार्य करना पड़ता था, परन्तु व्यवहार में वह खिलौना मात्र थी, क्योंकि वह उसके निर्णयों को स्वतंत्रतापूर्वक ठुकरा सकता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

था। व्यवस्थापिका सभा में निर्वाचित प्रतिनिधियों का बहुमत था, लेकिन गवर्नर जनरल उनकी इच्छा को भी रद्द कर सकता था। 1919 के अधिनियम द्वारा सपरिषद् गवर्नर जनरल को विधान मण्डल के प्रति उत्तरदायी नहीं बनाया गया। परिणामस्वरूप केन्द्रीय विधान मण्डल का उस पर कोई अंकुश नहीं रह गया था। इसके अतिरिक्त उसे केन्द्रीय तथा प्रान्तीय मामलों पर इतनी अधिक शक्तियाँ प्रदान की गई थीं कि देश में वह जैसा चाहता, वैसा कानून पास करवा सकता था। इस प्रकार, विश्व के प्रमुख शासकों में उसकी स्थिति ईर्ष्यापूर्ण थी। कर्जन के शब्दों में, "वर्तमान परिस्थितियों में (एक्ट बनाने के बाद) वायसराय की स्थिति इतनी सीमित नहीं हुई थी कि उसके महत्वपूर्ण अधिकरों के प्रयोग पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध उपस्थित कर सके।" उसके पद के विषय में डॉ.जी.एन. जोशी ने लिखा है कि, "ब्रिटेन का संवैधानिक राजा राज्य करता है किन्तु शासन नहीं करता, संयुक्त राज्य अमेरिका का राष्ट्रपति शासन करता है और न राज्य ही करता है, जबकि भारत का गवर्नर जनरल राज्य और शासन दोनों ही करता है।"

1919 के अधिनियम द्वारा मांग की कटौती पूरा करने, विधेयकों को प्रमाणित करने और अध्यादेश जारी करने की शक्तियाँ देकर उसे और भी निरंकुश बना दिया गया। अतः एक आलोचक ने ठीक ही कह है कि गवर्नर जनरल पूर्ण कार्यपालिका का एक अंग ही न था, किन्तु लघरूप में वही पूर्ण कार्यपालिका था।

साइमन कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में गवर्नर जनरल के लिए लिखा था, "वह अत्यन्त उत्तरदायी, ऐश्वर्यवान तथा उल्लेखनीय पद सुशोभित करता था तथा शासन का भार वहन करने में प्रत्यक्ष एवं वैयक्तिक रूप से इस पर ऐसा भार था, जैसा कि ब्रिटिश साम्राज्य में अन्य किसी प्रतिनिधि पर नहीं।"

कार्यकारिणी परिषद्
(Executive Council)

रचना- सन् 1773 के रेग्यूलेटिंग ऐक्ट द्वारा गवर्नर जनरल को शासन में सलाह और सहायता देने के लिए एक कार्यकारिणी परिषद् की स्थापना की गई। प्रारम्भ में इसकी सदस्य संख्या 4 थी, किन्तु 1784 के पिट् अधिनियम ने इसे घटाकर तीन कर दी। सन् 1793 के चार्टर अधिनियम में मुख्य सेनापति को इसका असाधारण सदस्य बनाया गया। 1833 के चार्टर एक्ट द्वारा विधि सदस्य के रूप में इसमें चौथा सदस्य जोड़ा गया, वह कानूनी सदस्य कहलाता था। कानूनी सदस्य केवल इसकी विधि निर्माण की बैठकों में ही भाग ले सकता था। 1853 के चार्टर अधिनियम ने वित्त सदस्य के रूप में इसमें एक सदस्य की वृद्धि की। 1874 के एक्ट द्वारा सार्वजनिक निर्माण विभाग के रूप में इसमें एक सदस्य और जोड़ा गया। इस प्रकार,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

1919 ई. के पूर्व छः साधारण सदस्य थे और सेनापति इसका असाधारण सदस्य था।

1919 के सुधार अधिनियम द्वारा कार्यकारिणी परिषद् की रचना में अग्रलिखित परिवर्तन किये गये-

(i) इसकी सदस्य संख्या पर जो कानूनी सीमा थी, उसे हटा दिया गया। फलतः केवल सम्राट की स्वीकृति से इसकी सदस्य संख्या में वृद्धि की जा सकती थी।

(ii) 1919 के पश्चात् सामान्यतः कार्यकारी परिषद् की कुल सदस्य संख्या 8 बनी रही, जिसमें गवर्नर जनरल, प्रधान सेनापति और 6 अन्य सदस्य सम्मिलित थे। कानूनी सदस्य के लिए भारतीय एडवोकेटों को ही सदस्य नियुक्त किया जा सकता था।

(iii) साधारण और असाधारण सदस्यों का अन्तर समाप्त हुआ। अब प्रधान सेनापति को इसका साधारण सदस्य बना दिया गया।

(iv) कार्यकारिणी परिषद् के सदस्य भारत सचिव के प्रति उत्तरदायी थे और उसके द्वारा ही उन्हें उनके पद से हटाया जा सकता था।

(v) भारतीयों को भी कार्यकारिणी का सदस्य नियुक्त किया जाता था। सर एस.पी.सिंन्हा, सर अली इमाम और सर शंकरन नायर क्रम में इसके सदस्य रह चुके थे।

(vi) परिषद् के सदस्यों की योग्यता के सम्बन्ध में केवल यह नियम था कि इसमें कम से कम तीन सदस्य ऐसे होने अनिवार्य थे, जिन्होंने 10 वर्ष सम्राट की सेवा में भारत में व्यतीत किये हों। किसी भारतीय को भी परिषद् का सदस्य बनाया जा सकता था। इस सम्बन्ध में 'ज्वाइन्ट सिलेक्ट कमेटी' का मत था कि, "सरकारी अधिकारियों में से लिये गये कार्यकारिणी के सदस्य जैसे-जैसे समय व्यतीत होगा, यूरोपियनों की अपेक्षा अधिकतर भारतीय ही होने लगेंगे।" परन्तु व्यवहार में दो या तीन से अधिक भारतीय एक साथ इसके सदस्य कभी नहीं रहे।

(vii) अब केवल उसी व्यक्ति को विधि सदस्य नियुक्त किया जा सकता था, जो भारत के उच्च न्यायालय में कम से कम 10 वर्ष तक वकालत कर चुका हो।

(viii) सदस्यों की नियुक्ति गवर्नर जनरल की सिफारिश पर सम्राट द्वारा की जाती थी। सदस्यों का कार्यकाल पांच वर्ष का था, जिसे आवश्यकतानुसार घटाया या बढ़ाया जा सकता था। सदस्यों की पुनर्नियुक्ति पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था।

(ix) सदस्यों का वेतन भारतीय राजस्व से दिया जाता था और विधान मण्डल में उस पर मतदान हीं होता था। मुख्य सेनापति के अतिरिक्त प्रत्येक कार्यकारिणी परिषद् के सदस्य का वेतन 80 हजार रुपए प्रतिवर्ष था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परिषद् की कार्य-पद्धति- गवर्नर जनरल कार्यकारी परिषद् का अध्यक्ष होता था। वह परिषद् के सदस्यों के बीच प्रशासन के विभागों का वितरण करता था। प्रत्येक सदस्य अपने विभाग का अध्यक्ष होता था और अपने विभाग से सम्बन्धित सभी मामलों को स्वतंत्रतापूर्वक निबटाता था। साधारण मामलों में परिषद् का अन्तिम निर्णय करता था और आदेश करता था, परन्तु महत्वपूर्ण तथा अन्तर्विभागीय सम्बन्धी मामले कार्यकारिणी परिषद् के सम्मुख विचारार्थ प्रस्तुत किये जाते थे। साधारणतया कार्यकारिणी परिषद् की बैठक सप्ताह में एक बार होती थी। इसकी अध्यक्षता गवर्नर जनरल करता था और उसकी अनुपस्थिति में उसके द्वारा मनोनीत उप-सभापति। परिषद् की बैठक में निर्णय बहुमत के आधार पर लिये जाते थ, परन्तु बराबर मत (Tie) की स्थिति में गवर्नर जनरल को निर्णायक मत का अधिकार प्राप्त था। देश में शांति, सुरक्षा, सुव्यवस्था और उत्तम सरकार की सथापना के लिए गवर्नर जनरल बहुमत के निर्णय को रद्द कर सकता था। यदि कार्यकारिणी परिषद् का कोई सदस्य कार्यपालिका के निर्णय को नहीं मानता, तो उसे त्यागपत्र देना पड़ता था।

कार्यकारिणी परिषद् की शक्तियां व कृत्य- 1919 के अधिनियम के अन्तर्गत सपरिषद् गवर्नर जनरल को भारत सरकार के सैनिक और नागरिक मामलों पर 'अधीक्षण, निर्देशन एवं नियंत्रण' का अधिकार प्राप्त था। भारत सरकार के नाम पर समस्त निर्णय सपरिषद् गवर्नर जनरल द्वारा ही किये जाते थे। प्रन्तीय सरकारें इसके आदेश को मानने के लिए विवश थीं। सपरिषद् गवर्नर जनरल को भारत में सम्पत्ति के क्रय-विक्रय, ऋण और खरीद के सम्बन्ध में इकरारनामा करने का अधिकार था। इसे गवर्नर, डिप्टी गवर्नर या लेफ्टिनेन्ट गवर्नर के अधीन नये प्रान्त का निर्माण करने का अधिकार था, परन्तु उस पर सम्राट की स्वीकृति अनिवार्य थी। वह किसी भी क्षेत्र को पिछड़ा हुआ घोषित कर उसका शासन प्रबन्ध अपने हाथ में ले सकती थी। वह किसी भी प्रान्त की कार्यकारिणी परिषद् का गठन कर सकती थी। वह प्रान्तीय विधान मण्डल का निर्माण कर सकती थी। ऐसे उच्च न्यायालयों के क्षेत्राधिकार, अतिरिक्त जजों तथा कार्यवाहक मुख्य न्यायाधीशों के सम्बन्ध में अधिकार प्राप्त था। संक्षेप में, भारत सरकार से सम्बन्धित समस्त शक्तियाँ सपरिषद् गवर्नर जनरल नामक निकाय के हाथ में थी।

कार्यकारिणी परिषद् का उत्तरदायित्व- गवर्नर जनरल और कार्यकारिणी परिषद् के सदस्यों का मुख्य उद्देश्य भारत में शांति, सुव्यवस्था और उत्तम सरकार की स्थापना करना था। वे भारत सचिव तथा ब्रिटिश संसद के प्रति उत्तरदायी थे। गवर्नर जनरल के परामर्श पर सम्राट किसी भी पार्षद को उसके पद से हटा सकता था। सभी पार्षदों को केन्द्रीय विधान सभा या राज्य सभा की कार्यवाही में भाग लेने का अधिकार था। विधान मण्डल के सदस्यों द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर पार्षदों को देना पड़ता था। विधान मण्डल में उनके विरुद्ध अविश्वास

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रस्ताव पास हो जाने पर भी उन्हें त्याग-पत्र नहीं देना पड़ता था। पार्षद् सरकार के कार्यों के लिए सामूहिक रूप से उत्तरदायी नहीं थे। वे गवर्नर जनरल के साथी भी नहीं थे। उनका स्थान विभाग के परामर्शदाताओं या सचिवों के समान था।

कार्यकारिणी परिषद् और मन्त्रिमण्डल - यद्यपि कार्यकारिणी परिषद् कुछ आधारों पर मंत्रिमण्डल से मिलती-जुलती थी, किन्तु वास्तव में भारत के गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद् और ब्रिटिश मंत्रिमण्डल में अत्याधिक अन्तर था। ब्रिटिश मंत्रिमंडल के सदस्य प्रधान मंत्री के अधीन नहीं, वरन् सहयोगी होते थे, जबकि कार्यकारिणी परिषद के सदस्य गवर्नर जनरल के सहयोगी नहीं, वरन् सेवक मात्र थे। गवर्नर जनरल की तुलना प्रधानमंत्री से नहीं की जा सकती है, क्योंकि वह न तो विधान मण्डल का सदस्य था और न कार्यकारिणी परिषद का निर्माता ही।

ब्रिटिश मंत्रिमण्उल और कार्यकारिणी परिषद् में सबसे बड़ा भेद यह था कि कार्यकारिणी परिषद् मंत्रिमण्डल की भांति विधान मण्डलों के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी नहीं थी। विधान मण्डल में कार्यकारिणी परिषद् के सदस्यों के विरुद्ध नहीं थे। इसके अतिरिक्त भारतीय कार्यकारिणी परिषद् के सदस्य विधान मण्डल के निर्वाचित सदस्यों में से नहीं चुने जाते थे।

1919 के अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्रीय कार्यकारिणी परिषद् का गठन नितान्त असंतोषजनक था। इसके सदस्य अन्य किसी का प्रतिनिधित्व नहीं करते थे और वे विधान मण्डल के प्रति उत्तरदायी नहीं थे। परिषद् में भारतीय सदस्यों की वृद्धि का कोई व्यवहारिक महत्त्व नहीं था। "इससे गवर्नर जनरल को अपने कुछ ऐसे 'जी हुजूरों' (Yes-Men) को कार्यकारिणी में सम्मिलित करने का अवसर मिला, जिनकी दृष्टि गवर्नर जनरल की कृपा से अपने स्वार्थों की पूर्ति करने में ही लगी हुई थी।"[1]

केन्द्रीय विधान मण्डल

भारत में केन्द्रीय विधान मण्डल का उद्भव कम्पनी के शासनकाल में ही हो चुका था। 1861 ई. के एक्ट द्वारा केन्द्रीय विधान परिषद् का विस्तार किया गया। 1909 के मार्ले-मिण्टो सुधार द्वारा विधान परिषद् की सदस्य संख्या में वृद्धि की गई। प्रत्यक्ष तथा परोक्ष निर्वाचन पद्धति अपनाई गई। बजट तथा प्रश्न पूछने के सम्बन्ध में विधान परिषद् की शक्ति बढ़ा दी गई। इस प्रकार 1919 के एक्ट से पूर्व केन्द्रीय विधान मण्डल का बहुत कुछ विकास हो चुका था।

1919 के अधिनियम द्वारा भारत की केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा के सम्बन्ध अनेक

1. ईश्वरी प्रसाद (डॉ.) : हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न इण्डिया, पृष्ठ 392.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये। इस अधिनियम द्वारा केन्द्रीय विधान मण्डल की सदस्य संख्या में ही वृद्धि नहीं की गई, अपितु द्विसदनात्मक और अपेक्षाकृत अधिक प्रतिनिधिध्यात्मक बनाया गया। 1919 के एक्ट द्वारा पहली बार केन्द्रीय विधान मण्डल को दो सदनों में विभाजित कर दिया गया। एक सदन का नाम राज्य सभा (Council of State) और दूसरे का विधान सभा (Legislature Assembly) था। प्रत्येक सदन में निर्वाचित सदस्यों का बहुमत रखा गया। केन्द्रीय विधान मण्डल की कुल सदस्य संख्या 205 रखी गई, जिसमें से विधान सभा में 145 और राज्य परिषद् में 60 सदस्य थे।

विधान सभा
(Legislature Assembly)

विधान सभा में 145 सदस्य थे। इनमें से 104 सदस्य निर्वाचित और शेष 41 सदस्य गवर्नर जनरल द्वारा मनोनीत होते थे।104 सदस्यों में से 52 सदस्य सामान्य निर्वाचन क्षेत्रों से, 30 मुस्लिम, 2 सिक्ख, 9 यूरोपियन, 7 जमींदार, 4 भारतीय वाणिज्य के हितों का प्रतिनिधितव करते थे । 41 मनोनीत सदस्यों में से 26 सदस्य सरकारी अधिकारी और शेष 15 सदस्य गैर-सरकारी अधिकारी होते थे।

कार्यकाल- इस एक्ट के अनुसर विधान सभा का कार्यकाल 3 वर्ष निश्चित किया गया, किन्तु गवर्नर जनरल इसकी अवधि को घटा-बढ़ा सकता था।

पदाधिकारी- 1919 के अधिनियम के अन्तर्गत विधान सभा का अध्यक्ष चार वर्षों के लिए गवर्नर जनरल द्वारा मनोनीत होना निश्चित हुआ था। सर अलेक्जेण्डर व्हवाइट प्रथम अध्यक्ष मनोनीत किये गये। इसके बाद निर्वाचित व्यक्ति ही अध्यक्ष बने, किन्तु अध्यक्ष और उपाध्यक्ष पद पर निर्वाचित व्यक्ति के लिए गवर्नर जनरल की स्वीकृति आवश्यक थी। 1925 में श्री बिट्ठल भाई पटेल इस पद पर निर्वाचित हुए।

निर्वाचन- 1919 के एक्ट विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों का चुनाव भी प्रत्यक्ष प्रणाली द्वारा करने की व्यवस्था की गई। केन्द्रीय विधान सभा में मुसलमान, युरोपीय और सिक्खों के लिए पृथक् निर्वाचन मण्डल की व्यवस्था की गई। जमींदारी और वाणिज्य मण्डलों के लिए विशेष निर्वाचन क्षेत्रों का सृजन किया गया । दलित वर्गों, आंग्ल भारतीयों, भरतीय ईसाइयों और श्रमिकों के प्रतिनिधित्त्व के लिए नामांकन की व्यवस्था की गई। प्रान्तों में निर्वाचित सदस्यों की संख्या उनकी जनसंख्या के आधार पर नहीं, वरन् उनके महत्व के आधार पर निश्चित की गई थी। उदाहरण स्वरूप, यद्यपि पंजाब की जनसंख्या बिहार और उड़ीसा की दो तिहाई ही थी, तथापि पंजाब को उनसे अधिक स्थान दिये गये, क्योंकि पंजाब का अंग्रेजों की दृष्टि में सैनिक महत्व था। इसी प्रकार, बम्बई को जिसकी जनसंख्या मद्रास से आधी थी, व्यापारिक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

महत्त्व के कारण मद्रास के बराबर प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया था।

सभी प्रान्तों में मताधिकार के लिए सम्पत्ति को आधार बनाया गया था, परन्तु अलग-अलग प्रान्तों में सम्पत्ति की मात्रा में अन्तर था। विधान सभा के मताधिकार के लिए निम्नलिखित योग्यताओं में से किसी एक का होना आवश्यक था-

(i) 2 हजार रुपये से 5 हजार रुपए तक वार्षिक आय पर कर देना।

(ii) 50 से 150 रुपये तक वार्षिक भूमि कर देना।

(iii) 15 से 20 रुपये तक वार्षिक म्युनिसिपल कर देना।

(iv) व्यक्ति ऐसे मकान का स्वामी हो, जिसका किराया 180 रुपया प्रतिवर्ष हो।

मताधिकार के लिए इतनी कम सम्पत्ति का आधार बनाने पर भी भारत में कुल मतदाताओं की संख्या 1934 में केवल 14,15,892 थी।

विधान सभा की शक्तियाँ- केन्द्रीय विधान सभा की प्रमुख शक्तियाँ निम्नलिखित थीं-

(अ) विधायी शक्तियाँ- केन्द्रीय विधान सभा सम्पूर्ण ब्रिटिश भारत के लिए केंद्रीय सूची में दिये गये सभी विषयों पर कानून बना सकती थी। गवर्नर जनरल की पूर्व स्वीकृति से यह प्रान्तों के लिए भी कानून बना सकती थी, किन्तु यह समझाना भूल होगी कि वह कोई प्रभुत्व सम्पन्न विधि निर्मात्री संस्था थी। वास्तव में इसके अधिकार बहुत सीमित थे। यह 1919 के एक्ट में किसी प्रकार संशोधन नहीं कर सकती थी और न ही ऐसा कोई कानून पारित कर सकती थी जो ब्रिटिश संसद के किसी कानून के विरुद्ध हो। यह बिना भारत सचिव के अनुमोदन के ऐसा कोई कानून पारित नहीं कर सकती थी, जो किसी उच्च न्यायालय का उन्मूलन करता हो। यह भारत सचिव की शक्ति में कोई परिवर्तन नहीं कर सकती थी। संक्षेप में, इसके पास राजसत्ता नहीं थी-

केन्द्रीय विधान सभा को निम्नलिखित विषयों पर प्रस्ताव रखने से पूर्व गवर्नर जनरल की स्वीकृति लेनी पड़ती थी-

(i) सार्वजनिक ऋण, राजस्व का अथवा भारत के राजस्व कर पर आधारित अतिरिक्त करके सम्बन्ध में।

(ii) ब्रिटिश भारत की जनता की धार्मिक और सामाजिक परम्पराओं के सम्बन्ध में।

(iii) ब्रिटिश सम्राट की स्थलीय सेना, वायु सेना या नौ सेना में अनुशासन बनाये रखने के सम्बन्ध में।

(iv) विदेशी शासकों अथवा देशी राजाओं के साथ भारत सरकार के सम्बन्धों के विषय में।

दोनों सदनों द्वारा पारित विधेयक को अधिनियम बनाने के लिए गवर्नर जनरल की स्वीकृति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आवश्यक थी। गवर्नर जनरल की विधान मण्डल द्वारा पारित विधेयकों को रद्द करने का अधिकार था। वह विधान मण्डल की सहमति व सलाह के बिना भी कानून बना सकता था।

(ब) वित्तीय शक्तियाँ- वित्तीय विधेयक सबसे पहले विधान सभा में प्रस्तुत किया जाता था। इसमें पारित होने के बाद उसे राज्य सभा में भेजा जाता था। यद्यपि विधान मण्डल को सम्पूर्ण बजट पर विचार करने का अधिकार था। फिर भी, उसे वित्तीय क्षेत्र में बहुत सीमित शक्तियाँ प्राप्त थीं। बजट को दो भागों मे बाँट दिया जाता था। पहली मांग में निम्नलिखित खर्चे शामिल किये जाते थे-

(i) ऋण का ब्याज अथवा डूबती हुई रकमों पर कर,

(ii) सेना, राजनीतिक विभाग तथा ईसाई धर्म पर होने वाला व्यय

(iii) शाही सेवाओं, मुख्य आयुक्तों तथा न्याय आयुक्तों आदि का वेतन व पेंशन

बजट के पहले भाग में 80 प्रतिशत व्यय शामिल था। पहले भाग पर विधान सभा बहस तो कर सकती थी, परन्तु मतदान नहीं कर सकती थी। बजट के पहले भाग को गवर्नर जनरल विधान सभा की बिना स्वीकृति अथवा अनुमोदन के खर्च कर सकता था। इस प्रकार लगभग 80 प्रतिशत बजट पर केन्द्रीय विधान सभा का कोई प्रभावशाली नियंत्रण नहीं था।

बजट के दूसरे भाग में 20 प्रतिशत खर्चे होते थे। इस पर विधान सभा को मतदान का अधिकार प्राप्त था। वह इस भाग में सरकार के किसी भी खर्चे में कटौती अथवा उसे पूर्णतया रद्द कर सकती थी, परन्तु इसे बढ़ाने या परिवर्तन करने का अधिकार नहीं था। यदि विधान सभा बजट के दूसरे भाग के किसी खर्च में कटौती करती, तो गवर्नर जनरल को यह अधिकार था कि वह उन्हें आवश्यक घोषित करके अपने विशेषाधिकारों से यथापूर्व कर दे। इस प्रकार, केन्द्रीय विधान मण्डल को भारतीय राजकोष पर आंशिक स्वामित्व भी प्राप्त न था।

कार्यपालिका पर नियंत्रण शक्तियाँ- 1919 के अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्रीय कार्यपालिका को केन्द्रीय विधान मण्डल के प्रति उत्तरदायी नहीं बनाया गया था। केन्द्रीय विधान सभा गवर्नर जनरल या उसकी कार्यकारिणी परिषद् के किसी भी सदस्य को अविश्वास प्रस्ताव द्वारा नहीं हटा सकती थी। फिर, संसद सरकार की भाँति इसे कुछ ऐसी शक्तियाँ प्राप्त थीं, जिनके द्वारा विधान सभा कार्यपालिका को नियंत्रित और प्रभावित करती थीं। विधान मण्डल के सदस्य कार्यकारिणी परिषद् के सदस्यों से प्रश्न और पूरक प्रश्न पूछ सकते थे। विधान सभा सरकार के विरुद्ध सार्वजनिक महत्व के विषयों पर 'काम रोको प्रस्ताव' भी पास कर सकती थी। वह जनता के हित में सरकार की नीतियों में परिवर्तन हेतु कोई सुझाव दे सकती थी, परन्तु यह गवर्नर जनरल की इच्छा पर निर्भर था कि वह इनकी किसी सिफारिश या प्रस्ताव को माने या न माने।

विधायक सरकार की नीतियों की आलोचना कर सकते थे। इतना ही नहीं, सरकार के विरुद्ध

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विधान सभा निन्दा प्रस्ताव भी पास कर सकती थी, लेकिन इसके कारण कार्यकारिणी परिषद् त्याग-पत्र नहीं देना पड़ता था। विधान सभा के पास ऐसी कोई शक्ति नहीं थी, जिसके द्वारा अपनी इच्छाएँ मनवाने के लिए सरकार को विवश कर सके। विधान सभा केवल बजट पर विवाद, आलोचना तथा कटौती के द्वारा सरकार को कुछ अंश तक प्रभावित करती थी। इस सम्बन्ध मे प्रो. डायसी ने लिखा है कि, "सन् 1919 के एक्ट के अन्तर्गत भारतीय व्यवस्थापिका सभा की स्थिति के बारे में लिखा है कि,"भारतीय व्यवस्थापिका सभा के अधिकार इम्पीरियल पार्लियामेंट के, जो इसकी जननी थी, बनाए गए एक्ट द्वारा सीमित हैं और इन अधिकारों के घेरे की सीमा से बाहर निःसन्देह वह कुछ नहीं कर सकती।" 1919 के ऐक्ट के अन्तर्गत केन्द्रीय विधान मण्डल की वास्तविक स्थिति का वर्णन श्री जी.एन.सिंह ने इन शब्दों में किया है- "इस प्रकार भारतीय विधान मण्डल केवल एक प्रभुता रहित, विधायक निकाय ही नहीं थी, वरन् वह कार्यकारिणी के समक्ष अशक्त भी थी। प्रशासकीय, विधायी एवं वित्तीय सभी क्षेत्रों में सपरिषद् गवर्नर के जनरल को अधिकार था। कार्यकारिणी विधान मण्डल से स्वतंत्र ही नहीं थी, वरन् इसको लगभग सभी विषयों में उसका उल्लंघन करने का अधिकार था।[1]"

राज्य सभा
(Council of State)

केन्द्रीय विधान मण्डल के दो सदन थे- विधान सभा और राज्य सभा। विधान सभा केन्द्रीय विधान मण्डल का निम्न सदन था, जबकि राज्य सभा उच्च सदन। राज्य सभा में कुल 60 सदस्य होते थे। इनमें 33 सदस्य निर्वाचित, 27 सदस्य गवर्नर जनरल द्वारा मनोनीत किए जाते थे। इन 27 मनोनीत सदस्यों में से 17 सरकारी अधिकारी और 10 गैर-सरकारी अधिकारी होते थे। निर्वाचित सदस्य जिनकी संख्या 33 थी, भिन्न-भिन्न प्रान्तों से विभिन्न ढंग द्वारा चुने जाते थे। राज्य-परिषद् का कार्यकाल पाँच वर्ष था, परन्तु गवर्नर जनरल इस अवधि को घटा-बढ़ा सकता था। गवर्नर जनरल इस सदन के सदस्यों में से ही किसी एक को अध्यक्ष के पद पर नियुक्त करता था। अध्यक्ष प्रायः सरकारी सदस्य ही हुआ करता था।

राज्य सभा का चुनाव- राज्य सभा के निर्वाचित सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष प्रणाली से होता था। उसके लिए मताधिकार अत्यन्त संकुचित रखा गया था। मताधिकार का मुख्य आधार सम्पत्ति रखा गया था। इसके लिए केवल वे ही व्यक्ति मतदान के अधिकारी थे, जो 10 हजार से 20 हजार रुपए वार्षिक आय पर कर देते हों अथवा 750 रुपये से लेकर 5 हजार रुपए तक प्रतिवर्ष भूमि कर देते हों। इसके अतिरिक्त निम्न व्यक्तियों को भी मताधिकार दिया गया था-

1. सिंह जी.एन. : भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास, पृष्ठ 317.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(i) विश्वविद्यालय सीनेट के सदस्य हों या रह चुके हों।

(ii) वे व्यक्ति जो नगरपालिकाओं, जिला बोर्डों अथवा केन्द्रीय सहकारी बैंकों के अध्यक्ष या ाध्यक्ष रह चुके हों।

(iii) भारत की किसी विधान सभा में कार्य करने का अनुभव रहा हो अथवा किसी वस्थापिका सभा के सदस्य रह चुके हों।

(iv) सरकार द्वारा किसी विशिष्ट उपाधि से विभूषित किये गये हों।

स्त्रीयों को मताधिकार से वंचित रखा गया था। इस प्रकार, राज्य सभा एक ऐसा रूढ़िवादी न थी, जिसमें बड़े-बड़े पूंजीवादी, जमींदार और व्यापारियों के प्रतिनिधि बैठते थे। श्री यंगर ने ठीक ही लिखा है कि, "राज्य-परिषद की स्थापना विधान परिषद् के मताधिकार के में की गई थी और यह सरकार के अजेय दुर्ग के समान थी।"

राज्य सभा की शक्तियाँ- राज्य सभा की प्रमुख शक्तियाँ निम्नलिखित थीं-

विधायी शक्तियाँ- राज्य सभा को विधान सभा के समान कानून बनाने की शक्तियाँ प्राप्त कोई भी बिल जब तक दोनों सदनों द्वारा पास नहीं हो जाता था, कानून नहीं बन सकता

वित्तीय शक्तियाँ- बजट राज्य सभा में उसी दिन पेश किया जाता था, जिस दिन विधान ा में, किन्तु वित्त विधेयक पहले विधान सभा में प्रस्तुत किये जाते थे और उसके बाद राज्य ा में। राज्य सभा में बजट पर चर्चा होती थी, परन्तु वह इस पर अपना मत नहीं दे सकती वित्तीय विधेयक को अस्वीकृत या संशोधित करने का अधिकार राज्य सभा को था। इस ति में गवर्नर जनरल अपनी विशेष शक्तियों द्वारा ही इसे कानून का रूप दे सकता था। इसमें सन्देह नहीं कि वित्तीय मामलों में विधान सभा की अपेक्षा राज्य सभा को कुछ कम शक्तियाँ थीं।

कार्यकारिणी शक्तियाँ- राज्य सभा को गवर्नर जनरल तथा उसकी कार्यकारिणी परिषद् से और पूरक पूछने का अधिकार था। यह निन्दा प्रस्ताव, काम रोको प्रस्ताव तथा अन्य ाव भी पास करती थी। राज्य सभा अपने इन कार्यों से कार्यपालिका को प्रभावित करने का न करती थी, परन्तु विधान सभा की तुलना में यह कम प्रभावकारी सदन था।

दोनों सदनों में गतिरोध- दोनों सदनों को कानून-निर्माण के सम्बन्ध में समान अधिकार था। अतः किसी विधेयक पर दोनों में मतभेद होने पर गतिरोध (असहयोग) पैदा हो सकता प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि उस गतिरोध को हल कैसे किया जाता था। जब एक सदन को पास कर देता था तथा दूसरा सदन पास नहीं करता था और इस तरह विवाद को म्भ हुए 6 महीने व्यतीत हो जाते थे, तो गवर्नर जनरल दोनों सदनों का संयुक्त अधिवेशन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बुला सकता था। इसकी अध्यक्षता राज्य सभा का अध्यक्ष करता था और मामले का मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के बहुमत द्वारा किया जाता था। चूंकि राज्य स सदस्यों की संख्या विधान सभा भी सदस्य संख्या की अपेक्षा कम थी, इसलिए विधान को अपनी बात मनवाने में आसानी रहती थी।

विधान मण्डल की आलोचना

1919 के अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्रीय विधान मण्डल के संगठन तथा शक्तियों के निम्नलिखित आलोचना की जाती है-

(i) विधान सभा पर गवर्नर जनरल का पर्याप्त नियन्त्रण होने के कारण उस पर रोक के लिए राज्य सभा की जरूरत नहीं थी। इसके अतिरिक्त राज्य सभा बहुत कुछ शक्तिहीन क्योंकि बजट पर इसे मतदान का अधिकार नहीं था।

(ii) राज्य सभा को एक रुढ़िवादी सदन बनाया गया। इसकी रचना इस तरह से की कि यह सदा विधान सभा द्वारा पारित कानूनों के विरुद्ध रोड़ा अटकाए और सदा संरकार का साथ दे। यद्यपि इसमें निर्वाचित सदस्यों का बहुमत था, किन्तु वह केवल न का था। निर्वाचित मताधिकार अतयन्त सीमित रखा गया, ताकि जनता के सच्चे प्रतिनिधि में आकर उत्तरदायी सरकार की मांग न कर सकें।

(iii) केन्द्रीय विधान मण्डल में नामजद सदस्यों की संख्या अधिक थी। यह व्य प्रजातन्त्र पद्धति के प्रतिकूल थी। कुछ सदस्यों का नामांकन विशेष वर्गों एवं हितों के लि था, लेकिन वास्तव में वे सरकार के पक्के समर्थक होते थे।

(iv) 1919 के ऐक्ट द्वारा साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली को और अधिक बढ़ा दिया जिसका परिणाम देश का विभाजन हुआ।

(v) साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के अतिरिक्त अधिनियम द्वारा बड़े जमींदार; बड़े व्याप उद्योगपति आदि को भी प्रतिनिधित्व देने की व्यवस्था की गई। यह व्यवस्था भी अप्रजातांत्रि

(vi) मतदान का आधार सम्पत्ति को रखा गया। अतः बहुत कम लोगों को मताधिकार हुआ। इस कारण केवल सीमित जनसंख्या को ही विधान मण्डल में प्रतिनिधित्व मिल पात

(vii) केन्द्रीय विधान मण्डल की शक्तियों पर अनेक प्रतिबन्ध थे। कई प्रकार के वि को प्रस्तुत करने से पूर्व गवर्नर जनरल की अनुमति आवयश्क थी। गवर्नर जनरल ब्रिटि की शान्ति और सुरक्षा के नाम पर किसी बिल अथवा इसकी किसी धारा पर वि संशोधन करने से केन्द्रीय विधान मण्डल को रोक सकता था। वह विधान मण्डल द्वारा किसी भी विधेयक को अस्वीकृत कर सकता था। इतना ही नहीं, वह अपनी इच्छानुसार भी विधेयक में संशोधन भी कर सकता था वह विधान मण्डल द्वारा पारित किसी भी वि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अस्वीकृत कर सकता था। इतना ही नहीं, वह अपनी इच्छानुसार किसी भी विधेयक में शोधन भी कर सकता था। गवर्नर जनरल विशेष परिस्थितियों में अध्यादेश भी जारी कर कता था। उसकी प्रमाणित करके कानून निर्माण की शक्ति ने विधान मण्डल को महत्वहीन ना दिया था। विधान मण्डल को वित्त पर वास्तविक नियन्त्रण की शक्ति प्राप्त नहीं थी। बजट 20 प्रतिशत भाग पर उसकी मन्जूरी ली जाती थी, परन्तु यहां पर गवर्नर जनरल को विशेष क्तियां प्राप्त थीं। यदि विधान सभा में सरकार की किसी मांग या खर्चे में कटौती कर देती , तो गवर्नर जनरल अपने विशेषाधिकार द्वारा इन्हें रद्द कर सकता था वह विधान मण्डल रा अस्वीकृत धन विधेयक को प्रमाणित कर कानून का रूप दे सकता था। इससे स्पष्ट होता कि गवर्नर जनरल सर्वेसर्वा (All-in-All) था । वास्तविक शक्ति उसके हाथ में थी और न्द्रीय विधान मण्डल (विधान सभा तथा राज्य सभा) उसके सामने बिल्कुल अशक्त थे।

(viii) जहां तक केन्द्रीय कार्यपालिका पर नियंत्रण का सवाल था, केनद्रीय विधान मण्डल हुत ही शक्तिहीन था। गवर्नर जनरल तथा उसकी कार्यकारिणी केन्द्रीय विधान मण्डल के प्रति रदायी नहीं थी। सरकार का कोई भी विभाग विधान मण्डल के नियन्त्रण में नहीं था। धान सभा गवर्नर जनरल तथा उसकी कार्यकारिणी के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास कर कती थी, परन्तु कार्यपालिका त्याग-पत्र देने के लिए बाध्य नहीं थी। वह केवल सरकार के थ जनहित में कोई सुझाव या प्रस्ताव भेज सकती थी, लेकिन इसको मानना या न मानना र्नर जनरल की इच्छा पर निर्भर था। इस प्रकार, सरकार का कोई विभाग विधान मण्डल के यंत्रण में नहीं था। स्वयं विधान मण्डल कार्यपालिका के कठोर नियंत्रण में था।

उपर्युक्त त्रुटियों के बावजूद भी विधान मण्डल काफी उपयोगी सिद्ध हुआ। वह लोकमत की भिव्यक्ति के लिए प्रचार केन्द्र बन गया। इतना ही नहीं सुदृढ़ राष्ट्रीय लोकमत को जमाने में फल सिद्ध हुआ। फ्लांडे के शब्दों में, "कानूनी दृष्टि में भारतीय कार्यपालिका विधान मण्डल पूर्णतया स्वतंत्र थी व्यवहार में दूसरी ओर सन् 1946 ई में अन्तरिम सरकार की स्थापना के भी जनमत से अवश्य प्रभावित होती थी और कुछ सीमा तक इसके अनुसार कार्यवाही भी ती थी।"

प्रान्तीय शासन

माण्ड-फोर्ड रिपोर्ट की सिफारिशों के आधार पर 1919 के अधिनियम के अन्तर्गत प्रान्तों में शि रूपसे उतरदायी शासन व्यवस्था की स्थापना की गई। इसे द्वैध शासन (Dyarchy) ते हैं। श्री जी.एन. सिंह के शब्दों में, "इस प्रकार, माण्ट-फोर्ड सुधारों के केन्द्रीय प्रस्ताव ने तीय स्वायत्तत के लिए दो महत्वपूर्ण बातें प्रारम्भ कीं-उच्च सत्ता के नियन्त्रण से स्वतंत्रता जनता के प्रति शक्ति का हस्तान्तरण।"[1]

1. सिंह, जी.एन. : भारत का वैधानिक विकास एवं राष्ट्रीय आन्दोलन, पृष्ठ 291-92.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

द्वैध शासन

अर्थ- 1919 के अधिनियम के अन्तर्गत प्रान्तों में लागू की गई शासन व्यवस्था को दोहरा शासन (Dyarchy) कहते हैं। डाइयार्की शब्द डी (Di) तथा आर्किया (Archia) शब्दों से मिलकर बना है। डी का अर्थ 'दो' और आर्किया का अर्थ है 'शासन'। इस इसका अर्थ दो शासकों का शासन या दोहरा शासन। श्री बी.के.ठाकुर ने 'द्वैध शास व्याख्या करते हुए लिखा है कि "शासन की वह नवीन प्रणाली द्वैध शासन की प्रणा जिसका अर्थ है दो शासक अथवा दो सत्ताधारियों के अन्तर्गत शासन का संचालन। इस पर ये सत्ताधिकारी हैं-ब्रिटिश जनता और प्रान्तीय जन और उस उक्ति का यही मूल परन्तु क्योंकि शासक का अर्थ उस व्यक्ति अथवा समिति से भी हो सकता है, जो शासनाधिकारी के निमित्त वास्तविक रुप से कार्यकारिणी के अधिकार का प्रयोग कर इसलिए द्वैध शासन इस प्रणाली की ओर भी संकेत करता है , जिसमें (अ) गवर्नर और समिति और (ब) गवर्नर औरमंत्रिगण दोनों समानान्तर रुप से शासन करते हैं। प्र अधिकार सुरक्षित विषयों और कार्यों से सम्बन्धि हैं और द्वितीय का सम्बन्ध हस्ता विषयों और कार्यों से है और जिसमें प्रथम उस समय तक प्रधान है, जब तक कि द्वितीय को विकसित कर उस पर छा न जाए।"[1] 1919 के अधिनियम की पृष्ठभूमि में द्वैध शा अर्थ था, "प्रान्तीय शासन दो क्षेत्रों में विभाजित हो और इन दोनों क्षेत्रों का प्रशासन पदाधिकारियों द्वारा किया जाय, जिनके स्वरुप और उत्तरदायित्व में विभिन्नता हो।" इस 1919 के अधिनियम द्वारा प्रान्तों में आंशिक उत्तरदायी सरकार की स्थापना की गई। सम्बंधी समस्त विषयों को केन्दीय तथा प्रान्तीय सूची में विभाजित किया गया। इस अ द्वारा पहली बार प्रान्तीय विषयों को दो भागों में विभक्त किया गया-रक्षित विषय (Re Subjects) और हस्तान्तरित विषय (Transferred Subjects)। श्री ए.बी.कीथ के "भारत शासन अधिनियम की अनिवार्य विशेषता विषयों को भारत शासन के अधीन के प्रान्तीय तथा प्रान्तीय को पुनः रक्षित एवं हस्तान्तरित में वर्गीकृत करने सम्बंधी प्रावधा

रक्षित विषयों का प्रशासन प्रान्तीय गवर्नर अपनी कार्यकारिणी परिषद् के सद सहायता से चलाता था, जो प्रान्तीय विधान मण्डल के प्रति उत्तरदायी नहीं होते थे। हस्त विषयों के शासन का उत्तरदायितव भारत मन्त्रियों को सौंपा गया, जो प्रान्तीय विधान म प्रति उत्तरदायी होते थे। इस प्रकार, प्रान्तीय शासन का एक भाग उत्तरदायी था, जबकि अनुत्तरदायी। इसी व्यवस्था को द्वैध शासन व्यवस्था कहते हैं।

---

1. ठाकुर बी.के. द्वैतशासन से स्वराज्य की ओर, पृष्ठ 144.
2. कीथ, ए.बी. : कॉन्स्टिट्यूशनल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृष्ठ 247.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

केन्द्र और प्रान्तों में विषयों का बटवारा- इस अधिनियम के अन्तर्गत प्रान्तों में आंशिक उत्तरदायी सरकार स्थापित की गई थी। अतः केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकारों के बीच प्रशासन के समस्त विषयों को दो सूचियों में विभाजित किया गया-केन्द्रीय सूची तथा प्रान्तीय सूची। जो विषय समस्त भारत के हित में थे अथवा उनमें एक से अधिक प्रान्तों के हितों की प्रधानता थी, उन्हें केन्द्रीय सूची में रखा गया और प्रान्तीय हित के विषय प्रान्तीय सूची में रखे गये। केन्द्रीय सूची में 47 विषय थे, जिनमें प्रमुख ये थे-प्रतिरक्षा, विदेशों से सम्बन्ध, देशी राज्यों से सम्बन्ध, सार्वजनिक ऋण, चुंगी, रेल, डाक व तार मुद्रा तथा टंकण, फौजदारी तथा आदि से सम्बन्धित धार्मिक व्यवस्था, अखिल भारतीय नौकरियां, वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसन्धान की केन्द्रीय संस्थाएं, भारत से बाहर यात्रा, विदेशियों को भारत की नागरिक्ता प्रदान करना, सैन्य महत्व के संचार साधन, नमक, आयकर एवं वाणिज्य (जिसमें बैंक तथा बीमा आदि भी शामिल थे) इत्यादि।

प्रान्तीय सूची में 50 विषय रखे गये, जिनमें से प्रमुख इस प्रकार थे-स्थानीय स्वशासन, सार्वजनिक चिकित्सा तथा स्वास्थ्य, शिक्षा, सार्वजनिक निर्माण कार्य, कृषि एवं सिंचाई, भूमि का प्रबन्ध, अकाल सहायता, पुलिस तथा जेल, न्याय, वन, सहकारी संस्थाएं, कानून एवं व्यवस्था, श्रम, पानी की सप्लाई, आबकारी, उद्योग-धंधों का विकास एवं पशु चिकित्सा आदि।

प्रशासनिक अधिकारों की भांति राजस्व साधनों को भी दो भागों में विभाजित किया गया। केन्द्रीय सूची में चुंगी, आयकर, रेल, तार, डाक, नमक एवं अफीम आदि थे, जबकि प्रान्तीय सूची में भूमि कर, चुंगी, सिंचाई, स्टाम्प व रजिस्ट्रेशन आदि रखे गये।

अवशिष्ट शक्तियां सपरिषद् गवर्नर जनरल के हाथ में रखी गई थी। जब कभी यह विवाद उत्पन्न हो जाता था कि कोई विषय प्रान्तीय है अथवा केन्द्रीय, तो उस पर गवर्नर जनरल का निर्णय अन्तिम समझा जाता था।

प्रान्तों में रक्षित तथा हस्तान्तरित विषयों का विभाजन- इस अधिनियम द्वारा पहली बार प्रान्तीय विषयों को दो भागों में बांटा गया-रक्षित विषय तथा हस्तांतरित विषय।

रक्षित विषय (**Reserved Subjects**)- प्रान्तीय सूची के 50 विषयों में से 28 विषय अधिक महत्वपूर्ण थे, उन्हें रक्षित सूची में रखा गया। उदाहरणस्वरूपः भूमिकर तथा राजस्व, अकाल, सहायता, न्याय-प्रशासन, खनिज साधनों का विकास, कानून और व्यवस्था, पुलिस व जेल, समाचार पत्र, पुस्तकों तथा छापाखानों पर नियन्त्रण, प्रान्तीय सरकार के नाम पर ऋण लेना, सिंचाई तथा नहरें, वन, कृषि सम्बन्धी ऋण, व्यावसायिक कारखाने, श्रमिक विवाद, जल विद्युत शक्ति, यूरोपियनों को शिक्षा, सुधार गृह, उत्पादन पूर्ति और बांट पर नियन्त्रण, प्रान्तीय सरकार के नाम पर उधार लेना, प्रान्तीय वित्त आदि विषय रक्षित विषय सूची में रखे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गये थे। रक्षित विषयों के शासन का उत्तरदायित्व गवर्नर एवं उसकी कार्यकारिणी परिषद् को सौंपा गया, जो प्रान्तीय विधान परिषद् के प्रति उत्तरदायी न होकर गवर्नर जनरल एवं भारत सचिव के प्रति ही उत्तरदायी थे। इस तरह रक्षित विषयों पर प्रान्तीय विधान परिषद् का नियन्त्रण नहीं था।

हस्तान्तरित विषय (Transferred Subjects)-जिन विषयों को भारतीयों को सौंपने से ब्रिटिश सरकार का अहित होने की संभावना नहीं थी, उन विषयों को हस्तान्तरित विषय कहा गया तथा उनके शासन का उत्तरदायित्व भारतीय मंत्रियों को सौंपा गया। प्रान्तीय सूची में के 50 विषयों में से 22 विषय हस्तान्तरित सूची में रखे गये। हस्तान्तरित विषयों के अन्तर्गत स्थानीय स्वशासन, चिकित्सा, सार्वजनिक स्वास्थ्य तथा सफाई, यूरोपीय एवं आंग्लभारतीयों को छोड़कर शेष जनता की शिक्षा, सार्वजनिक कार्य, कृषि, सहकारी समितियां, मछली, उद्योग संघों का विकास, खाद्य वस्तुओं में मिलावट, जन्म तथा मृत्यु सम्बन्धी आंकड़े, तोल माप, सार्वजनिक निर्माण कार्य, आबकारी उत्पादनशुल्क, पशु चिकित्सा, ब्रिटिश भारत में यमा आदि विषय रखे गये थे। हस्तान्तरित विषयों के शासन का उत्तरदायित्व भारतीयों को सौंपा गया, जो प्रान्तीय विधान परिषद् के प्रति उत्तरदायी थे।

इस प्रकार, प्रान्तीय कार्यपालिका के दो भाग किये गये थे। एक में गवर्नर तथा उसकी कार्यकारिणी के सदस्य थे और दूसरे में गवर्नर तथा विधान मण्डल के प्रति उत्तरदायी मन्त्री थे। जहां पर यह विवाद उत्पन्न हो जाता था कि अमुक विषय को हस्तान्तरित समझा जाय या रक्षित, तो इस संबन्ध में गर्वनर का निर्णय अन्तिम समझा जाता था।

विभागों का अतार्किक विभाजन- रक्षित और हस्तान्तरित विषयों के अनतर्गत किया गया विभागों का विभाजन अतार्किक और बेढंगा था। उदाहरणस्वरुप, कृषि को हस्तान्तरित विकास सूची में रखा गया था, जबकि सिंचाई को रक्षित विकास सूची में। इस प्रकार, दोषपूर्ण प्रबन्ध में क्षेत्राधिकार के प्रश्न को लेकर एक विभाग का दूसरे विभाग के साथ मतभेद हो सकता था। ऐसी स्थिति में गवर्नर का निर्णय अन्तिम होता था।

हस्तान्तरित विषयों के लिए पृथक् वित्त एवं पृथक् प्रशासकीय सेवाओं की व्यवस्था नहीं की गई थी। पुन्निया के शब्दों में,"पूर्ण और तार्किक रुप से द्वैध शासन को अपनाने पर एक ही प्रान्त में पृथक् व्यवस्थापिकाओं, वित्त और सेवाओं सहित दो सरकारों की स्थापना होनी चाहिए थी लेकिन सुधारों के रचयिताओं का उद्देश्य यह नहीं था।"[1]

प्रांतों पर केन्द्रीय नियंत्रण में ढिलाई- प्रान्तों में आंशिक उत्तरदायी सरकार को सफल बनाने के लिए 1919 के अधिनियम द्वारा केन्द्र का प्रांतों पर नियन्त्रण ढीला कर दिया गया

1. पुन्निया, के.वी. : द कान्स्टिट्यूशनल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृष्ठ 154.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

1919 के ऐक्ट से पूर्व प्रान्तीय सूची पर कानून बनाने के लिए गर्वनर जनरल की पूर्व स्वीकृति आवश्यक थी, परन्तु 1919 के ऐक्ट के अनुसार प्रान्तीय सूची पर कानून बनाने का अधिकार प्रान्तीय गवर्नर को दे दिया गया। केवल विशेष मामलों में ही गवर्नर जनरल की पूर्व स्वीकृति प्राप्त करनी पड़ती थी। जब प्रान्तीय सरकार हस्तान्तरित विषय पर कानून बनाती थी, तो केन्दीय सरकार उसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकती थी परन्तु जब वह किसी रक्षित विषय पर कानून बनाती थी, तो केन्द्रीय सरकार उसमें हस्तक्षेप कर सकती थी। इस प्रकार कानूनी क्षेत्रों में केन्द्रीय नियन्त्रण काफी ढीला कर दिया गया।

कानूनी क्षेत्र के साथ प्रशासनिक क्षेत्र में भी केन्द्रीय नियन्त्रण को ढीला कर दिया गया। केन्द्र सरकार को प्रान्तों के अधीक्षण, निर्देशन और नियन्त्रण का अधिकार पूर्व की भांति रहा। केन्द्रीय सरकार प्रान्तों के केवल रक्षित विषयों में हस्तक्षेप करती थी। जहां तक हस्तान्तरित विषयों का सम्बन्ध था, केन्द्रीय सरकर का नियन्त्रण ढीला कर दिया गया और यह प्रान्तों के मामले में प्रायः हस्तक्षेप नहीं करती थी।

वित्तीय क्षेत्रों में भी केन्द्र का नियन्त्रण कुछ ढीला किया गया। प्रान्तों को कुछ विषयों पर टैक्स लगाने की आज्ञा दे दी गई। केन्द्र और प्रान्तों के राजस्व के साधनों को अलग-अलग कर दिया गया। इससे प्रान्तीय सरकारों की केन्द्रीय सरकार पर निर्भरता कुछ कम हो गई और प्रान्त बहुत हद तक वितीय मामलों में आत्म निर्भर हो गये। इस प्रकार 1919 के ऐक्ट द्वारा प्रान्त की स्वराज्य की दिशा में पहला कदम उठाया गया। बाद में 1935 के ऐक्ट के अनुसार प्रान्तीय स्वराज्य एक वास्तविकता बन गया।

प्रान्तीय कार्यपालिका

प्रान्तीय कार्यपालिका का प्रधान गवर्नर होता था, जिस पर सम्पूर्ण प्रशासन का उतरदायित्व होता था उनकी सहायता के लिए द्वैध शासन व्यवस्था लागू की गई थी। इसके अनुसार रक्षित विषयों का प्रशासन गवर्नर और उसकी कार्यकारिणी परिषद के सदस्यों को और हस्तान्तरित विषयों का प्रशासन उत्तरदायी मन्त्रियों को सौंपा गया था। कार्यकारिणी परिषद के सदस्य एवं मन्त्री दोनों ही गवर्नर की अधीनता में काम करते थे। इस प्रकार, प्रान्तीय कार्यपालिका में गवर्नर का केन्द्रीय स्थान था।

गवर्नर

गवर्नर सम्पूर्ण प्रान्तीय शासन की धुरी था। कलकत्ता, बम्बई और मद्रास के गवर्नरों की नियुक्ति भारत सचिवों की सिफारिश पर और अन्य प्रांतों के गवर्नर की नियुक्ति गवर्नर जनरल की सिफारिश पर ब्रिटिश सम्राट द्वारा की जाती थी। इस पद पर साधारणतः ब्रिटेन के सार्वजनिक जीवन में उच्च स्थान प्राप्त व्यक्तियों को या उच्च सिविलियनों में से नियुक्त किये

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जाते थे। गवर्नर का कार्यकाल 5 वर्ष होता था, ज़िसे सम्राट घटा-बढ़ा सकता था।

गवर्नर की शक्तियाँ

गवर्नर की शक्तियां और कार्य निम्नलिखित थे-

कार्यपालिका की शक्तियां- गवर्नर प्रान्तीय शासन का प्रधान था। वह प्रान्त में कुशल शास और शान्ति व व्यवस्था बनाने रखने के नाम पर स्वेच्छाचारी शासक की तरह शासन क सकता था। कार्यकारी परिषद के सदस्यों की नियुक्ति और पदच्युति उसी के द्वारा की जाती थ मन्त्रियों की नियुक्ति और पदच्युति भी वही करता था। इसमें सन्देह नहीं कि मन्त्रियों क नियुक्ति में उसे कुछ परम्पराओं का निर्वाह करना पड़ता था, परन्तु मन्त्रियों पर गवर्नर क वैधानिकता सर्वोच्चता नितान्त स्पष्ट थी। वह मन्त्रियों तथ कार्यकारी परिषद के सदस्यों बीच विभागों का वितरण करता था। वह कार्यकारिणी परिषद् के बैठक में अध्यक्षता करता थ वह मन्त्रियों से उनके विभागों के बारे में परामर्श लेता था। मंत्रियों और पार्षदों के बीच विभा का वितरण करता था। वह कार्यकारिणी परिषद् के बैठक में अध्यक्षता करता था। वह मन्त्रि से उनके विभागों के बारे में परामर्श लेता था। मन्त्रियों और पार्षदों के प्रशासकीय कार्य नियम भी उसी के द्वारा निर्धारित किये जाते थे। विशेष परिस्थिति में वह हस्तान्तरित विभा के क्षेत्र में मन्त्रियों द्वारा लिये गये निर्णय को मानने से इन्कार कर सकता था। जहां त कार्यकारिणी परिषद् के सदस्यों का सम्बन्ध था, वे तो पूर्ण रुप से उसके नियन्त्रण में थे। य द्वैध शासन का सामान्य ढंग से चलना सम्भव नहीं होता, तब गवर्नर हस्तान्तरित विषयों क प्रशासन अपने हाथ में ले सकता था। मध्य प्रान्त और बंगाल में मन्त्रियों द्वारा कार्य करने इन्कार करने पर गवर्नर ने ऐसा ही किया था। इस प्रकार मन्त्रीय और पार्षद दोनों उस नियन्त्रण में थे। प्रान्तीय प्रशासन के उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति उसी की सिफारिश प होती थी। इस प्रकार प्रान्तीय प्रशासन पर उसका प्रत्यक्ष नियंत्रण था।

विधायी शक्तियां-विधायी क्षेत्र में भी गवर्नर को व्यापक शक्तियां प्राप्त थीं। प्रान्तीय विधा परिषद् की बैठकें बुलाना, उसे स्थगित करना, विघटित करना, उसके कार्यकाल को एक व तक के लिए बढ़ाना उसके अधिकार में था। प्रान्तीय विधान परिषद् द्वारा पास किये ग विधयकों पर उसकी स्वीकृति आवश्यक थी। वह हस्तान्तरित विषयों से सम्बन्धित विधेयों प निषेधानिकार (Veto) का प्रयोग कर सकता था। किसी कानून को गवर्नर द्वारा आवश्य समझने के बावजूद यदि विधान परिषद् उसे कानून का रुप देने से इनकार करती, तो गवर्न प्रमाणित करने की शक्ति (Power of Certification) के द्वारा उस पर कानून बना सक था। विधान परिषद् में विचाराधीन किसी विधेयक या उसके किसी भाग से प्रान्त की शान्ति अ सुरक्षा को खतरा, पहुँचने की संभावना होने पर गवर्नर उस पर वाद-विववाद रोक सकता थ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वह किसी विधेयक को विधान परिषद् को लौटा सकता था और लौटाते समय किसी संशोधन की सिफारिश भी कर सकता था। वह किसीा विधेयक को गवर्नर जनरल की अनुमति के लिए रोक सकता था। धार्मिक मामलों, विश्वविद्यालयों और भू-राजस्व से सम्बन्धित विधेयकों पर गवर्नर जनरल की स्वीकृति अनिवार्य थी। गवर्नर विधान परिषद को साम्बोधित कर सकता था और इसके लिए वह सदस्यों को सदन में उपस्थित होने के लिए विवश कर सकता था। वह अध्यादेश भी जारी कर सकता था।

वित्तीय शक्तियां-गवर्नर को कुछ वास्तविक वित्तीय शक्तियां भी प्राप्त थीं प्रान्तीय विधान परिषद में बजट उसकी स्वीकृति के बिना पेश नहीं हो सकता था। रक्षित और हस्तान्तरित क्षेत्रों में खर्च की जाने वाली धन की मात्रा गवर्नर की अध्यक्षता में परिषद के सदस्यों और मन्त्रियों की एक संयुक्त बैठक में निश्चित की जाती थी। दोनों पक्षों में मतभेद होने पर गवर्नर का निर्णय अन्तिमं समझा जाता था। बजट का लगभग 70 प्रतिशत भाग ऐसा होता था, जिस पर विधान परिषद् पतदान नहीं कर सकती थी। यदि विधान परिषद् रक्षित विषयों से समबिन्धित किसी मांग में कटौती कर देती या अस्वीकार कर देती, तो गवर्नर उस रकम की पूर्ति यह कहकर सकता था कि वह खर्च उस विषय के प्रशासन को ठीक तरह से चलाने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। गवर्नर ने मध्य प्रांत और बंगाल में स्वराज्यवादियों द्वारा शासन में सहयोग देने से इन्कार करने पर आपनी इन विशेष शक्तियों खुलकर प्रयोग किया।

गवर्नरों के निर्देश-पत्र- द्वैष शासन की सफल क्रियान्विति के लिए ब्रिटिश सरकार ने समस्त गवर्नरों के लिए एक समान आदेश-पत्र (Instrument of Instructions) जारी किये गये थे। गवर्नरों से यह आशा की गई थी की वे अपनी परिषद् के सदस्यों और मन्त्रियों के साथ-साथ संयुक्त रूप विचार-विमर्श करें, ताकि मन्त्रियों को प्रशासनिक अनुभव प्राप्त हो सके। हस्तान्तरित विषयों के संबन्ध में समान्यतया गवर्नर को अपने मन्त्रियों के परामर्श के अनुसार कार्य करना पड़ता था परन्तु यदि गवर्नर को किसी कारणवश मन्त्रियों के परामर्श के विरुद्ध कार्य करना पड़ता, तो उनसे यह आशा की जाती थी कि वे उनके (मंत्रियों के) प्रान्तीय विधान परिषद से सम्बंधों और जनता की इच्छा का उचित ध्यान रखे।

उपर्युक्त आदेश-पत्र के द्वारा गवर्नर को अग्रलिखित विशेष उत्तरदायित्व भी सौंपे गये थे।

(i) प्रान्त की सुरक्षा और शान्ति के लिए आवश्यक पग उठाये जाएें।

(ii) भारत सचिव अथवा सपरिषद् गवर्नर जनरल द्वारा जारी किये गये सभी आदेशों का उचित पालन किया जाये।

(iii) प्रान्त की सार्वजनिक सेवाओं के सभी सदस्यों का संरक्षण।

(iv) अल्पसंख्यकों के हितों का संरक्षण। इन विशेष उत्तरदायित्वों के क्षेत्र में गवर्नर को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अपने मंत्रियों के परामर्श को मानने या न मानने और आवश्यकता पड़ने पर कार्यकारिणी परिषद् के निर्णयों को रद्द करने की शक्तियां प्राप्त थीं।

इस प्रकार, प्रांतीय शासन में गवर्नर की भूमिका निर्णायक की होती थी। वस्तुतः वही प्रांतीय शासन का वास्तविक प्रधान था। अधिनियम निर्माताओं की इच्छा सम्भवतया यह थी कि गवर्नर द्वारा सामान्यतया मंत्रियों के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए। परन्तु द्वैध शासन व्यवस्था के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अधिकांश गवर्नरों ने विशेष उत्तरदायित्वों की आड़ में द्वैध शासन की सफल क्रियान्विति के मार्ग में अनेक रोड़े अटकायें। इतना ही नहीं, उन्होंने (गवर्नरों ने) परिषद् के सदस्यों के सामान ही मन्त्रियों पर भी नियंत्रण स्थापित करने के प्रयत्न किये।

गवर्नर तथा उसके मंत्री-प्रांतों में हस्तान्तरित विभागों के संचालन के लिए मन्त्रियों की नियुक्ति की जाती थी। उनकी अधिकतम संख्या इस अधिनियम द्वारा निश्चित नहीं की गई, किन्तु मद्रास, बम्बई और कलकत्ता में तीन मंत्री नियुक्त किये गये और शेष प्रान्तों में केवल दो मन्त्री नियक्त किये गये थे। मन्त्रियों की नियुक्ति गवर्नर द्वारा विधान परिषद् के सदस्यों में से की जाती थी और उसके प्रसाद-पर्यन्त तक (During his pleasure) पर अपने पद पर बने रहते थे। यदि गवर्नर किसी ऐसे व्यक्ति को मन्त्री नियुक्त कर देता, जो विधान परिषद् का सदस्य न हो, तो उसे 6 महीने के अन्दर विधान परिषद् का सदस्य बनना पड़ता था। यदि वह व्यक्ति 6 महीने में सदस्य नहीं बन सकता था, तो वह मन्त्री पद पर नहीं रह सकता था। मन्त्रियों को नियुक्त करते समय गवर्नर को यह ध्यान रखना पड़ता था कि उन्हें विधान परिषद् का भी विश्वास प्राप्त होना चाहिए।

मन्त्रियों का वेतन प्रायः कार्यकारिणी परिषद् के सदस्यों को बाराबर होता था, लेकिन विधान परिषद् को उनके वेतन में कटौती करने का अधिकार दिया गया था। बम्बई विधान परिषद् ने वास्तव में प्रत्येक मन्त्री का वार्षिक वेतन 64,000 से घटाकर 48,000 कर दिया था।

विधान परिषद् किसी भी मन्त्री के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास कर उसे त्याग-पत्र देने के लिए विवश कर सकती थी। विधान परिषद् के सदस्य मंत्रियों से प्रश्न तथा पूरक प्रश्न भी पूछ सकते थे। इस तरह से मन्त्रियों को विधान परिषद की सद्भावना पर निर्भर रहना पड़ता था। दूसरी ओर गवर्नर भी उन्हें बिना कारण बताये हटा सकता था। इस प्रकार से मन्त्रियों की स्थिति बहुत ही कठिन थी। उन्हें अपने पद पर बने रहने के लिए दो स्वामियों-विधान परिषद् और गवर्नर को प्रसन्न रखना पड़ता था क्योंकि दोनो को ही उन्हें हटाने का अधिकार प्राप्त था।

गवर्नर शान्ति एवं सुरक्षा के नाम पर मन्त्रियों की सलाह की उपेक्षा कर अपनी इच्छानुसार कार्य कर सकता था। गवर्नर उस स्थिति में भी मन्त्रियों की इच्छा के विरुद्ध कार्य कर सकता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

था, जब उनकी सलाह भारत सचिव या गवर्नर जनरल के आदेशों के विरुद्ध हो। यदि अधिनियम के अनुसार किसी विभाग के लिए कोई मंत्री उपलब्ध नहीं होता, तो नये मंत्री की नियुक्ति कर गवर्नर हस्तान्तरित विभाग का कार्य सम्भाल सकता था। ऐसी स्थिति में हस्तान्तरित विषयों का प्रशासन रक्षित विषयों की तरह चलाया जाता था। वस्तुतः हस्तान्तरित विषयों के प्रशासन में भी गवर्नर ही सर्वेसर्वा था। मन्त्रियों के सम्बन्ध में सामूहिक उत्तरदायित्व लागू नहीं किया गया था, लेकिन गवर्नर से यह आशा की जाती थी कि वे सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना को प्रोत्साहन दे और मंत्रियों से इकट्ठे विचार-विमर्श करे, परन्तु व्यवहार में गवर्नरों ने इस सिद्धान्त को नहीं अपनाया और वे मन्त्रियों से अलग-अलग ही मिलते रहे, ताकि मन्त्रियों को इकट्ठा होकर गवर्नर के विरुद्ध कुछ कहने का अवसर ही नहीं मिल सके। परिणामस्वरुप सारी शक्तियां गवर्नर के हाथ में बनी रही।

गवर्नर तथा उसकी कार्यकारिणी परिषद्-रक्षित विषयों के प्रशासन का उत्तरदायित्व गवर्नर और उसकी कार्यकारिणी परिषद् को सौपा गया था। गवर्नर की कार्यकारिणी परिषद् के सदस्यों में से आधे भारतीय होते थे। ये गैर-सरकारी अधिकारी होते थे। कलकत्ता, मद्रास और बम्बई की कार्यकारणी में चार-चार सदस्य और शेष प्रान्तों में केवल दो सदस्य होते थे। गवर्नर की कार्यकारिणी के सदस्यों की नियुक्ति भारत सचिव की सिफारिश पर ब्रिटिश ताज द्वारा 5 वर्ष के लिए की जाती थी। व्यवहार में जिन व्यक्तियों के नाम की सिफारिस गवर्नर तथा गवर्नर जनरल कर देते थे, भारत सचिव उन्हीं की स्वीकृति दे देता था। गवर्नर की सिफारिश पर उन्हें अवधि से पूर्व भी पदमुक्त किया जा सकता था।

1919 के अधिनियम द्वारा कार्यकारिणी परिषद् के सदस्यों के वेतन निर्धारित कर दिये गये थे और उसमें प्रान्तीय विधान परिषद् कोई कटौती नही कर सकती थी। वे प्रान्तीय विधान परिषद् के पदेन सदस्य होते थे, लेकिन वे उसके प्रति नहीं बल्कि भारत सचिव के प्रनि उत्तरदायी होते थे। वे गवर्नर के अधीन कार्य करते थे। अतः उन पर गवर्नर का प्रभावशाली नियंत्रण था।

गवर्नर परिषद् का प्रधान होता था। वह इसकी बैठकों की अध्यक्षता करता था। निर्णय बहुमत द्वारा होता था। मतों के बराबर होने पर गवर्नर को निर्णायक मत देने का अधिकार था। असाधारण मामलों में गवर्नर अपनी कार्यकारिणी परिषद् के किसी भी निर्णय को उपेक्षा कर सकता था। जब गवर्नर यह समझता था कि उसकी कार्यकारिणी परिषद् द्वारा लिया गया निर्णय गलत है या उसके निर्णय से उसके विशेष उत्तरदायित्वों तथा प्रान्तों की शान्ति को खतरा पहुंच सकता है, तो ऐसी स्थिति में वह अपनी इच्छानुसार निर्णय ले सकता था।

प्रान्तीय विधान मण्डल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(The Provincial Legislature)

1919 के अधिनियम द्वारा प्रान्तीय विधान मण्डल के ढ़ाचे और अधिकार में महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये। इस सम्बन्ध में माण्ट-फोर्ड रिपोर्ट के रचयिताओं ने लिखा था, "हम सुझाव देते हैं कि प्रान्त में एक विधान परिषद् होगी, जिसकी संख्या पहले से अधिक होगी। इसकी रचना और संख्या प्रत्येक प्रांत में आवश्यकतानुसार भिन्न-भिन्न होगी। इसमें चुने हुए सदस्यों का काफी बहुमत होगा। वे सदस्य प्रत्यक्ष चुनाव द्वारा विस्तृत मताधिकार के आधार पर चुने जायेंगे, परन्तु इसके साथ-साथ आवश्यकतानुसार कुछ सम्प्रदायिक व विशेष प्रतिनिधित्व भी रखा जायेगा।" इस सुझाव के अनुसार 1919 के ऐक्ट द्वारा प्रांतीय विधान मण्डल के संगठन में पर्याप्त परिवर्तन किये गये। अधिनियम द्वारा केन्द्र में तो द्वि-सदनात्मक विधान मण्डल की स्थापना ही की गई थी। अतः प्रांतीय विधान मण्डल से हमारा यहां अभिप्राय केवल विधान परिषद् से ही है।

प्रांतयी विधान परिषद् की रचना-इस अधिनियम द्वारा प्रत्येक प्रांतीय विधान परिषद् की सदस्य संख्या में वृद्धि कर दी गई और उनमें निर्वाचित सदस्यों का बहुमत रखा गया। यह व्यवस्था की विधान परिषद् में कम से कम 70 प्रतिशत सदस्य निर्वाचित होंगे। सरकारी सदस्यों की संख्या 20 प्रतिशत से अधिक नहीं होगी। चुने हुए और सरकारी अधिकारियों के अतिरिक्त विधान परिषद् में 10 प्रतिशत गैर-सरकारी सदस्य होंगे, जिन्हें प्रांतीय गवर्नर मनोनीत करेगा। हरिजनों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व देने के लिए उनके सदस्यों के नामजद करने की व्यवस्था की गई। गवर्नर की कार्यकारिणी के सदस्य विधान परिषद् के पदेन सदस्य होते थे। प्रत्येक प्रांत की विधान परिषद की संख्या भिन्न-भिन्न थी, जो निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट होती है-

प्रान्त	निर्वाचित सदस्य	मनोनीत सरकारी अधिकारी तथा पदेन सदस्य	मनोनीत गैर-सरकारी अधिकारी	कुल संख्या
मद्रास	98	7 + 4 = 11	23	132
बम्बई	86	15 + 4 = 19	9	114
बंगाल	114	12 + 4 = 16	10	140
संयुक्त प्रान्त	100	15 + 2 = 17	6	123
पंजाब	71	13 + 2 = 15	8	94
बिहार व उड़ीसा	76	13 + 2 = 15	12	103

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मध्य प्रान्त	55	8 + 2 = 10	8	73
असम	39	5 + 2 = 7	7	53
उत्तर पश्चिम सीमा प्रान्त	39	5 + 2 = 7	7	53

मताधिकार एवं निर्वाचन-1919 के ऐक्ट द्वारा मताधिकार विस्तृत कर दिया गया था, परन्तु फिर भी यह इतना सीमित रहा कि भारत की लगभग 9 प्रतिशत जनसंख्या को ही मत देने का अधिकार प्राप्त हुआ। मताधिकार के लिए योग्यताएं प्रत्येंक प्रान्त में बहुत भिन्न-भिन्न थीं। साधारण तथा ग्रामीण क्षेत्र में 10 रुपयें से लेकर 50 रुपये तक प्रतिवर्ष भूमि कर देने वाले को मताधिकार दिया गया। शहरी क्षेत्र में 2 हजार रुपये व वार्षिक आमदनी पर आयकर देने वाले, कम से कम 36 रुपया वार्षिक किरया देने वाले या प्राप्त करने वाले या नगरपालिका को व्यय से कम तीन रुपया वार्षिक टैक्स देने वाले व्यक्तियों को मत देने का अधिकार दिया गया। महिलाओं को मताधिकार प्रदान करना प्रांतीय सरकारों की इच्छा पर छोड़ दिया गया था।

चुनाव क्षेत्रों को सामान्य चुनाव क्षेत्रों में तथा विशेष क्षेत्रों में बांट दिया गया। सामान्य चुनाव क्षेत्र मुसलमान, गैर-मुसलमान, ईसाई, यूरोपियन, आंग्ल-भारतीय समुदाय और सिक्ख आदि के लिए बनाये गये विशेष चुनाव क्षेत्र विश्वविद्यालयों, वाणिज्य, उद्योग और जमीदारों के लिए बनाये गये। सामान्य चुनाव क्षेत्रों को ग्रामीण और शहरी चुनाव क्षेत्रों में बांट दिया गया वहां मताधिकार के लिए योग्यताएं भी भिन्न-भिन्न रखी गई थी। सामान्य चुनाव क्षेत्र में प्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणाली अपनाई गई थी।

विशेष निर्वाचन क्षेत्रों में मतदाताओं की अर्हताएं अलग-अलग निश्चित की गई थीं। विशेष चुनाव क्षेत्र विश्वविद्यालय, वाणिज्य, उद्योग और जमीदारों के लिए बनाये गये थे। जमीदारों के चुनाव क्षेत्र में मताधिकार के लिए योग्यता प्रत्येक प्रान्त में भिन्न-भिन्न थी। जहां पजाब तथा मध्य प्रांत में गांव के मुखिया तथा नम्बरदार को भी मताधिकार दिया गया। कहीं-कहीं सैनिक सेवा भी मतदाता होने के लिए एक योग्यता रखी गई थी। विश्वविद्यालय निर्वाचन क्षेत्रों में 7 वर्षों के रजिस्टर ग्रेजुएट या 5 वर्ष के पोस्ट ग्रेजुएट तथा विश्वविद्यालय के 'फेल' और सीनेट के सदस्यों को मताधिकार दिया गया था।

सम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व-1919 के एक्ट द्वारा साम्प्रदायिक चुनाव प्रणाली का पहले से अधिक विस्तार कर दिया गया। इसे न केवल मुसलमानों के लिए कायम रखा गया, बल्कि सिक्खों, ईसाईयों, यूरोपियनों और आंग्ल-भारतीय समुदाय को भी इसमे शामिल कर लिया गया। इसके अतिरिक्त बम्बई में मराठों तथा मद्रास में गैर-ब्राह्मणों के लिए भी स्थान रक्षित

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कर दिये गये यह विशेष रुप से उल्लेखनीय है कि माण्ट-फोर्ड रिपोर्ट में साम्प्रदायिक फु को अवांछनीय, राष्ट्र विरोधी,खातरनाक, उत्तरदायी, सरकार के विरुद्ध बतलाया गया फिर भी इसे और दृढ़ कर दिया गया। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्रिटिश सरकार वि परिषदों के जनता का सही प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था नहीं बनना चाहती थीं।

कार्यकाल एवं पदाधिकारी- विधान परिषद् की अवधि तीन वर्ष की थी। गवर्नर उस अवधि से पूर्व भी भंग कर सकता था। विशेष परिस्थिति में वह उसकी अवधि को एक वर्ष लिए बढ़ा भी सकता था। वह उसकी बैठक को बुला सकता था तथा उसके अधिवेशन स्थगित भी कर सकता था। यदि गवर्नर विधान परिषद् को अवधि से पूर्व भंग कर देता था, उसे 6 माह के भीतर नयें चुनाव कराने पड़ते थे। अधिनियम द्वारा यह निश्चित किया गया पहले चार वर्ष के लिए विधान परिषद् का सभापति गवर्नर द्वारा मनोनीत किया जायेगा, पर बाद में विधान परिषद् स्वयं उसका चुनाव करेगी। उप-सभापति शुरु से ही विधान परिषद् द्व चुना जाता था, परन्तु उसकी पुष्टि गवर्नर से करानी पड़ती थी।

विधान परिषद् की शक्तियां-1919 के अधिनियम द्वारा प्रांतीय विधान परिषद् को विधा वित्तीय एवं प्रशासनिक क्षेत्र में अनेक शक्तियां प्रदान की गई थीं, जिनका विवरण निम्न प्रक है-

(1) विधायी शक्तियों-1919 के अधिनियम द्वारा प्रांतीय विधान परिषदों को प्रांत की शा तथा अच्छी सरकर के लिए प्रांतीय सूची में दिये गये विषयों पर कानून बनाने का अधिक दिया गया इसके द्वारा पारित विधेयक को कानून बनाने के लिए गवर्नर की स्वीकृति आवश्य थी। 1919 के अधिनियम से पूर्व प्रत्येक प्रांतीय कानून के लिए गवर्नर जनरल की पूर्व आ लेना आवश्यक था, परन्तु 1919 के अधिनियम द्वारा यह निश्चित किया गया था कि केव निम्नलिखित मामलों में ही कानून बनाने से पूर्व गवर्नर जनरल की अनुमति लेनी पड़ती थी

(i) कोई ऐसा कर लगाना जिसका अधिकार प्रांतीय विधान परिषद् को नहीं हैं।

(ii) सार्वजनिक ऋण।

(iii) सरकार के देशी राजाओं तथा विदेशी राज्यों से सम्बन्ध।

(iv) सेना के अनुशासन या इसके किसी भाग के संगठन को प्रभावित करना।

(v) किसी केन्द्रीय विषयों को प्रभावित करना।

(vi) सपरिषद् गवर्नर जनरल की शक्तियों पर प्रभाव डालनां।

विधान परिषद् को ऐसे कानून बनाने की स्पष्ट मनाही कर दी गई, जिसका प्रभाव ब्रिटि संसद द्वारा बनाये गये अधिनियमों पर पड़ता हो।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गवर्नर को कानूनी क्षेत्र में बहुत शक्तियां दी गई। वह किसी भी विधेयक को पुनर्विचार हेतु विधान परिषद को लौटा सकता था वह किसी बिल को गवर्नर जनरल के विचारार्थ सुरक्षित रख सकता था। गवर्नर किसी भी विधेयक को रद्द कर सकता थां। कुछ विशेष प्रकार के विधेयक गर्वनर की पूर्व स्वीकृति के बिना विधान परिषद् में पेश नहीं किये जा सकते थे, यदि वह यह अनुभव करता कि इससे प्रांत की शांति व सुरक्षा को खतरा उत्पन्न होने की सम्भावना हो। यदि विधान परिषद् रक्षित विषय से सम्बन्धित किसी विधेयक को पास करने से इन्कार कर देती, तो गवर्नर उसे प्रमाणित करने शक्ति द्वारा पास कर सकता था। इस प्रकार, गवर्नर अपनी शक्तियों का दुरुपयोग कर सकता था तथा व्यवहार में विधान परिषद् को शक्तिहीन बना सकता था।

(2) वित्तीय शक्तियाँ- विधान परिषद् को बहुत सी वित्तीय शक्तियाँ भी दी गई थी, परन्तु गवर्नर की विशेष शक्तियों द्वारा उन्हें सीमित भी कर दिया गया था, ताकि यदि विधान परिषद् गवर्नर को इच्छानुसार किसी मांग को स्वीकार न करें, तो उसको गवर्नर अपनी विशेष शक्ति द्वारा पास कर सके। प्रतिवर्ष गवर्नर की अनुमति से प्रान्त का बजट विधान परिषद् में पेश किया जाता था। यह दो भागों में बंटा होता था एक भाग की मदों पर विधान सभा बहस तो कर सकती थी, परन्तु अपना मत नहीं दे सकती थी। पहले भाग की मात्रा लगभग 70 प्रतिशल थी। इस प्रकार,बजट के 70 प्रतिशत खर्चे पर विधान परिषद् का कोई नियंत्रण नहीं था। शेष 30 प्रतिशत बजट पर विधान परिषद् अपना मत दे सकती थी वह किसी खर्चे में कटौती कर सकती थी। विधान परिषद् मंत्रियों के वेतन में कटौती कर सकती थी, कार्यकारिणी परिषदों के सदस्यो के वेतन में नहीं।

यदि रक्षित विषयों से सम्बन्धित धन की कोई मांग परिषद् द्वारा स्वीकृत या कम कर दी जाती, तो गवर्नर यह प्रमाणित करते हुए कि वह व्यय उत्तरदायित्व को निभाने के लिए आवश्यक है, पूरा कर सकता था। संकटकाल में गवर्नर के द्वारा किसी भी प्रकार के व्यय की स्वीकृति दी जा सकती थी।

जिन खर्चों पर विधान परिषद् का कोई नियंत्रण नहीं था, वे निम्नलिखित थे-

(i) प्रान्तीय सरकार द्वारा गवर्नर जनरल की कौंसिल के खर्चे के लिए दिया हुआ धन।

(ii) भारत सचिव या उसी परिषद् या ब्रिटिश सम्राट द्वारा अथवा उनकी मंजूरी से नियुक्त किये हुए व्यक्तियों के वेतन तथा पेंशन।

(iii) महाधिवक्ता तथा प्रान्त के हाईकोर्ट के जजों का वेतन।

(iv) ऋणों पर डूबते हुए धन का भारतीय व्यय तथा सूद।

इन खर्चों पर विधान परिषद् न तो मतदान कर सकती थी और न ही उनमें किसी प्रकार की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कटौती कर सकती थी।

(3) कार्यकारिणी की शक्तियाँ- प्रान्तीय कार्यपालिका के रक्षित विभाग पर परिषद् का नियंत्रण नहीं था। वह विधान परिषद् के प्रति नहीं, बल्कि गवर्नर के प्रति उत्तरदायी थी। विधान परिषद् उनके विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित कर उन्हे पदच्युत नहीं कर सकती थी। यह तो उनसे केवल प्रश्न तथा पूरक प्रश्न पूछ सकती थी या काम रोगो प्रस्ताव पास कर सकती थी।

अधिनियम द्वारा प्रान्तों में मंत्रियों को विधान परिषद् की तरफ उत्तरदायी बनाया गया। विधान परिषद् मंत्रियों के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास कर उन्हें पदच्युत कर सकती। इस प्रकार, मंत्रियों पर विधान परिषद् का पूर्ण नियंत्रण था।

प्रान्तीय विधान परिषदों की त्रुटियाँ- प्रान्तीय विधान परिषदों की रचना तथा शक्ति में निम्नलिखित बड़े भारी दोष थे-

(i) विधान परिषदों में अनेक सम्प्रदायों, वर्गों और हितो को विशेष प्रतिनिधित्व दिया गया था, जिससे विधान परिषदों में छोट-छोटे गुट बन गये थे । वे गुट अपने-अपने हितों की रक्षा के लिए राष्ट्रीय हितों का विरोध करते थे। इस प्रकार विधान परिषद् जनता की प्रतिनिधि संस्था नहीं थी।

(ii) गवर्नरों की विधायी और वित्तीय क्षेत्र में आवश्यकता से अधिक शक्तियाँ प्राप्त थीं। गवर्नर की ये शक्तियाँ लोकतंत्र के विरुद्ध थीं और विधान परिषदें उसकी शक्तियों के सामने शक्तिहीन तथा असमर्थ थीं।

(iii) गवर्नर द्वारा मनोनीत सरकारी अधिकारी और गैर-सरकारी अधिकारी सदैव सरकार का पक्ष ही लेते थे। साम्प्रदायि चुनाव पद्धति के आधार पर निर्वाचित प्रतिनिधि भी सरकार का समर्थन करते थे। मंत्री भी सरकारी सहायता से अपने पीछे बहुमत रख सकते थे।

(iv) विधान परिषदों का गवर्नर की कार्यकारिणी परिषद् के सदस्यों पर कोई नियंत्रण नहीं था। अतः वह कार्यपालिका पर प्रभावशाली नियंत्रण रखने में असमर्थ रहती थीं।

प्रान्तीय विधान परिषदों का महत्व- उपर्युक्त त्रुटियों के बावजूद भी विधान परिषद् कई अर्थों में उपयोगी तथा महत्वपूर्ण थी-

(i) पहली बार मंत्रियों को विधान परिषदों की तरफ जिम्मेवार बनाया गया।

(ii) विधान परिषदों में निर्वाचित सदस्यों का बहुमत कर दिया गया।

(iii) परिषदों को अपना सभापति चुनने के अधिकार भी दे दिया गया।

(iv) मताधिकार को विस्तृत कर इन्हे अधिक प्रतिनिधिक बनाया गया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(v) विधान परिषद् कार्यकारिणी परिषद् से प्रश्न तथा पूरक प्रश्न पूछ कर प्रभावित कर ती थी।

(vi) इन परिषदों ने मंत्रियों को उतरदायी शासन का आवश्यक प्रशिक्षण प्रदान किया।

प्रान्तों में द्वेध शासन का कार्यरूप

1919 के अधिनियम के अनुसार प्रान्तों में दोहरा शासन स्थापित किया गया, जो 1 अप्रैल 21 से 1 अप्रैल 1937 तक चलता रहा। पुन्निया के शब्दों में,"द्वैध शासन प्रणाली एक अनोखा ग था। इसका मुख्य प्रयोजन एवं उद्देश्य भारतीयों को उत्तरदायी शासन की कला में क्षण देना था। निस्सन्देह इसके निर्माता इस प्रणाली के दोषों और कमियों से परिचित थे, तु वे सोचते थे कि तत्कालीन परिस्थितियों में उससे अधिक अच्छा कोई अन्य विकल्प न "

कार्यरूप- 1919 के अधिनियम के अनुसार भारत के 8 प्रान्तों में द्वैध शासन प्रणाली को 1 ल 1921 से लागू किया गया। इन प्रान्तों के नाम इस प्रकार थे- बंगाल, बम्बई, मद्रास, ार, आसाम, मध्य प्रान्त, संयुक्त प्रान्त और पंजाब। 1932 में उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त में इसे लागू कर दिया गया इस प्रकार, प्रान्तों में द्वैध शासन व्यवस्था 1 अप्रैल, 1937 तक ात् 16 वर्षों तक चलती रही। मध्य प्रान्त और बंगाल में कुछ समय के लिए इसे निलम्बित ा गया था। 1920-21 ई. में दोहरे शासन के लिए प्रथम चुनाव हुए। इन चुनावों का तीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने बहिष्कार कर दिया। अतः उदारवादियों ने कौंसिलों तथा मंत्रिमण्डलों वेश किया। 1924 के चुनाव में कांग्रेस की ओर से स्वराज-दल ने भाग लिया। स्वराज दल ध शासन को असफल बनाने और राष्ट्रीय भावनाओं को उत्तेजित करने के लिए ही कौंसिलों वेश किया था। स्वराज दल की मांग पर द्वैध शासन की उपयोगिता पर विचार करने के 1924 ई. में मुडमैन कमेटी की नियुक्ति की गई। इस कमेटी ने दोहरे शासन में कुछ ोधन के सुझाव दिये, परन्तु जिन्ना तथा तेज बहादुर सप्रू जैसे भारतीयों ने इसे मौलिक रूप लत बताया। साइमन कमीशन ने भी इसे दोषपूर्ण बतलाया था। प्रान्तों में द्वेध शासन स्था असफल रहीं। अतः 1935 ई. के अधिनियम द्वारा द्वैध शासन का अन्त कर 1937 ई. ान्तों में पूर्ण उत्तरदायी शासन की स्थापना की गई थी।

द्वेध शासन की असफलता के कारण- भारत में उत्तरदायी शासन की स्थापना की दिशा ध शासन एक अनूठा प्रयोग था, परन्तु यह योजना सैद्धान्तिक और व्यवहारिक दृष्टिकोण ुटिपूर्ण था। अतः यह व्यवस्था असफल रही। लार्ड बर्किन हेड के शब्दों में, "द्वैध शासन सैद्धान्त के प्रति मैं स्वयं सदैव ही बड़ा शंकित था। मुझे तो यह एक प्रकार का पाण्डित्य का या प्रदर्शन करने वाला एवं गतिरोधक विधान का अस्वाद सा प्रतीत होता है।" कर्जन ने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कहा था कि, "मुझे द्वैध शासन से घृणा है।" विलियम मॉरिस के शब्दों में, "द्वैध शा... कष्टदायक, जटिल एवं भ्रमोत्पादक शासन व्यवस्था है। इसका कोई तर्क संगत आधा... और उसकी जड़े आपसी समझौते में समाई हुई हैं।" इस प्रकार द्वैध शासन व्यवस्था ... होने के कारण असफल रही। यद्यपि कूपलैण्ड जैसे लेखक ने द्वैध शासन व्यव... असफलता के लिए स्वराज दल को जिम्मेदार ठहराते हुए कहा कि स्वराज दल की नीति ने निरन्तर गतिरोध उत्पन्न किया, जिससे यह प्रयोग असफल रहा। यह कथन पू... सही नहीं है। वस्तुतः द्वैध शासन व्यवस्था में ऐसे अनेक दोष विद्यमान थे, जिसके अ... कारणों को निम्नलिखित दो भागो में विभक्त किया जा सकता है-

(अ) आन्तरिक त्रुटियाँ एवं (ब) बाहरी परिस्थितियाँ ।

(अ) आन्तरिक त्रुतियाँ

(1) सैद्धान्तिक दृष्टि से दोषपूर्ण- द्वैध शासन प्रणाली सैद्धान्तिक दृष्टि से दोष... इस प्रणाली द्वारा भारतीय प्रान्तों में आंशिक उत्तरदायी सरकार की स्थापना की ... भारतीय मंत्रियों को साधारण अधिकार दिये गये, परन्तु वास्तविक शक्ति अंग्रेजों ने अ... में रखी। इससे यह स्पष्ट हो गया कि अंग्रेज भारतीयों को अभी भी पूर्ण उत्तरदायी श... लिए अयोग्य मानते थे। इसलिए भारतीयों का असंतुष्ट होना स्वाभाविक ही था... अतिरिक्त प्रान्तीय शासन को दो भागों में विभाजित किया गया था, जिसका एक भाग ... मण्डल के प्रति उत्तरदायी था और दूसरा भाग गवर्नर जनरल के प्रति। यह व्यव... सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से त्रुटिपूर्ण थी इससे शासन की एकता और कार्यक्षता नष्ट हो... प्रांतीय गवर्नर ने ठीक ही कहा था, "दोहरा शासन बोझिल, जटिल और अव्यवस्थित ... थी, जिसका कोई न्यायसंगत आधार नही था और जिसका मूल था समझौता।" लार्ड ... मतानुसार," सरकार के संरक्षित भाग को यद्यपि कोई पसन्द नहीं करता था, उसे अ... देते थे जबकि हस्तान्तरित भाग को न केवल नापसन्द ही किया जाता था, अपितु ... समझा जाता था।" रेजीनाल्ड क्राडक के शब्दों में, "द्वैध शासन एक प्रकार की व... व्यवस्था है जो कभी सफल नहीं हो सकती, क्योंकि किसी देश अथवा प्रान्त के श... संचालन पृथक् एवं स्वतंत्र मंत्रिमण्डलों द्वारा स्वतंत्रतापूर्वक नहीं किया जा सकता"

(2) विषयों का अतार्किक और अव्यावहारिक विभाजन- प्रान्तीय विषयों का ह... और रक्षित क्षेत्रों में जिस ढंग से विभाजन किया गया था, वह अतार्किक, अवैज्ञानिक... सैद्धान्तिक दृष्टि से गलत था। इससे सरकार की एकता नष्ट हो गई तथा विभागीय ... भी मंत्रियों का नियंत्रण नाममात्र का रह गया था। मद्रास के भूतपूर्व मंत्री सर के. ... अपने विभाग की अलंगता का वर्णन करते हुए कहा था,"मैं वन के बिना विकास मंत्री

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ाई के बिना कृषि मंत्री था। कृषि मंत्री के रूप में मेरा मद्रास कृषकों के ऋण कानून या भूमि विकास सम्बन्धी ऋण कानून से काई सम्बन्ध नहीं था। अकाल पीड़ितो की सहायता से भी कोई सम्बन्ध नहीं था। सिंचाई, कृषि, ऋणों, भू-सुधार ऋणों और अकाल सहायता विभाग बिना किसी प्रकार के नियंत्रण के कृषि मंत्री की कार्य-क्षमता का सहज ही अनुमान लगाया सकता है। इसके पश्चात् में उद्योग-धन्धे का मंत्री हुआ, परन्तु कारखाने, बिजली, जल, क, खनिज, पदार्थ और श्रम मेरे अधीन नहीं थे। ये सब रक्षित विषय थे।"

विषयों का विभाजन इस प्रकार किया गया कि हस्तान्तरित विषयें के लिए उत्तरदायी यों को किसी भी एक विभाग का पूर्ण नियंत्रण नहीं किया गया था। उदाहरणार्थ, कृषि और ाई का अभिन्न सम्बन्ध है, किन्तु कृषि को हस्तान्तरित विषय में रखा गया और सिंचाई को त विषय में। शिक्षा हस्तान्तरित विषय था, परन्तु भारतीय राजाओं और नवाबों, यूरोपियन, ों-इण्डियन, सैनिक अधिकारियों और सरकारी कर्मचारियों के बच्चे के लिए खोले गये ों और कॉलेज पर शिक्षा मंत्री का कोई नियंत्रण नही था, क्योंकि वे रक्षित विषय में रख गये थे। इससे स्पष्ट हो जाता है कि मंत्रियों को रक्षित विभागों पर आवश्यकता से अधिक र बना दिया गया, जिसके कई दुष्परिणाम निकले। डॉ. इकबाल नारायण के शब्दों 1919 के अधिनियम के अधीन द्वैध शासन द्वारा (अनेक) द्वैध व्यवस्थाओं की स्थापना की थी, जिनके कारण राज्य व्यवस्था रूपी शरीर की अस्थियों द्वारा एक दूसरे का अप्राकृति से अतिक्रमण करने के वे शरीर की चमड़ी के बाहर निकल आयी थीं और उन्होंने सम्पूर्ण शासन) ढाँचे शासन ढाँचे को तोड़-मरोड़ दिया था।

(3) गवर्नर की स्वेच्छाचारी शक्तियाँ- माण्ट-फोर्ड सुधार के रचयिता गवर्नर के हाथ में ी शक्तियाँ देना चाहते थे। वे उसको संवैधानिक अध्यक्ष नहहीं बनाना चाहते थे, जो केवल े मंत्रियों की इच्छानुसार सब कार्य करें। उनका उद्देश्य यह था कि जब तक मंत्रियों की ाह से कोई भयानक परिणाम न निकले, उनकी सलाह मान ली जाए, लेकिन गवर्नर ने इस ्रान्त के विरुद्ध कार्य किया। वे मंत्रियों के कार्यों में अनुचित हस्तक्षेप करते थे। गवर्नरों ने ी शक्तियों को अपने हाथों में केन्द्रित करने के लिए नीन तरीकों को अपनाया औ इनके द्वारा ंत्रियों पर अपना पूर्ण नियंत्रण रखते थे। प्रथम; सचिवों और मंत्रियों में मतभेद होने पर म निर्णय गवर्नर द्वारा होता था। द्वितीय, गवर्नरों ने अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए मंत्रियों से साथ मिलने के बजाय अलग-अलग मिलना शुरु कर दिया। यदि सामूहिक विचार निमय होता, तो मंत्री इकट्ठे होकर अपनी बातें अच्छी तरह से मनवा सकते थे, परन्तु मंत्रियों अलग-अलग मिलने के कारण गवर्नर के लिए उनकी बातों की उपेक्षा करना आसान हो गया। ीय, उन्होने (गवनरों ने) इस सिद्धान्त का अनुसरण किया कि चूंकि मंत्री तो केवल उसके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परामर्शदाता हैं और यह उनकी इच्छा पर निर्भर है कि वे मंत्रियों के किसी परामर्श को न माने। मध्य प्रान्त के एक मंत्री श्री केलकर ने कहा कि, "यद्यपि नीति सम्बन्धी मामले कार्य करने की स्वतंत्रता थी, लेकिन विस्तार की बातों में निरन्तर हस्तक्षेप किया जा संयुक्त प्रान्त के मंत्री श्री चिन्तामणि ने तो यहाँ तक कहा था," सब शक्ति और अधिकार के पास हैं, मंत्री के पास कुछ नहीं हैं।" मंत्रियों की वास्तविक स्थिति का चित्रण क मद्रास प्रेसीडेन्सी के भू.पू. मंत्री सी.आर.रेड्डी ने कहा कि, "वे गौरवमय सचिवों के सम पानागल के राजा तो मद्रास विधान सभा में स्पष्ट कहा करते थे, "वे गवर्नर के अतिरि किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं हैं।" सभी बातों का निष्कर्ष केरलपुत्र के शब्दों में यह "गवर्नर की स्वेच्छाचारिता के रहते हुए सीमित क्षेत्र में भी उत्तरदायित्व का हस्तान्तर सका।"[1] प्रोफेसर इकबाल नारायण के अनुसर, "यह सब अत्यन्त सुन्दर और उचित यदि वह केवल वैधानिक अध्यक्ष ही होता और केवल अपने मंत्रियों की इच्छानुसार करता। परन्तु भारत में इस विचारधारा को कोई स्थान प्रदान नहीं किया गया है, गवर्नर को उत्तरदायी मंत्रियों के अध्यक्ष रुप निरंकुश कार्य करने का अधिकार था।"

(4) वित्तीय कठिनाइयाँ- भारतीय मंत्रियों को धन की बहुत कठिनाइयाँ थीं। निर्माण सम्बन्धी विभागों का संचालन करते थे, परंतु उनके पास फण्ड नहीं थे। प्रान्तों विभाग रक्षित विषय था जो कौंसिल के एक सदस्य के अधिकार में था। वित्त विभाग विभाग की मांगों को पूरी करने के बाद ही हस्तान्तरित विभागों की मांगों पर विचार क अतः हस्तान्तरित विभागों के लिए धन का सदा अभाव रहता था, जिसके कारण मंत्री कार्य ठीक से नहीं कर पाते थे। श्री बी.जे.सप्रू के मतानुसार, "संयुक्त प्रवर समिति ने लिए संयुक्त कोष के पक्ष में निर्णय दिया, किन्तु इसने हस्तान्तरित विभागों के हितों का ध्यान न रखा, क्योंकि उन्हें तो उसी धनराशि से संतोष करना पड़ता था जो कि रक्षित की सम्पूर्ण मांगों को पूरी करने के बाद शेष बचता था और इसने मंत्रियों पर ही यह दायित्व डाला कि वे अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए नये करों के प्रस्ताव इस सम्बन्ध में सर मोहम्मद फखरुद्दीन ने कहा था, "बिना धन के मुझे योजना तैयार वाले एक साधारण कर्मचारी के समान ही समझिए और जब योजना तैयार हो जाती वित्त विभाग को अधिकार होता था कि वह धन के आधार पर उसे समाप्त कर दे। मंत्री राष्ट्र निर्माणकारी विभाग प्रदान किये गये थे, धन के अभाव में अपने कार्य सम्पन्न न थे।"

संक्षेप में, जहाँ तक धन वितरण का प्रश्न है हस्तान्तरित विभागों के प्रति सौते

1. केरल पुत्र : डायार्की इन इण्डिया, पृष्ठ 39.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

व्यवहार किया जाता था। इसके अतिरिक्त वित्त विभाग रक्षित विभागों को अनुदान देने में तो बहुत उदार था, परन्तु हस्तान्तरित विभागों के मार्ग में रोड़े अटकाता था, ताकि यह सिद्ध हो जाय कि भारतीय मंत्री अयोग्य है। वित्त विभाग हस्तान्तरित विभगों की मांगों पर विचार करने से पूर्व रक्षित विभागों की सारी मांगे पूर्ण करने का प्रयत्न करता था। अतः हस्तान्तरित विभागों के लिए धन का सदा अभाव बना रहता था।

उत्तर प्रदेश के मंत्री श्री चिन्तामणि ने मुद्दीमैन समिति को अपनी गवाही में बताया था कि,"वित विभाग की यह कोशिश रहती थी कि इससे पहले कि हस्तान्तरित विभाग अपनी मांगें पेश करें, रक्षित विभागों की आर्थिक आवश्यकताएँ पूरी कर दी जाएँ। वित्त विभाग किसी-न-किसी चीज का बहाना लेकर मंत्रियों की योजनाओं के लिए धन देने से इन्कार कर देता था। मैं बिना किसी अत्युक्ति के यह कहने को तैयार कि यू.पी. में दोनों ही मंत्रियों का यह सामान्य अनुभव था कि जब भी वे वित्त-विभाग के सामने गये, उन्हें बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, बहुधा उन्हें गवर्नर के पास जाना पड़ता था और प्रायः गवर्नर उनकी बातों का समर्थन नही करता था। अन्त में उन्हें अनेक बार त्याग-पत्र की धमकी देकर अपनी बात मनवानी पड़ती थी"।

अन्त में, मेस्टन निर्णय के अनुसार प्रान्तीय सरकारों को प्रतिवर्ष जो कुछ धन केन्द्रीय सरकार को देना पड़ता था, उससे प्रान्तों की आर्थिक स्थिति और भी कमजोर हो गई थी। यद्यपि यह निर्णय 1928 में समाप्त हो गया, परन्तु आर्थिक मन्दी के कारण प्रान्तीय सरकारों की आर्थिक दशा अत्यन्त शेचनीय हो गई थी। प्रान्तीय खजानों के खाली रहते दोहरे शासन का सफल होना नितान्त असम्भव था। ए.बी. कीथ ने ठीक ही कहा था,"द्वैध शासन के अन्तर्गत वित्तीय विरोधाभास ने उत्तरदायी शासन की अवास्तविकता को सिद्ध कर दिया, क्योंकि मंत्रियों का वित्त के किसी पक्ष पर नियंत्रण नहीं था।"[1]

(5) सामूहिक उत्तरदायत्वि का अभाव- द्वैध शासन के अन्तर्गत मंत्रियों के सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त को स्थान नहीं दिया गया था। सभी मंत्री अलग-अलग तथा स्वतंत्र रूप से कार्य करते थे। गवर्नर मंत्रियों को किसी दलीय आधार पर नियुक्त न करता था। अतः मंत्री किसी एक दल के सदस्य नहीं होते थे। यही कारण था कि वे किसी निश्चित कार्यक्रम से बंधे हुए नहीं होते थे। वास्तव में मंत्री अपने-अपने विभागो के अध्यक्ष होते थे। कभी-कभी गवर्नर दो विरोधी दल के लोगों को मंत्री बना देते थे, जिससे वे एक टीम के रूप में कार्य नही कर सकते थे और विधान मण्डल में तथा बाहर परस्पर विराधी विचारों को व्यक्त करते थे। यहाँ तक कि कभी-कभी खुले आम एक दूसरे के विरुद्ध प्रचार भी करते थे। उदाहरण स्वरूप,

1. कीथ, ए.बी. : कॉन्स्टिट्यूशनल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृष्ठ 278.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पंजाब में सर फिरोज खाँ नून ने मई, 1928 में जालन्धर शिक्षा सम्मेलन में अपने सहयोगी के कार्यों की खुले आम आलोचना की थी। इसी प्रकार, नवाब साहिब और सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने कलकत्ता म्युनिसिपल विधेयक के बारे में स्पष्ट रूप से परस्पर विरोधी विचार व्यक्त किये थे। पून्निया के मतानुसार, "परस्पर मंत्रियों में इस प्रकार के विवाद जनता के सम्मुख उनका सम्मान कम करते थे, व्यवस्थापिका में उनकी स्थिति निर्बल कर देते थे और उन्हें पूर्णतया गवर्नर और उनके नामजद गुट की दया पर छोड़ देते थे।"[1]

चूँकि मंत्रीगण एक दल के सदस्य नहीं होते थे, इसलिए किसी नीति सम्बन्धी प्रश्न पर निन्दा प्रस्ताव परवे एक साथ त्याग-पत्र नहीं देते थे। हस्तान्तरित विषयों के प्रशासन सम्बन्धी निर्णय भी मंत्रियों द्वारा सामूहिक रूप से नहीं लिए जाते थे। विधान परिषद् में प्रत्येक मंत्री वैयक्तिक रूप से उत्तरदायी होता था। संक्षेप में, द्वैध शासन व्यवस्था के अन्तर्गत संयुक्त उत्तरदायित्व के सिद्धान्त का अनुपालन ही नहीं किया गया, बल्कि उसका विरोधी दृष्टिकोण तथा व्यवहार ही अपनाया गया।

(6) मंत्रियों का सिविल सेवाओं पर नियंत्रण न होना- द्वैध शासन व्यवस्था की असफलता का एक मुख्य कारण यह था कि मंत्रियों का अपने अधीन अधिकारियों पर कोई नियंत्रण नहीं था। मंत्रियों के अधीन विभागों के स्थायी सचिव भारतीय नागरिक सेवा (I.C.S.) के सदस्य होते थे। ये अधिकारी शासन के विभागों की नीति निश्चित करते थे। उनपर भारत मंत्री का नियंत्रण था। अतः मंत्रियों को उनकी नियुक्ति, पदोन्नति तथा स्थानान्तरण का अधिकार नहीं था। इसलिए उनके आदेशों और अनुदेशों की ओर सचिव ध्यान नहीं देते थे। यदि मंत्रियों और आई.सी.एस. अफसरों के बीच मतभेद उत्पन्न हो जाता, तो अफसर मंत्रियों की उपेक्षा कर उच्च अधिकारियों के सहयोग से अपनी बात मनवा सकते थे। एक ही विचार तथा सेवा का होने के कारण स्वभावतः गवर्नर आई.सी.एस. अफसरों का ही पक्ष लेता था। यह मंत्रियों के लिए बहुत ही दुःखद तथा शोचनीय स्थिति थी। पुन्निया के शब्दों में, "मंत्री के लिए इससे दुखद और अपमानजनक बात और क्या हो सकती थी कि उसका अधीनस्थ उसके निर्णय के विरुद्ध गवर्नर से अपील कर उसे परिवर्तित करवा ले।"[2]

संक्षेप में, भारतीय मंत्रियों का अपने अधीन शासन अधिकारियों पर नियंत्रण न होने से अपनी इच्छानुसार अपने विभाग का शासन करने में असमर्थ थे। ऐसी स्थिति में द्वैध शासन व्यवस्था कभी भी सफल नहीं हो सकती थी।

(7) मन्त्रियों की गवर्नर पर निर्भरता-भारत-मन्त्री गवर्नर पर अनेक बातों के लिए निर्भर

1. पुन्निया, के.वी. : द कॉन्स्टिट्यूशनल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृष्ठ 192.
2. वहीं, पृष्ठ 187-88.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करते थे। गवर्नर ही उनकी नियुक्ति करता था तथा वह उन्हें पदच्युत भी कर सकता था। इतना ही नहीं, गवर्नर उन्हें सरकारी सदस्यों तथा मनोनीत सदस्यों की सहायता दिला सकता था और गवर्नर ही उनके विभाग के लिए पर्याप्त मात्रा में धन भी दिला सकता था। अतः भारतीय मन्त्री गवर्नर को प्रसन्न करने का प्रयत्न करते थे। विधान परिषद् भी भारतीय मन्त्रियों के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित कर उन्हें त्याग-पत्र देने हेतु विवश कर सकती थी। इस प्रकार, भारतीय मन्त्रियों को एक साथ दो स्वामियों की सेवा करनी पड़ती थी। उन्हें अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए गवर्नर की चापलूसी भी करनी पड़ती थी, ताकि गवर्नर उनसे नाराज न हों।

(8) गवर्नरों में आवश्यक गुणों की कमी- दोहरा शासन एक अनोखा प्रयोग था। इसकी सफलता बहुत कुछ गवर्नरों पर निर्भर करती थी, जिनमें कुछ असाधारण गुणों की आवश्यकता थी। इस बात की आवश्यकता थी कि गवर्नर जनता की इच्छाओं और आकांक्षाओं को समझें और उनका मान करें, तभी वे मन्त्रियों की कठिनाईयों को अच्छी तरह समझ सकते थे और उनका हल निकाल सकते थे। गवर्नरों के लिए यह भी आवश्यक था कि वे बार-बार मन्त्रियों के कार्यों में अनुचित हस्तक्षेप न करें। अधिकांश गवर्नरों में इन असाधारण गुणों की कमी थी, इसलिए दोहरा शासन असफल होना ही था।

(9) संयुक्त विचार-विमर्श का अभाव- यद्यपि कार्यकारिणी परिषद् के सदस्य और मन्त्रीगण एक ही कार्यपालिका के अंग थे, लेकिन दोनों के कार्यों में किसी प्रकार का समन्वय नहीं था। माण्ट फोर्ड के रचयिताओं ने ऐसा प्रावधान रखा था कि प्रान्तीय सरकार के दोनों भाग (रक्षित तथा हस्तान्तरित) में संयुक्त विचार-विमर्श हो, ताकि मन्त्रियों द्वारा गवर्नर की कार्यकारिणी को जन इच्छाओं का पता लग सके तथा कार्यकारिणी के सदस्यों के अनुभवों से मन्त्री कुछ सीख सके, लेकिन व्यवहार में मद्रास के गवर्नर के अतिरिक्त अन्य किसी गवर्नर ने इस निर्देश का पालन नहीं किया। बजट के अतिरिक्त शासन सम्बन्धी मामलों पर संयुक्त रूप से विचार करने के लिये कार्यकारिणी के सदस्य तथा मन्त्रीगण कभी सम्मिलित नहीं होते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि उनमें परस्पर अविश्वास बना रहता था और वे सार्वजनिक रूप से एक-दूसरे की निन्दा करते थे। मन्त्रियों से रक्षित विभागों के बारे में कोई परामर्श नहीं लिया जाता था। अतः प्रशासन पर इसके दुष्प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सके।

(10) मन्त्रियों और कार्यकारिणी परिषद् के सदस्यों में सहयोग की कमी- संयुक्त उत्तरदायित्व का अभाव होने के कारण मन्त्रियों में परस्पर सहयोग नहीं था। इसके अतिरिक्त कार्यकारिणी परिषद् के सदस्यों के साथ भी उनका सहयोग नहीं के बराबर था। मन्त्री विधान परिषद् के प्रति उत्तरदायी थे। इसलिए यथासम्भव वे उनको प्रसन्न करने का प्रयत्न करते थे। इसके विपरीत कार्यकारिणी परिषद् के सदस्य विधान परिषद् के बजाय गवर्नर के प्रति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उत्तरदायी था। इसलिए उन्हें इस बात की कोई चिन्ता नहीं थी कि विधान परिषद् उससे प्र
है या नहीं। वे मंत्रियों को भी इस हेतु अपना सहयोग देने की कोई चिन्ता नहीं करते थे। मं
जनता की आकांक्षाओं की पूर्ति करना चाहते थे जबकि कार्यकारिणी परिषद् के सदस्य सरक
के हितों के प्रति चिन्तित रहते थे। इसलिए भी दोनों में सहयोग का अभाव था। दोनों में सहयो
की कमी के कारण सरकार के संचालन में अनेक कठिनाइयां उत्पन्न होती थीं।

(11) प्रान्तीय विधान परिषदों का दोषपूर्ण संगठन- प्रान्तीय विधान परिषद की दोषपूर्ण रच
बहुत हद तक द्वैध शासन की असफलता के लिए उत्तरदायी थी। इसमें लगभग 30 प्रतिश
सदस्य सरकारी अधिकारी अथवा सरकार द्वारा मनोनीत गैर सरकारी अधिकारी थे। ज
सदस्य निर्वाचित थे, वे विभिन्न हितों, सम्प्रदायों और गुटों का प्रतिनिधित्व करते थे। समदान
अधिकार भी सम्पत्ति, आयेकर तथा राजस्व सम्बन्धी योग्यता पर आधारित था। इस प्रका
विधान सभा के अधिकांश सदस्य प्रतिक्रियावादी थे। वे अपने सम्प्रदायों के लिए अधिक
अधिक सुविधाओं को प्राप्त करने के लिए सरकार को हर प्रकार से प्रसन्न रखना चाहते थे। श्री
निवासन के शब्दों में, "ऐसी कोई स्वस्थ दलीय पद्धति नहीं थी, जो ब्रिटिश ढंग से उत्तरदा
शासन व्यवस्था का संचालन कर सकती।"[1]

(ब) बाहरी परिस्थितियां

प्रान्तों में द्वैध शासन की असफलता का मूल कारण तो इसकी अपनी त्रुटियां तथा दोष थे
लेकिन कुछ ऐसी बाहरी परिस्थितियां भी थी, जिन्होंने असफलता में महत्वपूर्ण योगदान दिय
केरलपुत्र ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि,"आरम्भ से ही सुधारों को उचित राजनैतिक वातावर
प्राप्त नहीं हुआ। भारत सरकार द्वारा रौलट ऐक्ट पर जोर देने और अमृतसर दुर्घटना जैसी
अविवेकपूर्ण कार्यवाहियों से भारतीय मस्तिष्क में दुर्भावना और कटुता उत्पन्न हो गई थी और
इस वातावरण में नवीन सुधान योजना ठीक प्रकार से क्रियान्वित हो ही नहीं सकती थी।"[2]

प्रान्तों में दोहरे शासन की असफलता के लिए अग्रलिखित बाहरी परिस्थितियां भी उत्तरदा
थीं-

(1) द्वैध शासन का जन्म अशुभ घड़ी में- जिस समय द्वैध शासन व्यवस्था का उद्घाट
हुआ, उस समय भारत का राजनीतिक वातावरण बहुत खराब था। सारे देश की जनता
अंग्रेजों के विरूद्ध असंतोष व्याप्त था। अनेक ऐसी दुखदायी तथा शर्मनाक घटनाएं घटीं
जिन्होंने भारतीयों में ब्रिटिश विरोधी भावना को बढ़ावा दिया। रौलेट ऐक्ट तथा जलियांवाला
बाग की क्रूरतापूर्ण दुखान्त घटना का भारतीयों के मन पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। महा

1. श्रीनिवासन : डेमोक्रेटिक गवर्नमेन्ट इन इण्डिया, पृष्ठ 49.
2. केरल पुत्र : डायार्की इन इण्डिया, पृष्ठ 41.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गांधी का असहयोग तथा खिलाफत आन्दोलन अपनी चरम सीमा पर था। सरकारी दमन नीति ने लोगों के मन में ब्रिटिश सरकार के इरादों के प्रति आशंका उत्पन्न कर दी।

प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् अनेक राष्ट्रीय राज्यो की स्थापना हो गई थी। ब्रिटेन ने अपने आधराज्यों के साथ समानता का व्यवहार करना शुरू कर दिया था। इस समय एशिया के देशों में राष्ट्रीय आन्दोलन की गति तीव्र हो गई थी। इन परिस्थितियों में भारतीयों को ब्रिटिश सरकार के ये सुधार अपर्याप्त तथा निराशाजनक प्रतीत हुए। इसलिए सुधारों का असफल होना अवश्य सम्भावी ही था।

(2) आर्थिक दुर्दशा और मैस्टन पंचाट-तत्कालीन आर्थिक दुर्दशा और मैस्टन पंचाट ने भी इन सुधारों की असफल में महत्वपूर्ण योग दिया। 1929 में वर्षा की कमी के कारण देश में आर्थिक कठिनाइयां बढ़ गई। इस समय मैस्टन पंचाट घोषित किया गया, जिसके अनुसार इस खराब स्थिति में भी प्रान्तों के द्वारा केन्द्र को अनुदान दिया जाना था। इससे प्रान्तों की आर्थिक स्थिति और भी अधिक शोचनीय हो गई। धन के अभाव में द्वैध शासन व्यवस्था का सफलतापूर्वक कार्य करना असम्भव था।

(3) कांग्रेस कीं असहयोगपूर्ण नीति-अप्पादोराय के अनुसार कांग्रेस और मुस्लिक लीग दोने ने ही द्वैध शासन व्यवस्था को अपना समर्थन नहीं दिया, जिसके कारण यह व्यवस्था असफल रही। महात्मा गांधी तथा अन्य राष्ट्रीय नेताओं का ब्रिटिश सरकार पर विश्वास न था। अतः उन्होंने 1920 में असहयोग आन्दोलन, 1930 और 1932 ई. में सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाया। सुधार अधिनियम को सफल बनाने की ओर उन्होने कभी ध्यान ही नही दिया। इसके विपरीत कांग्रेस के तत्वाधान में स्वराज्यवादियों ने द्वैध शासन को असफल बनाने के लिए विधान मण्डलों में प्रवेश किया। मध्य प्रांत और बंगाल में वे अपने मिशन में काफी सफल हुए। अन्य प्रान्तों में भी उन्होंने संवैधानिक गतिरोध उत्पन्न किया। 1921 और 1937 तक भारतीयों का ध्यान मॉण्ट-फोर्ड सुधारों को सफल बनाने की ओर गया ही नहीं, क्योकि उनका लक्ष्य पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करना हो गया था।

(4) नौकरशाही दृष्टिकोण- नौकरशाही का दृष्टिकोण भी द्वैध शासन की असफलता का कारण बना। सरकारी अधिकारियों और कर्मचारियों ने निष्ठापूर्वक इस योजना को सफल बनाने का प्रयत्न नहीं किया। प्रो. चिन्तामणि लिखते हैं कि,"उचित परिस्थितियों में इसके (सुधार योजना के) अच्छे परिणाम प्राप्त किये जा सकते थे, लेकिन उच्च अनुदारवादी नौकरशाही और अत्यधिक प्रगतिवादी या अर्धक्रान्तिकारी कांग्रेस की सामूहिक अबुद्धिमत्ता के कारण यह असफल रहा।"[1]

1. चिन्तामणि एवं मसानी : इण्डियाज कॉन्स्टिट्यूशन ऐट वर्क, पृष्ठ 7.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(5) सुधारों के प्रति ब्रिटिश सरकार की उदासीनता-जब तक मॉण्टेग्यू ब्रिटिश सरकार में भारत मंत्री रहा, सुधारों की तरफ ब्रिटिश शासन का दृष्टिकोण सामान्यतः ठीक था। माण्टेग्यू के भारत सचिव के पद से जाते ही इन सुधारों की तरफ ब्रिटिश सरकार का दृष्टिकोण बदल गया। इंग्लैण्ड में अनुदार दल की सरकार बनने से भारत मंत्री के पद पर अनुदार दल के एक सदस्य की नियुक्ति हो गई थी। "लंदन से निर्देश जारी किये गये कि अब सुधारों पर इस प्रकार अमल होना चाहिये कि उनसे अधिक से अधिक नहीं, बल्कि कम से कम स्वशासन भारत को मिले।" अतः भारत सरकार ने विधान मण्डलों की इच्छाओं को अवहेलना शुरू कर दी। परिणामस्वरुप संर तेज बहादुर सप्रू सी.वाई. चिन्तामणि तथा पण्डित जगतनारायण ने मन्त्री पद से त्याग पत्र दे दिये। डॉ. जकारिया ने ठीक ही लिखा है कि, "सरकार के इस निर्णय ने कि सुधारो पर इस प्रकार अमल किया जाये, जिससे लोगों को कम से कम स्वशासन के अधिकार मिलें और दूसरी तरफ स्वराजय दल की इस नीति से सरकार के संचालन में अधिक से अधिक रुकावटें लायी जाएं, 1919 ई. के सुधारों के भाग्य का निर्णय कर दिया।"[1]

निष्कर्ष- उपुर्यक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि द्वैध शासन की असफलता का कारण न केवल उसकी आन्तरिक त्रुटियां वरन् कुछ बाहरी परिस्थितियां भी थीं। इन सबके लिए ब्रिटिश सरकार मुख्य रुप से उत्तरदायी थी। इस व्यवस्था पर टिप्पणी करते हुए सर एच. बटलर ने लिखा है कि, "भारत में यह एक प्रकार की गाली बन गई थी। मैंने एक व्यक्ति को चिल्लाते हुए सुना,"तुम द्वैध शासन हो।' एक भारतीय लड़के ने दूसरे से कहा, ' मैं तुम्हें द्वैध शासन से मारुंगा।' जब उससे पूछा गया कि द्वेध शासन क्या है? तो उसने उत्तर दिया कि यह 'रॉकेट का नया डंडा है। मेरा बर्मा के एक गांव में एक द्वैधा शासनात्मक बैंड के द्वारा स्वागत हुआ जो होमरुल बैंड के विरुद्ध गांव वालों ने पूर्ण उत्साह से रोक रखा था, लेकिन किसी को ज्ञान नहीं था कि द्वैध शासन का अर्थ क्या है।' मूप लैण्ड ने भी स्वीकार किया है कि, "द्वैध शासन असफल रहा, क्योंकि वह अपने रचयिताओं के मूल उद्देश्य को पूरा न कर सका। इसने भारतीयों को उत्तरदायी होने का सही प्रशिक्षण नहीं दिया।"[2] पायली के अनुसार, "1919 के अधिनियम में निहित द्वैध शासन की व्यवस्था का सिद्धान्त दोषपूर्ण और कार्य-संचालन में अव्यवहारिक था।" एक अन्य लेखक ने लिखा है कि,"द्वैध शासन की योजना मूल रुप से बुरी नहीं थी और उपयुक्त परिस्थितियों में इसके लाभदायक परिणाम प्राप्त किये जा सकते थे किन्तु उच्च टोरी नौकरशाही की अबुद्धिमत्ता और कांग्रेस की अति उग्रवादिता के कारण ये असफल रहे।"

---

1. जकारिया (डॉ) : रिनेसेण्ट इण्डिया, पृष्ठ 217.
2. कूपलैण्ड : द कॉन्स्टिट्यूशनल प्रोबलम् इन इण्डिया, पार्ट I पृष्ठ 73.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

द्वैध शासन की सफलताएँ

द्वैध शासन व्यवस्था दोषपूर्ण थी और यह असफल रहीं, लेकिन इसे सर्वथा लाभहीन नहीं कहा जा सकता। भारत के संवैधानिक विकास में इस योजना का पर्याप्त महत्व है। इस व्यवस्था का लाभ यह हुआ कि भारतीय मन्त्रियों को स्वशासन का प्रशिक्षण मिल गया। उन्हें पता चल गया कि स्वशासन के मार्ग में कौन-सी कठिनाइयां आ सकती है और उनका समाधान किस प्रकार किया जा सकता है। भारतीय मन्त्रियों तथा जनता को स्वशासन के प्रति ब्रिटिश सरकार के रवैये के बारे में भी पता चल गया। हस्तान्तरित विषयों में मन्त्रियों के जो नियन्त्रण नौकरशाही पर स्थापित किये गये थे, उससे नौकरशाही को यह अनुभव हुआ कि बदली हुई परिस्थितियों में जनता की मांगों और हितों की तरफ थोड़ा बहुत ध्यान अवश्य देना पड़ेगा।

इस अधिनियम द्वारा प्रथम बार बड़ी संख्या में स्त्री-पुरुष को मताधिकार दियां गया, जिसके कारण भारतीयों में राजनीतिक जागरुकता उत्पन्न हुई। विधान परिषदों में प्रथम बार संसदीय वातावरण का निर्माण हुआ। जन प्रतिनिधियों को सरकार की समस्याओं को समझने और प्रशासकीय अनुभव प्राप्त करने का अवसर मिला। इस प्रकार स्थानीय स्वशासन का सुधार तथा विकास हुआ। यह प्रथम अवसर था जबकि भारत में नौकरशाही ने जनता द्वारा निर्वाचित मन्त्रियों के आदेश का पालन किया।

द्वैध शासन प्रणाली के परिणामस्वरुप धीरे-धीरे आंशिक उत्तरदायी शासन के साथ-साथ सार्वजनिक सेवाओं का भारतीयकरण होने लगा। इसका प्रमुख कारण यह था कि अनेक अंग्रेज अधिकारी भारतीय मन्त्रियों के अधीन कार्य करने के लिए तैयार नहीं थे। अतः वे भारत छोड़कर चले गये। ऐसी स्थिति में उनके स्थान पर भारतीयों की नियुक्ति की गई। परिणामस्वरुप सरकारी सेवाओं में भारतीयों की भर्ती बढ़ गई और वे सरकारी सेवक जनता के प्रति अपने उत्तरदायित्व महसूस करने लगे।

प्रान्तों में मन्त्रियों ने शिक्षा और स्थानीय स्वशासन के सम्बन्ध में काफी प्रशंसनीय कार्य किये। कई प्रान्तों में स्थानीय संस्थाओं में सुधार हेतु कुछ आवश्यक कानून भी बनाये गये। मन्त्रियों ने सामाजिक सुधारों की तरफ ध्यान दिया। मद्रास में हिन्दू धार्मिकदान अधिनियम एवं बंगाल में बाल अधिनियम पारित किये गये। उत्तर प्रदेश एवं मद्रास में द्वैध शासन प्रथम दो वर्ष सुचारु रुप से चला।

मन्त्रीगण विधान परिषद् के प्रति अपने उत्तरदायित्व को समझते थे। यदि विधान परिषद् उनके विरुद्ध अविश्वाय का प्रस्ताव पारित कर देती थी, तो वे अपना त्याग-पत्र देने के लिए भी तैयार हो जाते थे, किन्तु वास्तविका यह है कि जब तक माण्टेग्यू भारत सचिव रहे, तब तक द्वैध शासन सफलतापूर्वक चलता रहा। वस्तुतः यह अधिनियम स्वेच्छाचारिता और उत्तरदायित्व

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के बीच एक पुल था।

वस्तुतः द्वैध शासन के उद्देश्य सीमित एवं निश्चित थे, जिससे अधिक की आशा करना इस व्यवस्था के साथ अन्याय था। माण्टेग्यू ने लोक सभा में कहा था, "मैं सदन को याद दिलाना चाहूंगा कि जानबूझ कर यह विधेयक भारत को एक स्थायी संविधान नहीं देता। यह संक्रमणकालीन है। यह संसद के शासन और भारतीय जनता के प्रतिनिधियों के शासन को मिलाने वाला सेतु (Bridge) है।" डॉ. अप्पादोराय के शब्दों में, "द्वैध शासन प्रणाली को ऊंची आशाओं के साथ लागू किया गया था और सैद्धान्तिक विश्लेषण के बाद यह कहना पड़ेगा कि यदि उसे आदर्श दशाओं में कार्यान्वित किया जाता, तो गुणरहित न थी। यह स्वेच्छाचारिता और उत्तरदायित्व के बीच पुल है।" के. वी. पुन्निया के अनुसार, "द्वैध शासन प्रणाली एक अनोखा प्रयोग था। इसका मुख्य प्रयोजन एवं उद्देश्य भारतीयों को उत्तरदायी शासन की कला में प्रशिक्षण देना था। निस्सन्देह इसके निर्माता इस प्रणाली के दोषों और कमियों से परिचित थे, परन्तु वे सोचते थे कि तत्कालीन परिस्थितियों में उससे अधिक अच्छा कोई अन्य विकल्प न था।" स्पीयर लिखते हैं कि तत्कालीन परिस्थितियों में उससे अधिक अच्छा कोई अन्य विकल्प न था।" स्पीयर लिखते हैं कि, "अपने समस्त दोषों के बावजूद यह सुधार अन्तिम लक्ष्यपूर्ण स्वराज्य की ओर जाने वाले राजमार्ग पर पहला पड़ाव थे।"[1]

इस अधिनियम के बाद भारतीयों द्वारा उत्तरदायी शासन चलाने की योग्यता के बारे में ब्रिटिश सरकार को कोई सन्देह नहीं रहा। इसलिए ब्रिटिश सरकार ने 1935 का अधिनियम पारित करके प्रान्तों को पूर्ण स्वायत्तता प्रदान कर दी थी।

□ □ □

1. स्पीयर : इण्डिया, पृष्ठ 355-56.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

8 संवैधानिक विकास
(1920ई0 से 1935ई0 तक)

1919 ई. के बाद कुछ ऐसी घटनाएं घटी कि गाँधी जी ने सरकार के साथ असहयोग करने का निश्चय किया और राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व अपने हाथ में ले लिया। 1919 ई. तक यह आन्दोलन शिक्षित वर्ग तक ही सीमित था परन्तु गाँधी जी ने इसे जन आन्दोलन का रुप दे दिया। इस समय रोलेट ऐक्ट, पंजाबियों पर अत्याचार, जालियां वाला हत्याकाण्ड आदि घटनाएं घटित हुई, जिनसे क्षुब्ध होकर गाँधीजी ने अंग्रेज सरकार के विरुद्ध 20 अगस्त 1920 ई. को असहयोग आन्दोलन आरम्भ कर दिया।

गाँधीजी का यह आन्दोलन बड़ी तेजी से फैला। सैकड़ों राज्य कर्मचारियों और मजिस्ट्रेटों ने नौकरियों से त्याग-पत्र दे दिये। वकीलों ने अदालतों का बहिष्कार किया। छात्रों ने स्कूलों और कॉलेजों को छोड़ दिया। स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग का प्रचार किया गया। स्थान-स्थान पर विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार किया जाने लगा। आन्दोलन सफलता के साथ चल रहा था। सरकार ने इस आन्दोलन को शक्ति से दबाने के लिए प्रयास किया। लगभग 50 हजार से भी अधिक व्यक्तियों ने अपनी गिरफ्तारी दी। सरकार ज्यो-ज्यों आन्दोलन को दबाने के लिए कदम उठाती रही, त्यों-त्यों यह आन्दोलन उग्र रुप धारण करता गया। नवम्बर, 1921ई. में जब ब्रिटिश युवराज भारत आये, तब उनके विरोध में प्रदर्शन हुए।

जब आन्दोलन तेजी पर था और सफलता के साथ चल रहा था कि 5 फरवरी 1922 ई. को उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले में चौरी-चौरा नामक स्थान पद उत्तेजित आन्दोलनकारियों ने एक पुलिस चौकी को आग लगा दी, जिसमें एक थानेदार और 21 सिपाही जीवित जलकर मर गये। इस हिंसात्मक काण्ड से गाँधीजी बहुत नाराज हुए, क्योंकि वे अहिंसात्मक तरीके से आन्दोलन चलाना चाहते थे। परिणाम स्वरुप 11 फरवरी 1922 ई. को बारदौली में उन्होंने असहयोग आन्दोलन की समाप्ति की घोषणा कर दी, परन्तु सरकार ने चौरी-चौरा कांड के लिए एंव अन्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हिंसात्मक कार्यवाहियो के लिए गाँधीजी को उत्तरदायी मान उन पर मुकदमा चलाया और 6 वर्ष का कठोर कारावास का दण्ड दिया गया।

असहयोग आन्दोलन गाँधीजी के नेतृत्व में दो वर्ष तक चला। इस आन्दोलन को किसी भी लक्ष्य को प्राप्त करने में सफलता नहीं मिली। यह पहला जन-आन्दोलन था राष्ट्रीय स्तर पर चलाया गया। पहली बार सारे राष्ट्र में नई चेतना एंव जाग्रति उत्पन्न हुई। आन्दोलन में मजदूर किसान तथा जनसाधारण ने भी सक्रिय रुप से भाग लिया। कूपलैण्ड के शब्दों में, "गाँधीजी ने भारत के इतिहास का रुप बदल दिया। उन्होंने वह काम कर दिखाया जो तिलक भी न कर सके थे। उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन को क्रान्तिकारी बनाया, स्वतन्त्रता के लक्ष्य की ओर बढ़ना सिखाया, सरकार के ऊपर संवैधानिक दबाव डाला, ववाद-विवाद तथा समझौता के द्वारा नहीं, अपितु शक्ति के द्वारा, हाँ शक्ति, भले ही वह शक्ति अहिंसात्मक उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन को क्रांतिकारी ही नहीं बनाया, अपितु उसे लोकप्रिय भी बना अभी तक जो आन्दोलन नगर के बुद्धिजीवी वर्ग तक सीमित था, अब वह देहातों की जनता तक पहुंचा गया और जागृति पैदा करने लगा।"[1]

स्वराज्य दल (1923)- असहयोग आन्दोलन की शिथिलता के दौरान कांग्रेस के स्वराज्य दल का उदय हुआ। इस दल की स्थापना 1923 ई. में देश-बन्धु चितरंजन दास व मोती नेहरु ने की थी। 1923 के चुनावों में इस दल ने भाग लिया। इसके नेता मोतीलाल नेहरु विधान मण्डलों में बाधानीति अथवा दबाव की नीति अपनाई। फरवरी 1924 ई. में पण्डित मोती लाल नेहरु ने एक संशोधन विधेयक प्रस्तु किया, जिसमें कहा गया था कि "यह परिषद् जनरल को भारत के लिए उत्तरदायी सरकार स्थापित करने की दृष्टि 1919 के अधिनियम परिवर्तन करने की सलाह देती है ओर आग्रह करती है कि निकट भविष्य में भारत के लिए संविधान बनाने के लिए जिसमें थोड़ी संख्या वाली जातियों और हितों का उचित ध्यान जायेगा, भारत के प्रतिनिधियों का एक गोलमेंज सम्मेलन बुलाया। इस केन्द्रीय विधान मण्डल को भंग करके नये केन्द्रीय विधान मण्डल के सामने इस संविधान को रखा जाए और इसको अधिनियम का रुप देने के लिए ब्रिटिश संसद के सामने प्रस्तुत किया जाए।" सरकार को यह स्पष्ट हो गया कि 1919 के ऐक्ट से जनता सन्तुष्ट नहीं है। इसलिए समय से पूर्व साइमन कमीशन की नियुक्ति कर दी। स्वराज्य दल की अड़ंगा नीति का करते हुए बेल्स फोर्ड ने लिखा है, "मेरे विचार से अड़ंगा लगाने की नीति उचित ही थी, उसने ब्रिटिश अनुदार दल को इस बात का कायल कर दिया कि द्वैध शासन प्रणाली अव्यवहारिक थी।" संक्षेप में स्वराजय दल ने 1922 से 1926 ई. तक राष्ट्रीय आन्दोलन

1. कूपलैण्ड आर : इण्डिया रिस्टेटमेंन्ट, पृष्ठ 119.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ज्योति को जलाये रखा और जनता में उत्साह तथा नवजीवन का संचार किया।

साइमन कमीशन

1927 ई. में हिन्दू-मुस्लिम दंगे हो रहे थे। ऐसी स्थिति में राष्ट्रीय आन्दोलन अपने निम्नतम स्तर पर था। इस समय दुबारा राष्ट्रीय आन्दोलन प्रारम्भ करने की दिशा में सोचा भी नहीं जा सकता था। परन्तु इसी समय ब्रिटिश सरकार ने साइमन कमीशन की नियुक्ति की घोषणा की, जिसने राष्ट्रीय आन्दोलन को नवजीवन प्रदान किया।

समय से पूर्व कमीशन की नियुक्ति के कारण-1919 के अधिनियम की धारा 84 के अन्तर्गत यह प्रावधान रखा गया था कि अधिनियम के लागू होने के दस वर्ष बाद भारत में उत्तरदायी शासन की प्रगति की जांच हेतु एक आयोग की नियुक्ति की जायेगी, चूँकि ये सुधार 1921 में लागू किये गये थे, इसलिए आयोग की नियुक्ति 1931 ई. में अपेक्षित थी, परन्तु ब्रिटिश सरकार ने 8 नवम्बर 1927 ई. को ही एक कमीशन की नियुक्ति की घोषणा कर दी। समय से पूर्व आयोग की नियुक्ति के प्रमुख कारण अग्रलिखित थे-

(i) 1922 से 1927 ई. के बीच साम्प्रदायिक दंगो के कारण भारत का राजनीतिक वातावरण बहुत दूषित था। ऐसे समय में ब्रिटिश सरकार ने कमीशन को भारत भेजने का निर्णय लिया, ताकि दूषित वातावरण को लाभ उठाया जा सके। उसका यह विचार था कि कमीशन की रिपोर्ट में भारत के साम्प्रदायिक दंगो का वर्णन होने से सरकार के लिए भारतीयों की मांगो की अवलेलना करना सुगम हो जायेगा।

(ii) 1929 ई. मं इंग्लैण्ड में आम चुनाव होने वाले थे, जिनमें सत्तारुढ़ अनुदार दल को यह भय था कि कहीं मजदूर दल विजयी न हो जाए। चूंकि मजदूर दल भारतीय समस्या के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण रखता था। अतः अनुदार दल भारत के भविष्य को मजदूर दल के हाथों में नहीं छोड़ना चाहता था क्योंकि उसे (अनुदार बल को) यह भय था कि कहीं मजदूर दल भारत को पूर्ण स्वराज्य न दे दे। अतः ब्रिटिश सरकार ने समय से पूर्व ही आयोग की नियुक्ति करना उचित समझा।

(iii) स्वराज्य दल ने सुधार आयोग की जोरदार मांग की। ब्रिटिश सरकार ने स्वराज्य दल को आकर्षणविहीन बनाने के लिए यह मांग स्वीकार ली। लार्ड बर्किन हेड ने इसका स्पष्ट उल्लेख वायसराय को लिखे आने पत्र में किया था, "जब आप ऐसा अवसर देखें, तब इसका (आयोग की नियुक्ति) सौदेबाजी के रुप में तथा स्वराजय दल को और अधिक विघटित किया जा सकताा है तो मुझे सूचित करें।

(iv) प्रो. कीथ के अनुसार भारत में राजनीतिक अस्थिरता के वातावरण और सुभाष चन्द्र बोस के आह्वान पर कांग्रेस द्वारा चलाये गये नवयुवक आन्दोलन के कारण ब्रिटिश सरकार ने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समय से पूर्व इस आयोग की नियुक्ति कर दी।[1]

साइमन कमीशन की नियुक्ति- भारत के वायसराय लार्ड इरविन ने 8 नवम्बर 1 को ब्रिटेन के 'हाऊस ऑफ कॉमन्स' के उदार दल के सदस्य सर जॉन साइमन की अ में एक कमीशन नियुक्त किया। कमीशन में कुल सात सदस्य थे और वे सभी अंग्रेज थे। अतिरिक्त वे ब्रिटेन की संसद के सदस्य भी थे। यह कमीशन अपने अध्यक्ष के नाम पर कमीशन' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। कमीशन के समस्त सदस्य अंग्रेज थे। अतः भारती अप्रसन्न होना स्वाभाविक था। एक तो इसलिए कि यह कमीशन भारतवर्ष के प्रचलित सं की जांच करने के लिए नियुक्त किया गया था, लेकिन इसमें एक भी भारतीय सम्मिलित नहीं था। दूसरे, ब्रिटिश सरकार का मत था कि कमीशन की रिपोर्ट संसद के प्रस्तुत की जायेगी, इसलिए इसमें भारतीयों को सम्मिलित करना सम्भव नहीं है। भारतवर्ष में अनेक राजनीतिक दल है, इसलिए यदि एक दल के प्रतिनिधियों को कमी लिया गया, तो दूसरे दल उसका विरोध करेंगे। यदि सभी दलों के सदस्य लिये कमीशन की सदस्य संख्या बहुत बढ़ जायगी। ब्रिटिश सरकार के यह तर्क ठोस वास्तविकता यह है कि वह भारत की संवैधानिक प्रगति का नियन्त्रण अपने हाथों में चाहती थी और भारतीयों को किसी प्रकार की सुविधा या अधिकार देने के पक्ष में नहीं

साइमन कमीशन का उद्देश्य- कमीशन को इस बात की जांच करनी थी कि ब्रिटि के प्रान्तों में सरकार किस ढंग से चल रही है, प्रतिनिधि संस्थाएं अपना उत्तरदायित्व सीमा तक निभा रही हैं। राजनैतिक चेतना का कहां तक विकास हुआ है तथा उत्त सरकार के सिद्धान्त को किस रुप में अपनाया जाय और इसमें क्या परिवर्तन किये जा

साइमन कमीशन का विरोध एवं बहिष्कार- साइमन कमीशन में किसी भारती सम्मिलित नहीं किया गया था, जिसके परिणाम-स्वरुप भारतीयों में असंतोष की लहर हो गई। भारतीयों ने इसे अपमानजनक समझा अतः अकमत से सभी ने कमीशन के ब करने का निश्चय किया। कांग्रेस, मुस्लिम लीग, हिन्दू महासभा और लिबरल फेडरेशन सभी दलों ने एक स्वर से इसका बहिष्कार कर दिया। 11 दिसम्बर 1927 को इलाहा आयोजित सर्वदलीय सम्मेलन में एक स्वर से कहा गया कि कमीशन में एक भी भा सदस्य को सम्मिलित न करना भारतीयों के साथ अन्याय है और उनका जानबूझ कर अ किया गया है। कांग्रेस ने मद्रास अधिवेशन में दिसम्बर 1927 ई. में साइमन कमी विरोध में एक प्रस्ताव पास किया था, जिसमें कहा गया कि, "चूँकि ब्रिटिश सरकार ने भा आत्म निर्णय के अधिकार की पूर्ण उपेक्षा करके एक शाही कमीशन नियुक्त किया है, अ

1. कीथ. ए. बी. : ए कॉन्स्टिट्यूशनल हिस्ट्री आफ इण्डिया, पृष्ठ 288.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कांग्रेस निश्चय करती है कि भारत के लिए आत्म सम्मानपूर्ण एक मात्र मार्ग यही है कि वह कमीशन का हर हालत में और हर प्रकार से बहिष्कार करें।" कांग्रेस ने विभिन्न वर्गों के लोगों से कमीशन का बहिष्कार करने की अपील की।

कांग्रेस के अतिरिक्त अन्य दलों ने भी इस कमीशन का तीव्र विरोध किया। कमीशन की नियुक्ति पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए श्रीमती एनीबीसेन्ट ने कहा कि, "यह जले पर नमक छिड़कना नहीं है तो और क्या है?" उदारदलीय नेता श्री दिनेश वाचा द्वारा साइमन कमीशन के विरुद्ध तैयार किये गये घोषणा पत्र पर कई राजनीतिक दलों के प्रतिनिधियों ने हस्ताक्षर कर दिये। केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा में लाला लाजपतराय ने एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया, जिसे स्वीकार कर लिया गया। इस प्रस्ताव में कहा गया था कि, "कमीशन की योजना सर्वथा अमान्य है और किसी सदस्य को उससे किसी भी स्तर अथवा किसी भी रुप में कोई सरोकार नहीं है।[1]

साइमन कमीशन के बहिष्कार के प्रश्न पर मुस्लिम लीग में मतभेद उत्पन्न हो गया, जिसके कारण वह दो भागों में विभक्त हो गई। एक वर्ग कमीशन का स्वागत करना चाहता था, जिसका नेतृत्व सर मुहम्मद शफी कर रहे थे। दूसरे वर्ग कमीशन के विरोध के पक्ष में था, जिसका नेतृत्व मुहम्मद अली जिन्ना कर रहे थे। वस्तुतः कुछ ऐसे गुट जिनका भारतीय जनता पर विशेष प्रभाव नहीं था, साइमन कमीशन के विरोध के पक्ष में नहीं थे। इनमें मद्रास की जस्टिस पार्टी, अखिल भारतीय अछूत फेडरेशन, केन्द्रीय सिक्ख और मुस्लिम लीग के शफी गुट आदि के नाम विशेष रुप से उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त भारत के सभी राजनीतिक दलों और वर्गों ने कमीशन की कड़ी निन्दा की और इसका सर्वत्र बहिष्कार करने का निश्चय किया गया। मिस विलकिन्सन के शब्दों में, "जलियांवाला बाग की दुखान्त घटना के बाद सारे देश में जितनी इस कमीशन की निन्द की गई, उतनी अंग्रेजों के और किसी काल की नहीं हुई।[2] पंडित मोतीलाल नेहरु ने भी साइमन को केवल एक दिखावा मात्र कहा।

भारतीयों द्वारा साइमन कमीशन के बहिष्कार की स्पष्ट घोषणा किये जाने के बावजूद 7 फरवरी, 1928 ई. को कमीशन के सदस्य बम्बई पहुंचे, तो इसके विरुद्ध अनेक प्रदर्शन किये गये। जहां भी साइमन कमीशन गया, वहां काले झण्डों, हड़तालों और प्रदर्शनों से इसका स्वागत किया गया। सर्वत्र 'साइमन कमीशन वापस जाओं' के नारे लगाये गये। पुलिस ने इन विरोधी प्रदर्शनों को दबाने के लिए सख्ती से काम लिया और कई स्थानों पर निहत्थे भारतीयों पर गोलियां भी चलाई, परन्तु इससे जनता का उत्साह मन्द नहीं हुआ। जब कमीशन लाहौर

1. नेहरु, मोतीलाल वॉइस ऑफ फ्रीडम, पृष्ठ 335.
2. रामगोपाल : भारतीय राजनीति पृष्ठ 329.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पहुंचा, तो इसके विरुद्ध पंजाब केसरी लाला लाजपत राय के नेतृत्व में एक बड़ा भारी निकाला गया। पुलिस अधिकारी साण्डर्स ने लालजी की छाती पर लाठी से प्रहार किये, लालजी को सख्त चोंटें आई और कुछ दिनों बाद इसी कारण से उनका देहान्त हो घायल अवस्था में लाला लालजपतराय ने सिंह गर्जना करते हुए कहा था कि, "मेरे ऊपर गया लाठी का प्रत्येक प्रहार ब्रिटिश साम्राज्य के कफन की कील सिद्ध होगा।" जब क लखनऊ पहुंचा, तो उसके विरुद्ध में पण्डित गोविन्द वल्लभ पंत और पण्डित जवाहर नेहरु के नेतृत्व में प्रदर्शन हुए पुलिस ने उन पर बुरी तरह से लाठियां बरसाई। ब्रिटिश के इन अमानुषिक अत्याचारों से देश में क्रोध की ज्वाला फिर से भड़क उठी और आतं तथा हिंसात्मक घटनाएं घटित होने लगीं। सरदार भगत सिंह और चन्द्रशेखर आजाद क्रान्तिकारियों ने लाहौर में साण्डर्स की हत्या कर लाला लाजपतराय की मृत्यु का बद लिया। इसी समय सरदार भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त ने केन्द्रीय असैम्बली में बम कर सरकार को अत्याचार रोकने की चेतावनी दी। इस अव्यवस्थित वातावरण में कमी अपनी जांच-पड़ताल की।

साइमन कमीशन की रिपोर्ट

भारतीय जनता के इन विरोध प्रदर्शन के बावजूद भी कमीशन ने अपना कार्य जारी कमीशन दो बार भारत आया और इसने दो वर्ष तक घोर परिश्रम करके एक रिपोर्ट तैयार यह रिपोर्ट मई, 1930 ई. में प्रकाशित हुई। इसमें भारत के सम्बन्ध में निम्नलिखित सिफ की गई थीं-

(1) प्रान्तीय शासन से सम्बन्धित सिफारिशें

(i) द्वैध शासन की समाप्ति और प्रान्तीय स्वराज्य का आरम्भ- कमीशन ने प्रान द्वैध शासन प्रणाली को सिद्धान्त तथा व्यवहार दोनों दृष्टियों से दोष-पूर्ण बताया और स्थान पर प्रान्तों को पूर्ण स्वायत्तता प्रदान करने का सुझाव दिया। इस नई शासन प्रणा अन्तर्गत सारा प्रान्तीय शासन मन्त्रियों कों सौंप दिया जाए और उनको प्रान्तीय विधान के प्रति उत्तरदायी बनाया जाए।

(ii) प्रान्तीय विधान मण्डलों का विस्तार- साइमन कमीशन ने यह सिफारिश प्रान्तीय विधान मण्डलों का विस्तार किया जाये और अधिक महत्वपूर्ण प्रान्तों में 200 तक सदस्य शामिल किये जाये। प्रान्तीय विधान मण्डलों में सरकारी अधिकारियों को दिया जाए और मनोनीत गैर-सरकारी अधिकारियों की संख्या विधान मण्डल की संख्या के दसवें भाग से अधिक न हो । जिन प्रान्तों में मुसलमानों की जनसंख्या बहुत वहां के विधान मण्डलों में उन्हें विशेष प्रतिनिधित्व दिया जाए।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(iii) प्रान्तीय गवर्नरों की विशेष शक्तियां-कमीशन ने सिफारिश की कि अल्पसंख्यक जातियों और सरकारी सेवको के हितों की रक्षा के लिए प्रान्तीय गवर्नर को विशेषाधिकार अवश्य दिये जाये, ताकि वे विशेष परिस्थितियों में मंत्रियों की सलाह की उपेक्षा कर सकें और अपनी इच्छानुसार कार्य कर सकें। संविधान के असफल होने पर भी प्रान्तीय गवर्नरों को अपनी विशेष शक्तियों के अनुसार शासन चलाने का अधिकार प्राप्त हो। इसके अतिरिक्त यह भी सिफारिश की गई कि गवर्नर जनरल का प्रान्तों पर पर्याप्त मात्रा में बाहरी नियन्त्रण हो, परन्तु आन्तरिक मामलों में उसका कम से कम हस्तक्षेप हो और उसको काफी हद तक स्वतन्त्रता प्राप्त हो।

(2) केन्द्रीय शासन से सम्बन्धित सिफारिशें

(i) केन्द्री में अनुत्तरदायी सरकार- कमीशन ने केन्द्रीय में उत्तरदायी सरकार को स्थापित करने की मांग को अस्वीकार कर दिया और यह सिफारिश की कि केन्द्र में पहले की भांति अनुत्तरदायी सरकार को ही रखा जाए अतः कमीशन ने केन्द्रीय कार्यपालिका को केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा के नियन्त्रण से पूर्ण स्वतन्त्र रखने की सिफारिश की। कमीशन की राय थी कि केन्द्र में उत्तरदायी शासन की स्थापना तभी की जाय, जबकि देश में संघराज्य की स्थापना और प्रतिरक्षा की समस्या का समाधान हो जाये।

(ii) गवर्नर जनरल की विशेष शक्तियाँ- केन्द्र में अल्पसंख्यक जातियों तथा सरकारी सेवकों की रक्षा के लिए गवर्नर जनरल को विशेष अधिकार दिये जाये।

(iii) संघ राज्य की स्थापना का प्रस्ताव- कमीशन ने सिफारिश की कि भारत में संघ राज्य के स्वरुप को विकसित किया जाए, जिसमें प्रत्येक प्रान्त जहाँ तक सम्भव हो, अपने क्षेत्र का अपना स्वामी हो। इस संघ राज्य में ब्रिटिश प्रान्त व देशी रियासतें सम्मिलित होंगी।

(iv) वृहत्तर भारतीय परिषद् की स्थापना- कमीशन ने यह सिफारिश की कि केन्द्रीय विधान मण्डल का संघीय आधार पर पुनर्गठन किया जाए। केन्द्रीय विधान मण्डल के निम्न सदन का नाम संघीय सभा (Federal Assembly) रखा जाये, जिसके सदस्यों की संख्या 250 से 300 के बीच हो। इस सभा में भावी संघ में सम्मिलित होने वाले प्रान्तों के प्रतिनिधि शामिल किये जाये, लेकिन देशी रियासतों के प्रतिनिधि उस समय सम्मिलित किये जाये, जबकि वे संघ में मिलने के लिए तैयार जो जाये। केन्द्रीय विधान मण्डल के उच्च सदन का नाम 'राज्य सभा' (Council of States) रखा जाय और उसके सदस्य प्रान्तीय आधार पर निर्वाचित तथा मनोनीत किये जाये। प्रत्येक प्रान्त की राज्य सभा में 3 सदस्य रखे जाये। दोनो सदनों का गठन अप्रत्यक्ष चुनाव पद्धति से किया जाए।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(vi) सेना का भारतीयकरण- कमीशन ने सेना के भारतीयकरण की आवश्यकता स्वीकार किया, परन्तु साथ ही यह भी सिफारिश की कि जब तक भारत अपनी रक्षा के पूर्ण रुप से तैयार नहीं हो जाता, तब तक ब्रिटिश सेनाओं को भारत में रखना आवश्यक

(3) मताधिकार से सम्बन्धित सिफारिशें

(i) मताधिकार का विस्तार- 1926 ई. में भारत की कुल 2.8 प्रतिशत आबादी मताधिकार प्राप्त था। इसलिए कमीशन ने मताधिकार के विस्तार की सिफारिश की और कहा कि कम से कम 10 या 15 प्रतिशत जनसंख्या को मताधिकार प्राप्त होना चाहिये। चुनाव की साम्प्रादायिक पद्धति को भी कायम रखने का सुझाव दिया।

(ii) निर्वाचन प्रणाली- कमीशन ने केन्द्रीय विधान मण्डल के दोनों सदनों के अप्रत्यक्ष चुनाव प्रणाली और प्रान्तीय विधान मण्डलों के लिए प्रत्यक्ष चुनाव पद्धति अपनाने सिफारिश की।

(4) नये प्रान्त बनाने के सम्बन्ध में

कमीशन ने यह सिफारिश की कि बर्मा को भारत से और सिन्ध को बम्बई से पृथक् दिया जाय। उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त को पिछड़े होने के कारण प्रान्तीय स्वराज्य नहीं जाय, परन्तु इस प्रान्त की एक विधान परिषद् बना दी जाय व केन्द्रीय विधान मण्डल में प्रतिनिधत्व को बढ़ाया जाय।

(5) गृह सरकार के सम्बन्ध में

कमीशन ने भारत सचिव को परामर्श देने के लिए भारत परिषद् को कायम रखने सिफारिश की, परन्तु यह भी कहा कि उसकी शक्तियों को कम कर दिया जाए। ना सेवाओं तथा पुलिस में भर्ती पहले की तरह ही की जाए।

(6) नवीन संविधान के सम्बनथ में

कमीशन ने यह सिफारिश की कि प्रति 10 वर्ष के बाद भारत की संवैधानिक प्रगति की की पद्धति को छोड़ दिया जाए और इसके स्थान पर नया संविधान इस लचीले पन से किया जाय कि वह स्वयं ही विकसित हो सके। स्पष्ट है कि यह सिफारिश भारतीय अ को कम करेन के लिए की गई थी।

कमीशन की रिपोर्ट का मूल्यांकन- साइमन कमीशन की रिपोर्ट पर आंग्ल और भा लेखकों ने परस्पर विरोधी प्रतिक्रिया व्यक्त की। कूपलैण्ड, राबर्ट्स और कीथ जैसे लेखकों ने साइमन कमीशन रिपोर्ट की प्रशंसा करते हुये कहा कि इसने भारतीय राज सम्बन्धित सब कठिनाइयों और समस्याओं पर प्रकाश डाला। कूपलैण्ड ने इस रिपो प्रशंसा करते हुए कहा कि "यह भारतीय समस्याओं का सबसे अधिक पूर्ण अध्ययन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उसने राजनीतिशास्त्र के पुस्तकालय को एक और उच्च कोटि की रचना प्रदान की।"[1] पी.ई. रॉबर्टस का कहना था, "साइमन कमीशन रिपोर्ट भारत राज्य पत्रों में सदैव एक महान स्थान रखेगी।"[2] कीथ के शब्दों में, "सम्भवतः भारतीय जनमत द्वारा प्रतिवेदन को पूर्णतः अस्वीकार करना मूर्खतापूर्ण था। यदि इसे स्वीकार किया होता, तो ब्रिटिश शासन उसे क्रियान्वित करने से नहीं चूकता एवं प्रान्तों में उत्तरदायी शासन की स्थापना बाद की किसी योजना के पूर्व ही स्थापित हो जाती"।[3] प्रो. डॉडवेल का मत है कि, "प्रतिवेदन लम्बा तथा काफी महत्त्वपूर्ण प्रलेख है।"[4] इसके विपरीत भारतीय लेखकों ने इस रिपोर्ट की रद्दी कागजों के ढेर में रखने योग्य बतलाया। यहाँ तक कि भारत के उदारवादी नेताओं ने भी इस रिपोर्ट की कटु आलोचना की।

वस्तुतः इस रिपोर्ट में कुछ ऐसी बातें थीं, जिनके कारण भारतीय जनता असन्तुष्ट थीं। ये बातें इस प्रकार हैं- (i) रिपोर्ट में भारत में औपनिवेशिक स्वराज्य स्थापित करने का कोई उल्लेख नहीं था। (ii) इसमें भारतीयों की केन्द्र में उत्तरदायी सरकार की स्थापना की मांग को स्वीकार नहीं किया गया था। (iii) यद्यपि प्रान्तों को पूर्ण स्वायत्तता देने की सिफारिश की गई थी परन्तु प्रान्तीय गवर्नर को विशेष शक्तियाँ प्रदान कर उसे अत्यन्त सीमित कर दिया गया था। (iv) प्रतिरक्षा को भारतीयों के हाथों में नहीं सौपा गया था। इसलिए भारतीयों ने इसकी निन्दा की। (v) रिपोर्ट में असहयोग आन्दोलन के कारण भारतवासीयों में उत्पन्न हुई आकांक्षाओं की उपेक्षा की गई थी। इस सम्बन्ध में एण्डूज ने ठीक ही लिखा है," इसने अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन से सारे देश में पैदा हुए परिवर्तन और जनता की अभिलाषाओं तथा आकांक्षाओं की पूर्ण उपेक्षा की। इसने उस भारत को अपने सम्मुख रखा, जो राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रारम्भ होने से 30 वर्ष पूर्व था, वर्तमान राष्ट्रीय जाग्रति के परिणामस्वरुप उदीयमान युवा भारत का इसमें परिचय नहीं मिलता।"[5] इस रिपोर्ट पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए सर शिव स्वामी अय्यर ने तो यहाँ तक कहा था,"साइमन कमीशन की रिपोर्ट रद्दी की टोकरी में डाल देना चाहिए।[6] सर शफात अहमद खां के शब्दों में, "रिपोर्ट में केन्द्र में उत्तरदायित्व के मुख्य और महत्त्वपूर्ण प्रश्न की उपेक्षा की गई है। यदि इसकी सिफारिशों को मान लिया गया होता, तो गवर्नर जनरल शाहजहां से भी अधिक शक्तिशाली और शाह आलम से भी अधिक अनुत्तरदायी

1. कूपलैण्ड : द इण्डियन प्रोबलम् (1833-1935) पृष्ठ 100.
2. रॉबर्ट्स, पी. ई. : हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इण्डिया, पृष्ठ 598.
3. कीथ, ए. बी. : कॉन्स्टिट्यूशनल् हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृष्ठ 293-94.
4. डॉडवेल, एच. एच. : कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, वोल IV (1858-1969) पृष्ठ 630-632.
5. एण्डूज : इण्डिया एण्ड द साइमन कमीशन, पृष्ठ 39.
6. चिन्तामणि, सी. वाई. : इण्डियन पोलिटिक्स सिंस द म्यू-टिनि, पृष्ठ 172.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बन गया होता।"[1]

चाहे इस रिपोर्ट को भारतीयों ने कोई महत्त्व नहीं दिया और ब्रिटिश मज़दूर दल ने इसको महत्त्वहीन समझा, परन्तु बाद में 1935 के अधिनियम में इसकी अनेक बातें अप[नाई] गई। इस रिपोर्ट में द्वैध शासन पद्धति को समाप्त करने की सिफारिश वास्तव में उत्साह[वर्धक] थी। इससे भारत की संवैधानिक प्रगति को असाधारण बल मिला। आलोचकों का मत है [कि] यदि भारतीय जनमत द्वारा इन सिफारिशों को स्वीकार कर लिया जाता है, तो भारत में प्रा[न्तीय] स्तर पर पूर्ण उत्तरदायी शासन की स्थापना 1937 से पूर्व ही हो गयी होती। ए.बी. कीथ [के] शब्दों में, "सम्भवतया भारतीय जनमत द्वारा प्रतिवेदन को पूर्णतया अस्वीकार किया ज[ाना] मूर्खतापूर्ण था। यदि इसे स्वीकार कर लिया जाता, तो ब्रिटिश शासन इसे क्रियान्वित कर[ने से] नहीं चूक सकता था और इससे बाद की किसी भी योजना से बहुत पूर्व प्रान्तों में उत्तर[दायी] शासन स्थापित हो जाता है।"[2]

नेहरू रिपोर्ट (1928)

साइमन कमीशन में किसी भारतीय को सम्मिलित नहीं किये जाने के फलस्वरुप कमी[शन] का भारत में सर्वत्र विरोध एवं बहिष्कार किया गया। इस कमीशन में भारतीयों को सम्मि[लित] न करने का कारण बताते हुए भारत मन्त्री लार्ड बर्किन हेड ने कहा था कि उनके पारस्प[रिक] मतभेदों के कारण ही किसी भी भारतीय को कमीशन में सम्मिलित नहीं किया गया था। [लार्ड] बर्किन हेड ने भारतीय नेताओं को यह चुनौती दी कि वे एक ऐसे संविधान का निर्माण [कर] ब्रिटिश संसद के सम्मुख प्रस्तुत करें, जिसे भारत के सभी दल स्वीकार करते हों। उन्होंने [कहा] कि कमीशन के बहिष्कार का उस समय कोई अर्थ नहीं हैं, जबकि स्वयं उनके द्वारा ऐसे [किसी] संविधान का निर्माण नहीं कर लिया जाता, जिसे भारत के सभी राजनीतिक पक्ष स्वीकार [करते] हों। राष्ट्रीय कांग्रेस ने लार्ड बर्किन हेड की यह चुनौती स्वीकार कर ली।

सर्वदलीय सम्मेलन और नेहरू रिपोर्ट- भारतीय नेताओं ने भारत मन्त्री की उक्त चु[नौती] को स्वीकार किया और 28 फरवरी 1928 ई. को दिल्ली में एक सर्वदलीय सम्मेलन [का] आयोजन किया गया, जिसकी अध्यक्षता डॉ. अन्सारी ने की। इसमें कांग्रेस और मुस्लिम [लीग] सहित 29 राजनीतिक दलों तथा संस्थाओं के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस सम्मेल[न में] उपस्थित समस्त संस्थाएँ इस बात पर एकमत हो गई कि 'पूर्ण उत्तरदायी शासन को आ[धार] मानकर ही भारत की वैधानिक समस्या पर वियार किया जाना चाहिये।' यह सम्मेलन [कुछ] मौलिक बातों को तय करने के बाद स्थगित हो गया। 10 मई 1928 ई. को डॉ. अन्सारी

1. वही।
2. कीथ. ए. बी. : कॉन्स्टिट्यूशनल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृष्ठ 293-94.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अध्यक्षता में सम्मेलन की दूसरी बैठक बम्बई में हुई। काफी सोच-विचार के बाद पण्डित मोती लाल नेहरु की अध्यक्षता में एक कमेटी नियुक्त की गई, जिसे भारत के लिए एक संतोषजनक संविधान बनाने का कार्य सौंपा गया। कमेटी में जिन सदस्यों को सम्मिलित किया गया, उनके नाम थे, सर तेज बहादुर सप्रू, सर अली इमाम, श्री एम.एस. अणे, सरदार मंगल सिंह, श्री शबीब कुरैशी, री जी.आर.प्रधान तथा श्री सुभाषचन्द्र बोस। श्री जवाहरलाल नेहरु को समिति का सचिव नियुक्त किया गया। समिति ने तीन माह के कड़े परिश्रम के बाद एक रिपोर्ट तैयार की, जो मोती लाल नेहरु ने नाम पर 'नेहरु रिपोर्ट' के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस रिपोर्ट को डॉ. जगारिया ने 'एक परिपक्व तथा राजमर्मज्ञपूर्ण रिपोर्ट' (a masterly and Statemsan like Report) कहा है।

नेहरु रिपोर्ट के प्रमुख सुझाव- नेहरु कमेटी द्वारा 10 अगस्त 1928 ई. को अपना सर्वसम्मत प्रतिवेदन प्रस्तुत किया गया था, जिसमें प्रमुख रुप से निम्नलिखित सुझाव दिये गये थे-

(1) औपनिवेशिक स्वराज्य- रिपोर्ट में कहा गया कि भारत को तुरन्त औपनिवेशिक स्वराज्य प्रदान किया जाय और उसे ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत अन्य उपनिवेशों के समान दर्जा दिया जाय। औपनिवेशिक स्वराज्य की प्राप्ति पर भारत का नाम 'कॉमन वैल्थ ऑफ इण्डिया' रख दिया जाए, जिस भारत की शान्ति-व्यवस्था और सुशासन के लिए कानून बनाने की शक्ति प्रान्त हो एवं कार्यपालिका उसके प्रति उत्तरदायी हो।

(2) प्रान्तों में उत्तरदायी शासन- रिपोर्ट में कहा गया कि प्रान्तों में द्वैध शासन व्यवस्था को समाप्त कर ऐसा पूर्ण उत्तरदायी शासन स्थापित किया जाय, जिसमें प्रान्तीय कार्यपालिका पूर्ण रुप से प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा के प्रति उत्तरदायी हो।

(3) केन्द्र और प्रान्तों के मध्य शक्ति-विभाजन- रिपोर्ट में भारत को संघ राज्य के रुप में विकसित करने की संकल्पना की गई। अतः केन्द्र और प्रान्तों के मध्य शक्ति विभाजन की योजना भी प्रस्तुत की गई। इस योजना के अन्तर्गत अवशिष्ट अधिकार केन्द्र को प्रदान किये गये।

(4) केन्द्र में पूर्ण उत्तरदायी शासन- रिपोर्ट में कहा गया कि प्रान्तों के समान ही केन्द्र में भी उत्तरदायीशासन की स्थापना होने चाहिये। इस शासन व्यवस्था के अन्तर्गत भारत के गवर्नर जनरल अपने मन्त्रियों के परामर्श पर वैधानिक शासन के रूप में कार्य करेंगे।

(5) केन्द्री तथा प्रान्तीय कार्यपालिका- रिपोर्ट में कहा गया कि गवर्नर जनरल की एक कार्यकारिणी परिषद् होगी, जिसमें प्रधान मंत्री और छः अन्य मन्त्रि होंगे। प्रधानमन्त्री की नियुक्ति गवर्नर जनरल द्वारा की जायेगी और प्रधानमंत्री के परामर्श से गवर्नर जनरल अन्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मंत्रियों की नियुक्ति करेगा। केन्द्रीय कार्यकारिणी परिषद् सब मामलों के लिए सामूहिक रूप से संसद की तरफ उत्तरदायी होगी।

रिपोर्ट में यह सिफारिश की गई कि प्रान्तीय कार्यपालिका गवर्नर और उसकी कार्यकारिणी परिषद् को मिलाकर बनाई जायेगी, जिसमें मुख्य मंत्री और पाँच अन्य मंत्री होंगे। मुख्य मंत्री की नियुक्ति गवर्नर द्वारा होगी और मुख्य मंत्री की सलाह से अन्य मंत्रियों की नियुक्ति होगी।

(6) केन्द्रीय तथा प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा- रिपोर्ट में कहा गया कि केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा को संसद का नाम दिया जायेगा, जिसके दो सदन होंगे- सीनेट (उच्च सदन) और प्रतिनिधि सभा (निम्न सदन)। सीनेट में 200 सदस्य होंगे, जो प्रान्तों की विधान परिषदों द्वारा परोक्ष निर्वाचन पद्धति से चुने जायेंगे। प्रत्येक प्रान्त को उसकी जनसंख्या के आधार पर इसमें प्रतिनिधित्व दिया जायेगा। प्रतिनिधि सभा में 500 सदस्य होंगे, जो वयस्क मताधिकार के आधार पर प्रत्यक्ष निर्वाचन पद्धति से चुने जायेंगे। 21 वर्ष या अधिक आयु वाले प्रत्येक ऐसे व्यक्ति को प्रतिनिधि सभा के चुनाव में भाग लेने का अधिकार होगा, जो कानून द्वारा अयोग्य घोषित न किया गया हो। केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा को सभी केन्द्रीय विषयों पर पूर्ण नियन्त्रण प्राप्त होगा। इस संसद को भारत में शान्ति-व्यवस्था और सुशासन बनाये रखने के लिए कानून बनाने का अधिकार होगा। विदेशी मामलों में संसद को वही अधिकार प्राप्त होगी, जिसे कानून बनाने का अधिकार होगा। इन सभाओं का कार्यकाल पाँच वर्ष होगा।

(7) साम्प्रदायिक चुनाव पद्धति की समाप्ति- रिपोर्ट में अल्पसंख्यकों की सांस्कृतिक स्वायत्तता और उनके हितों की रक्षा का प्रावधान रखा गया, परन्तु साम्प्रदायिक निर्वाचन पद्धति को समाप्त करने की सिफारिश की गई और उसके स्थान पर संयुक्त चुनाव पद्धति का सुझाव दिया गया, लेकिन इसके साथ ही अल्पमतों के हितों की रक्षा के लिए स्थानों को सुरक्षित करने पर भी बल दिया गया। मुसलमानों के धार्मिक और सांस्कृतिक हितों की पूर्ण रक्षा का आश्वासन दिया गया।

(8) मौलिक अधिकारों का उल्लेख- रिपोर्ट में नागरिकों को मौलिक अधिकार प्रदान किये जाने की सिफारिश की गई और इस सम्बन्ध में 19 मौलिक अधिकारों की सूची प्रस्तुत की गयी। यह भी कहा गया कि भारत में कोई भी राज धर्म नही होगा और न ही राज्य में धर्म के आधार पर किसी प्रकार का पक्षपात किया जायेगा। पुरुषों और स्त्रियों को समान अधिकार मिलेंगे और दलित वर्गों के हितों की रक्षा की जायेगी।

(9) देशी रियासतें- रिपोर्ट में कहा गया कि देशी रियासतों के नरेशों के अधिकारों और विशेषाधिकारों की रक्षा की जाये, लेकिन इसके साथ ही यह भी कहा गया कि संघ के निर्माण की स्थिति में उन्हें इसकी सदस्यता तभी प्रदान की जायेगी जबकि वे अपने आन्तरिक क्षेत्रों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रजातन्त्र की स्थापना करे। रिपोर्ट में यह कहा गया कि औपनिवेशिक स्वराज्य की प्राप्ति के बाद केन्द्रीय सरकार को देशी रियासतों के ऊपर वही अधिकार और शक्तियाँ प्राप्त होंगी, जो अब केन्द्रीय सरकार को प्राप्त हैं। यदि औपनिवेशिक स्वराज्य की प्राप्ति के बाद किसी देशी रियासत की सन्धि या संसद के बारे में झगड़ा उत्पन्न होगा, तो गवर्नर जनरल को अपनी मन्त्रिपरिषद् की सलाह से उस मामले को सुप्रीम कोर्ट के पास न्याय के लिए भेजने का अधिकार होगा।

(10) सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना- भारत के लिए एक सर्वोच्च तथा अन्तिम अपीलीय न्यायालय के रुप में सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना करने की सिफारिश की गई। भारत के सर्वोच्च न्यायालय को संविधान की व्याख्या करने और प्रान्तों के आपसी झगड़ों पर निर्णय करने का अधिकार होगा। सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना के पश्चात प्रिवी कौंसिल में भारत की कोई अपील ले जाने की आवश्यकता नहीं रहनी चाहिये।

(11) नये प्रान्तों का सृजन- मुस्लिम समुदाय द्वारा चिरकाल से की जा रही मांगों को ध्यान में रखते हुये कमेटी रिपोर्ट में सिंध को बम्बई प्रान्त से अलग कर उसका एक अलग प्रान्त बनाने का सुझाव दिया। रिपोर्ट में यह भी कहा गया कि उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त को ब्रिटिश भारत के अन्य प्रान्तों के समान ही वैधानिक स्तर प्राप्त होना चाहिये। कमेटी ने पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त की व्यवस्थापिका सभा में हिन्दुओं के लिए भी कुछ सीटें सुरक्षित रखने का सुझाव दिया।

(12) प्रतिरक्षा- रिपोर्ट में कहा गया कि प्रधान मन्त्री, विदेश मंत्री, प्रतिरक्षा मंत्री, सेना के विभिन्न विभागों के अध्यक्षों एवं दो अन्य सैन्य विशेषज्ञों को मिलाकर एक प्रतिरक्षा समिति बनाई जाय, जो सैनिक मामलों में परामर्श दे सके।

नेहरु रिपोर्ट पर प्रतिक्रिया- नेहरु रिपोर्ट के सम्बनध में डॉ. जकारिया ने लिखा है कि, "यह एक उच्च कोटि का प्रतिवेदन था, जिससे राजनीतिक चातुर्य का अभास मिलता है।"[1] इसका कारण यह था कि इस रिपोर्ट में पहली बार सभी राजनीतिक दलों ने परस्पर सहयोग द्वारा राजनीतिक और अन्य समस्याओं का हल तलाश करने का प्रयास किया था। कूपलैण्ड के शब्दों में, "नेहरु प्रतिवेदन न केवल उस चुनौती का ही उत्तर था कि भारतीय राष्ट्रवाद में रचनात्मक प्रतिभा का अभाव है, बल्कि व भारतीयों द्वारा साम्प्रदायिक समस्या का हल खोजने की अब तक की सबसे अधिक साहसपूर्ण चेष्टा थी।"[2] अत्यन्त अल्पावधि में तैयार की गयी बातें आधुनिक संविधान में अपना ली गई हैं, यही इस रिपोर्ट की अधिक से अधिक प्रशंसा है।

1. "It was a masterly and statesman like Report."
Dr. Zacharia's Renaiscent India, P. 252.
2. कूपलैण्ड : द कॉन्स्टिट्यूशनल प्रोबलम इन इण्डिया, भाग (प्रथम), पृष्ठ 87.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अगस्त, 1928 में लखनऊ सर्व दल सम्मेलन ने नेहरु रिपोर्ट पर विचार विनिमय किया और उसे कुछ मामूली संशाधनों सहित स्वीकार कर लिया।

यद्यपि यह रिपोर्ट बहुत अच्छी थी, परन्तु बहुत अधिक प्रगतिशील होने के कारण सरकार ने इसको स्वीकार नहीं किया। बाद में, जब विभिन्न दलों ने भी नेहरु रिपोर्ट पर अलग-अलग विचार किया, तो उनमें भी परस्पर विरोधी मत प्रकट हुआ। कांग्रेस में भी नेहरु रिपोर्ट के सम्बन्ध में काफी विचार-विभिन्नता थी। कांग्रेस के युवा वर्ग के नेता पं जवाहरनलाल नेहरु और सुभाषचन्द्र बोस रिपोर्ट को पूर्ण स्वतन्त्रता के आधार पर ही स्वीकार करने को तैयार थे, लेकिन मोतीलाल नेहरु के नेतृत्व में कांग्रेस का पुराना दल इसे पूर्ण रुप से स्वीकार करना चाहता था। महात्मा गाँधीी ने दोनों में समझौता करवाया, जिसके द्वारा यह तय हुआ कि,"एक वर्ष तक औपनिवेशिक स्वराज्य को ही, जैसा कि नेहरु रिपोर्ट में दिया गया है, कांग्रेस का ध्येय मान लिया जाए। यदि सरकार इस वर्ष के भीतर स्वराज्य दे दे तो ठीक है, नहीं तो एक वर्ष के बाद कांग्रेस पूर्ण स्वराज्य को ही ध्येय मानकर उसकी प्राप्ति के लिए अहिंसात्मक आन्दोलन आरम्भ करेगी।" तत्पश्चात् कलकत्ता अधिवेशन में कांग्रेस ने यह प्रस्ताव पास किया कि दल सम्मिलन (नेहरु कमेटी की रिपोर्ट0 में शासन विधान की जो योजना प्रस्तुत की गई है, उस पर विचार करने के उपरान्त कांग्रेस उसका स्वागत करती है और उसको भारत की राजनीतिक और साम्प्रादायिक समस्याओं का समाधान तथा निराकरण में बहुत अधिक सहायता देने वाली समझती है और अपनी समस्त सिफारिशों को सर्वसम्मति से पास करने के लिए कमेटी को बधाई देती है।

मुस्लिम लीग में इस रिपोर्ट के सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद हुआ। मौलाना अबुल कलाम आजाद, हमीम अजमल खां और डॉ. अन्सारी जैसे राष्ट्रवादी मुसलमान इस रिपोर्ट को पूर्ण रुप से स्वीकार करने के पक्ष में थे। उन्होंने इस रिपोर्ट को न्यायोचित मानते हुए उसका स्वागत किया। शफी मोहम्मद रिपोर्ट को अस्वीकार करना चाहते थे और मुहम्मद अली जिन्ना इसमें कुछ ऐसे संशोधन करना चाहते थे, जिससे उसका स्वरुप ही बिल्कुल बदल जाय। जिन्ना ने इस रिपोर्ट में निम्नलिखित संशोधन करने का सुझाव दिया- (i) केन्द्रीय असैम्बली में मुसलमानों के लिए एक तिहाई स्थान सुरक्षित रहने चाहिये। (ii) अवशिष्ट शक्तियाँ केन्द्र के स्थान पर प्रान्तों के पास रखी जाये। (iii) पंजाब और बंगाल की लैजिस्लेचरों में मुसलमानों को इन प्रान्तों की दस वर्ष की जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधित्व दिया जाए। जिन्ना की माँगें अस्वीकार होने पर उसने नेहरु रिपोर्ट के मुकाबले में अपनी चौदह शर्तें पेश की और उनको सभी दलों द्वारा स्वीकार करने पर बल दिया। लीग के अतिरिक्त सिक्खों, ईसाइयों, हरिजनों ने भी इस रिपोर्ट को स्वीकार नहीं किया। उनमें से प्रत्येक का यह मत था कि मुसलमानों की ...

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उनके लिए स्थान सुरक्षित रखने की व्यवस्था नहीं की गई है। देशी रियासतों के नेरेशों ने अपनी सार्वभौमिक सत्ता नष्ट हो जाने के भय के कारण इस रिपोर्ट का विरोध किया। सारांश यह है कि नेहरु रिपोर्ट पर विचार करते समय किसी भी दल तथा वर्ग ने सहानुभूति प्रदर्शित नहीं की। फलतः यह प्रतिवेदन काल का ग्रास बन गया।

फिर भी नेहरु प्रतिवेदन की अपेक्षा नहीं की जा सकती। यह एक ऐसा प्रलेख था, सिमें पहली बार देशभक्त भारतीयों की आकांक्षाओं को व्यक्त किया गया था। रिपोर्ट को महत्त्व इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि स्वतन्त्र भारत के संविधान में नेहरु रिपोर्ट की बहुत सी सिफारिशों को स्थान दिया गया है। अतः यदि हम इस रिपोर्ट को 'स्वतंत्र भारत के संविधान की नींव का पत्थर' कहें, तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। सर शफात अहमद खां ने कहा था कि, "नेहरु रिपोर्ट अत्यन्त रचनात्मक प्रयास था। अब तक जो भी इस प्रकार के प्रयास अन्य संगठनों द्वारा किये गये, उनमें इसका अपना एक विशेष महत्त्व था। इसने देश के सम्मुख एक महान् आदर्श उपस्थित किया था, जिसके स्थान की कभी भी पूर्ति नहीं हो सकती।"नेहरु रिपोर्ट अत्यन्त रचनात्मक प्रयास था। अब तक जो भी इस प्रकार के प्रयास अन्य संगठनों के द्वारा किये गये, उनमें इसका अपना एक विशेष महत्त्व था। इसने देश के सम्मुख एक महान् आदर्श उपस्थित किया था, जिसके स्थान की कभी भी पूर्ति नहीं हो सकती।" नेहरु रिपोर्ट के सम्बन्ध में डॉ. जकारिया ने ठीक ही लिखा है कि, "नेहरु रिपोर्ट को विस्तारपूर्वक पढ़ा जाना आवश्यक है, क्योंकि वह प्रत्येक विषय पर जिसका उसमें उल्लेख किया गया है, पूर्ण प्रकाश डालती है और सामान्य व्यावहारिक बुद्धि से, जो न अपने को सैद्धान्तिक कल्पनाओं में खोती है और न निरर्थक बातों को आश्रय लेती है, परिपूर्ण हैं।"[1]

जी. आर. प्रधान के अनुसार "शक्तिशाली अल्पसंख्यक एवं बहुसंख्यक (वर्ग) के उचित हितों में समन्वय करने की एक सर्वश्रेष्ठ योजना है।" श्री कन्हैयालाल मणिकलाल मंशो के अनुसार,"मौलिक अधिकारों, न्यायपालिका आदि अध्यायों से यह स्पष्ट है कि नेहरु प्रतिवेदन अत्याधिक महत्त्वपूर्ण है।"[2]

जिन्ना का 14 सूत्रीय कार्यक्रम

मुहम्मद अली जिन्ना ने नेहरु रिपोर्ट की संवैधानिक योजना को अस्वीकार कर दिया। इसके स्थान पर उसने एक चौदह सूत्री योजना प्रसतुत की। इसमें निम्नलिखित बातें थीं-

(1) भारत के भावी संविधान का स्वरुप संघात्मक हो, जिसमें अवशिष्ट शक्तियाँ प्रान्तों में निहित हों।

---

1. जकारिया (डॉ.) : रिनेसेण्ट इण्डिया, पृष्ठ 251-52.
2. मुन्शी; के. एम. : इण्डियन कॉन्स्टियूशनल डॉकोमेन्ट, वॉल II, पृष्ठ (XXI) (XXII)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(2) सभी प्रान्तों को एक समान स्वयत्तता हो।

(3) सभी प्रान्तों की विधान सभाओं और अन्य लोक प्रतिनिधि-संस्थाओं में अल्पसंख्य सम्प्रदायों का निश्चित रूप से उचित और पर्याप्त प्रतिनिधित्व रहे। जहाँ उनका बहुमत हो, घटाकर समान या अल्पमत न कर दिया जाय।

(4) केन्द्रीय विधान मण्डलों में मुसलमानों का प्रतिनिधित्व कम से कम एक तिहाई हो।

(5) साम्प्रदायिक वर्गों का प्रतिनिधित्व पृथक् निर्वाचन पद्धति से हो, परन्तु कोई सम्प्रदाय जब चाहे, तब संयुक्त निर्वाचन पद्धति स्वीकार कर सकता है।

(6) किसी भी प्रादेशिक पुनर्विभाजन द्वारा पंजाब, बंगाल और पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्तों मुसलमानों को बहुमत पर कोई प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए।

(7) सभी सम्प्रदायों को अपने धार्मिक विश्वास, उपासना, उत्सव, प्रचार, सम्मेलन शिक्षा की पूर्ण स्वाधीनता हो।

(8) यदि किसी विधेयक का किसी भी सम्प्रदाय के तीन-चौथाई सदस्यों द्वारा विरोध कि जाय, तो उसे पास नहीं किया जाना चाहिये।

(9) सिन्ध को बम्बई प्रान्त से अलग किया जाय।

(10) सीमान्त प्रान्त और बलूचिस्तान में भी अन्य प्रान्तों की भांति सुधार किये जाये।

(11) सभी सरकारी नौकरियों में योग्यता की आवश्यकता के अनुरूप मुसलमानों को उ भाग मिले।

(12) मुस्लिम संस्कृति, शिक्षा, भाषा, धर्म और वैयक्तिक कानूनों की सुरक्षा और उन्नति लिए पर्याप्त संरक्षण व्यवस्था हो तथा पर्याप्त सरकारी सहायता मिले।

(13) केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय मन्त्रिमण्डल में कम से कम एक-तिहाई मन्त्री मुसलमान

(14) केन्द्रीय विधान मण्डल को संविधान में कोई परिवर्तन करने का केवल तभी अधि रहे, जब भारतीय संघ की सभी इकाइयाँ उसे स्वीकार कर लें।

मि. जिन्ना की चौदह शर्तें साम्प्रदायिक समस्या का समाधान नहीं दे सकती थी। फिर जिन्ना के इन सुझावों ने मुस्लिम लीग के दो वर्गों में एकता उत्पन्न कर दी। डॉ. राजेन्द्र प्र ने जिन्ना के चौदह सुत्रीय कार्यक्रम के महत्त्व को इंगित करते हुए लिखा है कि, "जिन्ना चौदह सूत्रीय शर्तों का इसलिए महत्व है, क्योंकि मैकडॉनल्ड के साम्प्रादायिक पंचाट में ये प्र मान ली गई थीं।"[1]

लाहौर अधिवेशन (31 सिम्बर, 1929 ई.) एवं पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव- भार

1. राजेन्द्र प्रसाद (डॉ.) : खण्डित भारत, पृष्ठ 203.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में सबसे महत्त्वपूर्ण घटना लाहौर अधिवेशन है। 31 दिसम्बर, 1929 ई. में लाहौर में रावी नदी के तट पर कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इसकी अध्यक्षता जवाहरलाल नेहरु ने की। इस अधिवेशन में मध्य रात्रि को पूर्ण स्वाधीनता प्रस्ताव पारित कर दिया गया था। कांग्रेस के आदेश से 26 जनवरी 1930 का दिन सारे देश में 'स्वतन्त्रता दिवस' के रुप में मनाया जाय।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन- जब ब्रिटिश सरकार ने नेहरु कमेटी के सुझावों को मानने से इन्कार कर दिया, तो गाँधी जी के नेतृत्व में अहिंसात्मक ढंग से सविनय अवज्ञा आनेलन प्रारम्भ करने का निश्चय किया गया। तदानुसार गाँधी जी ने 6 अप्रैल 1930 ई. को आन्दोलन का सूत्रपात कर दिया। शीघ्र ही यह आन्दोलन सारे देश में फैल गया। इसी समय सरकार ने प्रथम गोलमेज सम्मेलन का आयोजन किया।

प्रथम गोलमेज सम्मेल

गोलमेज परिषदें

(12 नवम्बर 1930 से 19 जनवरी 1931 ई.)

जिस समय भारत में महात्मा गाँधी के नेतृत्व में 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' तीव्र गति से चल रहा था, उसी बीच ब्रिटिश सरकार ने भारतीय समस्या को हल करने के लिए लन्दन के प्रसिद्ध भवन सैण्ट जैम्स पैलेस में एक गोलमेज सम्मेलन बुलाया, सम्मेलन का उद्‌घाटन 12 नवम्बर 1930 ई. को ब्रिटिश सम्राट द्वारा किया गया और उसकी अध्यक्षता इंगलैण्ड के प्रधान मंत्री मैक्डॉनल्ड ने की। सम्मेलन 12 नवम्बर 1930ई. से 19 जनवरी 1931 ई. तक चला। सम्मेलन में कुल 89 प्रतिनिधि शमिल हुए, जिनमें से 57 ब्रिटिश भारत और 16 भारतीय रियासतों के प्रतिनिधि थे। शेष 16 प्रतिनिधि ब्रिटेन के तीन प्रमुख राजनीतिक दलों के संसद सदस्य थे। भाग लेने वाले भारतीय प्रतिनिधियों में सर तेज बहादुर सप्रू, श्रीनिवास शास्त्री, डॉ. जयकर, डॉ. अम्बेडकर तथा सी.वाई.चिन्तामणि जैसे व्यक्ति थे। देशी रियासतो प्रतिनिधियों में अलवर, बीकानेर, भोपाल, पटियाला तथा बड़ौदा के राजा और ग्वालियर तथा मैसूर राज्यों के प्रधान मन्त्री शामिल थे। ब्रिटिश भारत और देशी रियासतों के प्रतिनिधियों को गवर्नर जनरल के द्वारा मनोनीत किया गया था । वस्तुतः सभी प्रतिनिधि सरकार की हाँ में हाँ मिलाने वाले थे और राष्ट्रीय आन्दोलन के कटु विरोधी थे। कांग्रेस ने इस सम्लेन में भाग नहीं लिया। इस सम्बन्ध में कूपलैण्ड ने लिखा है कि,"सम्मेलन एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना थी। इसके पूर्व 40 करोड़ जनता का प्रतिनिधित्व करने वाले तथा एक सम्राट के प्रति श्रद्धा रखने वाले प्रतिनिधि समान हित के लिए एक समान महत्त्व के विषय पर विचार करने हेतु कभी भी एक स्थान पर एकत्रित नहीं हुए थे।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कांग्रेस के अनुपस्थिति में सम्मेलन बिना दूल्हे की बारात के समान लग रहा था। इस प्रकार, सम्मेलन में 'भारत की आत्मा' विद्यमान नहीं थी। इसी बात को लक्ष्य करते हुए ब्रेल्स फोर्ड लिखते हैं कि, "सेण्ट जैम्स महल में भारतीय नरेश, हरिजन, सिक्ख, मुसलमान, हिन्दू, ईसाई, जमींदार, मजदूर संघों और वाणिज्य संघो के प्रतिनिधि थे, किन्तु भारत माता उपस्थित नहीं थी।"[1] डॉ राजेन्द्र प्रसाद के अनुसार कांग्रेस के वगैर यह सम्मेलन "दूल्हे के बिना सम्पन्न होने वाला विवाह था।"[2]

प्रथम गोलमेज सम्मेलन के सुझाव- ब्रिटिश प्रधान मन्त्री रैम्जे मैकडॉनल्ड ने अपने प्रारम्भिक भाषण में उन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया, जिन पर सम्मेलन में विचार किया जाना था। उनका कहना था-

(i) केन्द्र में संघ कायम किया जायेगा, जिसमें ब्रिटिश प्रान्तों और देशी रियासतों के प्रतिनिधि शामिल होंगे।

(ii) प्रान्तों में पूर्ण उत्तरदायी शासन की स्थापना की जायेगी, परन्तु अल्पसंख्यक जातियों के हितों की रक्षा के लिए गवर्नर को विशेष अधिकार दिये जायेंगे। केन्द्र में दोहरा शासन स्थापित किया जायेगा, परन्तु सुरक्षा और वैधानिक विभाग भारत के गवर्नर जनरल के अधीन होंगे। गवर्नर जनरल को भी विशेष अधिकार दिये जयेंगे।

(iii) अन्तरिम काल की आवश्यकता को दृष्टि में रखते हुए कुछ रक्षात्मक विधान बनाये जायेंगे।

सम्मेलन में भारत के संवैधानिक ढांचे के सम्बन्ध में मैकडॉन्ल्ड द्वारा दिये गये सुझावों पर प्रायः आम सहमति हो गई थी। यहाँ तक कि देशी रियासतों के राजाओं ने भी संघ में शामिल होना स्वीकार कर लिया था। डॉ. जयकर और सर तेज बंहादुर ने भारत में औपनिवेशिक स्वराज्य की स्थापना पर बल दिया। डॉ. जयकर ने कहा, "यदि आप आज भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य प्रदान कर दें, तो स्वतन्त्रता की आवाज अपने आप समाप्त हो जायेगी।"

इस प्रकार, भावी विधान आधार निश्चित करने में कोई कठिनाई नहीं हुई, किन्तु साम्प्रदायिक समस्या पर भारतीय प्रतिनिधियों में कोई समझौता नहीं हो सका। मुसलमानों ने अलग प्रतिनिधित्व की मांग की। मुहम्मद अली जिन्न अपनी चौदह शर्तों को मनवाने के लिए जोर लगाते रहे। डॉ. अम्बेडकर ने भी हरिजनों के लिए पृतक प्रतिनिधित्व की मांग की। हिन्दू प्रतिनिधि संयुक्त चुनाव पद्धति के पक्षा में थे, यद्यपि वे अल्पसंख्यकों के लिए स्थान सुरक्षित

1. ब्रेल्स फोर्ड : सब्जेक्ट इण्डिया, पृष्ठ 46.
2. राजेन्द्र प्रसाद (डॉ.) : ऐट दी फीट ऑफ महात्मा गाँधी, पृष्ठ (215).
3. कूपलैण्ड : इण्डिया ए रिस्टेटमेन्ट, पृष्ठ 136 से उद्धत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रखने के लिए तैयार था। इस तरह से वहाँ पर प्रत्येक जाति के प्रतिनिधि ने अपने-अपने हितों को सुरक्षित करने के लिए मांगें पेश की। इस प्रकार, भिन्न-भिन मतों के कारण साम्प्रदायिक समस्या पर कोई निर्णय नहीं हो सका। ब्रिटिश शासन द्वारा मनोनीत प्रतिनिधियों से इससे अधिक और क्या आशा की जा सकती थी। डॉ. ईश्वरी प्रसाद ने इस सम्मेलन के बारे में लिखा है कि, "नौ सप्ताह की लम्बी और अस्पष्ट वार्ता के पश्चात प्रथम गोलमेज सम्मेलन ने भारत के साम्प्रदायिक मतभेतों के अन्तर्राष्ट्रीय प्रचार के अतिरिक्त और कुछ भी प्राप्त नहीं किया।"[1]

सम्मेलने की समाप्ति- 9 जनवरी 1931 ई. को सम्मेलन अनिश्चित काल के लिए स्थगित हो गया। ब्रिटिश प्रधान रैम्जे मैकडॉनल्ड ने अपने समापन भाषण में कहा कि,"सम्राट की सरकार का मत है कि भारत सरकार का उत्तरदायित्व केन्द्रीय एवं प्रान्तीय विधान सभाओं पर होना चाहिये, किन्तु इसके साथ-साथ परिवर्तन काल में यह व्यवस्था होनी आवश्यक है कि सरकार अपने विशिष्ट कर्त्तव्यों का पालन कर सके और अल्पसंख्यकों के अधिकारों व स्वतन्त्रता की रक्षा कर सके। परिवर्तन काल की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बनाये गये अधिरक्षणों के सम्बन्ध में सम्राट की सरकार को यह देखना होगा कि संरक्षित शक्तियाँ इस प्रकार बनाई और प्रयुक्त की जायें कि वे उत्तरदायी शासन की दिशा में भारत की उन्नतति में बाधा न डालें।".

मूल्यॉंकन- प्रथम गोलमेज सम्मेलन में पूर्ण स्वराज्य की मांग पर विचार नहीं किया गया। इसके अतिरिक्त औपनिवेशिक स्वराज्य की मांग को अस्वीकार कर दिया गया। फलतः यह सम्मेलन असफल रहा। सुभाष चन्द्र बोस ने सम्मेलन के कार्यों का मूल्यांकन करते हुए कहा था, "सम्मेलन ने भारत को दो कड़वी गोलियाँ, रक्षा कवच तथा संघ प्रदान कीं, जिन्हें भक्षणीय बनाने हेतु उन्हें उत्तरदायित्व रुपी शक्कर में लपेट दिया गया।"[2]

गाँधी-इरविन समझौता (5 मई 1931 ई.)- ब्रिटेन के द्वारा अब तक इस तथ्य को समझ लिया गया था कि राष्ट्रीय कांग्रेस के सहयोग के बिना भारत की कोई भी समस्या हल नहीं हो सकती। अतः ब्रिटिश सरकार ने देश में अच्छा वातावरण उत्पन्न करने और कांग्रेस का सहयोग प्राप्त करने के लिए उस पर से प्रतिबन्ध हटा दिया गया तथा महात्मा गाँधी और अन्य कांग्रेसी नेताओं को 26 जनवरी 1931 ई. के दिन बना किसी शर्त के छोड़ दिया। सम्मेलन से लौटकर भारत आने के बाद सर तेज बहादुर सप्रू और डॉ. जयकर ने भारत सरकार और कांग्रेस के बीच समझौता कराने के प्रयत्न फिर से आरम्भ कर दिये, जिसके परिणामस्वरुप गाँधी ओर

1. ईश्वरी प्रसाद (डॉ.) : हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न इण्डिया, पृष्ठ 429.
2. बोस, सुभाष चन्द्र : द इण्डियन स्ट्रगल, पृष्ठ 275.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गवर्नर जनरल लार्ड इरविन के बीच 17 फरवरी को बातचीत प्रारम्भ हुई, जो मार्च तक रही। इस बातचीत के परिणामस्वरूप 5 मार्च 1931 ई. को महात्मा गाँधी और लार्ड इरविन बीच एक समझौता हुआ, जो इतिहास में 'गांधी-इरविन समझौते' के नाम से प्रसिद्ध है।

समझौते की शर्तें- इस समझौते की प्रमुख शर्तें निम्नलिखित थी-

(i) सरकार अपने सभी अध्यादेशों और चालू मुकदमों को वापस ले लेगी।

(ii) सरकार उन सभी राजनैतिक कैदियों को छोड़ देगी, जिन्होने हिंसा का मार्ग अपनाया है।

(iii) सरकार सत्याग्रहियों की जब्त की हुई सम्पत्ति को वापस कर देगी।

(iv) सरकार ऐसे लोगों को बन्दी बनायेगी, जो शराब, अफीम तथा विदेशी वस्त्र की दु पर शान्तिपूर्वक धरना देंगे।

(v) समुद्र के पास रहने वाले लोगों को बिना टैक्स के नमक इकट्ठा करने और बनाने जायेगा।

(vi) जिन सरकारी कर्मचारियों ने आन्दोलन के दौरान नौकरी से त्याग-पत्र दिये थे नौकरी में वापस लेने में सरकार उदार नीति अपनायेगी।

कांगेस की ओर से महात्मा गाँधी ने निम्नलिखित बाते स्वीकार की-

(i) कांग्रेस सविनय अवज्ञा आन्दोलन को स्थगित कर देगी।।

(ii) कांग्रेस पुलिस द्वारा की गई ज्यादतियों की निष्पक्ष जांच की मांग छोड़ देगी।

(iii) कांग्रेस द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में भाग लेगी।

(iv) कांग्रेस सब प्रकार के बहिष्कार आन्दोलन बन्द कर देगी।

(v) कांग्रेस द्वारा यह समझौता न माने जाने पर सरकार शान्ति और व्यवस्था के आवश्यक कार्यवाही करने हेतु स्वतन्त्र होगी।

समझौते पर प्रतिक्रिया- गाँधी-इरविन समझौते पर देश में मिश्रित प्रतिक्रिया हुई अंग्रेजी समाचार पत्रों ने इसे लार्ड इरविन की महान सफलता माना। टाइम्स नामक स पत्र के अनुसार यह समझौता निश्चित रूप से ब्रिटिश सरकार तथा लार्ड इरविन की एक कूटनीतिक सफलता थी, क्योंकि इसके द्वारा कांग्रेस ने दिन-प्रतिदिन उग्र होते हुए अवज्ञा आन्दोलन को समाप्त कर दिया। कुछ समाचार पत्रों ने इसे गाँधी जी की जीत हुए उनकी बड़ी प्रशंसा की। एक समाचार पत्र ने यहाँ तक लिखा था कि, "गाँधी जी यथार्थवादी राजनीतिज्ञ हैं, जो धर्म और राजनीति के क्षेत्रों में एक समान निपुण हैं संमझौता उनके सत्याग्रह की एक ऐसी सफलता है, जिसका उदहरण पूर्व इतिहास में न

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कता।" यद्यपि यह सत्य हे कि इस समझौते ने गाँधी जी तथा वायसराय दोनों को कठिन प्रति में डाल दिया था। श्री मसानी के शब्दों में,"एक ओर तो जवाहरलाल नेहरु और गाचन्द्र बोस जेसै वामपन्थी कांग्रेसियों ने सोचा कि गाँधी जी ने अनजाने में भारत को बेच या है, तो दूसरी ओर ब्रिटेन के चर्चिल जैसे कट्टर अनुदारवादियों ने सोचा कि इरविन ने ग्रेट टेन को बेच दिया है।"[1]

गाँधी-इरविन समझौते पर देश में मिश्रित प्रतिक्रिया हुई। कांग्रेस के दक्षिणपन्थी वर्ग ने इस मझौते को अपनी विजय समझा। इसलिए उन्होंने इसका स्वागत किया। गाँधी जी की दृष्टि यह समझौता बहुत महत्त्वपूर्ण था। उनके अनुसार यह पहला अवसर था, जब ब्रिटिश रकार ने भारतीय नेताओं के साथ समानता के आधार पर बातचीत करना और समझौता रना स्वीकार कर लिया था। के.एम.मुन्शी के अनुसार, "इस समझौते का होना भारतीय तेहास की एक महत्त्वपूर्ण घटना है।" इस समझौते के मनोवैज्ञानिक पक्ष के बारे में लुई शर ने ये शब्द कहे,"एक राष्ट्र के नेता ने बराबरी के स्तर पर दूसरे राष्ट्र के नेता से वार्ता और अब यह स्पष्ट हो गया कि इंग्लैण्ड के द्वारा भारत पर गाँधी की इच्छा के बिना या सके विरुद्ध शासन नहीं किया जा सकता है। चर्चिल ने इसे समझते हुए कहा कि इस मझौते का तात्पर्य यह है कि ब्रिटिश साम्राज्य अधनंगे फकीर की कृपा पर निर्भर करता है र ब्रिटेन ने भारत की स्वतन्त्रता को सिद्धान्ततः स्वीकार कर लिया है, यद्यपि कुछ समय के ए व्यवहार में इसे प्रदान नहीं किया गया।"[2]

लेकिन कांग्रेस के वामपनथी वर्ग तथा युवा वर्ग ने इस समझौते की कटु आलोचना की। भाष चन्द्र बोस और जवाहर लाल नेहरु जैसे नेताओं की दृष्टि में यह समझौता सरकार के मने आत्मसमर्पण की भांति था। सुभाष चन्द्र बोस ने कहा था कि इस समझौते से जो यायतें भारतीयों को दी गई हे, वे बिना आन्दोलन के भी प्राप्त हो सकती थी। इसके अतिरिक्त धी जी ने पूर्ण स्वराजय के लक्ष्य को ध्यान में रखें बिना यह समझौता कर लिया था। इस मझौते का सबसे दुर्बल पक्ष यह था कि गाँधी जी भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव को दिया त्यु दण्ड न तो रद्द करवा सके और न ही आजीवन कारावास में बदलवा सके। इससे युवा र्ग में भीषण असन्तोष छा गया और उन्होने "गाँधी मुर्दाबाद (Down with Gandhi) के रे लागाये।" श्री रजनी पामदत्त के मतानुसर,"इस समझौते के द्वारा कांग्रेस की कोई मांग ी न हुई, यहाँ तक कि नमक कानून भी न हटाया गया। सविनय अवज्ञा आन्दोलन स्थगित र दिया गया। कांग्रेस ने उस गोल मेज सम्मेलन में भाग लेना भी स्वीकार कर लिया,

1. मसानी : ब्रिटेन इन इण्डिया, पृष्ठ 140.
2. फिशर : महात्मा गाँधी, पृष्ठ 303.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जिसका बहिष्कार करने की उसने शपथ ली थी। स्वराज्य की दिशा में भी कोई ठो नंहीं उठाया गया।"[1] यह कथन काफी सीमा तक सही प्रतीत होता है। इस समझौते टाइम्स (लंदन) नामक समाचारपत्र में यह टिप्पणी प्रकाशित हुई थी कि "इस प्रकार किसी भी वायसराय को बहुत कम मिलती है।" यद्यपि गाँधी जी ने समझौते को दोनों महान सफलता बताया था, लेकिन माइकेल ब्रेचर नें समझौता के बारे में ठीक ही कि,"महात्मा जी को केवल एक ही बात में महत्तवपूर्ण विजय प्राप्त हुई। वायसराय लिए सहमत होना कांग्रेस को भारतीय जनता की प्रतिनिधि के रुप में मान्यता देना बातों की दृष्टि से समझौते कांग्रेस की पूर्ण पराजय थी।"[2]

समझौता शासन के लिए निश्चित रुप से एक विजय थी, क्योंकि इसने कांग्रेस प्रतिदिन उग्र होते हुए सविनय अवज्ञा आन्दोलन को स्थगित कर दिया। इस समझौते इतना लाभ अवश्य हुआ कि कांग्रेस की प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई और उसके प्रभाव का हुआ। इसके अतिरिक्त इसने उन बहुत से लोगों को कांग्रेस के प्रति आकर्षित किया, तक उससे दूर भागते थे। श्री नेहरु के शब्दों में,"इस समझौते के उपरान्त अनेक तूफानी दिनों में कष्टों से डर कर कांग्रेस से बच रहे थे, कांग्रेस की ओर आकर्षित तथा उन्होंने पूर्व व्यवहार को सुधारने का प्रयन्त किया।"[3]

कांग्रेस का करांची अधिवेशन (25 मार्च, 1931)- 25 मार्च 1931 को कांग्रेस के अधिवेशन में,"गाँधी-इरविन समझौते" पर कांग्रेस की औपचारिक स्वीकृति ली जा उसके ठीक दो दिन पूर्व अर्थात 23 मार्च को सरदार भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव हो चुकी थी। इसलिए नवयुवकों ने महात्मा गाँधी से रुष्ट होकर काले झण्डों का प्रदर्श और अपने सीने पर शोक के चिन्ह वाले फूल लगायें। एक प्रतिनिधि ने तो यहाँ तक कि यदि इस समझौते के लिए गाँधीजी के अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति जिम्मेदार होता उठाकर समुद्र में फेंक दिया गया होता। गाँधीजी ने बड़ी कठिनता से करांची अधिवेश समझौते को कांग्रेस से स्वीकृत करवाया और गाँधीजी को कांग्रेस के एक मात्र प्रतिनिधि में द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने के लिए प्राधिकृत किया गया।

नये वायसराय विलिंगडन द्वारा समझौते का उल्लंघन- 17 अप्रैल 1931 में ला के स्थान पर लार्ड विलिंगडन को भारत का वायसराय नियुक्त किया गया। विलिंगड को कुचल देना चाहते थे। अतः उन्होंने गाँधी-इरविन समझौते की अनेक शर्तों का

1. दत्त, आर. पाम : इण्डिया टूडे
2. माइकेल ब्रेचर : नेहरु ए पोलिटिकल बायोग्राफी, पृष्ठ 74.
3. नेहरु, जे. एल. : डिस्कवरी ऑफ इण्डिया

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ा शुरु कर दिया। ऐसी स्थिति में गाँधीजी ने विलिंगडन को पत्र लिखा और उन्होंने दूसरे मेज सम्मेलन में भाग लेने से भी इन्कार कर दिया। वायसराय ने गाँधीजी को 27 अगस्त ई. को शिमला बुलाया और उनसे आग्रह किया कि वे समझौते न तोड़ें और स्थायी शान्ति ार्ग निकालने के लिए सम्मैलन में भाग लें। अन्त में, गाँधीजी ने एक मात्र प्रतिनिधि के रुप तीय गोलमेज सम्मेलन में भाग लेना स्वीकार कर लिया। गाँधीजी ने 29 अगस्त को न के लिए प्रस्थान किया। सरकार ने पं. मदन मोहन मालवीय और श्रीमती सरोजिनी डू को व्यक्तिगत रुप से सम्मेलन में भाग लेने के लिए मनोनीत किया।

द्वितीय गोलमेज सम्मेलन (7 सितम्बर से 1 दिसम्बर 1931)

द्वितीय गोलमेज सम्मेलन 7 सितम्बर 1931 को प्रारम्भ हो गया था, किन्तु गाँधीजी 12 म्बर को लन्दन पहुंचे। इसमें हिन्दुओं, मुसलमानों और सिक्खों आदि सभी प्रतिनिधि ल हुए। इस समय तक इंग्लैण्ड की राजनीतिक स्थिति बहुत परिवर्तित हो गई थी। य संकट के कारण प्रधानमंत्री रैम्जे मैकडॉनल्ड ने त्याग पत्र देकर राष्ट्रीय सरकार का कर दिया था। नई सरकार में अनुदार और उदार दल के सदस्यों की प्रधानता थी। य सरकार में सर वेजवुड वेन के स्थान पर अनुदार दल के सर सेमुअल होर को भारत व नियुक्त किया। अक्टूबर 1931 ई. में इंग्लैण्ड मे आम चुनाव हुए, जिसमें अनुदार-यों को भारी बहुमत प्राप्त हुआ। नवम्बर 1931ई. में पूर्णतया अनुदार दल की सरकार बन ऐसे मन्त्रिमण्डल से विशेष उदार होने की आशा नहीं की जा सकती थी। ये सभी परिवर्तन ीय समस्या के हल के लिए अनुकूल नहीं थे। इस सम्बन्ध में डॉ. जकारिया लिखते हैं "यदि महात्मा गाँधी प्रथम गोलमेज सम्मेलन में, जब इंग्लैण्ड में मजदूर सरकार थी, भाग तो यह हमारे लिए अधिक लाभप्रद होता, क्योंकि इस समय तंक कोई निर्णय नहीं किया था।"[1]

महात्मा गाँधी डॉ. अन्सारी जैसे राष्ट्रवादी मुसलमान को भी कांग्रेस की तरफ से सम्मेलन जाना चाहते थे, परन्तु वायसराय ने यह आज्ञा न दी, क्योंकि वे कांग्रेस को एक दायिक संस्था का नाम देकर कलंकित करना चाहता था। सम्मेलन के सामने महात्मा ने 30 नवम्बर 1931 ई. को अपने भाषण में कहा कि,"अन्य सब दल साम्प्रदायिक हैं। स ही केवल सारे भारत और सब हितों के प्रतिनिधित्व का दावा कर सकती है। यह कोई दायिक संस्था नहीं, किसी भी रूप में चाहे साम्प्रदायिकता क्यों न हे, परन्तु यह उसकी शत्रु है। कांग्रेस नस्ल, रंग और धर्म का भेद-भाव नहीं जानती, इसका प्लेटफार्म सबके खुला है। कांग्रेस ही केवल ऐसी संस्था है, जिसका प्रभाव 70,000 गांवों पर है। कांग्रेस ही

1. जकारिया (डॉ.) : रिनेसेण्ट इण्डिया, पृष्ठ 281.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सारे अल्पमतों का प्रतिनिधित्व करती है।" इस तरह से गाँधीजी ने कांग्रेस को राष्ट्रीय सिद्ध करने की हर सम्भव कोशिश की।

गाँधी जी की उपस्थिति भी सम्मेलन को सफल नहीं बना सकी। उन्होंने सुरक्षा वैदेशिक मामलों पर पूर्ण नियन्त्रण सहित स्वराज्य की मांग की, लेकिन ब्रिटिश सरकार मांगों को स्वीकार नहीं किया। फिर भी, गाँधीजी के प्रभाव के कारण सम्मेलन में निम्न बातें निश्चित की गयीं-

(i) संघीय न्यायपालिका का ढांचा

(ii) संघीय विधान मण्डल का संगठन

(iii) केन्द्र तथा प्रान्तों के बीच आर्थिक साधनों का बंटवारा

(iv) रियासतों के अखिल भारतीय संघ में सम्मिलित होने का आधार।

साम्प्रदायिक समस्या की जटिलता- सम्मेलन में साम्प्रदायिक समस्या अत्यन्त ज गई। वहाँ पर प्रत्येक प्रतिनिधि ने अपनी-अपनी जाति के लिए बढ़ा-चढ़ा कर मांगे ब्रिटिश सरकार ने प्रत्येक जाति से ऐसे प्रतिनिधि ही चुने थे, ताकि उनमें किसी प्र समझौता न हो सके। गाँधीजी ने नेहरु रिपोर्ट के आधार पर इस समस्या को सुल प्रयत्न किया, किन्तु उनको सफलता नहीं मिली, क्योंकि सरकारी प्रतिनिधियों द्वारा अल्प को अनुचित मांगे करने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा था। गाँधी जी ने केन्द्र में द्वै को क्रियान्वित करने का कटु शब्दों में विरोध किया, किन्तु उस ओर भी ध्यान नहीं दि

सम्मेलन की असफलता- द्वितीय गोलमेज सम्मेलन बिना किसी ठोस प्रगि दिसम्बर, 1931 ई. को समाप्त हो गया। यह सम्मेलन पूर्णतया असफल रहा। वस्तुतः तत्कालीन अनुदार दलीय सरकार ऐसे किसी संवैधानिक सुधारों के पक्ष में नहीं थी, भारत में उत्तरदायी शासन की स्थापना का मार्ग प्रशस्त होता हो। इसके अतिरिक्त स अधिकांश भारतीय नेता भी इच्छा व अनिच्छा से भी ब्रिटिश सरकार के साथ हो महात्मा गाँधी ने सम्मेलन की समाप्ति पर अध्यक्ष के प्रति धन्यवाद का प्रस्ताव पेश क कहा कि, "उनके और प्रधानमन्त्री के रास्ते अलग-अलग हैं।"[1] इस प्रकार, गाँधीजी को से निराश होकर खाली हाथ लौटना पड़ा। भारत पहुँचने पर उन्होंने कहा, "यह सच खाली हाथ लौटा हूँ, किन्तु मुझे सन्तोष है कि जो ध्वज मुझे सौंपा गया था, मैंने उसे होने दिया और उसके सम्मान के साथ समझौता नहीं किया।"

द्वितीय गोलमेज सम्मेलन की असफलता और उसकी कार्यवाही के सम्बन्ध में ज नेहरु ने लिखा है कि, "सम्मेलन में हमारा पलड़ा बहुत हल्का था, हमने उन दीन

1. कूपलैण्ड द इण्डियन प्रोबलम, पृष्ठ 127.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निर्बल प्रयत्नों को देखा, जो राष्ट्रीय एवं आर्थिक समस्याओं की केवल ऊपरी सतह को खुरचने के लिए ही किये गये थे। हमने समझौतों, षड्यन्त्रों और दावों को, ब्रिटिश अनुदार वर्ग के अत्यन्त प्रतिक्रियावादी तत्त्वों के साथ अपने ही कुछ देशवासियों के गठबन्धन को, छोटे-छोटे प्रश्नों पर समाप्त न होन वाले विवाद को, महत्त्वपूर्ण प्रश्नों को जान-बूझकर टाले जाने को तथा निहित स्वार्थों और विशेषकर ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के हाथों में निरंतर खेले जाने वाले पारस्परिक कलह को आश्चर्य और घृणा के साथ देखा। अवसरवाद का बोलबाला था और विभिन्न दल भूखे भेड़िये की तरह नये विधान की लूट में भाग लेने की प्रतीक्षा कर रहे थे। किसी को भी स्वतंत्रता का, शक्ति को लोकतन्त्रात्मक भारत को हस्तान्तरित करने का, भारतीय जनता की आवश्यकता, आर्थिक एंव अन्य समस्याओं के हल का विचार तक भी न था, उस खचाखच भरे हुए और जगमगाते हुए हॉल में गाँधीजी बैठे थे-चुप और शान्त, वे आश्चर्यजनक धैर्य के साथ अपने कार्य में व्यस्त रहे और उन्होंने समझौते के लिए सामान्य आधार ढूंढने की दिशा में निरंतर प्रयत्न किये।"[1]

सविनय अवज्ञा आन्दोलन की पुनरावृत्ति एवं स्थगन- गाँधीजी की अनुपस्थिति में दमन चक्र फिर से प्रारम्भ हो गया था। इसलिए गाँधीजी ने भारत आते ही सविनय अवज्ञा आन्दोलन पुनः प्रारम्भ कर दिया। सरकार ने दमन चक्र तेज कर दिया। कांग्रेस को गैर-कानूनी संस्था घोषित कर दिया। गाँधीजी और पटेल के साथ एक लाख बीस हजार व्यक्तियों को जेल में ठूंस दिया गया। देश की परिवर्तित परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए 7 अप्रैल, 1934 ई. को गाँधीजी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन को बिल्कुल समाप्त कर दिया।

साम्प्रदायिक पंचाट एवं पूना समझौता- प्रथम एवं द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में साम्प्रदायिक समस्या का समाधान नहीं हो सका। अतः द्वितीय गोलमेज सम्मेलन के अन्त में ब्रिटिश प्रधानमन्त्री रैम्ज मैकडॉनल्ड ने यह घोषणा की कि, "भारतीय प्रतिनिधि साम्प्रदायिक समस्या को हल करने में असमर्थ रहे हैं। इसलिए ब्रिटिश सरकार इसके सम्बन्ध में अपना निर्णय देगी।" तद्नुसार 16 अगस्त 1932 ई. को मैकडॉनल्ड ने साम्प्रदायिक समस्या पर अपने निर्णय की घोषणा की, जिसे 'साम्प्रदायिक पंचाट' कहा जाता है। मैकडॉनल्ड ने अपने निर्णय की घोषणा में यह भी कहा था,"यदि सरकार को यह विश्वास हो जायेगा कि विभिन्न सम्प्रदायों को एक वैकिल्पिक योजना स्वीकार है, तो वह ब्रिटिश संसद से सिफारिश करेगी कि साम्प्रदायिक पंचाट में रखी गई योजना के बदले में नयी योजना स्वीकार कर ली जाये।"[2]

साम्प्रदायिक पंचाट की मुख्य बातें -

---

1. नेहरु, जे. एल. : ऑटोबायोग्राफी
2. राजेन्द्र प्रसाद (डॉ.) : इण्डिया डिवाइडेड, पृष्ठ 136.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मैकडॉनल्ड द्वारा घोषित निर्णय की मुख्य बातें निम्नलिखित थीं-

(i) पंचाट में केवल प्रान्तीय विधान मण्डल में स्थानों का बंटवारा किया गया था, केन्द्रीय विधान मण्डल के बारे में कुछ नहीं कहा गया था।

(ii) पंचाट में मुसलमानों, सिक्खों, ईसाइयों, ऐंग्ले-इण्डियन और महिलाओं के लिए पृथक् निर्वाचन पद्धति की व्यवस्था की गई।

(iii) इस पंचाट में हरिजनों को भी अल्पसंख्यक सम्प्रदाय माना। हरिजनों को हिन्दुओं से पृथक् करने के उद्देश्य से उन्हें अलग प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया गया। इतना ही नहीं उनके लिए पृथक् निर्वाचन पद्धति की व्यवस्था की गई। इसके अतिरिक्त उन्हें साधारण चुनाव क्षेत्रों में भी एक अतिरिक्त मत का अधिकार दिया गया।

(iv) इस पंचाट में भूमिपतियों, विश्वविद्यालयों, व्यापारियों, उद्योगपतियों के लिए भी अलग चुनाव-क्षेत्र बनाये गये, और उनके लिए सीटें सुरक्षित कर दी गई।

(v) उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त के अतिरिक्त प्रत्येक विधान मण्डल में स्त्रियों के लिए ... प्रतिशत स्थान सुरक्षित कर दिये गये।

(vi) प्रान्तीय विधान मण्डलों की संख्या में वृद्धि कर उसे दुगुना कर दिया गया।

(vii) इस पंचाट द्वारा उन प्रान्तों में जहाँ मुसलमान थोड़ी संख्या में थे, उन्हे अपनी आबादी के अनुपात से अधिक प्रतिनिधित्व देने की व्यवस्था की गई, परन्तु जिन प्रान्तों में हिन्दुओं की थोड़ी संख्या थी, उन्हे मुसलमानों जैसी रियायत नहीं दी गई। उदाहरणस्वरुप, बंगाल और पंजाब में हिन्दुओं की थोड़ी संख्या थी, परन्तु उन्हें आबादी से भी कम स्थान दिये गये।

(viii) पंजाब में सिक्खों और बंगाल में यूरोपियनों को भी उनकी आबादी से अधिक स्थान दिये गये।

(ix) हिन्दुओं को पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त तथा सिन्ध में, जहाँ उनकी संख्या बहुत कम थी, मुसलमानों के समान कुछ रियायतें दी गई।

(x) पंजाब और बंगाल में मुसलमानों का बहुमत होने पर भी पृथक् निर्वाचन पद्धति पूर्ववत् लागू रखी गई।

साम्प्रादायिक पंचाट की आलोचना- साम्प्रदायिक पंचाट की आलोचना निम्नलिखित कारणों से की जाती है-

(i) इस हरिजनों को हिन्दुओं से अलग करने की कोशिश की गई थी, ताकि हिन्दुओं की एकता को विघटित किया जा सके। इसीलिए गाँधीजी तथा अन्य नेताओं ने इस पंचाट का विरोध कि या।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(ii) यद्यपि इस पंचाट द्वारा मुसलमानों को पहले की अपेक्षा अधिक रियायतें दी गई थीं, तथापि वे इससे प्रसन्न न थे। विशेषतया इसलिए कि पंजाब और बंगाल में उनकी जनसंख्या की अपेक्षा बहुत कम प्रतिनिधित्व देने की व्यवस्था की गई थी। उदाहरण स्वरुप, पंजाब में मुसलमानों की जनसंख्या कुल आबादी की 55 प्रतिशत एवं बंगाल में 54.8 प्रतिशत थी, परन्तु उन्हें प्रान्तीय विधान सभा में क्रमशः 49 प्रतिशत एवं 47.5 प्रतिशत सीटें देने की व्यवस्था की गई थी। मुस्लिम लीग ने इसका विरोध करते हुए सरकार से अधिक सीटें देने की मांग की।

(iii) मुसलमानों की तरह हिन्दू भी इस पंचाट से असन्तुष्ट थे। हिन्दुओं का सिन्ध उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त, पंजाब ओर बंगाल में अल्पमत होने के बावजूद भी उन्हें वे रियायतें नहीं दी गई थीं, जो मुसलमानों को उन प्रान्तों में दी गई थीं, जहाँ उनकी संख्या थोड़ी थी। पंजाब में हिन्दुओं को आबादी से कम स्थान दिये गये और उनकी बजाय सिक्खों को आबादी से अधिक स्थान दे दिये गये थे। बंगाल में भी हिन्दुओं के स्थानों को कम करके युरोपियनों को अधिक स्थान दिये गये थें।

(iv) जहाँ मुसलमानों तथा हिन्दुओं को आबादी से कम सीटें देने की व्यवस्था की गई, वहाँ भारतीय ईसाइयों, आंग्ल-भारतीयों एवं यूरोपियनों के साथ अत्यधिक पक्षपात किया गया। यूरोपियन जातियों की जनसंख्या .01 प्रतिशत थी, परन्तु उनको 10 प्रतिशत सीटें देने की व्यवस्था की गई थी।

(v) भारतीय ईसाइयों और स्त्रियों ने कभी भी अलग प्रतिनिधित्व की मांग नहीं की थी। फिर भी, यह पद्धति उन पर लाद दी गई।

(vi) इस पंचाट द्वारा विभिन्न वर्गों में फूट डालकर भारत की एकता को नष्ट करने का प्रयास किया गया। मेहता एवं पटवर्धन लिखते हैं कि, "1919 ई. में निर्वाचन क्षेत्रों को 10 भागों में विभाजित किया गया था और उसमे 17 असमान विभाग किये गये। स्त्रियों तथा भारतीया ईसाइयों पर उनकी इच्छा के प्रतिकूल पृथक् प्रतिनिधित्व सौंपा गया और हरिजनों को साम्प्रादायिक निर्वाचन का अधिकार प्रदान कर हिन्दू समाज को और अधिक निःशस्त्र बना दिया गया। यह विभाजन धर्म एवं व्यवसाय के आधार पर किया गया था तथा संघर्षपूर्ण विभाजन की कोई भी सम्भावना घटाकर नहीं रखी गई थी।"[1]

(vii) इस पंचाट में पृथक् निर्वाचन प्रणाली को न केवल पहले की तरह जारी रखा गया, अपितु उसका विस्तार भी किया गया, ताकि भारत की राष्ट्रीय एकता को खण्डित किया जा सके।

1. मेहता एवं पटवर्द्धन : कम्युनल ट्रीगल, पृष्ठ 72.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(viii) साम्प्रदासिक चुनाव पद्धति लोकतन्त्र के बिल्कुल विरुद्ध थी। इसके परिणाम स्व अन्त में देश का विभाजन हुआ।

(ix) भारत में साम्प्रदायिक चुनाव पद्धति का ऐतिहासिक आधार नहीं था। किसी भी दे देश में जाति, धर्म या लिंग के आधार पर इस तरह अलग-अलग प्रतिनिधित्व नहीं दिया ग उपरोक्त कारणों से सुभाष चन्द्र बोस ने कहा था कि, "अवार्ड सर्वथा तिरस्कार योग्य था"

गाँधी का आमरण अनशन और पूना समझौता- जिस समय साम्प्रदायिक पंचाट घोषणा हुई उस समय गाँधी जी पूना स्थित यर्वदा जेल में बन्दी थे। यह पंचाट गाँधी जी असह्य था, क्योंकि इसके द्वारा दलित वर्गों या हरिजनों को हिन्दुओं से अलग करने हिन्दुओं की एकता को नष्ट करने की कोशिश की गई। गाँधीजी ने द्वितीय गोलमेज सम्मेल भी स्पष्ट रुप से कह दिया था कि यदि हरिजनों के लिए पृथक् निर्वाचन पद्धति की व्यवस्था गई, तो वे उसका जी-जान से विरोध करेंगे। गाँधी जी को जब जेल में साम्प्रदायिक पंचाट जानकारी मिली, तो उन्होंने सरकार को अपने निश्चय को बदलने की चेतावनी दी। सरकार ओर से कोई प्रत्युत्तर नहीं मिलने पर महात्मा गाँधी ने 20 सितम्बर 1932 ई. को ही यर्वदा में आमरण अनशन प्रारम्भ कर दिया। उनका कहना था कि, "हम नहीं चाहते कि अछूत एक पृथक् वर्ग की स्थिति प्रदान की जाय। सिक्ख इस स्थिति में रह सकते हैं और उसी त मुसलमान तथा यूरोपियन भी। पर क्या अछूत सदैव अछूत रहेंगे? मैं चाहता हूँ कि अछूत रहने की अपेक्षा तो हिन्दुत्व ही समाप्त हो जाय तो अच्छा है।"[1]

अनशन के कारण गाँधी जी का स्वास्थ्य उत्तरोत्तर बिगड़ने लगा, परन्तु सरकार ने इ बिल्कुल परवाह नहीं की। ऐसी परिस्थितियों में राजगोपालचारी, सर तेज बहादुर सप्रू, राजेन्द्र प्रसाद, पं. मदनमोहनमालवीय, डॉ. अम्बेडकर, पुरुषोत्तमदास टण्डन तथा घनश्याम बिड़ला जैसे कुछ भारतीय नेताओं ने गाँधीजी से पूना में भेंट की और छः दिन तक परस्पर की। अन्त में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद और मालवीय जी के प्रयत्नों से हरिजनों के प्रमुख नेता अम्बेडकर और गाँधीजी के बीच 26 सितम्बर 1932 ई. को एक समझौता हुआ, जो " समझौता" के नाम से विख्यात है। ब्रिटिश सरकार ने भी इस समझौते को 'साम्प्रदा पंचाट' के रूप में स्वीकार कर लिया और उसे लागू कर दिया। महात्मा गाँधी ने 26 सित को ही अपना आमरण अनशन समाप्त कर दिया।

पूना समझौते की शर्तें- पूना समझौते की प्रमुख शर्तें निम्नलिखित थीं-

(i) इस समझौते के अनुसर हरिजनों के लिए पृथक् निर्वाचन पद्धति का त्याग कर दि

1. पट्टाभिसीतारमैया (डॉ.) : हिस्ट्री ऑफ नेशनल कांग्रेस, भाग (प्रथम), पृष्ठ 385.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गया, किन्तु प्रान्तीय विधान मण्डलों में सुरक्षित स्थान दुगुने से भी अधिक कर दिये गये। साम्प्रदायिक पंचाट के अनुसार हरिजनों को 71 स्थान दिये गये थे परन्तु पूना समझौते के अनुसार उनके 148 स्थान सुरक्षित कर दिये गये । इस प्रकार हरिजनों के प्रतिनिधित्व का अनुपात दुगुना हो गया और निर्वाचन पद्धति संयुक्त बनी रही।

(ii) इन सुरक्षित स्थानों के लिए चुनाव पद्धति के सम्बन्ध में यह निश्चय किया गया कि पहले उस चुनाव क्षेत्र में हरिजन वर्ग के सभी मतदात अपने वर्ग के चार उम्मीदवारों का चुनाव करेंगे और बाद में हिन्दू तथा हरिजन संयुक्त रुप से इन चार उम्मीदवारो में से ही किसी एक को चुन लेंगे। यह व्यवस्था 10 वर्ष तक रहेगी और इसके बाद इस पर फिर से विचार किया जायेगा।

(iii) हरिजनों को सामान्य निर्वाचन क्षेत्रों में भी वोट देने का अधिकार दिया गया।

(iv) केन्द्रीय विधान मण्डल में हरिजनों का संयुक्त चुनाव पद्धति के आधार पर प्रतिनिधित्व दिया गया, परन्तु उसमें भी ब्रिटिश भारत के लिए निर्धारित सामान्य स्थानों में से 20 प्रतिशत स्थान हरिजनों के लिए सुरक्षित रखे गये।

(v) स्थानीय संस्थाओं और सार्वजनिक सेवाओं में हरिजनों को उनकी शैक्षणिक योग्यता के आधार पर उचित प्रतिनिधित्व दिया गया।

(vi) हरिजनों को शिक्षा के लिए आर्थिक सहायता देने की शर्त भी रखी गई। प्रो. कीथ ने पूना समझौते के बारे में लिखा है कि,"यह समझौता दलित वर्गों के लिए स्पष्ट रुप से भौतिक लाभ और मि. गाँधी के लिए निस्सन्देह आध्यात्मिक लाभ के रुप में था।"[1] पूना समझौता में हिन्दू समाज में साम्प्रदायिकतावाद की स्वीकार करना कांग्रेस की बहुत बड़ी भूल थी। यद्यपि इस समझौते से हरिजनों की दशा में सूधार हुआ था। हरिजनों को मन्दिरों तथा अन्य सार्वजनिक स्थानों पर प्रवेश करने का अधिकार मिला और उन्हे कुछ हद तक समानता का दर्जा प्राप्त हुआ।

तृतीय गोलमेज सम्मेलन (17 दिसम्बर से 24 दिसम्बर 1932 ई.)

यद्यपि अनुदार दलीय सरकार भारत में क्रान्तिकारी परिवर्तनों के विरुद्ध थी। फिर भी उसे इस दिशा में कुछ निर्णय तो करना ही था। अतः गोलमेज का तीसरा सम्मेलन लन्दन में बुलाया गया। यह सम्मेलन 17 नवम्बर 1932 ई. से 24 दिसम्बर 1932 ई. तक चला। यह सम्मेलन महज एक औपचारिकता थी। इसमें 46 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। सम्मेलन में इंग्लैण्ड की लेबर पार्टी ने भाग नहीं लिया, क्योंकि इसके द्वारा सम्मेलन के लिए मनोनीत किये

1. कीथ. ए. बी. : कॉन्स्टिट्यूशनल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृष्ठ 307.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गये सदस्यों को सरकार ने स्वीकार नहीं किया था। कांग्रेस का तो इस सम्मेलन के लिए मनोनीत किये गये सदस्यों को सरकार ने स्वीकार नहीं किया था। कांग्रेस का तो इस सम्मेलन में भाग लेने का प्रश्न ही नहीं उत्पन्न होता था। इसलिए यह सम्मेलन पूर्णतया असफल हुआ। कुछ भारतीय प्रतिनिधि जो सरकार की हाँ में हाँ मिलाने वाले थे, अवश्य ही सम्मेलन में शामिल हुए। सम्मेलन में केवल उन-समितियों के प्रतिवेदनों पर विचार किया गया और पहले दो सम्मेलनों में निश्चित की गई बातों की पुष्टि की गई। प्रो. ए.सी.बनर्जी के अनुसर, "इस सम्मेलन की सफलता केवल इतनी ही थी कि इसमें यह विचार उद्भव हुआ कि ब्रिटिश भारत के प्रान्तों और भारतीय रियासतों को मिलाकर 'भारत राज्य संघ' की स्थापना की जायेगी।"

श्वेत-पत्र - संयुक्त प्रवर समिति

ब्रिटिश सरकार ने मार्च 1933 में एक श्वेत-पत्र प्रकाशित किया, जिसमें भारत के नये संविधान के प्रस्तावों का उल्लेख किया गया था। सी.वाई.चिन्तामणि के शब्दों में,"इसके सभी प्रस्ताव इतने प्रतिगामी थे कि भारत के प्रत्येक प्रगतिशील लोकमत के लिए सर्वथा अस्वीकार्य थे।"[1] यह श्वेत-पत्र भारतीय जनमत की आशाओं के अनुरुप नहीं थे। अतः इसकी तीव्र निन्दा की गई, परन्तु सरकार ने इसकी बिल्कुल भी परवाह नहीं की। अप्रैल-1933 ई. में लार्ड लिनलिथगों की अध्यक्षता में संसद के दोनों सदनों की एक संयुक्त प्रवर समिति बनाई गई, जिसे श्वेत-पत्र में प्रकाशित प्रस्तावों पर विचार करने को कहा गया। इसमें ब्रिटिश भारत एवं देशी राज्यों के प्रतिनिधियों को अपना विचार व्यक्त करने के लिए बुलाया गया। समिति में अनुदार दल का बहुमत था। समिति ने भारतीय जनमत की सर्वथा उपेक्षा कर कुछ ऐसे सुझाव भी दिये, जो मूल प्रस्तावों से भी खराब थे। 11 नवम्बर 1934ई. को इस कमेटी की रिपोर्ट प्रकाशित हुई। रिपोर्ट श्वेत-पत्र से भी अधिक प्रतिगामी थी। इस रिपोर्ट के आधार पर एक अधिनियम ब्रिटिश पार्लियामेन्ट द्वारा पास किया गया, जो सम्राट की अनुमति पाने के बाद भारत सरकार का 1935 का ऐक्ट कहलाया। इसमें पूर्ण स्वराज्य का कहीं जिक्र तक नहीं था।

□ □ □

1. चिन्तामणि, सी. वाई. : इण्डियन पोलिटिक्स सिंस द म्यू-टिनि, पृष्ठ 185.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

9 भारतीय शासन अधिनियम (1935 ई0)

1935 का भारत सरकार अधिनियम उत्तरदायी शासन की स्थापना की दिशा मे दूसरा महत्वपूर्ण कदम था। 1919 का अधिनियम भारतीय जनता तथा राजनीतिक दलों को सन्तुष्ट नहीं कर सका, क्योंकि इसमें स्वतन्त्रता की गन्ध भी नहीं थी। कांग्रेस ने इसे अपर्याप्त, असन्तोषजनक और निराशापूर्ण बताया। लोकमान्य तिलक ने इनकी आलोचना करते हुए घोषणा की कि,"ये सुधार स्वीकार करने के बिल्कुल योग्य नहीं है।" श्रीमती एनीबीसेन्ट ने भी कहा कि-"इंग्लैण्ड जैसे देश के लिए इस प्रकार का संविधान देना शोचनीय बात नहीं है।" अतः भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की गति तीव्र हो गई। फलस्वरूप 1919 के सुधारों की जांच करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने 1927 में साइमन कमीशन भेजा। इस कमीशन के सातों सदस्य अंग्रेज थे। चूंकि इसमें कोई भारतीय सदस्य नहीं था, अतः भारतीयों ने कमीशन का बहिष्कार का निश्चय किया। तत्पश्चात भारतीय नेताओं ने नेहरू रिपोर्ट तैयार की, जिसमें औपनिवेशिक स्वराज्य की मांग की गई थी। कांग्रेस ने 1929 ई. में लाहौर अधिवेशन में अपने पूर्ण स्वराज्य की मांग की। साइमन कमीशन की रिपोर्ट का सभी दलों ने विरोध किया। भारत की वैधानिक समस्या हल करने के लिए लण्दन में 1930, 1931 और 1932 में तीन गोलमेज सम्मेलन आयोजित किये गये, लेकिन वे असफल रहे। इन गोलमेज सम्मेलनों में हुए विचार-विमर्श के आधार पर ब्रिटिश सरकार ने मार्च 1933 में एक श्वेत पत्र प्रकाशित किया, जिसमें भारत में किये जाने वाले शासन सुधारों का उल्लेख था। श्वेत पत्र के प्रस्तावों पर विचार कने के लिए ब्रिटिश संसद के दोनो सदनों के सदस्यों की एक संयुक्त समिति ने 1934 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट तथा श्वेत पत्र के आधार पर 3 अगस्त 1935 ई. को ब्रिटिश संसद ने 1935 का भारत सरकार का अधिनियम पास किया।

I. अधिनियम की विशेषताएँ

1935 के भारतीय शासन अधिनियम की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित थीं-

(1) प्रस्तावना- 1935 के अधिनियम में कोई नई प्रस्ताव नहीं जोड़ी गई, क्योकि ब्रिटिश

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सरकार ने इस अधिनियम के लक्ष्य के सम्बन्ध में किसी नयी नीति की घोषणा नहीं की थी, जिससे कि अधिनियम के निर्दिष्ट ध्येय या उद्देश्य का ज्ञान हो सके। 1919 के ऐक्ट के रद्द करने के बावजूद इसकी प्रस्तावना को 1935 के अधिनियम के साथ जोड़ दिया गया, जिससे भारतीयों को यह पता रहे कि ब्रिटिश सरकार का अन्तिम लक्ष्य भारत में "औपनिवेशिक स्वराज्य" की स्थापना करना है।

(2) लम्बा प्रलेख- 1935 का भारतीय शासन अधिनियम बहुत लम्बा और जटिल प्रलेख था। इसमें 14 भाग, 321 धाराएँ और 10 परिशिष्ट थे। इसमें केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों के ढांचे का विस्तृत वर्णन किया गया था। भारत के संवैधानिक विकास की प्रक्रिया में इस अधिनियम का सर्वाधिक महत्व है। स्वतंत्र भारत के नवीन संविधान का आधार यही अधिनियम बना।

(3) ब्रिटिश संसद की सर्वोच्चता-1935 के ऐक्ट में संशोधन, सुधार या रद्द करने का अधिकार ब्रिटिश संस्सद के पास रखा गया। अधिनियम में किसी भी प्रकार के परिवर्तन का अधिकार प्रान्तीय विधान मण्डल तथा संघीय व्यवस्थापिका को नहीं दिया गया। वे केवल विशेष परिस्थितियों के कुछ विशेषज्ञों के सम्बन्ध में सुझाव दे सकते थे, परन्तु उस पर अन्तिम निर्णय लेने की शक्ति ब्रिटिश संसद के हाथों में थी। इस प्रकार, भारतीय भाग्य के निर्णय की अन्तिम सत्ता ब्रिटिश संसद के पास बनी रही।

(4) प्रान्तीय स्वायत्तता-1935 के अधिनियम की सबसे बड़ी विशेषता प्रान्तीय स्वराज्य या प्रान्तीय स्वायत्तता की स्थापना की। रक्षित और हस्तान्तरित विषयों के विभाजन को समाप्त कर दिया गया। प्रान्तों को एक नया संवैधानिक दर्जा दे दिया गया। प्रान्तों को प्रान्तीय विषयों पर केन्द्र के हस्तक्षेप के बिना कानून बनाने का अधिकर दिया गया। प्रान्तीय विषयों के शासन का भार ऐसे मन्त्रियों को सौंपा गया, जो विधान मण्डल के प्रति उत्तरदायी थे। यद्यपि प्रान्तीय कार्यपालिका का प्रधान गवर्नर ही था, परन्तु उससे यह आशा की गई कि वह मन्त्रियों की सलाह के आधार पर ही प्रशासन का संचालन करेगा। यह भी निश्चय किया गया कि मन्त्रिमण्डल सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त पर आधारित होगा। इस प्रकार 1935 के अधिनियम द्वारा प्रान्तों को पूर्ण स्वायत्तता की स्थिति प्रदान की गई तथा उनमें पूर्ण उत्तरदायी शासन की स्थापना की गई। मंत्रियों के मामलों में गवर्नर बहुत कम दखल देते थे, यद्यपि उनके पास काफी शक्तियाँ थीं।

(5) केन्द्र में द्वैध शासन की स्थापना-1935 के अधिनियम द्वारा प्रान्तों में द्वैध शासन प्रणाली को समाप्त कर दिया गया, किन्तु अब उसे केन्द्र में लागू कर दिया गया। केंद्रीय विषयों को दो भागों में बांटा गया- रक्षित विषय और हस्तांतरित विषय। रक्षित विषय में प्रतिरक्षा, धर्म सम्बन्धी मामले, विदेशी मामले और कबीलों के मामले शामिल थे, जिनका शसन गवर्नर जनरल अपनी इच्छानुसार चला सकता था। रक्षित विषयों पर विधान मण्डल का नाम मात्र का नियन्त्रण था। रक्षित विषयों के शासन में सहायता के लिए गवर्नर कार्यकारिणी परिषद के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सहायता लेता था, जिसमें सदस्यों की संख्या अधिक से अधिक 3 होती थी। इनकी नियुक्ति सम्राट द्वारा होती थी और वे गवर्नर जनरल के प्रति उत्तरदायी होते थे। ये केन्द्रीय विधान मण्डल के दोनों सदनों के सदस्य थे और उनकी बैठकों में भाग लेते थे, परन्तु उनके प्रति उत्तरदायी नहीं थे।

गवर्नर जनरल एक मंत्रिपरिषद की सहायता से हस्तान्तरित विषयों के शासन का संचालन करता था। ये मंत्री संघीय विधान मण्डल के प्रति उत्तरदायी होते थे। मंत्रियों की संख्या 10 से अधिक नहीं हो सकती थी। वे गवर्नर जनरल द्वारा नियुक्त एवं पदच्युत किये जाते थे। मंत्रियों के लिए संघीय विधान मण्डल के किसी एक सदन का सदस्य होना आवश्यक था। यदि कोई ऐसा व्यक्ति मंत्री पद पर नियुक्त कर दिया जाता, जो किसी सदन का सदस्य न हो तो, उसे 6 महीने के अन्दर विधान मण्डल का सदस्य बनना पड़ता था या त्याग पत्र देना पड़ता था। गवर्नर जनरल को रक्षित और हस्तान्तरित दोनों विषयों के शासन संचालन का अधिकार दिया गया, परन्तु उससे यह आशा की गई कि वह हस्तान्तरित विषयों के शासन का संचालन मंत्रियों की सहायता से करेगा, किन्तु हस्तांतरित विषयों के सम्बन्ध में गवर्नर जनरल को विशेष अधिकार दिये गये थे। अतः उचित व्यवस्था के नाम पर वह मंत्रियों के कार्य में हस्तक्षेप कर सकता था। वस्तुतः संघ में उत्तरदायी सरकार की स्थापना एक विडम्बना थी। के.टी. शाह के शब्दों में, एकता का अभाव मन्त्रियों को जनकल्याण की दृष्टि से कोई महत्वपूर्ण कार्य करने में बाधक हो सकता था।"[1]

(6) अखिल भारतीय संघ- 1935 के एक्ट के अनुसर यह निर्णय किया गया कि केन्द्र में ब्रिटिश प्रान्तों और देशी रियासतों को मिलाकर एक संघ स्थापित किया जाएगा। यह संघ 11 ब्रिटिश गवर्नर प्रान्तों, 6 चीफ कमिशनर प्रान्तों और देश रियासतों को मिलाकर बनाया जाना था। यह संघ दो शर्तें पूरी होने के पश्चात शाही घोषणा द्वारा स्थापित किया जाना था-

(i) संघीय संसद के दोनों सदन सम्राट से संघ की स्थापना हेतु प्रार्थना करें।

(ii) इतनी देशी रियासतें संघ में सम्मिलित होने की स्वीकृति दे दें कि उनकी जनसंख्या कुल रियासती प्रजा की जनसंख्या की आधी से अधिक हो और जो संघीय राज्य सभा में 52 स्थानों से अधिक स्थानों की अधिकारी हो।

इस अधिनियम के अनुसार ब्रिटिश प्रान्तों के लिए संघ में शामिल होना अनिवार्य था, परन्तु देशी रियासतों के लिए ऐच्छिक था। संघ में सम्मिलित होने की इच्छुक प्रत्येक देशी रियासत को एक प्रवेश पत्र या स्वीकृति लेख पर हस्ताक्षर करने पड़ते थे, जिसमें संघ में शामिल होने की शर्तों का उल्लेख होता था। इस स्वीकृति लेख में उन सब शक्तियों का वर्णन होता था, जो रियासत संघ को देना चाहती थी। संघ की समस्त इकाइयों को अपने अतिरिक्त मामलों में पूर्ण स्वायत्ता प्राप्त थी। केन्द्र में एक संघीय कार्यकारिणी तथा व्यवस्थापिका सभा की स्थापना की

1. शाह के. टी. : फेडरल स्ट्रक्चर, पृष्ठ 250.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गई। संघ और इसकी इकाइयों के झगड़ों का फैसला करने के लिए एक संघीय न्यायालय भी स्थापना की गई। चुंकि देशी रियासतें संघ में सम्मिलित नहीं हुई, अतः प्रस्तावित संघ की स्थापना न हो सकी।

(7) विषयों का बटवाँरा-1935 के अधिनियम द्वारा समस्त विषयों को तीन सूचियों में बाँटा गया-संघी सूची, प्रान्तीय सूची एवं समवर्ती सूची। संघीय सूची में 59 विषय प्रान्तीय सूची में 54 विषय और समवर्ती सूची में 36 विषय रखे गये। संघीय सूची में अखिल भारतीय महत्व के विषय रखे गये थे। उदाहरण स्वरुप , सशस्त्र सेनाएं, वैदेशिक विभाग, डाक, तार, मुद्रा, नोट, रेल, संघीय लोक सेवाएँ, संचार, बीमा तथा बैंक इत्यादि विषय संघीय सूची में रखे गये। प्रान्तीय हित के विषय प्रांतीय सूची में रखे गये जैसे- शिक्षा, भू-राजस्व, स्थानीय स्वशासन, कानून और व्यवस्था, सार्वजनिक स्वास्थ्य, कृषि, सिंचाई और नहरें, जंगल, प्रांत के अन्दर व्यापार और उद्योग-धन्धे, न्याय, सड़क, प्रांतीय लोक सेवाएं आदि। समवर्ती सूची में 36 विषय रखे गये थे, जिनमें दीवानी तथा फैजदारी, विधि, विवाह, तलाक, उत्तराधिका, दत्तक ग्रहण, ट्रस्ट, कारखाने तथा श्रम कल्याण आदि प्रमुख थे।

संघीय सूची के विषयों पर संघीय विधन मण्डल और प्रान्तीय सूची के विषयों पर प्रान्तीय विधान मण्डल को ही कानून बनाने का अधिकार था। समवर्ती सूची के विषयों पर केन्द्रीय और प्रान्त दोनों ही विधान मण्डल कानून बना सकते थे। यदि प्रान्तीय और केन्द्रीय विधान मण्डल के कानून में किसी प्रकार का विरोध उत्पन्न हो जाता था, तो केन्द्रीय विधान मण्डल का कानून ही मान्य होता था।

अवशिष्ट शक्तियों के बारे में यह व्यवस्था की गई थी कि गवर्नर जनरल अपनी इच्छा से केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय विधानमण्डल को इन विषयों पर कानून बनाने की शक्ति दे सकता था। इस अधिनियम में अधिकारों के विभाजन की ऐसी अनोखी पद्धति अपनाई गई थी, वैसी विश्व के किसी संविधान में नहीं थी। समवर्ती सूची में संघ को उच्चता दे दी गई और अवशिष्ट शक्तियों के सम्बन्ध में गवर्नर जनरल को अधिकार दे दिया गया।

(8) संघीय न्यायालय-1935 के एक्ट द्वारा भारत में एक संघीय न्यायालय की स्थापना की व्यवस्था भी की गई थी। इसका कार्य संघ सरकार और इकाइयों (देशी रियासतें और ब्रिटिश प्रान्तों) के मध्य तथा इकाइयों के आपस में उत्पन्न होने वाले विवादों का निर्णय कराना था। इसे अधिनियम की धाराओं की व्याख्या करने का भी अधिकार दिया गया। संघीय न्यायालय भारत के लिए सर्वोच्च न्यायालय नहीं था, क्योंकि कुछ विशेषपरिस्थितियों में इसके निर्णयों के विरुद्ध अपील प्रिवी कौंसिल में की जा सकती था।

(9) संरक्षण और आरक्षण- प्रान्तीय क्षेत्र में स्वराज्य व केन्द्र में अधिकांश उत्तरदायी शासन दोनो पर ही अनेक सीमाएं व प्रतिबन्ध लगाये गये थे। अधिनियम में विशेषज्ञ हितों और अल्पमतों की रक्षा के लिए अनेक आरक्षणों और संरक्षणों की व्यवस्था की गई थी। गवर्नर जनरल और गवर्नरों पर विशेष उत्तरदायित्व सौंपे गये थे, जिनके लिए उन्हें अपार शक्तियाँ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गई ताकि वे शासन पर प्रभावशाली नियन्त्रण रख सकें। इन शक्तियों के कारण विधान मण्डलों के अधिकार अत्यन्त सीमित हो गये तथा मंत्रियों के कार्यों में हस्तक्षेप करने तथा उनके परामर्श के विरुद्ध कार्य करने की खुली छूट मिल गई। आपातकाल में आवश्यकता पड़ने पर गवर्नर जनरल सम्पूर्ण शासन की बागडोर अपने हाथ में ले सकता था। इसके अतिरिक्त विशेष शक्तियों का बहाना लेकर राष्ट्रीय आन्दोलन का दमन कर सकते थे। इसलिए डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने कहा था कि, "यह कहना कि ये विषय हस्तान्तरित हैं, बिल्कुल छल और धूर्तता है, जबकि उनके विषय में जिम्मेदारियाँ अंग्रेजों के पास सुरक्षित हैं। गवर्नर, गवर्नर जनरल और ब्रिटिश ताज तथा संसद द्वारा दी हुई विस्तृत शक्तियों ने प्रांतीय स्वराज्य को नहीं के बराबर कर दिया है, जो कि भारतीयों के लिए सबसे बड़ा पुरस्कार था।" कूपलैण्ड के अनुसर, "निश्चित रूप से ये सुरक्षा सम्बन्धी अधिकार इस बात का फिर से स्मरण कराने वाले तत्व थे कि 1935 के एक्ट द्वारा भारतवर्ष को औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त नहीं होगा।"

(10) विधान मण्डलों और मताधिकार का विस्तार-1935 के एक्ट द्वारा प्रान्तीय और केन्द्रीय विधान मण्डलों की सदस्य संख्या में भी काफी वृद्धि की गई। केन्द्र में विधान सभा के सदस्यों की संख्या 275 और राज्य सभा के सदस्यों की संख्या 260 निर्धारित की गई। इसी प्रकार प्रान्तीय विधानमण्डलों का आकार भी लगभग दुगुना कर दिया गया और 6 प्रान्तों में विधानमण्डलों को दो सदनों वाला बनाया गया। मताधिकार का भी विस्तार किया गया। प्रान्तों के लिए 10 प्रतिशत जनता को वोट देने का अधिकार दिया गया। यद्यपि साम्प्रादायिक चुनाव प्रणाली देश और राष्ट्रवाद के लिए हानिकारक थी, परन्तु फिर भी अंग्रेजों ने इसका और अधिक विस्तार कर दिया, ताकि वे लम्बे समय तक भारत पर शासन कर सकें।

(11) साम्प्रादायिक चुनाव पद्धति को कायम रखना- यद्यपि साम्प्रदायिक चुनाव पद्धति देश के हित में नहीं थी, परन्तु अंग्रेजों ने भारत में फूट डालों और राज करों की नीति का अनुसरण करते हुए साम्प्रदायिक चुनाव पद्धति को न केवल कायम रखा, अपितु इसका और अधिक विस्तार भी किया गया। हरिजनों के लिए भी साम्प्रदायिक निर्वाचन पद्धति अपनाई गई। मुसलमानों को संघीय व्यवस्थापिका सभा के दोनों में एक-तिहाई स्थान प्रदान किये गये, यद्यपि उनकी संख्या इस अनुपात में नहीं थी। ईसाइयों, आंग्ल भारतीयों और यूरोपियानो को पृथक चुनाव प्रणाली के आधार पर विधानमण्डलों में प्रतिनिधित्व दिया गया। नयें अधिनियम के द्वारा मजदूरों और स्त्रियों का प्रतिनिधित्व के अलग अधिकार दिये गये।

(12) भारतीय परिषद् की समाप्ति- 1935 के अधिनियम द्वारा भारतीय परिषद को समाप्त कर दिया गया। इसके स्थान पर भारत सचिव के लिए कुछ परामर्शदाता नियुक्त किये गये, जिनकी संख्या कम से कम 3 और अधिक से अधिक 6 निर्धारित की गई। इन परामर्शदाताओं से परामर्श लेना अथवा न लेना भारत-मंत्री की इच्छा पर निर्भर था, लेकिन सेवाओं के सम्बन्ध में भारत मन्त्री के लिए इन परामर्शदाताओं का परामर्श मानना आवश्यक था। हस्तान्तरित विषयों के सम्बन्ध में भारत-मंत्री का नियन्त्रण काफी कम कर दिया गया,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लेकिन जिन विषयों में गवर्नरों और गवर्नर जनरल को मनमानी शक्तियां प्राप्त थी, भारत सचिव का नियन्त्रण पहले की भांति बना रहा।

(13) बर्मा, बरार और अदन- इस अधिनियम द्वारा बर्मा को भारत से अलग कर गया। अदन को भारत सरकार के नियंत्रण से मुक्त करके इंगलैण्ड के उपनिवेश कार्या अधीन कर दिया गया। यद्यपि बरार के ऊपर निजाम हैदराबाद की नाममात्र की सत्ता स्वी कर ली गई, परन्तु उसको शासन की दृष्टि से मध्य प्रान्त का अंग बना दिया गया।

1935 के अधिनियम की आलोचना

प्रो. कूपलैण्ड ने 1935 के अधिनियम की 'रचनात्मक राजनीतिक विचार की एक सफलता' बतलाया।[1] उनका कहना था कि इस अधिनियम ने "भारत के भाग्य का हस्ता अंग्रेजों के हाथों से भारतीयों के हाथों में सम्भव कर दिया।"[2] अधिनियम में निहित दो कारण प्रो. कूपलैण्ड के विचार को स्वीकार नहीं किया जा सकता। यही कारण था कि वि भारतीय नेताओं द्वारा अधिनियम पर अपनी प्रतिक्रियाँ इस प्रकार व्यक्त की गई थीं। पं. मोहन मालवीय ने कहा कि; "नया अधिनियम हम पर थोपा गया है, बाहर से यह जनतान्त्रीय शासन-व्यवस्था से मिलता है, परन्तु भीतर से बिल्कुल खोखला है।" राजगोपाल के शब्दों में, "नया संविधान द्वैध शासन से भी बुरा है।" मि. मोहम्मद अली जिन्ना ने तो तक कह दिया कि, "1935 की योजना पूर्णरूप से सड़ी हुई, मौलिक रूप से खराब तथा पू से अस्वीकृति के योग्य थी।" बंगाल के मुख्य मन्त्री फजुल हक ने कहा था, "193 अधिनियम के अन्तर्गत न हिन्दू राज्य स्थापित होता है, और न मुस्लिम राज्य इससे अंग्रेजी राज्य स्थापित होता है।"

वस्तुतः यह एक ऐसी मशीन थी, जिसके बहुत मजबूत ब्रेक थे परन्तु इन्जन कोई नहीं श्री जवाहर लाल नेहरू ने इस ऐक्ट के सम्बन्ध में बिल्कुल ठीक ही कहा था कि, अधिनियम तो दासता का घोषणा-पत्र है। इसमें प्रस्तावित भारतीय संघ की रूपरेखा निर्मित की गई है कि किसी प्रकार का वास्तविक विकास असम्भव हो जाये तथा भा जनता के प्रतिनिधियों के लिए भी ब्रिटिश नियन्त्रित शासन प्रणाली में परिवर्तन कर स लिए तनिक भी गुंजाइश नहीं छोड़ी गयी है- यह एक प्रतिक्रियावादी रूपरेखा थी, जिसमें किसी प्रकार की क्रान्तिकारी क्रिया के स्वयं विकसित हो सकने की क्षमता का अभाव था अधिनियम से ब्रिटिश सरकार की भारतीय नरेशों, जमीदारों तथा भारत के अन्य प्रतिक्रिया तत्त्वों से मित्रता और भी अधिक मजबूत हो गयी। इससे पृथक निर्वाचन पद्धति को बढ़ावा गया तथा इस प्रकार पृथकतावदी प्रवृत्तियों को बढ़ावा मिला। इस अधिनियम ने व्यापार, उद्योग, बैंकिंग तथा जहाजी व्यापार को, जिनका पहले से आधिपत्य था, अ

---

1. कूपलैण्ड : इण्डिया, ए रिस्टेटमेंट, पृष्ठ 145.
2. कूपलैण्ड : द इण्डियन प्रोबलम् (1833-1935) पृष्ठ 147.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

क सुदृढ़ किया। इस अधिनियम के अनुसार भारत सरकार के राजस्व, सेना तथा वैदेशिक सम्बन्धी सब मामलों में पूर्ण नियन्त्रण पूर्ववत ब्रिटिश हाथों में ही बना रहा और इसने राय को पहले से भी अधिक शक्तियां सौंप दी।"[1] इकबाल नारायण के अनुसार,"इस ऐक्ट मुख्य विशेषता थी उसका कृत्रिम और अयथार्थ स्वरूप जो उसका लिखित रूप था, व उसका वास्तविक रूप न था। सैद्धान्तिक रूप में तो वह उत्तरदायी सरकार का आज्ञा पत्र था, परन्तु व्यवहारिक रूप में वह निरंकुशता का कवच मात्र था।" सुभाष बोस ने कहा था कि, "यह तो सर्वविदित स्वतः सिद्ध सत्य है कि प्रत्येक साम्राज्य 'फूट डालों और राज करो' की नीति आधारित होता है। किन्तु मुझें सन्देह है कि संसार में अन्य किसी साम्राज्य ने इस नीति का नी निपुणता के साथ अनुसरण किया है, जितना ब्रिटेन ने। नयें सविधान (1935) में भी वही जन की नीति एक दूसरे चोले में सामने आती है। इसके द्वारा विभिन्न जातियों को एक-से अलग करने की तथा उन्हें अलग-अलग खेमों में सीमित करने की कोशिश की गई।" ना आजाद ने इस अधिनियम के सम्बन्ध में अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये-" यद्यपि 5 के अधिनियम द्वारा प्रान्तीय स्वशासन की व्यवस्था की गयी थी, लेकिन अधिनियम में क दोष थे। गवर्नर को संकटकाल घोषित करने की विशेष शक्ति प्राप्त थी और गवर्नर टकाल की घोषणा कर संविधान भंग कर सकता था तथाा इसकी शक्तियां अपने हाथ में ले ता था। इस प्रकार प्रान्तों में प्रजातंन्त्र उसी समय तक कार्य कर सकता था, जब तक कि र इस बात की आज्ञा दे। केन्द्रीय सरकार में स्थिति इससे भी बुरी थी। संघ में केन्द्रीय कार को निर्बल तो रखा ही गया, इससे देशी नरेशों और निहित स्वार्थों के पक्ष में शक्ति का धिक सन्तुलन कर दिया गया था। उनसे सामान्यतया देश के ब्रिटिश शासकों के साथ कर कार्य करने की आशा की जाती थी।"[2]

यद्यपि इस अधिनियम द्वारा प्रान्तों में स्वराज्य व केन्द्र में आंशिक उत्तरदायित्व की व्यवस्था गई थी, लेकिन गवर्नर जनरल तथा गवर्नरों को विशेष शक्तियां प्रदान कर उत्तरदायी कार की स्थापना निरर्थक कर दी थी। "अधिनियम के द्वारा औपनिवेशिक स्वराज्य की णा न किये जाने के कारण अत्याधिक उदार भारतीयों के लिए भी इसका समर्थन करना व नहीं थी।" भारतीय नेताओं के साथ-साथ निष्पक्ष अंग्रेजों तक ने इस अधिनियम की लोचना की थी। ऐक्ट की आलोचना करते हुए मि. एटली ने कॉमन्स सभा मे कहा था,"इस व का मुख्य तथ्य है-अविश्वास इसमें विश्वास का नाम तक नहीं है। भारतवर्ष को अपनी सा-नीति तथा आय पर कोई नियंत्रण प्रदान नहीं किया गया है। प्रांतों के भारतीय निवासी के प्रति आतंक का व्यवहार करने योग्य नहीं है। प्रस्ताव में प्रत्येक स्थान पर जो बात वित की गयी है वह यह नहीं है कि हम एक ऐसा विधान प्रस्तुत कर रहे हैं, जिसका सन भारतीय करेंगे, बल्कि प्रत्येक स्थान पर सब प्रकार के प्रतिबन्ध उपस्थित हैं। वास्तव में,

नेहरु, जे. एल. : डिस्कवरी ऑफ इण्डिया, पृष्ठ 310.

मौलाना आजाद : इण्डिया विन्स फ्रीडम, पृष्ठ 13.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस प्रस्ताव में एक बात छोड़ी गयी प्रतीत होती है और वह है भारतीय जन।"

1935 के अधिनियम की आलोचना के प्रमुख आधार निम्नलिखित हैं-

(1) दोषपूर्ण संघ- 1935 के ऐक्ट के अनुसार केन्द्र में जिस संघ की स्थापना सुझाव दिया गया, वह अत्यन्त दोषपूर्ण था। इस संघ में ब्रिटिश प्रांतों को मिलाना अनि परन्तु देशी रियासतें संघ में शामिल होने अथवा न होने के सम्बन्ध में स्वतन्त्र थीं प्रांतों और देशी रियासतों की जनसंख्या, आकार, क्षेत्रफल, महत्त्व और दर्जे में घोर अ थी। ब्रिटिश प्रान्तों में स्वायत्त्ता की स्थापना हो चुकी थी और दिशी रियासतों में निरं साम्राज्य था। ऐसी दो असमान इकाइयों का गठजोड़ नितान्त अव्यावहारिक था। पारदसानी के शब्दों में, "संघ में तेजी से स्वशासन की ओर बढ़ने वाले व्यक्तियों और राजाओं के अधीन रहने वाली प्रजा के बीच एक विचित्र संवैधानिक अनमेल गठजोड़

संघ में देशी रियासतों के प्रतिनिधि भेजने का अधिकार वहां की जनता के शासकों को दिया गया था। इसके अतिरिक्त गवर्नर जनरल को विशेषाधिकार देकर शक्तियों को काफी सीमित कर दिया गया था। श्री चिन्तामणि ने ठीक ही कहा था सभी अवांछित लक्षणों से पूर्ण एक लंगड़ा संघ प्रदान किया जा रहा है।"[2]

(2) प्रान्तीय स्वायत्तता निरर्थक- इस अधिनियम द्वारा प्रान्तीय स्वायत्त स्थापन्न की गई थी, परन्तु व्यवहार में वह सर्वथा निरर्थक थी। इसका कारण गवर्नर जनरल और गवर्नरों को ऐसे विशेषाधिकार दिये गये थे, जिनके द्वारा वह प्र में हस्तक्षेप कर सकता था। गवर्नर जनरल आपातकालीन स्थिति की घोषणा कर का शासन अपने हाथ में ले सकता था। गवर्नर अपने मन्त्रियों के परामर्श को मानने बाध्य नहीं था। ऐसी स्थिति में प्रान्तीय स्वायत्तता एक मजाक बनकर रह गया था शासन में वास्तविक शक्ति मुख्य मंत्री के पास नहीं, अपितु गवर्नर के हाथ में थी। राजेन्द्र प्रसाद ने 1934 में कांग्रेस के अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा था," यह कहन विषय हस्तान्तरित हैं, बिल्कुल छल और धूर्त्तता है, जबकि उनके सम्बन्ध में अं अंग्रेजों के पास सुरक्षित है। गवर्नर, गवर्नर जनरल, ब्रिटिश मुकुट तथा संसद विस्तृत शक्तियों ने प्रान्तीय स्वराज्य को नहीं के बराबर कर दिया है, जो कि भारतीय सबसे बड़ा पुरस्कार था।[3] नेहरु ने इस अधिनियम की आलोचना करते हुए लिखा है संविधान एक ऐसा यंत्र था, जिसकी ब्रेक तो दृढ़ थी, परन्तु जिसका कोई इंजन नहीं

(3) संरक्षण और आरक्षण की व्यवस्था- विशेष हितों और अल्पमतों की रक्षा के अधिनियम में आरक्षण और संरक्षण की व्यवस्था की गयी थी। वस्तुतः यह व्यवस्था

1. पारदसानी, एन.एस. : हाउ इण्डिया इज गवर्न्ड, पृष्ठ 317.
2. चिन्तामणि एण्ड मसानी : इण्डियाज कॉन्स्टिट्यूशन एण्ड वर्क, पृष्ठ 202.
3. प्रेसीडेन्टल एड्रेस ऐट बोम्बे, 1934.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दायी शासन को असफल करने की एक अनोखी साजिश थी। ये उपाय ब्रिटिश साम्राज्य के की रक्षा करने के लिए ही किये गये थे। इस अधिनियम के द्वारा गवर्नरों तथा गवर्नर ल को इतनी अधिक शक्तियाँ मिल गई कि उनकी स्थिति किसी स्वेच्छाचारी शासन से कम थी। अल्पमत अपने हितों रक्षा के लिए सदैव अंग्रेजों की नीति का समर्थन करते थे। अंग्रेज भारत की प्रगति के मार्ग में उनके हितों का नाम लेकर रोड़ा अटकाते थे।

(4) साम्प्रदायिक चुनाव प्रणाली का विस्तार- यद्यपि साम्प्रदायिक चुनाव प्रणाली देश के में नहीं थी और सबने एक स्वर से इसकी निन्दा की थी, परन्तु फिर भी न केवल इसको म रखा गया, अपितु इसका विस्तार करके इसे आंग्ल-भारतीयों, यूरोपियनों, भारतीय यों और हरिजनों पर लागू किया गया। 1935 के अधिनियम में यह पद्धति हरिजनों पर गू कर दी गई, ताकि हरिजनों को हिन्दुओं से पृथक् किया जा सके। इस प्रणाली के द्वारा श सरकार भारत की राष्ट्रीय एकता को नष्ट करने का प्रयत्न कर रही थी। पं.जवाहरलाल के अनुसार, "इस एक्ट से ब्रिटिश सरकार की रजवाड़ों से और हिन्दुस्तान की दूसरी क्रियावादी...... जमानत से दोस्ती और भी मजबूत हो गई। पृथक् निर्वाचन पद्धति को बढ़ावा दिया गया और इस तरह से अलग होने वाली प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिला।" भारत में इस आधार पर भी अधिनियम का विरोध होना स्वाभाविक था।

(5) आत्मनिर्णय के अधिकार की उपेक्षा-इस ऐक्ट द्वारा भारतीयों को आत्मनिर्णय का कार नहीं दिया गया। अतः भारतीयों को अपने लिए एक स्वतंत्र संविधान बनाने का कार नहीं था। यह अधिनियम ब्रिटिश संसद ने बनाया था और भारत की आगे की प्रगति र्णय का अधिकार भी ब्रिटिश संसद के पास था। अधिनियम द्वारा भारत पर ब्रिटिश या भारत-मन्त्री ने नियन्त्रण में काई कमी नहीं की गयी थी। मि. एटली ने ठीक ही कहा अधिनियम में भारत के भविष्य की राजनीतिक प्रगति का काई कार्यक्रम नहीं हैं।"

II. संरक्षण और आरक्षण

साधारणतया संरक्षण और आरक्षण का अभिप्राय किसी संकट से बचने के लिए किये गये से लिया जाता है। संवैधानिक दृष्टि से संरक्षण और आरक्षण वे उपाय है जिनके द्वारा ान को बनाने वाले अवांधनीय मनोवृत्तियों को रोकने का प्रयत्न करते हैं। उदाहरणस्वरूप, का के संविधान में क्रांतिकारी प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण रखने हुतु संरक्षणों की व्यवस्था की । 1935 के अधिनियम में ब्रिटिश संसद ने अपने हितों की रक्षा के लिए भारत में भी संरक्षणों की व्यवस्था की थी।

1935 के ऐक्ट में गवर्नर जनरल तथा गवर्नरों को केन्द्र एवं प्रान्तों के उत्तरदायी शासन में क्षेप करने के लिए विशेषाधिकार प्रदान किये गये। गवर्नर जनरल और गवर्नरों के ये कार ही 'संरक्षण और आरक्षण' की व्यवस्था थे। भारत में संरक्षणों का विचार 1930 में स और सरकार के बीच समझौते के दौरान उत्पन्न हुआ। गांधी-इरविन समझौते में कहा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गया कि संरक्षण केवल भारत के हित में होंगे। 1931 के द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में गया था कि संरक्षण भारत और ब्रिटिश साम्राज्य के समान हितों के लिए होंगे, किन्तु अधिनियम में की गई संरक्षण व्यवस्था से केवल ब्रिटिश हितों की ही सुरक्षा होती संरक्षण राष्ट्रवाद और लोकतंत्र के विरुद्ध थे और इनका उद्देश्य भारत में स्व स्थापना को असम्भव करना था।[1]

1935 के अधिनियम में निम्नलिखित संरक्षणों और आरक्षणों की व्यवस्था की

(1) प्रतिरक्षा, वैदेशिक मामले, धार्मिक मामले और कबायली क्षेत्रों की व्यव द्वारा केन्द्र में उपर्युक्त विषयों का शासन गवर्नर जनल की कार्यकारिणी परिषद् के अ सदस्यों के हाथ में दे दिया गया था। वे इन विषयों के शासन के लिए संघीय मण्ड पर गवर्नर जनरल के प्रति उत्तरदायी थे। गवर्नर जनरल इन विभागों के प्रशासन स्वेच्छाचारी शक्तियों का प्रयोग कर सकता था। उसके लिए यह आवश्यक नहीं विषयों से सम्बन्धित मामलों में लोकप्रिय मन्त्रियों से परामर्श ले। इस प्रकार, सै विदेशी मामलों पर भारतीयों को कोई अधिकार नहीं दिया गया।

(2) वित्त- यद्यपि वित्त विभाग उत्तरदायी मन्त्रियों को सौंप दिया गया था, परन्तु गवर्नर जनरल और प्रान्तों में गवर्नरों की विशेष शक्तियां इतनी अधिक थीं कि वास्तविक नियन्त्रण मन्त्रिमण्डल या व्यवस्थापिका के स्थान पर गवर्नर जनरल और ही था। भारत की वित्तीय स्थिरता और साख की रक्षा करना गवर्नर जनरल का विशे था। इसलिए वह वित्त मन्त्री के किसी भी सुझाव पर निषेधाधिकार (Veto) का प्र सकता था। इसके अतिरिक्त भारत सरकार की मुद्रा और नोट सम्बन्धी नीति भी रिज़ नियन्त्रण में थी। रिजर्व बैंक का गवर्नर भारत के गवर्नर जनरल द्वारा नियुक्त किया और उसी के प्रति उत्तरदायी होता था।

(3) गवर्नर जनल और गवर्नरों की विशेष जिम्मेदारियां और व्यक्तिगत नि शक्तियां- 1935 के अधिनियम में गवर्नरों जनरल तथा गवर्नरों के विशेष उत्तरदा सम्बन्धित एक लम्बी सूची दी गयी थी। ये विशेष उत्तरदायित्व अल्पमतों, सार्वजनिक देशी रियासतों के शासकों तथा ब्रिटेन की आर्थिक हितों की रक्षा के लिए थे। इनका लेकर गवर्नर जनरल तथा गवर्नर अपने उत्तरदायी मन्त्रियों के कार्यों में मनचाहा हस्त सकते थे। ब्रिटिश लेखक कीथ ने लिखा है कि "विशेष उत्तरदायित्वों की संकुचित व्याख्या करने पर मन्त्रीय उत्तरदायित्व की सम्भावना ही नष्ट हो सकती है।"[2]

जब गवर्नर जनरल अपनी व्यक्तिगत निर्णय की शक्तियों का प्रयोग करता तो मंत्री की आज्ञा पालन करने के लिए बाध्य होता था। जब गवर्नर अपनी व्यक्तिगत नि

1. Kunte and Selatore : Constitutional History of India, p. 78.
2. कीथ : कॉन्स्टिट्यूशनल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृष्ठ 334.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शक्तियों का प्रयोग करता था, तो वह गवर्नर जनरल और भारत -मंत्री दोनों के अधीन होता था और उसे उनके निर्देशों तथा अनुदेशों का पालन करना पड़ता था। इन संरक्षणों के माध्यम से भारतीय शासन पर विदेशी सत्ता का पूर्ण नियंत्रण रहता था। धारा 93 के अनुसार गवर्नर को यह शक्ति दी गयी कि वह गवर्नर जनरल की आज्ञा से किसी भी समय अधिनियम की विफलता की घोषणा करके प्रान्तीय शासन को अपने हाथ में ले सकता था।

(4) अन्य संरक्षण- अधिनियम में कुछ संरक्षण भी थे, जैसे-

(i) सभी परम्पराओं के विपरीत संघीय सभा (केन्द्रीय व्यवस्थापिका का निम्न सदन) के लिए अप्रत्यक्ष या परोक्ष चुनाव की पद्धति अपनाई गई।

(ii) साम्प्रदायिक चुनाव पद्धति का विस्तार किया गया।

(iii) अल्पमतों तथा कुछ अन्य वर्गों को विशेष प्रतिनिधित्व दिया गया।

(iv) केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा में देशी रियासतों को उनकी जनसंख्या के अनुपात से अधिक स्थान प्रदान किये गये और उनकी नियुक्ति का अधिकार देशी रियासतों के शासकों को दिया गया न कि वहां की जनता को।

(v) उच्च सार्वजनिक सेवाओं तथा पुलिस को मन्त्रियों के नियन्त्रण से बाहर रखा गया और उनको सीधा गवर्नर तथा गवर्नर जनरल के अधीन रखा गया।

(vi) 1935 के अधिनियम में संशोधन करने का अधिकार ब्रिटिश संसद के हाथों में रखा गया।

आलोचना- 1935 के अधिनियम में जितने भी संरक्षण और आरक्षण रखे गये थे, उन सबका उद्देश्य भारत के विभिन्न वर्गों में मतभेद उत्पन्न करना और राष्ट्रवाद की प्रगति का मार्ग अवरुद्ध करना था, ताकि ब्रिटिश साम्राज्य के हितों की रक्षा की जा सके। इन रक्षा कवचों की आलोचना करते हुए पं. नेहरु ने कहा था कि "नवीन संविधान में अवरोधों की व्यवस्था तो बहुत दृढ़ थी, लेकिन चालक शक्ति का नितान्त अभाव था।"

मि.ए.बी.कीथ के शब्दों में,"1935 के अधिनियम द्वारा जहां एक ओर भारतीयों को यह समझाने का प्रयत्न किया गया कि उन्हें सब कुछ दे दिया गया है, वहां अभिरक्षणों के माध्यम से ब्रिटिशवासियों को यह समझाने कि उतनी ही गम्भीर चेष्टा की गयी कि कुछ भी नहीं खोया गया है।"[1]

पुन्निया ने इस सम्बंध में ठीक ही लिखा है कि, इन अभिरक्षणों की प्रकृति और रुप के वास्तविक विश्लेषण से यह तथ्य स्पष्ट हो गया कि ब्रिटेन जनतान्त्रिक राष्ट्रवाद के बढ़ते हुए प्रहार के विरुद्ध भारत प्रतिक्रियावादी शक्तियों, मुसलमानों और भारतीय नरेश के साथ मिलकर अपने निहित स्वार्थों की रक्षा का प्रयत्न कर रहा था, क्योंकि भारतीय नरेश प्रजातन्त्र

1. कीथ, ए. बी. : कॉन्स्टिट्यूशनल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृष्ठ 334.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और मुसलमान बहुत शासन के विरुद्ध थे, ब्रिटिश शासकों ने उनके भय का अपने स्वार्थ के लिए उपयोग करना सरल और सुविधाजनक समझा। इस प्रकार, संरक्षणों को उद्देश्य इन पक्षों अंग्रेजों, मुसलमानों और भारतीय नरेशों के हितों की रक्षा करना।"[1] पं.जवाहरलाल नेहरू ने संरक्षणों और आरक्षणों को ध्यान में रखते हुए 1935 के अधिनियम के बारे में कहा था "इसमें सभी रोक मौजूद है, किन्तु चालक शक्ति नहीं है।" (The new constitution is all brakes and no engine)

वस्तुतः यह आरक्षण और संरक्षण व्यवस्था अल्पसंख्यको की रक्षा के लिए नहीं की गई थी, वरन् जैसा डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने लिखा है कि, "हजारों मील से आने वाली उन 'उड़ती चिड़ियाओं' (युरोपियनों) के हितों की रक्षा के लिए थे, जो अधिक से अधिक दाना चुग कर संध्याकाल में अपने घर (यूरोप) चली जाती थीं।" इस प्रकार, संरक्षणों और आरक्षणों का एकमात्र उद्देश्य भारत में बढ़ते हुए राष्ट्रवाद को रोककर ब्रिटिश साम्राज्य के हितों की रक्षा करना था।

III. गृह सरकार

भारत सचिव की शक्ति में परिवर्तन- 1919 के एक्ट के अनुसार भारत सचिव को भारतीय शासन के सभी मामलों में निर्देशन, नियन्त्रण और अधीक्षण की शक्ति प्राप्त थी। 1935 के एक्ट द्वारा प्रान्तीय क्षेत्र में स्वशासन की स्थापना की गई थी और केन्द्र में आंशिक उत्तरदायी शासन की स्थापना की गई थी। इसलिए यह अनिवार्य हो गया कि जिन मामलों का शासन उत्तरदायी मंत्रियों के हाथ में सौप दिया गया, उन पर भारत सचिव का नियन्त्रण ढीला कर दिया जाए। जिन मामलों में गवर्नर तथा गवर्नर जनरल तथा गवर्नर को स्वेच्छाचारी शक्तियों तथा व्यक्तिगत निर्ण की शक्तियां दी गई थीं, उन मामलों पर भारत-सचिव का नियन्त्रण ज्यों-का-त्यों बना रहा। 1935 के अधिनियम के अन्तर्गत भारत सरकार पर निर्देश, नियंत्रण तथा निरीक्षण की शक्ति ब्रिटिश क्राउन को दे दी गई, किन्तु व्यवहार में भारतीय शासन के सम्बन्ध में भारत सचिव की शक्तियों में कोई अन्तर नहीं आया, क्योंकि ब्रिटिश सरकार की शक्तियों का वास्तविक प्रयोग भारत सचिव ही करता था। गवर्नर जनरल और गवर्नर की स्वेच्छाचारी शक्तियों प्रयोग वस्तुतः भारत मन्त्री की इच्छानुसार ही करते थे। के.टी. शाह ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि, "भारतीय विधान में भारत-मंत्री अब भी निस्सन्देह सर्वोच्च सत्ता के रूप में लक्षित होता है। गवर्नर जनरल और गवर्नरों के अधिकारों के समान उसके अधिकार प्रत्यक्ष रूप से भले ही दृष्टिगोचर न हो, परन्तु ये सब अधिकारी उसी के अधीन है, व्हाइट हॉल के इस देवराज की प्रत्येक आज्ञा का पालन करते हैं और चार्ल्स के इस मायावी के प्रत्येक संकेत के वश में हैं।"[2]

भारत सचिव का प्रतिरक्षा, वैदेशिक सम्बन्ध, कबालयी क्षेत्रों, गिरजाघरों और रिजर्व

1. पुन्निया, के. वी. : कॉन्स्टिट्यूशनल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृष्ठ 319.
2. शाह, के. टी. : फेडरल स्ट्रक्चर, पृष्ठ 386.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आदि से सम्बन्धित विभागों पर काफी नियन्त्रण रहता था। इसके अतिरिक्त भारतीय सेवाओं के सम्बंध में भारत-मंत्री के अधिकार अत्यन्त विस्तृत थे। वह भारतीय नागरिक सेवा, भारतीय पुलिस सेवा और सिंचाई सेवा के अधिकारियों को नियुक्त करता था और इनकी सेवाओं की शर्तें निश्चित करता था। इन सबके अतिरिक्त वह भारतीय मामलों में सम्राट का संवैधानिक परामर्शदाता भी था। जो विधेयक गवर्नर जनरल की स्वीकृति के बाद ब्रिटिश सम्राट के हस्ताक्षर के लिए भेजे जाते थे या जो उनकी स्वीकृति के लिए गवर्नर जनरल द्वारा रिजर्व रखे जाते थे, उन सबके बारे में भारत सचिव ब्रिटिश सम्राट को परामर्श देता था कि उन पर निषेधाधिकार का प्रयोग किया जाय अथवा नहीं। भारत सचिव ब्रिटिश संसद में भारतीय मामलों का प्रमुख प्रवक्ता था। भारत सचिव की शक्तियों व स्थिति के सम्बंध में प्रो.के.टी. शाह लिखते है कि,"उसके अधिकार मौलिक नीति सम्बन्धी विषयों, ब्रिटिश हितों की रक्षा तथा ब्रिटेन के साम्राज्यवादी प्रभुत्व की सुरक्षा तक ही सीमित नहीं, अपितु उनका विस्तार दैनिक प्रशान के विषयों, भारतीय व्यवस्थापिका सभा के आवश्यक कृत्यों, भारत सरकार अथवा भारतीय सेवाओं के लिए कुछ विशेष अफसरों की नियुक्ति, उनके वेतनों तथा वृद्धावस्था के कारण उनके कार्यों की अयोग्यता तक था। भारत में उसे भारत के प्रशासन के सभी अधिकार तथा शक्तियां प्राप्त हैं चाहें उत्तरदायित्वों में उसका भाग बहुत थोड़ा या तनिक भी न हो।"

भारत सचिव के परामर्शदाता- 1935 के ऐक्ट द्वारा इण्डिया कौंसिल को समाप्त कर दिया गया, उसके स्थान पर भारत सचिव को परामर्श देने के लिए कुछ परामर्शदाताओं की नियुक्ति की गई। इनकी संख्या 3 से कम और 6 से अधिक नहीं हो सकती थी। इन परामर्शदाताओं में कम से कम आधे व्यक्ति ऐसे होने चाहिए थे, जो सम्राट के अधीन कम से कम 10 वर्ष से अधिक समय न हुआ हो। इनका कार्यकाल पांच वर्ष का था। इन्हें वेतन इंग्लैण्ड के खजाने से मिलता था। उनमें से प्रत्येक को 1350 पौण्ड वार्षिक वेतन मिलता था। भारत सचिव को केवल भारतीय सेवाओं के मामले में परामर्शदाताओं के परामर्श को मानना अनिवार्य था। शेष सभी मामलों में उसकी इच्छा पर निर्भर था कि उनकी सलाह को माने या न माने।

हाई कमिश्नर- 1919 के ऐक्ट द्वारा लंदन में भारत के लिए एक हाई कमिश्नर की नियुक्ति की व्यवस्था की गई थी। 1935 के अधिनियम द्वारा उसके पद और शक्तियों में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किया गया। केवल यह परिवर्तन किया गया कि उसकी नियुक्ति सपरिषद् गवर्नर जनरल के स्थान पर गवर्नर जनरल अपने व्यक्तिगत निर्णय से करेंगे। उसका कार्यकाल पांच वर्ष का था। उसको 3,000 पौण्ड वार्षिक वेतन भारतीय खजाने से मिलता था। उसके प्रमुख कार्य निम्नलिखित थे-

(i) इंग्लैण्ड में भारतीय हितों की देखभाल करना।
(ii) इंग्लैण्ड में भारत सरकार के लिए आवश्यक वस्तुओं को खरीदना।
(iii) भारत की तरफ से ब्रिटिश सरकार से इंग्लैण्ड में अनुबन्ध करना।
(iv) इंग्लैण्ड में भारतीय विद्यार्थियों को हर तरह की सुविधाएं दिलवाना।
(v) यूरोप के अन्य देशों में जो भारतीय किसी विशेष ट्रेनिंग के लिए जाते थे, उनकी सब

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सुविधाओं की व्यवस्था करना।

हाई कमिश्नर भारत सरकार की तरफ से वस्तुएं खरीदते समय इंग्लैण्ड के हितों की उपेक्षा नहीं करता था।

केन्द्रीय सरकार

IV अखिल भारतीय संघ

संगठन- 1935 के अधिनियम द्वारा व्यवस्था की गई कि ब्रिटिश प्रांतों को मिलाकर एक संघ की स्थापना की जाए। यह संघ 11 ब्रिटिश प्रान्तों, 6 चीफ कमिश्नर के क्षेत्रों, देशी रियासतों से मिलाकर बनना था। सभी ब्रिटिश प्रांतों के लिए संघ में शामिल होना अनिवार्य था परन्तु देशी रियासतों के लिए ऐच्छिक था। जो रियासत संघ में शामिल होना चाहती थी, उसे एक 'प्रवेश-पत्र' पर हस्ताक्षर करने होते थे, जिसमें संघ में शामिल होने की शर्तों का उल्लेख रहता था। सम्राट ऐसे किसी भी प्रवेश-पत्र को अस्वीकार कर सकता था, जिनकी शर्तें संघ योजना के अनुरुप न हों। संघीय इकाइयों को अपने आंतरिक क्षेत्र में स्वायत्तता प्राप्त थी। इसमें संघ व इकाइयों के बीच शक्ति का विभाजन कर दिया गया था। केन्द्रीय और राज्यों के बीच तथा राज्यों के पारस्परिक झगड़ों का निबटारा करने के लिए एक संघीय न्यायालय की स्थापना की गई। संविधान में संशोधन की स्थापना की गई। संविधान को संशोधित करने की प्रक्रिया जटिल थी। संविधान में संशोधन केवल ब्रिटिश संसद ही कर सकती थी। केन्द्रीय विधान मण्डल को यह अधिकार दिया गया था। इस प्रकार संशोधन की प्रक्रिया बहुत जटिल थी।

भारतीय संघ की स्थापना के लिए कुछ विशेष शर्तें रखी गई थीं। पहली शर्त यह थी कि संघ की स्थापना के लिए संसद के दोंनो सदन ब्रिटिश सम्राट को प्रार्थना कर दे। दूसरी शर्त यह थी कि जब इतनी देशी रियासतें संघ में शामिल होने की स्वीकृति दे दें कि उनकी जनसंख्या कुल रियासती प्रजा की जनसंख्या की आधी से अधिक हो और जो संघीय राज्य सभा में 52 स्थानों से अधिक स्थानों के अधिकारी हों। यह शर्त पूरी होने के पश्चात ब्रिटिश संसद के दोनों सदनों को सम्राट के सम्मुख एक प्रस्ताव द्वारा 'अखिल भारतीय संघ' की स्थापना सम्बन्धी घोषणा पत्र जारी करने की प्रार्थना की जानी थी। देशी रियासतों की निर्धारित संख्या ने संघ में शामिल होना स्वीकार नहीं किया। अतः 1935 के ऐक्ट में प्रस्तावित भारतीय संघ योजना क्रियान्वित नहीं हो सकी। केन्द्रीय परिषद् के अध्यक्ष सर अब्दुल रहीम के शब्दों में "संघीय योजना पूर्णतया अस्वाभाविक कृत्रिम और किसी भी संविधान में अदृष्ट थी"। जी.एन.जोशी के अनुसार,"1935 के अधिनियम की संघ नीति भारत के राजनीतिक विकास का स्वाभाविक और अनिवार्य परिणाम नहीं थी। इसके विपरीत यह ब्रिटिश संसद द्वारा बनाया आराजनीतिक यन्त्र था, जिसका उद्देश्य ब्रिटिश सरकार के कुछ विशेष हितों की पूर्ति करना था।"[1]

---

1. जोशी. जी.एन. : द कॉन्स्टिट्यूशनल ऑफ इण्डिया, पृष्ठ 16.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संघ की विशेषताएं- 1935 के ऐक्ट के अनुसार स्थापित होने वाला संघ संसार के अन्य संघों से बहुत भिन्न था और इसकी कुछ अलग ही विशेषताएं थीं, जो निम्नलिखित है-

(1) साधारणः स्वतन्त्र राज्य किसी सामान्य उद्देश्य से प्रेरित होकर संघ की स्थापना करते हैं। भारत में एकात्मक शासन ब्रिटिश भारत के स्वायत्तशासी प्रांतों को खण्डित कर तथा उनके साथ स्वतन्त्र देशी रियासतों को मिलाकर की गई थी और ये सब अप्रभु (Non-Sovereign) थी।

(2) 1935 ई. के ऐक्ट के अन्तर्गत भारतीय संघ राज्यों की इच्छा के फलस्वरुप नहीं बना था, बल्कि यह योजना अंग्रेजों द्वारा भारत पर लादी गई थी।

(3) संघ में प्रायः इकाइयों में काफी समानता पाई जाती है, परन्तु भारत में ऐसी स्थिति नहीं थी। ब्रिटिश प्रान्त, चीफ कमिश्नर प्रांत और देशी रियासतों के क्षेत्रफल, महत्व, शासन पद्धति, आबादी आदि में बहुत अधिक असमानता थी। देशी रियासतों में निरंकुश शासन था, जिसमें प्रजा को राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं थे। इन राज्यों के प्रतिनिधि देशी नरेशों द्वारा नामांकित होते थे। इसके विपरीत ब्रिटिश प्रांतों में उत्तरदायी शासन की स्थापना हो गयी थी।

(4) संघ राज्य में साधारण उच्च सदन में इकाइयों को समान प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया था।

(5) प्रायः सभी संघों में उच्च सदन का अप्रत्यक्ष चुनाव होता था और निम्न सदन का प्रत्यक्ष। प्रस्तावित भारतीय संघ में संघीय सभा का चुनाव अप्रत्यक्ष और ऊपरी सदन का चुनाव प्रत्यक्ष रखा गया। यह व्यवस्था लोकतन्त्रात्मक सदन को कमजोर बनाने के लिए की गई थी।

(6) प्रायः संविधान में संशोधन का अधिकार संघीय तथा प्रांतीय विधान मण्डलों को दिया जाता है, परन्तु भारत में 1935 के ऐक्ट में संशोधन का अधिकार ब्रिटिश संसद में निहित था।

(7) प्रस्तावित संघ में देशी रियासतों को क्राउन से सीधा सम्बन्ध बनाये रखने का विशेषाधिकार दिया गया था, जबकि ब्रिटिश भारत के प्रांतों को इस अधिकार से वंचित कर दिया गया था।

(8) प्रायः सभी संघों में व्यवस्था की जाती है कि मवर्नर जनरल या राष्ट्रपति का इसके कार्यों में हस्तक्षेप न रहे, परन्तु भारतीय संघ में भीतर सचिव और गवर्नर जनरल को विशेष अधिकार प्राप्त थे। अतः वे इसके दैनिक कार्यों में हस्तक्षेप करते थे।

(9) संघीय संविधान की अवशिष्ट शक्तियां प्रायः संघ या राज्यों को दे दी जाती हैं, परन्तु भारत में ऐसा नहीं किया गया। यह व्यवस्था की गई कि गवर्नर जनरल को इस बारे में अन्तिम निर्णय करने का अधिकार होगा। गवर्नर जनरल को ऐसी असाधारण शक्ति किसी भी संघ में नहीं दी जाती, जैसे की भारत में दी गई थी।

संघीय योजना के दोष- पायली के अनुसार, "1935 के अधिनियम द्वारा प्रस्तावित संघीय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

व्यवस्था इतनी पेचीदी थी कि संघ शासन के इतिहास में ऐसा उल्लेख नहीं मिलेगा।....विभिन्न विरोधी हितों के सामंजस्य के कारण अच्छे संघ के गुणों से छुटकारा पा लिया गया।" कीथ के अनुसार,"असमान घटकों के सामंजस्य से यह एक विलक्षण संघ बन गया तथा उससे असामान्य तत्वों का जन्म हुआ।

1935 के प्रस्तावित संघ योजना के प्रमुख दोष निम्नलिखित थे-

(1) संघ भारतीयों की इच्छा का फल नहीं- 1935 के अधिनियम में प्रस्तावित संघ भारतीयों की इच्छा का फल नहीं था, अपितु वह ऊपर से थोपा गया था। इस संघ में ब्रिटिश भारत के प्रान्तों का शामिल होना अनिवार्य था, जबकि देशी राज्य इसमें स्वेच्छा से प्रवेश-पत्र द्वारा शामिल हो सकते थे। यह तथ्य इस बात की ओर संकेत करता था कि संघीय संविधान ऊपर से थोपा गया था। संघ में सम्मिलित होने वाली इकाइयां न तो संविधान का निर्माण कर सकती थीं और न ही संविधान में संशोधन कर सकती थीं। इस प्रकार, प्रस्तावित संघीय योजना भारतीयों की इच्छा का परिणाम नहीं था। श्री जी.एन.जोशी के अनुसार"1935 के अधिनियम में अन्तर्निहित संघीय नीति भारत के राजनैतिक विकास का स्वाभाविक और अवश्यंभावी परिणाम नहीं थी, वरन् ब्रिटिश संसद द्वारा अपने कुछ ऐसे लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए उठाया गया कदम था, जिन्हें ऐसी राजनैतिक व्यवस्था द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता था, जिसमें अवरोध और सन्तुलन का पूरा-पूरा प्रबन्ध हो।"[1]

(2) इकाइयों की असमान स्थिति- संघ की इकाइयों में समानता आवश्यक होती है, परन्तु भारतीय संघ में ऐसी स्थिति नहीं थी। ब्रिटिश प्रान्त, देशी रियासतें और चीफ कमिश्नर के क्षेत्रों को मिलाकर संघ का निर्माण करना था। ब्रिटिश प्रान्त, देशी रियासतें और चीफ कमिश्नर के क्षेत्रों को मिलाकर संघ का निर्माण करना था। इन तीनों इकाइयों के क्षेत्रफल, महत्त्व, शासन पद्धति और आबादी में बहुत अधिक असमानता थी। ब्रिटिश प्रान्तों में उत्तरदायी शासन व्यवस्था प्रचलित थी, जबकि देशी रियासतों में निरंकुश राजाओं का शासन था। इस प्रकार, इस संघीय योजना में निरंकुशवाद और प्रजातन्त्रवाद के बीच अनोखा समझौता करने का प्रयास किया था। ऐसे संघ का असफल होना अवश्यम्भावी था। प्रस्तावित संघ के सम्बन्ध में मि.ए.बी.कीथ ने ठीक ही कहा था कि,"नितान्त भिन्न इकाइयों का यह संयोग संघ को एक विचित्र रुप प्रदान कर देता और अनेक असामान्य लक्षणों को जन्म देता।"[2]

(3) इकाइयों को असमान अधिकार- संघ की इकाइयों को असमान अधिकार दिये गये थे। ब्रिटिश भारत के प्रांतों के लिए संघ में शामिल होना अनिवार्य था, जबकि देशी रियासतों के लिए ऐच्छिक था। इसके अतिरिक्त संघ में शामिल होने की इच्छुक देशी रियासतों को एक प्रवेश-पत्र भरकर देना पड़ता था, जिसमें उन शर्तों का उल्लेख होता था जिनके आधार पर वे संघ में शामिल होना चाहती थीं। इस प्रकार के असंगत प्रावधानों ने संघीय योजना के

1. जोशी, जी.एन. : द कॉन्स्टिट्यूशनल ऑफ इण्डिया, पृष्ठ 16.
2. कीथ, ए.बी. : ए कॉन्स्टिट्यूशनल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया पृष्ठ 320.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

क्रियान्वयन को असम्भव बना दिया। ली स्मिथ के अनुसार, "भारतीय संघीय व्यवस्था अनोखे ही प्रकार की होने को थी। इसके अन्तर्गत प्रान्तों के सम्बन्ध में संघ की एक प्रकार की शक्तियाँ होती और देशी रियासतों के सम्बन्ध में दूसरे प्रकार की।"[1]

(4) देशी रियासतों को अनुपात से अधिक प्रतिनिधित्व- प्रस्तावित संघ में देशी राज्यों को केन्द्रीय विधान मण्डल में आबादी के अनुपात से अधिक प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया था। देशी रियासतों की आबादी समस्त भारत की जनसंख्या की लगभग 1/3 थी, परन्तु उनको संघीय विधानमण्डल के निम्न सदन में 33 प्रतिशत और उच्च सदन में 40 प्रतिशत प्रतिनिधित्व दिया गया था, जो संघात्मक व्यवस्था के सच्चे सिद्धान्तों के अनुरुप नहीं था। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने ठीक कहा था कि "यह एक ऐसा राज्य संघ है जिसके अनुसार निर्लज्ज निरंकुशता भारत के 1/3 भाग में किलेबन्दी करके बैठेगी और कभी भी भारत के 2/3 भागों में लोकप्रिय संकल्प शक्ति को कुचलने के लिए झांकेगी।"

(5) रियासतों के प्रतिनिधियों की शासकों द्वारा नियुक्ति- अधिनियम में यह एक विचित्र असंगति थी कि ब्रिटिश प्रांतों के प्रतिनिधियों का तो जनता द्वारा चुनाव किया जाता था; लेकिन देशी रियासतो के प्रतिनिधियों को सम्बन्धित शासकों द्वारा नियुक्त किया जाता था। ऐसा इसलिए किया गया था कि देशी रियासतों के शासकों के प्रतिनिधि ब्रिटिश सरकार के प्रति वफादार बने रहे और संघ में जमीदारों और अल्पमतों के साथ मिलकर भारत की प्रगति के मार्ग में अवरोध पैदा करें। श्री एनं.निवासन के शब्दों, "रियासतों के प्रतिनिधियों के सम्बन्ध में की गयी यह व्यवस्था अनुदारवादियो की गारण्टी थी।"[2] भारत सचिव सर सैम्युअल होर ने ब्रिटिश संसद में बड़े गर्व के साथ कहा था कि, "नये अधिनियम के अन्तर्गत उग्रवादियों का सत्तरुढ़ होने से रोकने के लिए प्रत्येक प्रबन्ध कर लिया गया था।"

प्रो. कीथ के शब्दों में, "इस आरोप के औचित्य को अस्वीकार करना कठिन है कि प्रस्तावित संघ ब्रिटिश भारत के केन्द्रीय शासन में उत्तरदायी व्यवस्था की स्थापना करने के प्रश्न से बचकर निकल जाने की इच्छा से निर्मित किया जा रहा था।"[3] उन्होंने निष्कर्ष निकालते हुए कहा था कि, "राज्यों एवं ब्रिटिश भारत के प्रतिगामी तत्त्वों द्वारा जो असीम नियन्त्रण शक्ति गवर्नर जनरल को प्रदान की गयी थी, उनके कारण प्रस्तावित संघ के सफल होने में भी सन्देह ही था।"

(6) निम्न सदन का अप्रत्यक्ष चुनाव- प्रायः सभी संघों में निम्न सदन का चुनाव प्रत्यक्ष होता है, क्योंकि यह जनता का प्रतिनिधि सदन होता है, परन्तु 1935 के अधिनियम के अनुसार निम्न सदन अर्थात संघीय सभा के निर्वाचन के लिए अप्रत्यक्ष चुनाव पद्धति को अपनाया गया था और उच्च सदन अर्थात् राज्य परिषद् का चुनाव प्रत्यक्ष रखा गया। यह महान अप्रजातान्त्रिक

1. ली स्मिथ, एम. बी. (लहरी एण्ड बनर्जी द्वारा उद्धत) : द न्यू कॉन्स्टिट्यूशनल ऑफ इण्डिया, पृष्ठ 27
2. श्री निवासन, एन. : डेमोक्रेटिक गवर्नमेंट इन इण्डिया, पृष्ठ 45.
3. कीथ, ए.बी. : ए कॉन्स्टिट्यूशनल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृष्ठ 474.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कदम था। यह व्यवस्था जानबूझकर की गयी थी, ताकि राष्ट्रवादी और उग्रवादी तत्त्वों के प्रभाव को कम किया जा सके।

(7) सत्ता का हस्तान्तरण दोषपूर्ण- ऐक्ट के अन्तर्गत सत्ता का हस्तान्तरण इतना दोषपूर्ण ढंग से किया गया कि संघ योजना का असफल होना स्वाभाविक था। केन्द्र में उत्तराधिकारी मन्त्रियों का मुद्रा, प्रतिरक्षा और विदेशी मामलों पर कोई नियन्त्रण नहीं था। संघीय व्यय का 80 प्रतिशत भाग उनके नियन्त्रण से बाहर था। इन सबके बाद जो कुछ शक्ति मन्त्रियों के पास बची थी, उस पर संरक्षण और आरक्षण के माध्यम से अनेक प्रतिबन्ध लगा दिये गये थे। भारत सचिव तथा गवर्नर जनरल को केन्द्रीय विधान मण्डल तथा प्रान्तीय स्वायत्तता में हस्तक्षेप करने के विस्तृत अधिकार दिये गये थे। गवर्नर जनरल अपनी स्वविवेकीय शक्तियों द्वारा मन्त्रियों पर पर्याप्त नियंत्रण रखता था। इस अधिनियम की आरक्षण तथा संरक्षण व्यवस्था ने संघीय प्रजातन्त्र का गला घोट दिया था। पं. नेहरु के शब्दों में, "ये अवरोध और सीमाएं इतनी व्यापक थीं कि भारत की राजनैतिक और आर्थिक शक्ति ब्रिटिश सरकार के हाथ में बनी रहती।" श्री के.टी.शाह के शब्दों मं, "1935 के संविधान के अन्तर्गत संघीय मंत्रियों की स्थिति भारत के लाभार्थ न होकर संघ के शोभार्थ थी और वे मन्त्री अधिकारों से हीन थे, वे उच्च पदारूढ थे, परन्तु प्रभुत्व शक्ति से शून्य थे, वे नामवान थे लेकिन प्रभाववान नहीं थे।"[1] इस प्रकार, भारतीयों को सत्ता पूर्ण हस्तान्तरण किये बिना संघीय योजना की सफलता नितान्त संदिग्ध थी।

(8) उच्च सदन में इकाइयों को असमान प्रतिनिधित्व- प्रायः संघ राज्यों में उच्च सदन में इकाइयों को समान प्रतिनिधित्व दिया जाता है, जैसा कि अमेरिका की सीनेट में किया गया है, लेकिन 1935 के ऐक्ट में प्रस्तावित संघ की व्यवस्थापिका के उच्च सदन में सभी इकाइयों को समान प्रतिनिधित्व प्रदान नहीं किया गया था और न ही समस्त अंगीभूत इकाइयों को समान दर्जा प्राप्त था।

(9) संविधान में संशोधन का अधिकार भारतीयों के पास नहीं- प्रत्येक संघ राज्य में केन्द्र व इकाइयों को संविधान में संशोधन का अधिकार दिया जाता है परन्तु 1935 के ऐक्ट के अनुसार संविधान में संशोधन करने की शक्ति संघीय तथा प्रान्तीय विधान मण्डलों को नहीं दी गई थी। ऐक्ट में संशोधन केवल ब्रिटिश संसद ही कर सकती थी। यह व्यवस्था संघात्मक व्यवस्था के सिद्धान्तों के नितान्त विरुद्ध थी। सर शाफात अहमद खां के शब्दों में, "विधान द्वारा भारतीय व्यवस्थापिका को संघीय प्रबन्धों में संशोधन परिवर्तन की शक्ति न देना नितान्त अनुचित था।"

(10) अवशिष्ट शक्तियां- प्रायः संघ व्यवस्था के अन्तर्गत अवशिष्ट शक्तियां केन्द्र या प्रान्तों में ही निहित होती है, परन्तु 1935 के ऐक्ट के अन्तर्गत ये अवशिष्ट शक्तियां गवर्नर जनरल में निहित थीं, जिनका वह अपने विवेक से उपयोग कर सकता था। देशी रियासतों के

1. शाह, के. टी. : फेडरल स्ट्रक्चर, पृष्ठ 223.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सम्बन्ध में अवशिष्ट शक्तियों उनके शासकों के पास रखी गई थीं।

संघीय भाग का स्थगन- भारत के लिए प्रस्तावित संघ के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इसकी अनूठी विषमताओं तथा त्रुटियों के कारण ही भारतीय ने एक स्वर से इसे अस्वीकृत कर दिया। कांग्रेस, मुस्लिम लीग, हिन्दू महासभा और सिक्खों ने इसका जोरदार विरोध किया। नेहरू ने कहा था कि, " अधिनियम में प्रान्तीय स्वायत्तता और संघीय ढाँचे की व्यवस्था की गई है, लेकिन इसमें इतने अधिक संरक्षण और नियंत्रण थे कि देश की राजनीतिक और आर्थिक शक्ति ब्रिटिश सरकार के हाथों में केन्द्रिय बनी रहेंगी। संघीय ढाँचा ऐसा था कि उसके अन्तर्गत कोई भी प्रगति असम्भव हो जाती। यह इतना अधिक प्रतिक्रियावादी था कि इसमें स्वविकास का बीज तक नहीं था।"[1] ए.बी. कीथ ने कहा था कि, "इस अधिनियम द्वारा एक ओर से तो भारतीय को यह विश्वास दिलाने की चेष्टा की गई थी कि उन्हें सब कुछ दे दिया गया है और दूसरी ओर संरक्षणों की व्यवस्था कर अंग्रेजों को यह विश्वास दिलाया गया कि उन्होंने कुछ भी नहीं खोया।"

यहाँ तक कि देशी रियासतों का भी संघ में शामिल होने का विशेष इरादा नहीं था। फलतः ब्रिटिश सरकार को प्रस्तावित संघ लागू नहीं करने का फैसला करना पड़ा। इस सम्बन्ध में 11 सितम्बर 1939 ई. के गवर्नर जनरल ने एक घोषणा की, जिसमें कहा गया कि 1935 के ऐक्ट का संघीय भाग स्थगित किया जाता है। इस प्रकार, संघ को लागू करने से पूर्व ही उसकी मृत्यु हो गई।

V. संघीय कार्यपालिका

केन्द्र में द्वैध शासन की स्थापना- 1935 के अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्रीय क्षेत्र में द्वैध शासन व्यवस्था स्थापित की गयी थी। संघ सरकार के विषयों को दो भागों में बांट दिया गया रक्षित विषय और हस्तान्तरित विषय,। प्रतिरक्षा, वैदेशिक मामले, धार्मिक मामले और कबायली.क्षेत्रों के प्रशासन को रक्षित विषय के अन्तर्गत रखा गया और अन्य सभी विषयों को हस्तान्तरित की श्रेणी में रखा गया। रक्षित विषयों के शासन का संचालन गवर्नर जनरल अपनी कार्यकारिणी परिषद के सदस्यों की सहायता से करता था, परन्तु वह उनके परामर्श को मानने के लिए विवश नहीं था। हस्तान्तरित विषयों के शासन का संचालन वह उत्तरदायी मन्त्रियों की सलाह से करता था। इस प्रकार, संघीय कार्यपालिका के तीन भाग किये जा सकते हैं-

(i) गवर्नर जनल (ii) कार्यकारिणी के सदस्य एवं (iii) मन्त्रि परिषद ।

(i) गवर्नर जनरल

नियुक्ति एवं वेतन भत्ते - गर्वनर जनरल संघ सरकार का मुखिया था। वह संघीय भवन की आधारशिला था। उसकी नियुक्ति ब्रिटिश सम्राट द्वारा इंग्लैण्ड के प्रधान मन्त्री की सिफारिश पर होती थी। उसका कार्यकाल पाँच वर्ष था। उसे भारतीय कोष से 2,51,800 रुपये वार्षिक

1. पं. नेहरू : डिस्कवरी ऑफ इण्डिया, पृष्ठ 369-70.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वेतन और अन्य भत्ते मिलते थे। कुल मिलाकर उस पर 1,80,000 रुपये प्रतिवर्ष खर्च होता था। वह भारत में सम्राट का निजी प्रतिनिधि था और देशी रियासतों के साथ सम्बन्धों में 'वायसराय' कहलाता था।

गवर्नर जनरल की शक्तियाँ- गवर्नर जनरल समस्त शासन की धुरी था। प्रमुख कार्यपालक होने के कारण उसे असंख्य शक्तियाँ प्राप्त थीं उसकी शक्तियों का वर्गीकरण निम्न प्रकार किया जा सकता है-

(1) स्वेच्छाचारी शक्तियाँ- 1935 के ऐक्ट में गवर्नर जनरल की स्वेच्छाचारी, शक्तियों विस्तृत दिया गया है। इस अधिनियम द्वारा चार सुरक्षित विभाग घोषित किये गये थे- प्रतिरक्षा विभाग, गिरजाघर सम्बन्धी मामले, अधिराज्यों के अतिरिक्त भारत के अन्य देशों से सम्बन्ध और कबाइली क्षेत्र। इन सब विभागों के संचालन में गवर्नर जनरल की इच्छा पर यह निर्भर करता था कि वह मंत्रीयों से परामर्श ले या न ले और उनकी सलाह को माने य न माने। इस प्रकार, रक्षित विषयों के प्रशासन के सम्बन्ध में गवर्नर जनरल को स्वेच्छापूर्वक स्व-विवेक से कार्य करने की पूरी छूट थी। ऐसे समय में मंत्रियों को मूकदर्शक के रुप में रहना पड़ता था।

(2) कार्यकारिणी शक्तियाँ- गवर्नर जनरल को विस्तृत कार्यकारिणी शक्तियां प्राप्त थीं

(i) मत्रियों को नियुक्त करना तथा अपदस्थ करना,

(ii) मन्त्रि-परिषद् की बैठकों की अध्यक्षता करना,

(iii) कार्यकारिणी परिषद् के सदस्यों, वित्तीय परामर्शदाता तथा उसके स्टाफ, रिजर्व बैंक के गवर्नर तथा डिप्टी गवर्नर की नियुक्ति और पदच्युति और उनकी सेवा की शर्तों का निर्धारण,

(iv) चीफ कमिश्नरों, संघीय लोग सेवा आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों तथा संघीय रेलवे बोर्ड के सदस्यों की नियुक्ति और पदच्युति,

(v) संघीय लोक सेवा आयोग के सदस्यों के वेतन, कार्यकाल और सेवा शर्तों का निर्धारण,

(vi) महत्वपूर्ण कानूनी प्रश्नों पर संघीय न्यायालय की सम्मत्ति मांगना,

(vii) विधायी क्षेत्र में अवशिष्ट शक्तियों का वितरण,

(viii) उपाधियां प्रदान करना,

(ix) दण्डित अभियुक्त को क्षमा प्रदान करा,

(x) भारतीय हाई कमिश्नर की नियुक्ति और सेवा की शर्तों का निर्धारण,

(xi) मन्त्रियों के बीच कार्य बाँटने, सरकारी काम को आसानी से चलाने और उस सम्बन्धी सारी सूचनाओं की शीघ्र जानकारी के लिए नियम बनाना।

(3) विधायी शक्तियाँ- गवर्नर जनरल को विस्तृत विधायी शक्तियां प्राप्त थीं-

(i) उसे संघीय सभा के अधिवेशन को बुलाने, स्थगित करने तथा भंग करने का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अधिकार था।

(ii) कुछ विशेष प्रकार के विधेयकों को व्यवस्थापिका में प्रस्तुत करने से पूर्व गवर्नर जनरल की स्वीकृति लेना आवश्यक था।

(iii) कुछ विषयों पर वाद-विवाद या प्रश्न पूछने के लिए भी उसकी स्वीकृति लेनी पड़ती थी।

(iv) उसे विधायी एवं वित्तीय प्रक्रिया के नियम हेतु नियम बनाने का अधिकार था।

(v) उसको राज्य सभा में 6 सदस्य मनोनीत करने का अधिकार था।

(vi) गवर्नर जनरल को विधेयकों के सम्बन्ध में केन्द्रीय विभाग मण्डल को सन्देश भेजने, अनुचित बिलों को रोकने, विधेयकों को अस्वीकार करने का भी अधिकार था।

(vii) गवर्नर जनरल को कुछ विशेष विधेयकों को ब्रिटिश सम्राट की स्वीकृति के लिए भी सुरक्षित करने का अधिकार था।

(viii) वह अपनी असाधारण शक्ति द्वारा कानून बना सकता था, जिसे गवर्नर जनरल का ऐक्ट कहा जाता था। वह इन ऐक्टों केन्द्रीय विधान मण्डल की इच्छा के विरुद्ध बना सकता था।

(ix) वह किसी भी विधेयक की रूपरेखा तैयार कर विधानमण्डल के पास भेज सकता था। यदि गवर्नर चाहे, तो इस विषय में अपने व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार कार्य कर सकता था।

(x) गवर्नर जनरल को अध्यादेश (Ordinance) भी जारी करने का अधिकार था। अध्यादेश दो प्रकार के होते थे-पहले प्रकार के अध्यादेश तो ऐसे थे कि जब केन्द्रीय विधानमण्डल का अधिवेशन न हो रहा हो और कोई संकटकालीन स्थिति उत्पन्न हो जाती थी, तो गवर्नर जनरल उसका मुकाबला करने के लिए मंत्रि-परिषद की सलाह या व्यक्तिगत निर्णय से अध्यादेश जारी कर सकता था। ये अध्यादेश कानून की तरह लागू होते थे, परन्तु उनकों केन्द्रीय व्यवस्थापिका का अधिवेशन प्रारम्भ होने के 6 सप्ताह के अन्दर पास किया जाना आवश्यक था। दूसरे शब्दों में इन अध्यादेशों का प्रभाव विधान मण्डल का अधिवेशन प्रारम्भ होने के 6 सप्ताह बाद तक रहता था।

दूसरी प्रकार के अध्यादेश ऐसे थे, जिन्हें गवर्नर जनरल स्वेच्छाचारी शक्तियों तथा व्यक्तिगत निर्णय के अन्तर्गत जारी कर सकता था। इस प्रकार के अध्यादेश एक बार छः महीने तक जारी रहते थे, परन्तु किसी दूसरे अध्यादेश द्वारा इनको छः महिने तक दुबारा बढ़ाया जा सकता था।

(xi) गवर्नर जनरल 1935 के ऐक्ट की धारा 45 के अनुसर संविधान (ऐक्ट) को एक घोषणा द्वारा स्थगित करने का अधिकार था, यदि वह महसूस करे कि संघीय सरकार इसके अनुसार नहीं चलाई जा सकती हैं। ऐसे समय गवर्नर जनरल संघीय न्यायालय को छोड़कर अन्य सभी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संघ निकायों तथा अधिकारियों की शक्तियाँ अपने हाथ में ले सकता था। इस प्रकार की घोषणा की स्वीकृति भारत सचिव के माध्यम से ब्रिटिश संसद द्वारा आवश्यक थी।

(4) वित्तीय शक्तियाँ- गवर्नर जनरल की वित्तीय शक्तियाँ भी बहुत व्यापक थीं। संघीय व्यवस्थापिका में वार्षिक वित विवरण अथवा पूरक विवरण बिना उसकी स्वीकृति के प्रस्तुत नहीं किया जा सकता था। व्यय की मत-निरपेक्ष (Non-Votable) मदों को वही निश्चित करता था। संघीय व्यवस्थापिका द्वारा अनुदान की किसी भी मांग को कम अथवा अंस्वीकृत किये जाने पर गवर्नर जनरल को उसे मौलिक रूप में ही बहाल करने का अधिकार था। वह ऐसे विधेयकों अथवा संशोधनों की सिफारिश कर सकता था, जिनका सम्बन्ध नयें कर लगाने, पुराने करों में वृद्धि या ऋण लेने के नियम बनाने से होता था। गवर्नर जनरल संकटकाल की व्यवस्था के लिए भी व्यय का अधिकार दे सकता था। यदि कोई विधेयक राजस्व बढ़ाने के सम्बन्ध में दोनों सदनों द्वारा अस्वीकृत कर दिया जाता, तो गवर्नर जनरल भारत की सुरक्षा के नाम पर उसे प्रमाणित कर कसता था। यदि किसी अनुदान की माँग पर दोनों सदनों में मतभेद उत्पन्न हो जाता, तो ऐसी स्थिति में गवर्नर जनरल उनकी संयुक्त बैठक बुला सकता था।

(5) मन्त्रियों की सलाह से प्रयोग की जाने वाली शक्तियाँ- सामान्यतया हस्तान्तरित विषयों के शासन का संचालन गवर्नर जनरल अपने मन्त्रियों की सलाह से करता था, परन्तु अपनी स्वाविवेक और व्यक्तिगत निर्णय की शक्ति का प्रयोग करने समय वह मन्त्रियों की सलाह को मानने के लिए बाध्य नहीं था। वस्तुतः गवर्नर जनरल ही वास्तविक शासक था, इसकी इच्छा की उपेक्षा करना मन्त्रियों के लिए सम्भव नहीं था।

(6) विशेष उत्तरदायित्व तथा व्यक्तिगत निर्णय की शक्तियाँ- 1935 के अधिनियम के अनुसर गवर्नर जनरल को अनेक विशेष जिम्मेदारियां दी गई थीं, जो निम्नलिखित थीं-

(i) भारत या उसे किसी भी भाग में शान्ति व सुरक्षा की व्यवस्था करना।

(ii) संघ सरकार की आर्थिक स्थिरता एवं शाखा क़ी रक्षा करना।

(iii) अल्पसंख्यकों के उचित हितों और मांगों की रक्षा करना।

(iv) लोक सेवाओं के उचित हितों और मांगों की रक्षा करना।

(v) भारत में निवास करने वाले अंग्रेज व्यापारियों के विरुद्ध किसी प्रकार का विभेद न होने देना।

(vi) ग्रेट ब्रिटेन या बर्मा से भारत आये हुए माल के बारे में भेदभाव को रोकना।

(vii) देशी रियासतों और उनके शासकों के अधिकारों, सम्मान तथा प्रतिष्ठा की रक्षा करना।

(viii) अपने विशेष उत्तरदायित्वों को पूरा करने में किसी प्रकार की आने वाली बाधा को रोकना तथा प्रयोग किसे गये वैयक्तिक अधिकारों की रक्षा करना।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

1935 के अधिनियम द्वारा गवर्नर जनरल को अनेक विशेष उत्तरदायित्व सौंपे गये थे, जिनको निभानें के लिए वह व्यक्तिगत निर्णय से कार्य करता था। इनके विषय में गवर्नर जनरल के लिए मन्त्रियों से परामर्श लेना तो आवश्यक था, परन्तु उनकी सलाह मानना या न मानना उसकी इच्छा पर निर्भर था। गवर्नर जनरल की इन विशेष जिम्मेदारियों की भारतीय राष्ट्रवादियों ने कड़ी आलोचना की। प्रो. के.टी. शाह के शब्दों में,"भारतीय लोकमत इसके इसलिए विरुद्ध था, क्योंकि इन्होंने सरकार के दैनिक कार्य का बहुत बड़ा भाग लोकप्रिय मन्त्रियों के हाथ से छीन लिया।" चर्चिल ने इस सम्बनध में लिखा है कि"गवर्नर जनरल को हिटलर अथवा मुसोलिनी के समस्त अधिकार प्राप्त थे। अपने छोटे से लिखित आदेश से वह विधान के टुकड़े-टुकड़े कर सकता था तथा किसी आज्ञप्ति द्वारा कोई भी कानून, यहां तक कि मार्शल लॉ पास कर सकता था, जो कोई लॉ ही नहीं था। इन सबका केवल वही निर्णायक था। ऐसा कार्यकर्त्ता वास्तव में एक तानाशाह ही था और उसके पास एक विशाल सेना भी थी।"

प्रो. ज्योतिप्रसाद सूद ने लिखा है कि," इन विशेष जिम्मेवारियों का उद्देश्य कार्यपालिका को शक्तिशाली और स्वतन्त्र बनाना था, अतः वे उत्तरदायी शासन के सिद्धान्त के प्रतिकूल थीं। हस्तान्तरित विषयों के क्षेत्र में भी ये गवर्नर जनरल को संवैधानिक प्रमुख के रुप में कार्य करने से रोकती थी। ये विशेष जिम्मेदारियां अत्यन्त अस्पष्ट थीं, ऐक्ट में इनकी कोई परिभाषा नहीं दी हुई थी। और प्रतिक्रियावादी एवं स्वेच्छाचारी गवर्नर जनरल इनकी सहायता से राष्ट्रीय विकास तथा अभ्युदय के मार्ग में रोड़ा अटका सकता था।"

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने इस सम्बन्ध में कहा था कि, "विशेष उत्तरदायित्वों से सम्बन्धित ये शब्दावलियां इतनी व्यःपक और सामान्य है कि कदाचित ही ऐसा कोई कार्य हो, जिसे गवर्नर जनरल इसके द्वारा अपने हाथ में न ले सकता हो, यदि वह अपनी सम्मत्ति से ऐसा करना आवश्यक समझता हो और इस विषय में उसकी सम्मत्ति ही अन्तिम निर्णायक थी। ये विशेष उत्तरदायित्व इतने संन्दिग्ध, अनिश्चित और व्यापक हैं कि समस्त विभाग इनके नियन्त्रण में लिये जा सकते हैं।"[1] सर शफात अहमद खां अपनी पुस्तक "भारतीय संघ शासन" में लिखते है कि, "विशेष जिम्मेदारियां सम्पूर्ण शासन में व्याप्त थीं और ऐसा कोई विषय नहीं था, जिसमें इन्हें किसी भी समय लागू न किया जा सके।" एम.वी. पायली ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि,"गवर्नर जनरल के विशेष उत्तरदायित्व इतने ही सारभूत और कानून द्वारा अनुमोदित थे, जितने कि संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान द्वारा सर्वोच्च सेनापति के रुप में राष्ट्रपति के अधिकार, लेकिन गवर्नर जनरल के अधिकार अपेन क्षेत्र और जिन परिस्थितियों में इनका प्रयोग किया जा सकता था, उन आधार पर राष्ट्रपति के अधिकारों से कहीं व्यापक थे।"[2] गांधी जी के शब्दों में, "गवर्नर जनरल अब और भी अधिक सम्पन्न और स्वेच्छाचारी शक्तिधारी हैं।"

गवर्नन जनरल के विशेष उत्तरदायित्वों और व्यक्तिगत निर्णय के अधिकारों के बारे में मि. जिन्ना

1. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के बम्बई कांग्रेस में 1934 के अध्यक्षीय भाषण से।
2. पायली, एम.वी. : कॉन्स्टिट्यूशनल गवर्नमेंट इन इण्डिया, पृष्ठ 301.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ने ठीक ही कहा था कि, "केन्द्र में 98 प्रतिशत संरक्षण और 2 प्रतिशत उत्तरदायित्व हैं।"

आलोचना- गवर्नर जनरल की उपर्युक्त शक्तियों के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि 1935 अधिनियम में उसकी स्थिति एक निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी शासक की भांति थी। उसकी एवं विशेष स्थिति के समक्ष उत्तरदायी मन्त्री नगण्य थे। गवर्नर जनरल की स्वेच्छाचारी व्यक्तिगत निर्णय की शक्तियां उत्तरदायी सरकार की कल्पना के विरुद्ध थीं। वे लोकतन्त्र पर भारी आघात थीं।

आलोचकों के अनुसार गवर्नर जनरल का 80 प्रतिशत बजट पर पूर्ण नियन्त्रण था। वह के मतदान योग्य और मतदान के अयोग्य मदों को बांटता था। वह संघीय व्यवस्थापिका अस्वीकृत की हुई मांगों को स्वीकृत कर सकता था। गवर्नर जनरल को स्वयं अधिनियम बना अध्यादेश जारी करने का भी अधिकार दिया गया था। यदि वह उचित समझता, तो संविधान भी स्थगित कर सकता था।

गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी शक्तियाँ बहुत ही व्यापक थी। उसके हाथ में नियुक्ति भी शक्ति थी। प्रशासन के मुख्य अधिकारी उसी के द्वारा नियुक्त तथा पदच्युत किये जा गंवर्नर जनरल की विधायी शक्तियां भी बहुत व्यापक तथा अनुचित थीं। वह व्यवस्थापिका पारित विधेयकों पर निषेधाधिकार (Veto) का प्रयोग कर सकता था।

सुरक्षित विषयों पर तो गवर्नर जनरल का पूर्ण नियन्त्रण था ही, हस्तान्तरित विषयों के में भी वह अनियन्त्रित ढंग से हस्तक्षेप कर सकता था। स्वविवेक और विशेष उत्तरदायित्व सम्बन्धित शक्तियां तो इतनी व्यापक थीं कि वह प्रशासन के किसी भी विषय में हस्तक्षेप सकता था। संक्षेप में, गवर्नर जनरल एक निरंकुश तथा स्वेच्छा शासक था। स्वयं सर चर्चिल ने गवर्नर जनरल की अधिनायकवादी स्थिति को स्वीकारते हुए कहा था, "वायसराय अथवा गवर्नर जनरल को हिटलर अथवा मुसोलिनी के समस्त अधिकार प्राप्त थे।

अपने छोटे से लिखित आदेश से वह विधान के टुकड़े-टुकड़ कर सकता था तथा अज्ञप्ति द्वारा कोई भी कानून, यहां तक कि मार्शल कानून पास कर सकता था जो कोई ही न था। इनका सबका केवल वही निर्णायक था। ऐसा कार्यकर्त्ता वास्तव में एक तानाशाह था और उसके पास एक विशाल सेना भी थी।"[1]

(ii) कार्यकारिणी परिषद- 1935 के ऐक्ट के अनुसार गवर्नर जनरल की सहायता के एक कार्यकारिणी परिषद की व्यवस्था की गयी थी। इसमें तीन से अधिक सदस्य न सकते थे। ये सदस्य गवर्नर जनरल को सुरक्षित विभागों के शासन संचालन में सहायता थे। इनकी नियुक्ति गवर्नर जनरल की सिफारिश पर सम्राट द्वारा की जाती थी, परन्तु वे गवर्नर जनरल के उत्तरदायी होते थे। गवर्नर जनरल उनकी सलाह को मानने के लिए नहीं था। वे संघीय विधान मण्डल के दोनों सदनों के पदेन-सदस्य होते थे। उन्हें दोनों

1. विंस्टन चर्चिल (कोटेड बाइ एफ.सी.अरोड़ा) : द कॉन्स्टिट्यूशनल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बैठकों में भाग लेने का अधिकार था, परन्तु वोट देने का अधिकार नहीं था। वे व्यवस्थापिका प्रति उत्तरदायी नहीं होते थे, बल्कि केवल गवर्नर जनरल के ही अधीन थे। उनका कार्य वल सलाह देना था। उस सलाह को मानन या न मानना गवर्नर जनरल की इच्छा पर निर्भर । व्यवस्थापिका के सदस्य उनसे प्रश्न पूछ सकते थे, परन्तु अविश्वास का प्रस्ताव पास कर हें हटा नहीं सकते थे।

(iii) मन्त्रि-परिषद- सुरक्षित विषयों के अतिरिक्त अन्य हस्तान्तरित विषयों के शासन को लाने के लिए एक मन्त्रि-परिषद की व्यवस्था की गई थी। मन्त्रि-परिषद् संघीय विधान मण्डल प्रति उत्तरदायित्व होती थी। मन्त्रियों की संख्या अधिक से अधिक 10 होती थी। वे गवर्नर नरल द्वारा नियुक्ति तथा पदच्युत किये जाते थे, लेकिन गवर्नर जनरल के नाम जारी किये ये अनुदेश पत्र में कहा गया किसंघीय विधान सभा में बहुमत दल के नेता की सिफारिश पर त्रियों की नियुक्ति की जायेगी। मंत्रियों को विधान मण्डल के किसी एक सदन का सदस्य ना आवश्यक था। यदि किसी ऐसे व्यक्ति को मंत्री नियुक्त कर दिया जाता था, जो विधान ण्डल के किसी भी सदन का सदस्य न होता तो उसे या तो छः महीने में किसी एक सदन सदस्य बनना पड़ता था। अन्यथा त्याग पत्र देना पड़ता था।

मन्त्रि परिषद की बैठकों की अध्यक्षता गवर्नर जनरल करता था। अनुदेश पत्र में कहा गया के गवर्नर जनरल अपने मंत्रियों में सामूहिम उत्तदायित्व के सिद्धान्त को प्रोत्साहन देगा, परन्तु वर्नर जनरल चाहता, तो किसी एक मंत्री से सलाह करने के लिए स्वतंत्र था। गवर्नर जनरल मन्त्रि परिषद की कार्यविधि के नियम बनाने और मंत्रियों के बीच विभागों का वितरण करने का अधिकार था। मंत्रियों का कार्य गवर्नर जनरल को सहायता या परामर्श देना मात्र था। वे किसी प्रकार की नीति निर्धारित नहीं कर सकते थे। गवर्नर जनरल अपने विशेष उत्तरंदायित्वों नाम पर मन्त्रियों के किसी भी कार्य में हस्तक्षेप कर सकते थे। इतना ही नहीं, वह उनके रामर्श को भी ठुकरा सकता था। इस प्रकार, गवर्नर जनरल के सम्मुख मंत्रियों की स्थिति त कुछ सीमा तक खिलौने जैसी ही थी। प्रो. के.टी. शाह ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि, नये विधान (1935 के अधिनियम) के अनुसार संघीय मत्रियों की स्थिति ऐसे आभूषणों जैसी , जिनका कि कोई उपयोग नहीं है, वे जनता के प्रतिनिध माने जाते हैं किन्तु कभी भी उसकी लाई करने के लिए स्वतंत्र नहीं है, उनका उत्तरदायित्व बिना किसी शक्ति के है, इनका पद ना किसी अधिकार तथा वास्तविक प्रभाव के हैं।[1]

(vi) संघीय विधान मण्डल

संघीय विधान मण्डल के दो सदन थे : राज्य सभा व संघीय सभा। संघीय विधान मण्डल च्च सदन था और संघीय सभा निम्न सदन

राज्य सभा (उच्च सदन)

1. शाह, के.टी. : फेडरल स्ट्रक्चर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रचना- राज्य सभा में कुल 260 सदस्य थे। इनमें से 104 सदस्य देशी रियासतों के यद्यपि देशी रियासतों की आबादी 23 प्रतिशत थी, फिर भी उन्हें 40 प्रतिशत स्थान दे दिये थे। इन सदस्यों को चुनने का अधिकार देशी रियासतों की प्रजा को नहीं था, बल्कि देशी उन्हें मनोनीत करते थे। 260 में से 156 प्रतिनिधि ब्रिटिश प्रांतों के थे। 156 प्रतिनिधियों 150 सदस्य ब्रिटिश प्रणाली के अनुसार चुने जाते थे और शेष 6 सदस्यों को गवर्नर अपनी इच्छानुसार नारियों, अल्पमतों और दलित वर्गों को प्रतिनिधित्व देने के लिए करते थे। देशी रियासतों की भांति प्रांतों को भी समान प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया था। स्थानों, मुसलमानों और सिक्खों के लिए सुरक्षित स्थानों के लिए प्रत्यक्ष चुनाव होता जबकि यूरोपियन आंग्ल भारतीयों और ईसाईयों के लिए परोक्ष या अप्रत्यक्ष चुनाव की व्य की गई थी। मताधिकार भी उन लोगों को दिया गया जो सम्पत्तिशाली थे। ब्रिटिश भारत के 150 स्थानों का बटवारा इस प्रकार किया गया-75 सामान्य स्थान, 49 मुस्लि अनुसूचित जातियां, 6 महिलाएं, 4 सिक्ख, 7 युरोपियन,1 आंग्ल भारतीय तथा 2 भा ईसाई।

राज्य सभा के सदस्यों का कार्यकाल 9 वर्ष था, जिनमें से 1/3 सदस्य प्रति 3 वर्ष अवकाश ग्रहण करते थे और उनकी जगह नये सदस्य चुने जाते थे। राज्य सभा एक स्था सदन था, जिसे अवधि से पूर्व भंग नहीं किया जा सकता था। राज्य सभा अपने सदस्यों सभापति तथा उप-सभापति का निर्वाचन करती थी। पालन्दे के शब्दों में, "राज्य स निहित स्वार्थों, प्रतिक्रियावादी थोड़े से चुने हुए शासकों और रुढ़ीवादी राजनीतिज्ञों की बनाने का प्रयत्न किया गया था।"

संघीय सभा (निम्न सदन)

रचना-संघीय विधान मण्डल के निम्न सदन का नाम संघीय सभा था। इसकी संख्या 375 निश्चित की गई थी। इनमें से 125 स्थान देशी रियासतों को दिये गये थे रियासतों के शासक मनोनीत करते थे शेष 250 स्थानों में ये 246 स्थान साम्प्रदायिक अन्य वर्ग हितों के आधार पर ब्रिटिश प्रांतों में बांट दिये गये थे और 4 स्थान अप्रान्तीय व्यापार, उद्योग तथा श्रम को दिये गये थे। 246 स्थान साम्प्रदायिक तथा अन्य वर्ग के हि आधार पर विभिन्न ब्रिटिश प्रान्तों में इस प्रकार बांट दिये गये थे-105 सामान्य स्थान (स स्थानों में से 19 अनुसूचित जातियों के लिए सुरक्षित रखे गये थे।) 82 मुस्लिम, 6 सिक्ख युरोपियन, 8 आंग्ल-ईसाई, 4 आंग्ल-भारतीय, 9 महिलाएं, 8 वाणिज्य तथा उद्योग, तथा 7 जमींदारों के रूप में विभिन्न प्रांतों के बीच बांट दिये गये। संघीय सभा में देशी रि का बंटवारा आबादी के आधार पर हुआ था।

संघीय सभा का कार्यकाल 5 वर्ष था, परन्तु उसे इससे पूर्व ही भंग किया जा सकता इस अधिनियम की यह एक अनोखी बात थी, कि संघीय सभा के सदस्यों का चुनाव अ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तरीके से होता था, जबकि संसार के सभी देशों में प्रायः निम्न सदन के चुनाव प्रत्यक्ष विधि से होते हैं। इसके सदस्य प्रान्तीय विधान सभाओं द्वारा चुने जाते थे। संघीय सभा अपने सदस्यों में से अध्यक्ष और उपाध्यक्ष का निर्वाचन करती थी।

संघीय विधान मण्डल की शक्तियाँ

1935 के अधिनियम में प्रस्तावित संघीय विधान मण्डल पूर्ण प्रभुत्त्व, सम्पन्न संस्था नहीं था और उसकी शक्तियां अत्यन्त सीमित थी। एम.वी. पायली के शब्दों में, "व्यवस्थापिका प्रभुता सम्पन्न नहीं थीं, वरन इसे तो गवर्नर जनरल द्वारा शासित कार्यपालिका के अधीन संस्था के रूप में कार्य करना था।"

विधान मण्डल को निम्नलिखित शत्तियाँ प्राप्त थीं-

(1) विधायी शक्तियाँ- संघीय विधान मण्डल को संघीय सूची और समवर्ती सूची में उल्लिखित विषयों पर कानून बनाने का अधिकार था। यह प्रांतीय विषयों पर भी उस दशा में कानून बना सकता था, ज़बकि गवर्नर जनरल ने संकटकालीन स्थिति की घोषणा कर दी हो। दोनों सदनों द्वारा पास होने और गवर्नर जनरल की स्वीकृति मिलने पर ही कोई विधेयक कानून बन सकता था। यदि किसी विधेयक पर दोनों सदनों में मतभेद उत्पन्न हो जाता था, तो उनकी संयुक्त बैठक में बहुमत के आधार पर निर्णय लिया जाता था।

इतना सब कुछ होते हुए भी संघीय विधान मण्डल की शक्तियां अत्यन्त सीमित और प्रतिबन्धित थीं। उसे 1935 के ऐक्ट (संविधान) में संशोधन करने का कोई अधिकार नहीं था। यह शक्ति ब्रिटिश संसद के हाथ में थी। वह ब्रिटिश संसद द्वारा पारित किसी भी कानून के विरुद्ध कोई कानून पास नहीं कर सकता था। कुछ विशेष प्रकार के विधेयक गवर्नर जनरल की पूर्व अनुमति के बिना विधान मण्डल में पेश नहीं किये जा सकते थे। गवर्नर जनरल विधान मण्डल द्वारा पास किये गये किसी भी विधेयक पर निषेधाधिकार (Veto) का प्रयोग कर सकता था इस प्रकार यह विधान मण्डल राजसत्ताधारी नहीं था।

(2) कार्यकारिणी शक्तियाँ- दोनों सदनों की कार्यकारिणी शक्तियां समान नहीं थी। मंत्रि-परिषद या किसी एक मंत्री के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित कर उसे हटा सकती थी, परन्तु राज्य परिषद को यह अधिकार नहीं था।जहां तक गवर्नर जनरल के पार्षदों का सम्बन्ध था, उनको दोनों में से कोई भी सदन अविश्वास प्रस्ताव द्वारा नहीं हटा सकता था। दोनों सदनों के सदस्यों द्वारा मन्त्रियों एवं कार्यकारी पार्षदों से प्रश्न पूछे जा सकते थे। कार्यकारी पार्षदों को सदस्यों के प्रश्नों का उत्तर देना पड़ता था। दोनों सदनों के मन्त्रियों के विरुद्ध काम रोको प्रस्ताव पास करने का अधिकार था। दोनों सदन किसी भी विषय पर प्रस्ताव पास कर गवर्नर जनरल के पास भेज सकते थे, जिसे मानना या न मानना गवर्नर जनरल की इच्छा पर निर्भर करता था। जिन मामलों में गवर्नर जनरल को विशेष उत्तरदायित्व या स्वेच्छाचारी शक्तियां प्रदान कर दी गयी थीं, उनमें विधान मण्डल का कोई नियन्त्रण नहीं था इस प्रकार गवर्नर जनरल और परिषद के सदस्य विधान मण्डल के नियन्त्रण से बाहर थे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(3) वित्तीय शक्तियाँ- श्रीनिवासन के शब्दों में, "संघीय व्यवस्थापिका की वित्तीय शक्ति भी अत्यधिंक सीमित थीं,"[1] लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था के विपरीत दोनों सदनों की वि शक्तियां भी समान थीं, परन्तु बजट पहले केवल संघीय सभा में ही पेश किया जा सकता बाद में वह राज्य सभा में भेजा जाता था। पालन्दे के शब्दों में, "अधिनियम द्वारा उच्च को वह शक्ति प्रदान की गयी थी, जिसे प्रजातन्त्रतात्मक व्यवस्था में निम्न सदन का ए विशेषाधिकार समझा जाता है।"[2]

वार्षिक बजट गवर्नर जनरल द्वारा तैयार किया जाता था। बजट के दो भाग होते थे- के राजस्व पर भारित व्यय और शेष व्यय। पहले भाग पर संघीय विधान मण्डल बहस तो सकता था, परन्तु कटौती नहीं कर सकता था। लगभग 80 प्रतिशत बजट भारित व्यय में जाता था। गवर्नर जनरल ही यह निर्णय करता था कि कौन सी मदें मत निरपेक्ष होंगी। तरह से 80 प्रतिशत बजट पर संघीय विधान मण्डल का कोई नियन्त्रण नहीं था। शेष प्रतिशत बजट अनुदान के लिए मांगों के रुप में पेश किया जाता था। इस प्रकार व्यवस्थ में मतदान होता था। इस खर्चे में विधान मण्डल कोई भी कटौती कर सकता था या मां अस्वीकार कर सकता था, परन्तु गवर्नर जनरल अपने विशेषाधिकार द्वारा कटौती या अस्वी मांग को पुनः मन्जूर कर सकता था। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि संघीय व्यवस्थापिका वित्तीय शक्तियां अत्याधिक सीमित थीं।

संघीय व्यवस्थापिका की वित्तीय शक्तियां के सम्बन्ध में प्रो.के.टी.शाह लिखते हैं "हमें यह मानना होगा कि संघीय व्यवस्थापिका की वित्तीय शक्तियाँ अत्याधिक सीमित अन्तिम निर्णय गवर्नर जनरल के हाथ में था और राष्ट्रीय व्यवस्थापिका के दोनों सदनों संयुक्त मत द्वारा उसके सुझाव का विरोध किये जाने पर भी उसका सुझाव मान्य होता

संघ योजना के लागू नहीं होने से 1935 के ऐक्ट के अनुसर संघीय विधान मण्डल नहीं हो सका।

संघीय व्यवस्थापिका के संगठन और शक्तियों के अध्ययन से यह नितान्त स्पष्ट हो है कि यह एक सम्पन्न कानून निर्मात्री संस्था नहीं थी। इसकी शक्तियां अत्यन्त सीमित थीं उन पर इतने प्रतिबन्ध लगा दिये गये थे कि किसी भी रुप में इसे संसदात्मक प्र व्यवस्थापिका नहीं कहा जा सकता। सबसे अधिक आपत्तिजनक बात यह थी कि वित्तीय में भी उसकी शक्तियां नगण्य थीं। पालन्दे ने ठीक ही लिखा है कि, "वित्तीय शक्ति का अ उत्तरदायी शासन को अवास्तविक बना देता है और इसे एक विडम्बना एवं उपहास का देता है।"[4]

1. श्री निवासन, एन : डेमोक्रेटिक गवर्नमेंट इन इण्डिया, पृष्ठ 58.
2. पालन्दे, एम.आर. : इन्ट्रोडक्शन टू इण्डियन एडमिनिस्ट्रेशन, पृष्ठ 78.
3. शाह, के.टी. : फेडरल स्ट्रक्चर, पृष्ठ 322-323.
4. पालन्दे. एम.आर : इण्ट्रोडक्शन टू द इण्डियन एडमिनिस्ट्रेशन, पृष्ठ 48.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

VII संघीय न्यायालय अथवा फैडरल कोर्ट

1935 के अधिनियम के अनुसर एक संघीय न्यायालय की स्थापना की गई थी। इसका प्रमुख उद्देश्य संघीय इकाइयों के आपसी झगड़ों और इनके केन्द्र के साथ झगड़ों का निपटारा करना तथा संविधान की व्याख्या करना था। 1 अक्टूबंर 1937ई. से संघीय न्यायालय ने काम शुरु कर दिया।

संगठन-संघीय न्यायालय में एक मुख्य न्यायधीश तथा अधिक से अधिक 6 अन्य न्यायाधीश नियुक्त किये जा सकते थे। ये सब न्यायाधीश ब्रिटिश सम्राट द्वारा बहुत ऊंची योग्यताओं के आधार पर ही नियुक्त किये जाते थे। इन न्यायाधीशों की संख्या में केवल उस समय वृद्धि की जा सकती थी, जबकि संघीय विधान इस हेतु एक प्रार्थनापत्र गवर्नर जनरल द्वारा ब्रिटिश सम्राट को भेजे। न्यायाधीश सदाचार पर्यन्त अपने पर बने रहते थे, परन्तु 65 वर्ष की व्यवस्था प्राप्त कर लेने पर अवकाश ग्रहण करते थे। उनको 64 वर्ष की आयु से पूर्व केवल सदाचार अथवा शारीरिक और मानसिक दुर्बलता के कारण ब्रिटिश सम्राट उस समय हटा सकता था, जबकि प्रिवी कौंसिल की न्याय समिति उपर्युक्त दोषों के आधार पर न्यायाधीश को दोषी ठहरा कर हटाने की राय दे।

मुख्य न्यायाधीश का वेतन 7,000 रुपये तथा अन्य न्यायाधीशों का वेतन 5,500 रुपये मासिक था। न्यायाधीशों के वेतन भारतीय राजस्व पर भारित व्यय थे। न्यायाधीशों की स्वतन्त्रता की सुरक्षा के लिए उने कार्यकाल में उनके वेतन एवं भत्ते में किसी प्रकार की कटौती नहीं की जा सकती थी।

न्यायाधीशों के लिए योग्यताएँ- संघीय न्यायालय के न्यायाधीशों के लिए निम्नलिखित योग्यताएं निधारित की गई थीं-

(1) वह ब्रिटिश भारत या संघ में शामिल होने वाली किसी देशी रियासत के उच्च न्यायालय में कम-से-कम पांच वर्ष तक न्यायाधीश रहा हो।

अथवा

(2) वह इंगलैण्ड या उत्तरी आयरलैण्ड में दस वर्ष तक बैरिस्टर रहा हो।

अथवा

(3) स्कॉटलैण्ड के एडवोकेट संघ का दस वर्ष तक सदस्य रहा हो।

(4) ब्रिटिश भारत या संघ में शामिल होने वाली देशी रियासत के उच्च न्यायालय में 10 वर्ष तक एडवोकेट रह चुका हो।

मुख्य न्यायाधीष के लिए यह आवश्यक था वह 15 वर्ष तक पुराना एडवोकेट, बैरिस्टर या वकील रह चुका हो। ब्रिटिश सम्राट अपनी मन्त्रि-परिषद के परामर्श से न्यायाधीशों के वेतन, भत्ते और पेन्शन आदि निर्धारित करता था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संघीय न्यायालय का अधिकार क्षेत्र

संघीय न्यायालय को प्रारम्भिक, अपीलीय और परामर्श सम्बन्धी अधिकार प्राप्त थे, जो निम्न प्रकार है-

(1) प्रारम्भिक अधिकार क्षेत्र- संघीय न्यायालय को 1935 के ऐक्ट (संविधान) की व्याख्या करने का अधिकार प्राप्त था। इसके अतिरिक्त संघीय न्यायालय अपने प्रारम्भिक अधिकार क्षेत्र के अनुसार उन विवादों का भी निर्णय करता था, जो भारतीय संघ और एक प्रान्त अथवा संघ में शमिल होने वाली देशी रियासतों के बीच विवाद अथवा किसी प्रान्त या दो रियासतों के आपसी झगड़े अथवा दो से अधिक प्रान्तों या रियासतों के बीच हुए झगड़ों का निर्णय करता था।

(2) अपीलीय अधिकार क्षेत्र- संघीय न्यायलय को प्रान्तों और संघ में शामिल होने वाली देशी रियासतों के उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपील सुनने का अधिकार था, यदि वह यह प्रमाण-पत्र दे दें कि अपील के अधीन मामले में संविधान की व्याख्या सम्बन्धी कोई महत्त्वपूर्ण प्रश्न अन्तर्निहित है। इसे देशी रियासतों के उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध भी ऐसी अपील को सुनने का अधिकार था, बशर्तें कि रियासत के संघ प्रवेश के आवेदन में उसका उल्लेख होता और सम्बद्ध रियासत के शासक द्वारा उसकी अनुमति दी जाती।

(3) परामर्श सम्बन्धी अधिकार क्षेत्र- गवर्नर जनरल के अनुरोध पर किसी कानूनी मामले के सम्बन्ध में संघीय न्यायालय परामर्श दे सकता था। इस प्रकार परामर्श खुले न्यायालय में दिया जाता था।

(4) रिकार्ड न्यायालय के रुप में- संघीय सरकार एक अभिलेख न्यायालय (Record Court) के रुप में भी कार्य करता था। इसकी कार्यवाहियों तथा निर्णयों का रिकार्ड रखा जाता था। नीचे के न्यायालयों में इसके निर्णयों का हवाला दिया जा सकता था।

संघीय न्यायालय सर्वोच्च न्यायालय नहीं था- 1935 के ऐक्ट द्वारा स्थापित संघीय न्यायालय सर्वोच्च न्यायालय नहीं था। इसके निर्णयों के विरुद्ध इसकी आज्ञा के बिना निम्नलिखित मामलों के प्रिवी कौंसिल की न्याय समिति को अपील की जा सकती थी-

(i) ऐसे मामले जिनमें किसी रियासत के प्रवेश पत्र द्वारा संघ सरकार को दी गई कानूनी और कार्यकारिणी शक्ति के विस्तार का प्रश्न उत्पन्न होता हो।

(ii) जो देशी रियासतें संघ में शामिल हो चुकी हैं, उनमें संघीय विधान मण्डल के कानूनों को लो लागू करने से जो प्रश्न उत्पन्न होता हो।

(iii) 1935 के अधिनियम के अधीन जारी किये गये सपरिषद आदेश की व्याख्या से प्रश्न उत्पन्न होता हो और संघीय न्यायालय द्वारा इस प्रश्न पर निर्णय दिया गया हो।

उपर्युक्त मामलों को छोड़कर शेष मामलों में अपील करने हेतु संघीय न्यायालय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्वीकृति लेनी पड़ती थी।

संघीय न्यायालय की स्थापना और कार्य- संघीय न्यायालय की स्थापना 1 अप्रैल 1937 को की गई। सर मौरिस ग्वायर इस न्यायालय के प्रथम मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किये गये थे। इसके अतिरिक्त दो अन्य न्यायाधीश सर्व श्री एम.आर.जयकर और एस.एम.सुलेमान थे। संघीय न्यायालय को स्वयं अपने और भारत के अन्य न्यायालयों के कार्य संचालन के लिए नियम और विनियम बनाने का अधिकार था। 1938 में संघीय न्यायालय के क्षेत्राधिकार में वृद्धि कर दी गई थी तथ उस उच्च न्यायालय के उन विवादें को सुनने का अधिकार भी प्रदान कर दिया गया, जो 50 हजार रुपये या इससे अधिक धन राशि से सम्बन्धित थे।

संघीय न्यायालय ने 13 वर्षों तक अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य किया। द्वितीय महायुद्ध के दौरान इसने जनता के नागरिक अधिकारों की कार्यकारिणी की निरंकुशता से रक्षा की। इसने भारत प्रतिरक्षा कानूनों को रद्द करके यह सिद्ध कर दिया कि संघीय न्यायालय सरकारी नियन्त्रण से मुक्त है और नागरिकों की स्वतन्त्रता की रक्षा करने के लिए कटिबद्ध है। 1950 ई. में नया संविधान लागू होने पर इसे भारत का सर्वोच्च न्यायाल्य बना दिया गया और इसकी शक्तियों में वृद्धि कर दी गई।

VIII संघीय न्यायालय अथवा फैडरल कोर्ट

1935 के एक्ट का मुख्य पुरस्कार प्रान्तीय स्वायत्तता या स्वराज्य था प्रान्तों में द्वैध शासन व्यवस्था का अन्त कर उसके स्थान पर नयी संवैधानिक व्यवस्था को लागू किया गया।

प्रान्तीय स्वायत्तता का अर्थ

प्रान्तीय स्वायत्तता के अन्तर्गत प्रान्तों में पूर्ण उत्तरदायी शासन की स्थापना की गयी। रक्षित या हस्तान्तरित विषयों के भेद को समाप्त कर दिया गया। इस अधिनियम द्वारा प्रान्तों को एक नया वैधानिक दर्जा दिया गया। उन पर से केन्द्र के नियन्त्रण को कम कर दिया गया। प्रान्तीय विषयों पर केन्द्र के हस्तक्षेप बिना उन्हें कानून बनाने का अधिकार दिया गया। प्रान्तीय स्वायत्तता या स्वशासन के दो अर्थ लगाये जा सकते हैं। इसका प्रथम अर्थ यह है कि प्रान्तों को अपने क्षेत्र में स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करने का अधिकार होना चाहिये अर्थात वे अपने क्षेत्र में केन्द्रीय नियन्त्रण अथवा बाहरी नियन्त्रण से स्वतंत्र होने चाहिए। प्रान्तीय स्वशासन का दूसरा अर्थ यह है कि प्रान्तों में ऐसा शासन स्थापित होना चाहिए, जिस पर जनता द्वारा निर्वाचित मन्त्रियों का नियन्त्रण हो और जो व्यवस्थापिका के प्रति और व्यवस्थापिका के माध्यम से जनता के प्रति उत्तरदायी हो। संयुक्त संसदीय समिति ने प्रान्तीय स्वराज्य के बारे में कहा था कि, "ऐसी योजना जिसके अन्तर्गत प्रत्येक गवर्नर के प्रान्त में अपनी कार्यपालिका व विधानमण्डल होंगे, जिन्हें अपने पारिभाषित क्षेत्र में अनन्य अधिकार प्राप्त हों और उसमें वे केन्द्रीय शासन तथा विधान-मण्डल से अधिकांशतः स्वतन्त्र हों।" श्री पुन्निया के अनुसार, "प्रान्तों में उत्तरदायी सरकार का तात्पर्य यही है कि प्रान्त से सम्बन्धित समस्त विषयों में केन्द्र के हितों को हानि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पहुंचती हो। प्रान्तीय स्वराज्य का हमारी सम्मति में यही अर्थ है: प्रथम तो इसका अर्थ है समस्त प्रान्तीय क्षेत्र में पूर्ण उत्तरदायी सरकार और द्वितीय इस क्षेत्र में अपनी शक्ति को बिना किसी बाह्य नियन्त्रण अथवा हस्तक्षेप के प्रयोग करने के लिए प्रान्तीय सरकार को स्वतन्त्रता।

प्रान्तीय स्वायत्तता की विशेषताएँ

1935 के ऐक्ट के अन्तर्गत प्रान्तीय स्वायत्तता की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित थीं-

(1) प्रान्त की कार्यकारिणी शक्ति सम्राट के प्रतिनिधि के रूप में गवर्नर में निहित थी। गवर्नर को सहायता एवं परामर्श देने के लिए मन्त्रि-परिषद का प्रावधान था। चूंकि प्रान्तों में उत्तरदायी सरकार स्थापित की गई थी, इसलिए गवर्नर को यह निर्देश दिया गया था कि जहां तक सम्भव होसके वह मन्त्रि परिषद की सहायता से ही शासन का संचालन करे। गवर्नर को प्रशासनिक कार्यों में स्वविवेक की शक्तियां भी प्राप्त थीं। इन विषयों में वह मन्त्रियों से परामर्श नहीं करता था। उसे कुछ विशेष उत्तरदायित्व भी सौंपे गये थे। इन मामलों में गवर्नर के लिए मंत्रियों से परामर्श लेना तो आवश्यक था, परन्तु उनकी सलाह पर अमल करना आवश्यक नहीं था। ऐसे मामलों में वह व्यक्तिगत निर्णय द्वारा आदेश दे सकता था।

(2) प्रशासन के जिन मामलों में गवर्नर को स्वविवेकीय और व्यक्तिगत निर्ण की शक्ति प्रान्त नहीं थी, उनमें मन्त्रियों को शासन भार सौंपा गया था। मंत्री अपने सभी कार्यों के लिए विधान मण्डल के प्रति उत्तरदायी होते थे।

(3) प्रत्येक प्रांत में पहले से अधिक व्यापक मताधिकार के आधार पर निर्वाचित विधान सभा की स्थापना की गयी थी। 6 प्रान्तों में द्वितीय सदन का प्रावधान रखा गया था, जिसे विधान परिषद कहा जाता था।

(4) प्रान्तों में स्वतन्त्र कार्यपालिका, उच्च न्यायालय और प्रान्तीय सेवाएं स्थापित की गई।

प्रान्तों की स्वायत्तता पर रुकावटें

यद्यपि प्रान्तों को स्वायत्तता प्रदान की गई थी, लेकिन यह अपूर्ण थी, उस पर अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध लगाये गये थे, जिनमें से अग्रलिखित उल्लेखनीय है-

(1) प्रान्तीय क्षेत्र में केन्द्र द्वारा हस्तक्षेप किया जा सकता था। उदाहरण स्वरूप, अधिनियम की धारा 102 के अनुसार गवर्नर जनरल प्रान्त में आन्तरिक व्यवथा या शान्ति अथवा युद्ध के वास्तविक या सम्भावित खतरे के कारण संकटकालीन स्थिति की घोषणा कर सकता था। इस स्थिति में संघीय विधान-मण्डल को प्रान्तों के बारे में कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो जाता था।

(2) 1935 के अधिनियम की धारा 126 के अनुसार गवर्नर जनरल प्रान्तीय सरकारों को निर्देश जारी कर सकता था, यदि वह उन निर्देशों को भारतीय शान्ति और सुरक्षा को कायम रखने के लिए आवश्यक समझे।

(3) यदि गवर्नर अपने प्रान्त में धारा 93 के अनुसार यह घोषणा कर देता था कि संविधान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विफल हो गया और उसके अनुसार सरकार नहीं चलाई जा सकती, तो प्रान्तीय स्वराज्य के सारे ढांचे का अन्त क्रिया जा सकता था। उस परिस्थिति में प्रान्तीय मन्त्रिमण्डल को हटाकर गवर्नर सारे प्रान्त का शासन स्वयं सम्भाल सकता था। ऐसी स्थिति में उसे गवर्नर जनरल के आदेशों का पालन करना पड़ता था। इतना ही नहीं, जब गवर्नर अपने स्वविवेकीय तथा व्यक्तिगत निर्णय की शक्तियों का प्रयोग करते थे, तो वे उनका प्रयोग गवर्नर जनरल के नियन्त्रण में रहकर ही करते थे।

(4) प्रान्तीय कानूनी क्षेत्र में भी गवर्नर जनरल का नियन्त्रण एक वास्तविकता थी। कुछ विशेष प्रकार के विधेयक अथवा संशोधन गवर्नर जनरल की पूर्व अनुमति के बिना प्रान्तीय विधान मण्डल में पेश नहीं किये जा सकते थे।

(5) प्रान्तीय विधान मण्डलों द्वारा पास किये गये विधेयकों कों गवर्नर द्वारा गवर्नर जनरल को स्वीकृति के लिए सुरक्षित किये जा सकते थे, जिन्हें स्वीकृत करना या न करना या पुनर्विचार के लिए लौटाना मवर्नर जनरल की इच्छा पर निर्भर करता था। गवर्नर जनरल यदि चाहता, तो उन विधेयकों को ब्रिटिश सम्राट की स्वीकृति के लिए भी रिजर्व कर सकता था।

(6) अपने विशेष उत्तरदायित्वों के अन्तर्गत गवर्नर जनरल किसी भी प्रान्तीय क्षेत्र पर अपना पूर्ण नियन्त्रण स्थापित कर सकता था और प्रान्तीय मंत्री को तदानुकूल आदेश दे सकता था।

(7) मंत्रियों के अधीनस्थ क्षेत्र में गवर्नर जनरल हस्तक्षेप कर सकता था। उदाहरणस्वरुप, कानून और व्यवस्था बनाये रखने का उत्तरदायित्व गवर्नर जनरल का था। यही कारण है कि डॉ.राजेन्द्र प्रसाद ने कहा था कि,"यह घोषणा करना कि कानून और व्यवस्था मंत्री को सौंप दी गयी है, जबकि उनके सम्बन्ध में विशेष उत्तरदायित्व गवर्नर जनरल तथा गवर्नर को था, छल और कपट से कम नहीं था। गवर्नर, गवर्नर जनरल ब्रिटिश मुकुट तथा संसद को दी गयी विस्तृत शक्तियों ने प्रान्तीय स्वशासन को नहं के बराबर कर दिया था, जो कि भारतीयों के लिए सबसे बड़ा पुरस्कार था।"[1]

(8) 1935 के ऐक्ट के अनुसार गवर्नर एक संवैधानिक अध्यक्ष नहीं था। वह कार्यपालिका का प्रधान था कार्यपालिका की समस्त शक्तियां उसके हाथ में निहित थीं। विधायी क्षेत्र में उसे बहुत अधिक शक्तियां प्राप्त थीं। उसकी अनुमति के बिना कोई बिल कानून नहीं बन सकता था। वह किसी भी बिल को पुनर्विचार के लिए भेज सकता था। वह किसी भी बिल को अस्वीकृत कर सकता था। इसके अतिरिक्त उसकी स्वविवेक की शक्ति व्यक्तिात निर्णय की शक्तितथा अध्यादेश जारी करने की शक्ति विधायी क्षेत्र मे उसे इतना शक्तिशाली बना देती थी कि प्रान्तीय स्वायत्तता एक मखौल बन जाती थी।

(9) वित्तीय मामलों में भी गवर्नर को असाधारण अधिकार थे। सारा बजट उसकी देख-

1. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद द्वारा 1934 के बम्बई अधिवेशन के अध्यक्ष से दिया गया भाषण.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रेख में तैयार होता था। वह प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा द्वारा अस्वीकृत की हुई किसी भी ... को स्वीकृत कर सकता था।

(10) मंत्रियों की नियुक्ति और पदच्युति की शक्ति भी गवर्नर के पास थी। वह मंत्रियों ... विभागों का बंटवारा करता था और बैठक बुलाता था। इससे सिद्ध होता है कि मंत्री गवर्नर ... इच्छा के विरुद्ध कर सकते थे।

(11) इन सब प्रतिबन्धों के बावजूद जो थोड़े बहुत अधिकार उत्तरदायी मंत्रियों के पास ... थे, उनमें सार्वजनिक सेवाओं ने भी अनेक बाधाएं उपस्थित कीं। इसका कारण यह था ... सार्वजनिक सेवाओं पर मंत्रियों की अपेक्षा संचिवों का प्रभावशाली नियन्त्रण था। सचिवों ... सीधा गवर्नर से मिलने की आज्ञा थी। अतः सचिव मंत्रियों के आदेशों के विपरीत उनमें अ... इच्छानुसार संशोधन करवा लेते थे। इसके अतिरिक्ति गवर्नर भी प्रायः मंत्रियों की अपेक्षा स... की बात को अधिक मानते थे। अतः मन्त्रियों की शक्तियों का ह्रास हो गया और प्रान्ती... स्वायत्ता एक मजाक बन कर रह गया था। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के अनुसर, "सेवाओं की ... उच्च स्थिति के कारण उनके द्वारा अपने अधिकारी मंत्रियों की नीति, निश्चयों और आज्ञाओं ... अवहेलना ही नहीं की गयी, वरन् ऐसे गत्यावरोध उपस्थित किये गये, जो मंत्रियों के ... अपयश के विषय होते थे और जिनके आधार पर यह कहा जा सकता था कि इन अक्षम ... अनुभवहीन मंत्रियों को सत्ता का हस्तान्तरण करना ही गलत हैं।"[1]

इस प्रकार, प्रान्तीय स्वायत्तता पर आन्तरिक और बाह्य दोनों दृष्टियों से अनेक नियन्... थे। मंत्रियों की स्थिति के सम्बन्ध में पं.नेहरु लिखते हैं कि, "प्रान्तीय क्षेत्र में लोकप्रिय सर... की स्थिति असाधारण थी। उस पर वायसराय और अनुत्तरदायी केन्द्रीय सरकार की शक्ति... के सभी प्रतिबन्ध थे और प्रान्त के गवर्नर भी वायसराय की तरह ही निषेधाधिकार और अ... ही ओर से कानून निर्माण के आधार पर हस्तक्षेप कर सकता था। लोकप्रिय मंत्रियों ... प्रान्तीय व्यवस्थापिका के प्रत्यक्ष विरोध के बावजूद वह कुछ भी कर कसता था। उच्च सेवा... और पुलिस को भी उच्च स्थिति प्रदान कर दी गयी थी और मंत्री इस सम्बन्ध में कुछ नहीं ... सकते थे।" डॉ.राजेन्द्र प्रसद ने भी कहा है कि,"गवर्नर, गवर्नर जनरल, ब्रिटिश ताज ... संसद को दी गयी विस्तृत शक्तियों ने प्रान्तीय स्वशासन को नहीं के बराबर कर दिया था ... कि भारतीयों के लिए सबसे बड़ा पुरस्कार था।"

प्रान्तीय शासन के आन्तरिक तथा बाहरी प्रतिबन्धों से स्पष्ट होता है कि प्रान्तीय स्वायत्... केवल एक धोखा था। अतः भारतीयों ने इसके प्रति असंतोष व्यक्त किया और प्रान्तों ... वास्तविक स्वायत्तता देने की मांग की।

लेकिन इन कमियों और बाधाओं के बावजूद प्रान्तीय शासन में नवीन योजना पु... व्यवस्था पर एक निश्चित सुधार थी। भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के रहते इससे अधिक ...

1. 1934 की बम्बई कांग्रेस में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के अध्यक्षीय भाषण से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आशा नहीं की जा सकती थी। यही कारण था कि कांग्रेस और भारत के दूसरे राजनैतिक दलों ने संघीय योजना को अस्वीकार करते हुए भी 1935 के अधिनियम के प्रान्तीय स्वायत्तता के भाग को स्वीकार कर उस पर आचरण करना मंजूर कर लिया था।

प्रान्तीय कर्यपालिका

गवर्नर-प्रान्तीय कार्यपालिका में गवर्नर तथा उसकी मंत्रि-परिषद् शामिल होती थी। गवर्नर प्रान्तीय कार्यपालिका का प्रधान तथा ब्रिटिश सम्राट का प्रतिनिधि होता था।

नियक्ति- बम्बई, मद्रास और बंगाल के गवर्नरों को सम्राट भारत-मंत्री की सिफारिश पर नियुक्त करते थे। शेष प्रान्तों के गवर्नरों की नियुक्ति भारत के गवर्नर जनरल की सिफारिश पर की जाती थी। उनका कार्यकाल 5 वर्ष का होता था, परन्तु सम्राट यदि चाहता, तो उन्हें बीच में ही हटा सकता था। गवर्नरों को वेतन और भत्ते भारतीय राजस्व से दिये जाते थे। उनका वेतन निश्चित होता था। उसमें प्रान्तीय विधान मण्डल किसी भी प्रकार की कटौती नही कर सकता था। गवर्नरों की उपलब्धियां और सेवा की शर्तें लगभग वही रहीं जो 1919 के ऐक्ट के अधीन थी।

1935 के ऐक्ट द्वारा प्रान्तीय गवर्नर की मान-मर्यादा में कोई कमी नहीं की गयी थी, परन्तु प्रान्तों में उत्तरदायी शासन की स्थापना होने से गवर्नर की वैधानिक स्थिति में परिवर्तन हो। जब गवर्नर उत्तरदायी मंत्रियों के परामर्श के आधार पर शासन का संचालन करता था तब वह गवर्नर जनरल के नियंत्रण से मुक्त होता था, लेकिन ज़ब वह अपने विवेक अथवा व्यक्तिगत निर्णय के आधार पर कार्य करता था गवर्नर जनरल के निरीक्षण और नियंत्रण के अधीन होता था।

गवर्नर की शक्तियाँ- 1935 के ऐक्ट क अनुसर गवर्नर को तीन प्रकार की कार्यपालिका शक्तियां प्रदान की गयी थीं-(क) स्वेच्छाचारी या मनमानी शक्तियां (ख) व्यक्तिगत निर्णय की शक्तियां (ग) मंत्रियों के परामर्श से प्रयोग में लाई जाने वाली शक्तियां।

(क) स्वेच्छाचारी या मनमानी शक्तियाँ- गवर्नर की स्वेच्छाचारी शक्तियां निम्नलिखित थीं

(i) इस बात का निर्णय करना कि किसी मामले में उसे अपनी स्वविवेकी शक्तियां अथवा व्यक्तिगत निर्णय की शक्तियों का प्रयोग करना है या नहीं।

(ii) मंत्रि-परिषद की बैठकों की अध्यक्षता करना।

(iii) प्रान्तीय शासन को सुचारु रुप से चलाने के लिए नियम बनाना।

(iv) मंत्रियों की नियुक्ति तथा पदच्युति।

(v) मंत्रियों के वेतन जब तक कि वे विधान मण्डलों के द्वारा निश्चित न कर दिय जाएं, निश्चित करना।

(vi) सरकार को उलटने के लिए किये जाने वाले अपराधों को कम करने के लिए कदम उठाना।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(vii) प्रान्तीय विधान मण्डल की बैठक बुलाना, स्थगित करना तथा निम्न सदन (प्रा विधान सभा) को भंग करना।

(viii) यदि किसी विधेयक पर प्रान्तीय विधान मण्डल के दोनों सदनों में मतभेद अ जाय, तो उन दोनों की संयुक्त बैठक बुलाना।

(ix) इस बात का निर्णय करना कि कोई मद-मतदान के योग्य है अथवा नहीं।

(x) कुछ विशेष परिस्थितियों में व्यवस्थापिका में विचाराधीन किसी विधेयक अथवा किसी धारा पर आगे वाद-विवाद को रोकना।

(xi) ऐक्ट बनाना, जिसे गवर्नर ऐक्ट कहा जाता था।

(xii) अध्यादेश जारी करना।

(xiii) अपवर्जित क्षेत्रों (Exeluded Areas) में अच्छी सरकार को चलाने और रखने के लिए नियम बनाना।

(xiv) विधेयकों को स्वीकृति देना या उन्हें सम्राट की स्वीकृति के लिए सुरक्षित रख

(xv) प्रान्तीय लोक सेवा आयोग के सभापति तथा सदस्यों को नियुक्त करना।

(xvi) अपने कार्यालय के कर्मचारियों की नियुक्ति तथा उनका वेतन निश्चित करना।

(xvii) प्रतिरक्षा के सम्बंध में गवर्नर जनरल के निर्देशों का पालन करना।

उपर्युक्त शक्तियों का प्रयोग गवर्नर मंत्रियों की परामर्श के बिना कर सकता था अवस्था में वह गवर्नर जनरल के निरीक्षण और नियन्त्रण में रहता था।

(ख) व्यक्तिगत निर्णय की शक्तियां- ऐक्ट की धारा 52 के द्वारा गवर्नर के कुछ उत्तरदायित्व भी निश्चित किये गये थे, जिनका पालन करते समय वह अपनी व्यक्तिगत की शक्तियों का प्रयोग करता था। इन विषयों पर गवर्नर मंत्रियों से परामर्श लेने के बाध्य था, लेकिन उनकी सलाह को मानने के लिए विवश नहीं था। 1935 के ऐक्ट द्वारा को निम्नलिखित विशेष जिम्मेदारियां सौंपीं गयी थीं-

(i) प्रान्त अथवा उसके किसी भाग में शंति और सुव्यवस्था को भंग करने वाले ख निवारण।

(ii) अल्प संख्यकों के हितों की रक्षा करना।

(iii) सरकारी कर्मचारियों और उनके आश्रितों के कानूनी अधिकारों व उचित हितों क करना।

(iv) देशी रियासतों के अधिकारों और उनके शासनों के हितों और प्रतिष्ठा की रक्षा

(v) प्रान्तों के अपवर्जित क्षेत्रों के शासन और सुव्यवस्था का प्रबन्ध करना।

(vi) व्यापारिक क्षेत्र में भेदभावों को रोकना।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(vii) गवर्नन जनरल के आदेशों और निर्देशों का पालन करना।

उपर्युक्त मामलों के अतिरिक्त कुछ अन्य ऐसे मामले भी थे, जिनमें गवर्नर अपनी व्यक्तिगत निर्णय की शक्तियों का प्रयोग कर सकता था। वे मामले निम्नलिखित थे-

(i) प्रान्त की महाधिवक्ता की नियुक्ति, पदच्युति एवं उसके वेतन का निर्धारण।

(ii) पुलिस के नियमों में संशोधन करा।

(iii) सार्वजनिक सेवाओं से सम्बंधित मामले।

(vi) प्रान्तीय विधान मण्डल के अवकाश काल में अध्यादेश जारी करना।

प्रो. कीथ ने इन उत्तरदायित्वों के सम्बन्ध में लिखा है कि," यदि प्रान्तों के गवर्नर इन विशेष उत्तरदायित्वों के आधार पर गम्भीरता से कार्य करें, तों यह निश्चित है कि उत्तरदायी शासन कभी उत्पन्न नहीं होगा।"[1] भारत-मंत्री सर सेम्युअल होर ने कहा था कि, "ये इतने विस्तृत थे कि लगभग सम्पूर्ण शासन क्षेत्र उनके अन्तर्गत आ जाता था तथा वह प्रान्तीय क्षेत्र में उत्तरदायित्व के सिद्धान्त के लिए खतरनाक सिद्ध हो चुके थे।" गवर्नर की इन व्यापक शक्तियों ने प्रान्तीय स्वायत्तता को एक मजाक बना दिया था।

(ग) मन्त्रियों की सलाह से प्रयोग में लायी जाने वाली शक्तियाँ- प्रान्तीय स्वराज्य जारी होने के बाद गवर्नर से यह आशा की जाती थी कि वह अपनी मनमानी शक्तियां और व्यक्तिगत निर्णय की शक्तियों का कम से कम प्रयोग करेगा और जहां तक सम्भव हो मंत्रियों के परामर्श के अनुसार ही कार्य करेगा, लेकिन व्यवहार में ऐसे बात नहीं रही। गवर्नर वस्तुतः एक वास्तविक प्रधान था, संवैधानिक अध्यक्ष नहीं।

(2) विधायी शक्तियाँ- गवर्नन जनरल का निम्नलिखित कानूनी शक्तियां प्राप्त थी-

(i) प्रान्तीय विधान मण्डल के दोनों सदनों की बैठक बुला सकता था, स्थगित कर सकता था तथा विधान सभा को भंग कर सकता था।

(ii) प्रान्तीय विधान मण्डल के संयुक्त सदनों की बैठक बुला सकता था तथा उनको सम्बोधित कर सकता था।

(iii) किसी विधेयक पर मतभेद की स्थिति में दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुला सकता था और उनके संदेश भेज सकता था।

(iv) गवर्नर की स्वीकृति के बिना कोई भी विधेयक कानून का रूप ग्रहण नहीं कर सकता था। वह किसी भी बिल का पुनर्विचार के लिए विधान मण्डल के पास वापस भेज सकता था अथवा इसको गवर्नर जनरल या ब्रिटिश सम्राट की स्वीकृति के लिए सुरक्षित रख सकता था।

(v) वह प्रान्तीय विधान मण्डल के दोनों सदनों के कार्य संचालन के लिए नियम बना सकता था।

1. कीथ ए.बी. : ए कॉन्स्टिट्यूशनल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृष्ठ 173.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(vi) वह देशी रियासतों से सम्बन्धित प्रश्न पर चल रही बहस को बन्द कर सकता

(vii) यदि उसे विश्वास हो जाता कि किसी विधेयक अथवा उसकी किसी धारा या किसी प्रकार के संशोधन से प्रान्त की शांति और सुव्यवस्था अथवा उसके विशेष उत्तरदा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा, तो वह उसकी प्रगति को रोक सकता था।

(viii) गवर्नर को अपने कृत्यों का ठीक तरह से पालन करने के लिए ऐक्ट बनाने की प्राप्त थी। ऐसे ऐक्ट को 'गवर्नर का अधिनियम' कहा जाता था। इस हेतु गवर्नर किसी वि को तैयार करके विधान मण्डल के पास भेज देता था। विधान मण्डल को गवर्नर के नि अनुसार एक महीने में बिल को पास करना पड़ता था, वरना एक महीने बाद गवर्नर विशेष शक्ति से उस विधेयक को कानून बना सकता था। गवर्नर द्वारा बनाये हुए निय विधान मण्डल द्वारा निर्मित कानूनों की भाँति ही लागू होते थे। ऐक्ट बनाने से पूर्व गवर्न गवर्नर जनरल की स्वीकृति लेनी पड़ती थी। अन्त में ब्रिटिश संसद से इसके स्वीकृति ली थी।

(ix) गवर्नर को अध्यादेश जारी करने का अधिकार था। अध्यादेश दो प्रकार के हो प्रथम, जब प्रान्तीय विधान मण्डल अधिवेशन में नहीं होता था और कोई संकट परिस्थिति उत्पन्न हो जाती, तो मन्त्री गवर्नर को अध्यादेश निकालने को परमर्श दे सकता इस सम्बन्ध में गवर्नर अपने व्यक्तिगत निर्णय का प्रयोग करता था। विधान मण्ड अधिवेशन आरम्भ होने पर अध्यादेश को उसके सामने स्वीकृति के लिए रखना पड़ता था प्रकार के अध्यादेश: की अवधि विधान मण्डल के अधिवेशन के आरम्भ होने से 6 सप्ताह रहती थी। इस प्रकार के अध्यादेश कानून की भाँति ही लागू होते थे। द्वितीय, अपने उत्तरदायित्वों को निभाने के लिए गवर्नर व्यक्तिगत निर्णय के रुप में या स्वविवेक शक्ति अनुसार अध्यादेश जारी कर सकता था, चाहे विधान मण्डल का अधिवेशन हो रहा हो नहीं। ऐसे अध्यादेश को विधान मण्डल के समक्ष नहीं रखा जाता था। ऐसा अध्यादेश 6 तक लागू रहता था और 6 महीने और आगे बढ़ाया जा सकता था।

(x) जब गवर्नर यह अनुभव करता था कि प्रान्त का प्रशासन अधिनियम के उपबन्धों अनुसार नहीं चल सकता, तो वह ऐक्ट की धारा 93 के अनुसार एक घोषणा द्वारा संविधा स्थगित कर सकता था और हाई कोर्ट को छोड़कर शेष प्रान्तीय शासन अपने हाथ में ले था।

(3) वित्तीय शक्तियाँ- वित्तीय क्षेत्र में भी गवर्नर को अनेक शक्तियां प्राप्त थी। प्रा बजट गवर्नर ही तैयार करवाता था और विधान मण्डल में बजट उसकी ओर से पेश नहीं जाता था। उसकी आज्ञा के बिना विधान मण्डल में अनुदान के लिए कोई मांग पेश नहीं सकती थी । करारोपण सम्बंधी कोई प्रस्ताव भी उसकी सिफारिश के बिना नहीं रख सकता था। प्रांतीय राजस्व भारित व्यय की मदों का निर्णय भी वही करता था। विधान म

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रा किसी मद में की गयी कटौती अथवा अस्वीकृति को वह अपने विशेषाधिकार द्वारा मंजूर र सकता था। इस प्रकार; वित्त के क्षेत्र में उसे व्यापक शक्तियां दी गई थीं। गवर्नर को प्रदत्त क्तियों के विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि यह वैधानिक शासक नहीं वरन् स्वेच्छाचारी ासक था। उसकी शक्तियों के सामने प्रान्तीय स्वायत्तता एक मखौल थी।

के.टी.शाह ने ठीक ही कहा था कि" गवर्नर सरकार को केवल अलंकृत करने वाले अध्यक्ष हीं था, वह सरकार का प्रभावशाली नियन्त्रण तथा अधिकार रखने वाला अध्यक्ष भी है।" धिक दृष्टि से डॉ. इकबाल नारायण के अनुसर,"प्रान्तीय शासन में मन्त्रियों को कोई स्थान प्त नहीं था। सभी कार्यपालिका शक्ति औपचारिक रुप से गवर्नर में निहित थी। मन्त्रियों द्वारा वल उसे सहायता एवं परामर्श दिया जाता था। उनके विभागों को गवर्नर स्वविवेक से भाजित करता था। अन्य मामलों में भी वह स्वविवेक से कार्य कर सकता था। शासकीय ार्य, व्यापार सम्बन्धी नियम बना सकता था। स्पष्टतः उसे मन्त्रियों पर निश्चित, श्रेष्ठ या र्वोच्चता प्राप्त थी। मन्त्रियों की स्थिति द्वैध शासन के आधीन प्रान्तीय मन्त्रियों से किसी रुप अच्छी नहीं थी। मन्त्रियों का किसी पर कोई पूर्ण नियंत्रण भी नहीं था। वे गवर्नर के वविवेकी अधिकारों एवं विशेष दायित्वों के मध्य पिसे हुए थे। 'स्वविवेकानुसार कार्य करने' ब्द का क्षेत्र अत्यधिक व्यापक था और ऐसी स्थिति में वह मंन्त्रियों के परमर्श की उपेक्षा कर कता था। विशेष दायित्व सम्बंधी उसका निजी निर्णय क्षेत्र अस्पष्ट था, वह इनके बूते पर त्येक विभाग में हस्तक्षेप कर सकता था। गवर्नर के किसी कार्य के औचित्य के सन्दर्भ में कोई श्न नही उठाया जा सकता था। प्रान्तीय गवर्नरों के हाथों में स्वविवेक एवं निजी निर्णय रुपी ादू की छड़ियां थीं, जिनके बूते पर रहस्यात्मक ढंग से कार्य कर सकता था। वास्तविक तो ह है कि 1919 ई. की द्वैध शासन प्रणाली को केवल सिद्धान्त में ही समाप्त किया गया था। सका सार-सत्ता का केन्द्रीयकरण पहले की भाँति गवर्नर के हाथों में बना रहा।[1]"

मन्त्रि-परिषद

गवर्नर को प्रशासन में सहायता एवं परामर्श देने के लिए मंत्रि-परिषद की व्याख्या की गई ।

मंत्रियों की नियुक्ति एवं पदच्युति- वैधानिक दृष्टि से मंत्रियों की नियुक्ति गवर्नर द्वारा की ाती थी और वहीं उन्हें पदच्युत भी कर सकता था। किन्तु गवर्नर के निर्देश पत्र में कहा गया कि गवर्नर को मंत्रि उस व्यक्ति के परामर्श से नियुक्त करने चाहिए, जिसके पीछे विधान सभा स्पष्ट बहुमत हो। अतः व्यवहार में बहुमत दल का नेता मुख्यमंत्री होता था और उसकी लाह से अन्य मंत्रियों की नियुक्ति की जाती थी। मंत्री स्वयं त्यागपत्र दे सकता था या गवर्नर ारा हटाया जा सकता था। परन्तु अधिकतर गवर्नरों ने उत्तरदायी शासन कों सुचारु रुप से लाने के लिए अपने मंत्रियों को पद से नहीं हटाया, जब तक उनके पीछे विधान सभा में

1. नारायण इकबाल (डॉ.) : फ्राम डाइयार्की टू सेल्फ गवर्नमेंट, पृष्ठ 272-274.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बहुमत रहा। मंत्रियों का कार्यकाल साधारणतः 5 वर्ष का होता था।

योग्यताएँ एवं वेतन- 1935 के ऐक्ट में प्रत्येक प्रान्त के लिए मंत्रियों की संख्या नि नहीं की गयी थी। प्रत्येक प्रान्त वास्तव में आवश्यकता के अनुसार थोड़े या अधिक मं सकता था। उदाहरणस्वरुप, उड़ीसा में केवल 3 मंत्रि थे, जबकि बंगाल में 12 मंत्री थे। के कार्यभार को हल्का करने के लिए संसदीय सूचियों की नियुक्ति भी की जाती थी।

मंत्रि परिषद् में अल्पसंख्यक जातियों का प्रतिनिधित्व और सामूहिक उत्तरदा गवर्नर के नाम जारी किये गये निर्देश पत्र कहा गया था कि जहां तक सम्भव हो, गवर्नर परिषद में अल्पसंख्यक वर्गों को महत्वपूर्ण प्रतिनिधित्व दे, जिससे उनके हितों की रक्षा हो किन्तु साथ ही निर्देश पत्र में यह भी कहा गया था कि गवर्नर मंत्रिपरिषद में सा उत्तरदायित्व के सिद्धान्त को प्रोत्साहित करें। यह दोनों बातें परस्पर विरोध थीं, अल्पसंख्यकों के लिए यह जरुरी नहीं था कि वे बहुमत दल की नीतियों तथा कार्य सदैव सहमत हो। इस कारण कुछ स्थानों पर मंत्रि-परिषद के गठन एवं संचालन में कठिनाइयां भी उत्पन्न हुई। उदाहरणस्वरुप, 1937 में उत्तर प्रदेश में मंत्रि मण्डल के नि ऐसी कठिनाई पैदा हो गयी। कांग्रेस ने उत्तर प्रदेश में उन्हीं मुसलमानों को मंत्रिमण्ड शामिल करने का निश्चय किया, जो कांग्रेस दल में शामिल होकर उसके कार्यक्रम को स करने के लिए तत्पर हो। मुस्लिम लीग ने इन शर्तों के आधार पर कांग्रेस को सहयोग इन्कार कर दिया। उसने गवर्नर से शिकायत की कि कांग्रेस द्वारा मन्त्रिमण्डल में शमित गये मुस्लिम व्यक्तियों को मुसलमानों का विश्वास प्राप्त नहीं है। अतः उन्हें मुसलमा वास्तवितक प्रतिनिध नहीं कहा जा सकता। गवर्नर ने इस मामले में दखल देने से इन्का दिया, क्योंकि कांग्रेस को विधान मण्डल में बहुमत प्राप्त था।

- प्रान्तों में उत्तरदायी शासन अधूरा था- प्रत्येक मंत्रि एक या दो विभागो का संचालन था और उन विभागों के प्रशासन के लिए वही उत्तरदायी होता था। सामान्य एवं दैनिक निर्णय मंत्रि स्वयं करता था, परन्तु सिद्धान्त और नीति सम्बंधी प्रश्नों को मंत्रिमण्डल के विचारार्थ रखा जाता था। अधिनियम द्वारा प्रान्तों में उत्तरदायी शासन की स्थापना की परन्तु यह अपूर्ण थी क्योंकि मंत्रियों के अधिकार बहुत सीमित थे। गवर्नर की स्वेच्छाचा मनमानी शक्तियों तथा व्यक्तिगत निर्णय की शक्तियों ने प्रान्तीय स्वराज्य को काफी सीमि अवास्तविक बना दिया था।

प्रान्तीय विधान मण्डल जो कि मन्त्रिपरिषद पर नियन्त्रण रखता था, का गठन भी था। विधान मण्डल के सदस्य सही अर्थों में जनता का प्रतिनिधित्व नहीं करते थे। साम्प्र चुनाव पद्धति, साम्प्रदायिक दलों, प्रान्तीय विधान मण्डल में प्रतिनिधित्व की विधि, मताधिकार और गवर्नर की संविधान को स्थगित करने की शक्तियां उत्तरदायी सरक विरुद्ध थीं।

IX. केन्द्र तथा प्रान्तों के सम्बन्ध

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भारतीय शासन अधिनियम 1935 के द्वारा प्रान्तीय शासन की स्थिति में आधारभूत परिवर्तन किया गया। 1919 के ऐक्ट के अनुसार केन्द्र को प्रान्तों में हस्तक्षेप करने का काफी अधिकार था। प्रान्तों को उस समय संवैधानिक दृष्टि से अधिक अधिकार प्राप्त नही थे। 1919 के ऐक्ट के अन्तर्गत प्रान्तीय सरकारों का सत्ता प्राप्त थी, वह केन्द्रीय सरकार के द्वारा ही उनको प्रदान की गई थी। 1935 के ऐक्ट में सबसे पहली बार यह किया गया कि प्रान्तों को एक अलग वैधानिक सत्ता प्रदान की गयी। यद्यपि केन्द्र में संघात्मक सरकार की स्थापना नहीं हुई, लेकिन अप्रैल 1937 से प्रान्तों को कम या अधिक रुप में स्वराज्य प्राप्त हो गया और उनके साथ संघीय आधार पर ही व्यवहार किया जाने लगा।

1935 के एक्ट के अर्न्तगत केन्द्रीयं और प्रान्तीय सरकारों के सम्बंधों का अध्ययन निम्न प्रकार से किया जा सकता है-

विधायी सम्बंध- 1935 के ऐक्ट में केन्द्र तथा प्रान्तों के कानूनी सम्बंध तीन सूचियों के अनुसार निर्धारित किये गये। वे तीन सूचियां थीं-संघ सूची, प्रान्तीय सूची एवं समवर्ती सूची। संघ सूची पर कानून बनाने की शक्ति केन्द्रीय विधान मण्डल के पास थी। प्रान्तीय सूची पर प्रान्तीय विधान मण्डल कानून बना सकता था। समवर्ती सुची पर केन्द्रीय तथा प्रांतीय दोनों विधान मण्डल कानून बना सकत थे, लेकिन यह व्यवस्था की गई कि दोनों में परस्पर विरोध की स्थिति में केन्द्र का कानून मान्य होगा और प्रांत का कानून रद्द समझा जायेगा, परन्तु इस सम्बंध में एक अपवाद था। अधिनियम मे यह व्यवस्था की गई कि यदि समवर्ती सुची पर किसी प्रान्त के विधान मण्डल द्वारा बनाया हुआ कानून गवर्नर जनरल की स्वीकृति प्राप्त कर लेता है, तो वह केन्द्रीय कानून के विरुद्ध भी लागू हो सकता है।

प्रत्येक संघ में अवशिष्ट शक्तियां या तो केन्द्र को दी जाती है या प्रान्त को, किन्तु 1935 के एक्ट के अन्तर्गत यह व्यवस्था की गयी थी कि जब कभी यह विवाद उत्पन्न हो जाय कि कोई विषय प्रान्तीय है अथवा केन्द्रीय, तो ऐसे मामलों में अन्तिम निर्णय गवर्नर जनरल का होगा। इस तरह से विवादग्रस्त विषयों पर अन्तिम निर्णायक गवर्नर जनरल को बना दिया गया था।

कार्यकारिणी सम्बंध- यद्यपि प्रान्तीय कार्यपालिका (कार्यकारिणी) की शक्ति उन सब मामलों तक विस्तृत थी, जिनके सम्बंध में प्रान्तीय विधान मण्डल कानून बना सकता था, तथापि केन्द्रीय सरकार के भी इस पर काफी प्रतिबन्ध थे। प्रथम, प्रान्तीय कार्यपालिका को अपनी शक्ति का प्रयोग इस प्रकार करना पड़ता था कि प्रान्तों में लागू होने वाले केन्द्रीय कानूनों के प्रति जनता के हृदय में श्रद्धा उत्पन्न हो। द्वितीय, गवर्नर जनरल गवर्नर को अपना एजेण्ट समझकर किसी प्रकार का अध्यादेश जारी कर सकता था और गवर्नर के लिए इन आदेशों का पालन करना आवश्यक था। भारत की शांति और व्यवस्था को सुरक्षित रखने के लिए गवर्नर जनरल को निर्देश दे सकता था। तृतीय, केन्द्रीय विधान मण्डल प्रान्तों में केन्द्रीय कानून को अच्छी तरह से लागू कराने के लिए प्रान्तीय अधिकारियों को कोई भी अधिकार या कर्त्तव्य सौंप सकता था। चतुर्थ, प्रत्येक प्रान्त को अपनी कार्यपालिका शक्ति का इस तरह प्रयोग करना पड़ता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

था, जिससे केन्द्रीय कार्यपालिका के मार्ग में कोई बाधा उत्पन्न न हो। इसके अतिरिक्त मामलों में गवर्नर अपनी मनमानी या व्यक्तिगत निर्णय की शक्तियों का प्रयोग करता था सब मामलों में वह गवर्नर जनरल के अधीन था। पंचम, गवर्नर जनरल प्रान्तों के मामलों को हल करने हेतु ब्रिटिश सरकार को एक अन्तर्प्रान्तीय परिषद् की स्थापना की सिफारिश कर सकता था।

वित्तीय सम्बंध- 1935 के ऐक्ट के अनुसार संघ सूची के विषयों से केन्द्रीय सरकार आय प्राप्त होती थी और प्रान्तीय सूची के विषयों से प्रान्तीय सरकार को आय प्राप्त होती केन्द्रीय सरकार की आमदनी के मुख्य स्त्रोत ये-सीमा शुल्क, उत्पादन शुल्क, निगम कर, कर, कृषि के अतिरिक्त अन्य आय पर टैक्स, मुद्रांक शुल्क, पूंजी पर कर, सीमा कर, रेल और वस्तु भाड़ों पर कर।

1935 के ऐक्ट के अनुसार प्रांतीय सरकार की आमदनी के मुख्य स्त्रोत ये थे- भू-राज रजिस्ट्री कराने की फीस, सिंचाई कर, भूमि तथा भवनों पर कर, कृषि भूमि पर उत्तराधि शुल्क, अदालती टिकट और फीस, जंगल, विज्ञापन, मनोविनोद पर कर, केन्द्रीय सरकार आय का कुछ भाग और अनुदान प्राप्त होना।

नमक पर कर, उत्पादन कर तथा निर्यात कर केन्द्रीय सरकार द्वारा लगाये और एक किये जाते थे, परन्तु वे सारे अथवा उसका काफी बड़ा भाग प्रान्तों को दे दिया जाता था। नी कमेटी की सिफारिशों के अनुसार केन्द्र जूट निर्यात कर से प्राप्त राशि का 62.5 प्रति आसाम, बिहार और उड़ीसा को देता था। कृषि भूमि के अतिरिक्त अन्य प्रकार की भू उत्तराधिकार कर केन्द्रीय सरकार को प्राप्त होने वाली आमदनी का कुछ भाग प्रांतों को मिलता था। रेल-भाड़ों और वस्तु भाड़ों पर कर से प्राप्त आय का कुछ भाग भी प्रान्तों में जाता था।

XII. प्रान्तीय विधान मण्डल

1919 के ऐक्ट के अनुसार प्रान्तों में केवल एक सदन होता था। 1935 के ऐक्ट द्वारा बार छः प्रान्तों में दो सदन बनाये। ये प्रान्त थे- आसाम, बंगाल, बिहार, मद्रास और प्रदेश। शेष पांच प्रान्तों में केवल एक ही सदन बनाया गया, उनके नाम थे-पंजाब, मध्य तथा बरार, उत्तर-पश्चिमी प्रान्त, उड़ीसा और सिंध। जहां विधान मण्डल के दो सदन थे, निचले सदन को विधान सभा और ऊपरी सदन को विधान परिषद् कहा जाता था। जहाँ एक ही सदन था, वहां उसे विधान सभा कहा जाता था। भारतीय नेताओं ने दूसरे सदन उत्पत्ति का विरोध किया, क्योंकि प्रान्तों के थोड़े से साधनों के ऊपर यह अनावश्यक बोझ इसके अतिरिक्त वह एक रुढ़िवादी सदन था, जिसे ब्रिटिश हितों की रक्षा के लिए बनाया था। विधान सभा के सब सदस्य निर्वाचित होते थे, किन्तु विधान परिषद् में निर्वाहित सद के साथ कुछ नामजद सदस्य भी होते थे।

प्रान्तीय विधान मण्डल की रचना-1935 के ऐक्ट के अन्तर्गत प्रत्येक प्रान्त में विधान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और विधान परिषद् के सदस्यों की संख्या भिन्न-भिन्न निश्चित की गयी थी, जिनका विवरण निम्न प्रकार है-

विधान सभा- प्रान्तवार विधान सभा की सदस्य संख्या इस प्रकार थी-पंजाब 175, मद्रास 215, बम्बई 175, गंगाल 250, उत्तर प्रदेश 228, बिहार 152, मध्य प्रान्त तथा बरार 112, असम 108, उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त 50, उड़ीसा 60 व सिन्ध 60।

विधान परिषद- प्रान्त विधान सभा की सदस्य संख्या इस प्रकार थी-

बंगाल में 63 से 65 तक, मद्रास में 54 से 56 तक, बम्बई में 29 से 30 तक, संयुक्त प्रान्त में 58 से 60 तक, बिहार 29 से 30 तक, असम 21 से 22 तक।

निर्वाचन प्रणाली- दोनों सदनों के लिए प्रत्यक्ष चुनाव की पद्धति अपनाई थी। प्रान्तीय विधान मण्ड में प्रतिनिधित्व का आधार साम्प्रदायिक पंचाट था। पूना समझौते के अनुसार अनुसूचित जातियों के लिए सामान्य स्थानों में से भी कुछ स्थान सुरक्षित कर दिये गये। इस प्रकार 1935 के ऐक्ट ने साम्प्रदायिक चुनाव पद्धति को, जो राष्ट्रीय हितों के विरुद्ध थी वे केवल उसको कायम रखा, बल्कि इसे और अधिक विस्तृत कर दिया। हरिजनों, दलित वर्गों, पिछड़े हुए कबीलों और नारियों को अलग प्रतिनिधित्व दिया गया।

1935 के ऐक्ट के अनुसार विभिन्न समप्रदायों, हितों और वर्गों को प्रतिनिधितव देने क लिए मतदाताओं को 17 भागों में बाँट दिया गया, जेसे- सामान्य स्थान (हिन्दु एवं पारसियों के लिए) मुसलमान, यूरोपियन, आंग्ल-भारतीय सम्प्रदाय, ईसाई, जमींदार, सिक्ख, मजदूर, व्यापारी और उद्योगपति, पिछड़े हुए क्षेत्र तथा कबीले, पंजाब की सिक्ख नारियां, मद्रास की ईसाई नारियां, मुस्लिम स्त्रियों, विश्वविद्यालयों के रजिस्टर्ड स्नातक, उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त तथा पंजाब के सिक्ख, बंगाल में आंग्ल-भारतीय नारियां तथा साधारण स्त्रियां, जिनमें अधिकतर हिन्दू स्त्रियां शामिल थी आदि। अधिनियम के अन्तर्गत मताधिकार का विस्तार किया गया। उस समय 14 प्रतिशत लोगों को मत देने का अधिकार मिला था।

प्रान्तीय विधान मण्डल की योग्यता, कार्यकाल एवं पदाधिकारी- विधान सभा की सदस्यता के लिए 25 वर्ष और विधान परिषद् के लिए 30 वर्ष की आयु होनी आवश्यक थी। कोई व्यक्ति विधान मण्डल के दोनों सदनों का एक साथ सदस्य नहीं हो सकता था। विधान सभा का कार्यकाल पाँच वर्ष का था। गवर्नर इसके पूर्व भी इसे भंग कर सकता था। इसका कार्यकाल 5 वर्ष से आगे भी बढ़ाया जा सकता था। प्रान्तों में 1937 में गठित विधान सभाएं 1945 तक कार्यरत रहीं। विधान परिषद एक स्थायी सदस्यों का कार्यकाल 9 वर्ष था। इसके एक तिहाई सदस्य प्रत्येक तीन वर्ष के पश्चात अवकाश ग्रहण करते थे तथा उनके स्थान पर नयें सदस्य का निर्वाचन होता था। गवर्नर विधान परिषद् को अवधि से पूर्व भंग नही कर सकता था।

विधान सभा का नेता अध्यक्ष कहलाता था और विधान परिषद् का सभापति। दोनों सदन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अपने अध्यक्षों को चुनते थे। सदन 14 दिन के नोटिस से एक अविश्वास प्रस्ताव पास कर अध्यक्ष को हुआ सकता था। सदन के अध्यक्ष को निर्णायक मत का अधिकार प्राप्त था।

मतदाताओं के लिए योग्यताएँ- मतदाताओं के लिए योग्यताएं विभिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न थी। विधान सभा के मतदाता के लिए ये योग्यताएं रखी गयी थीं। वह कुछ शिक्षित हो, कुछ आय या भू-राजस्व अथवा घर का कुछ किराया या कुछ म्युनिसिपल टैक्स देता हो। जहां तक विधान परिषद् का सम्बंध था केवल सम्पत्तिशाली व्यक्तियों को ही मंताधिकार दिया गया। इसके अतिरिक्त राय बहादुरों विधान मण्डल के भूतपूर्व सदस्यों, मन्त्रियों, हाईकोर्ट के जजों, नगरपालिकाओं और स्थानीय बोर्डों के प्रधानों, कार्यकारिणी के सदस्यों, युनिवर्सिटी सीनेट के सदस्यों एवं केन्द्रीय सहकारी बैंकों के सभापतियों को भी मतदान का अधिकार दिया गया था। यह सदन समाज के उच्च वर्गों तथा धनवान व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करता था।

प्रान्तीय विधान मण्डल की शक्तियाँ

प्रान्तीय विधान मण्डल को निम्नलिखित शक्तियां प्राप्त थीं-

(1) विधायी शक्तियाँ- प्रान्तीय विधान मण्डल प्रान्तीय सूची तथा समवर्ती सूची पर कानून बना सकता था। यदि समवर्ती सूची के किसी विषय पर प्रान्तीय और केन्द्रीय विधान मण्डल के कानून में विरोध हो, तो प्रान्तीय विधान मण्डल का कनून रद्द समझा जाता था परन्तु यदि प्रान्तीय विधान मण्डल के कानून पर गवर्नर जनरल की स्वीकृति प्राप्त हो जाती थी, तो उस समय प्रान्तीय विधान मण्डल के कानून पर गवर्नर जनरल की स्वीकृति प्राप्त हो जाती थी तो उस समय प्रान्तीय विधान मण्डल का कानून रद्द नहीं समझा जाता था। प्रत्येक विधेयक को कानून बनाने के लिए गवर्नर जनरल की स्वीकृति आवश्यक थी। प्रान्तीय विधान मण्डल द्वारा पारित विधेयकों पर गवर्नर को निषेधाधिकार की शक्तियां प्राप्त थीं। द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका वाले प्रान्तों में प्रत्येक विधेयक के लिए दोनों सदनों द्वारा पारित होना आवश्यक था। धन विधेयक को छोड़कर अन्य विधेयक किसी भी सदन में प्रस्तुत किये जा सकते थे। दोनों सदनों में किसी विधेयक पर मतभेद होने की स्थिति में गवर्नर उनकी संयुक्त बैठक बुला सकता था। विधेयकों पर बहुमत से निर्णय लिया जाता था। यद्यपि बजट पर दोनों सदनों द्वारा विचार किया जा सकता था, तथापि अनुदान की मांगों पर केवल विधान सभा को ही मत देने का अधिकार था। विधान मण्डलों की शक्तियां गवर्नर के स्वविवेक और व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार कार्य करने की शक्तियों द्वारा मर्यादित थी। इसके अतिरिक्त गवर्नर को स्वतंत्र विधायिनी शक्तियां प्राप्त थीं, जिनके द्वारा वह विधान मण्डल की बिना सहमति से ही अध्यादेश एवं गवर्नर के अधिनियम जारी कर सकता था।

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के अनुसार, "यह घोषणा करना कि कानून और व्यवस्था मंत्री को सौंप दी गई है, जबकि उनके सम्बन्ध में विशेष उत्तरदायित्व गवर्नर जनरल तथा गवर्नर को था, छल और कपंट से कम नहीं था। गवर्नर, गवर्नर जनरल ब्रिटिश ताज और संसद को दी गई विशेष शक्तियों ने प्रान्तीय शासन को नहीं के बराबर कर दिया था जो कि भारतीयों के लिए सब

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बड़ा पुरस्कार था।"

गवर्नर की विशेष शक्तियों के कारण प्रान्तीय विधान मण्डल की शक्तियों पर अग्रलिखित प्रतिबन्ध लगे हुए थे-

(i) प्रान्तीय विधान मण्डल में कोई भी ऐसा बिल गवर्नर जनरल की पूर्व अनुमति के बिना पेश नहीं किया जा सकता था। जो ब्रिटिश संसद के किसी ऐक्ट को रद्द अथवा संशोधित करता हो या उसका विरोध करता हो। ऐसे बिल को स्वीकृति करना या न करना गवर्नर जनरल की इच्छा पर निर्भर था।

(ii) प्रान्तीय विधान मण्डल में कोई भी ऐसा बिल गवर्नर जनरल की पूर्व अनुमति के बिना पेश नहीं किया जा सकता था, जो ब्रिटिश संसद के किसी ऐक्ट को रद्द अथवा संशोधित करता हो या उसका विरोध करता हो। ऐसे बिल को स्वीकृति करना या न करना गवर्नर जनरल की इच्छा पर निर्भर था।

(iii) ऐसा बिल जो गवर्नर जनरल की मनमानी शक्तियों को प्रभावित करता हो, उसकी पूर्व अनुमति के बिना विधान मण्डल में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता था।

(iv) यदि कोई बिल यूरोपियन और ब्रिटिश प्रजा के बारे में फौजदारी कानून को प्रभावित करता हो, तो उसके लिए गवर्नर जनरल की पूर्व अनुमति आवश्यक थी।

(v) गवर्नर की पूर्वानुमति के बिना भी ऐसे विधेयक पेश नहीं किये जा सकते थे, तो उसके किसी ऐक्ट या अध्यादेश को रद्द या संशोधित करते हों या गवर्नर की मनमानी शक्तियों तथा व्यक्तिगत निर्णय की शक्तियों के मार्ग में बाधा पहुंचाते हो।

इस प्रकार अनेक प्रतिबन्ध लगाकर प्रान्तीय स्वायत्तता को सीमित कर दिया गया था। डॉ. बम्बवाल के अनुसार, "इन प्रतिबन्धों के लगातार प्रयोग से उत्तरदायी शासन ओर प्रान्तीय स्वायत्तता को निष्क्रय बनाया जा सकता था।" पायली के शब्दों में," प्रान्न्तों में संसदात्मक व्यवस्था से कार्य नहीं चल रहा था अपितु यह एक नियन्त्रित व्यवस्था थी।"

(2) **कार्यकारिणी शक्तियाँ**- अधिनियम के अन्तर्गत प्रान्तीय विधान मण्डल को मन्त्रि-परिषद् पर नियन्त्रण रखने के अधिकार प्राप्त थे। विधान मण्डल के दोनों सदनों के सदस्यों को मंत्रियों से प्रश्न और पूरक प्रश्न पूछने का अधिकार था। वे काम-रोको प्रस्ताव, निन्दा प्रस्ताव और अविश्वास प्रस्ताव द्वारा मन्त्रिपरिषद पर नियन्त्रण रखते थे। प्रान्तीय मन्त्रि-परिषद विधान सभा के प्रति उत्तरदायी थी। विधान सभा अविश्वास प्रस्ताव द्वारा मंत्रियों को हटा सकती थी। यह शक्ति विधान परिषद् को प्राप्त नहीं थी। विधान सभा बजट की मांगों या किसी महत्वपूर्ण सरकारी विधेयक को अस्वीकार करके भी मन्त्रियों में अविश्वास प्रकट कर सकती थी। ऐसी परिस्थितियों में मन्त्रियों को अपना त्याग पत्र देना पड़ता था।

(3) **वित्तीय शक्तियाँ**- धन विधेयक केवल विधान सभा में ही पेश किया जा सकता था। बजट के दो भाग होते थे। पहले भाग में 30 प्रतिशत खर्च शामिल होता था। इस भाग में गवर्नर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के वेतन तथा भत्ते, हाई कोर्ट के न्यायाधीशों, महाधिवक्ता तथा मंत्रियों के भत्ते, अपवर्जित क्षे पर किया हुआ व्यय, ऋण भार आदि प्रान्तीय राजस्व पर भारित व्यय रहते थे। इस पर विधान सभा बहस तो कर सकती थी, लेकिन कटौती नहीं कर सकती थी। बजट का शेष भाग, जिसमें 70 प्रतिशत सरकारी खर्च शामिल होता था। यह विधान सभा के समक्ष अनुदान के लिए मांगों के रुप में पेश किया जा सकता था। विधान सभा इनमें से किसी मांग को अस्वीकार कर सकती थी या उसमें कटौती कर सकती थी, लेकिन गवर्नर अपने व्यक्तिगत निर्णय द्वारा कटी हुई या अस्वीकृत मांग को पुनः स्वीकृत कर सकता था। इस प्रकार, प्रान्तीय वित्त पर गवर्नर का पूर्ण नियन्त्रण रहता था।

प्रान्तीय विधान मण्डलों का मूल्यांकन

इसमें कोई सन्देह नहीं कि 1935 के अधिनियम द्वारा प्रान्तीय विधान मण्डलों में अनेक सुधार किय गये। उनके संगठन को अधिक प्रतिनिधित्व तथा प्रजातान्त्रिक बनाया गया। उनकी सदस्य संख्या में वृद्धि की गयी। प्रत्यक्ष निर्वाचन के सिद्धान्त को अपनाया गया और निर्वाचकों की संख्या में वृद्धि की गयी। कार्यपालिका पर इसका नियन्त्रण हो गया। इतना ही नहीं, उनकी (विधान सभा) शक्तियों में भी वृद्धि की गयी।

इतने सब कुछ सुधार होने के बावजूद भी विधान मण्डल में अनेक त्रुटियाँ थीं। ऊपर सदन बिल्कुल अनुदारवादी तथा प्रतिक्रियावादी था। यह सदन केवल धनवान तथा उच्च वर्ग के व्यक्तियों का ही प्रतिनिधित्व करता था। विधान सभा का संगठन भी दोषपूर्ण था। इसका निर्माण निहित स्वार्थों का प्रोत्साहन देकर तथा पृथक् निर्वाचन द्वारा साम्प्रदायिक आधार पर किया गया था। ऐसे व्यवस्थापिकाएं जनता की सच्ची प्रतिनिधि संस्थाएं हो ही नहीं सकती थीं। पालन्दे के शब्दों में, "विधान परिषदों का गठन तो अलोकतन्त्रात्मक पद्धति पर किया गया और वे अनुदारवाद और प्रतिक्रियावादिता का गढ़ बन गयी थीं।"[1] मताधिकार अब भी सीमित था। कुल मिलाकर देश की 14 प्रतिशत आबादी को मताधिकार दिया गया था। के टी. शाह ने मण्डल की स्थिति के बारे में लिखा है, "व्यवस्थापिका सभा का कोई ऐक्ट गवर्नर की स्वीकृति के बिना पूर्ण नहीं होता, परन्तु गवर्नर के किसी ऐक्ट के लागू होने के लिए व्यवस्थापिका की स्वीकृति आवश्यक नहीं थी।"

इतना ही नहीं, विधान मण्डल की शक्तियों पर अनेक सीमाएं तथा प्रतिबन्ध लगाये गये थे जिसके परिणामस्वरुप यह बहुत अधिक शक्तिहीन हो गया था। डॉ. इकबाल नारायण के अनुसार, "प्रान्तीय विधान मण्डल जन प्रतिनिधि सभाएं नहीं थीं, अपितु वे तो केवल वाद विवाद के समुदाय मात्र थे।"

XIII प्रान्तीय स्वराज्य का कार्यरुप

यद्यपि भारत के अधिकांश राजनीतिक दल 1935 के अधिनियम के विरुद्ध थे, फिर

1. पालन्दे, एम. आर. : इण्ट्रोडक्शन टू द इण्डियन कॉन्स्टिट्यूशनल, पृष्ठ 126.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उन्होंने प्रान्तीय स्वराज्य को प्रयोग में लाने की स्वीकृत दी। कांग्रेस, मुस्लिम लीग तथा उदारवादियों ने प्रान्तीय स्वराज्य में भाग लेने की इच्छा प्रकट की।

1973 के चुनाव- प्रान्तीय स्वायत्तता के क्रियान्वयन हेतु प्रान्तों में फरवरी-अप्रैल 1937 में चुनाव सम्पन्न हुए। उसमें अनेक दलों ने भाग लिया, जिनमें कांग्रेस और मुस्लिम लीग प्रमुख थी। कांग्रेस के तत्कालीन अध्यक्ष पं. जवाहरलाल नेहरू ने देशव्यापी दौरा किया और कांग्रेस के पक्ष में प्रबल जनमत तैयार किया। चुनाव में कांग्रेस को आशातीत सफलता प्राप्त हुई। 11 में से 6 प्रान्तों-संयुक्त प्रान्त, मद्रास, बिहार, उड़ीसा, बम्बई और मध्य प्रान्त में कांग्रेस को स्पष्ट बहुमत प्राप्त हुआ। आसाम और उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त में कांग्रेस सबसे शक्तिशाली दल के रूप में उभरी। मुस्लिम लीग को कोई विशेष सफलता नहीं मिली। उसे मुसलमानों के लिए सुरक्षित 482 में से केवल 51 स्थान ही प्राप्त थे। विशेष बात यह थी कि मुस्लिम लीग मुस्लिम बहुल प्रान्तों की अपेक्षा हिन्दू बहुत प्रान्तों में अधिक शक्तिशाली सिद्ध हुई थी। पंजाब में युनियनिष्ट पार्टी तथा बंगाल में प्रजा पार्टी तथा स्वतन्त्र उम्मीदवारों का विशेष प्रभाव था।

पद ग्रहण सम्बन्धी विवाद- चुनाव में विजय प्राप्त करने के बाद कांग्रेस के सामने यह प्रश्न उठा कि उसे पद ग्रहण करना चाहिए अथवा नहीं। पं. जवाहर नेहरु और सुभाषचन्द्र बोस का मत था कि यदि कांग्रेस सत्ता के मोह जाल में फंस गई, तो इसका भारत स्वतन्त्रता आन्दोलन पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा। दूसरी ओर सरदार पटेल, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद और राजगोपालाचारी जैसे कांग्रेस नेता नवीन संविधान के अधीन पद ग्रहण के पक्ष में थे। उनका विचार था कि पद ग्रहण से राष्ट्रीय स्वाधीनता के संघर्ष में कांग्रेस के हाथ और मजबूत होंगे।

इस स्थिति में 30 मार्च, 1937 को दिल्ली में कांग्रेस महा समिति की बैठक हुई। इसमे इस विषय पर काफी विचार-विमर्श हुआ और अंततः यह निश्चित किया गया कि यदि सरकार यह आश्वासन दे दे कि गवर्नर दैनिक प्रशासन में मन्त्रियों के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करेंगे और संवैधानिक अध्यक्ष के रुप में कार्य करेंगे, तो कांग्रेस प्रान्तों में मंत्रिमण्डल का निर्माण कर सकती है। शुरु में गवर्नर ने इस प्रकार का कोई आश्वासन देने से इन्कार कर दिया। अतः कांग्रेस बहुमत वाले प्रान्तों में कांग्रेस दल के नेताओं ने मन्त्रि पद अस्वीकार कर दिया।

अन्तरिम मन्त्रिमण्डल- कांग्रेस द्वारा पद ग्रहण करने स इन्कार करने पर कांग्रेस बहुमत वाले छः प्रान्तों में गवर्नरों ने अन्तरिम मंत्रिमण्डल बनाया। इन प्रान्तों में गवर्नरों ने अल्पमत दलों के मंत्रिमण्डलों को प्रतिष्ठित कर दिया, किन्तु परिस्थितियों से विवश होकर तत्कालीन गवर्नर जनरल लाड लिनलिथगो ने 21 जून, 1937 को यह आश्वासन दिया कि,"गवर्नर के विशेष उत्तरदायित्व उसको प्रान्तीय प्रशासन में अन्धाधुन्ध हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं देते और गवर्नर साधारणतया मंत्रियों के परामर्श के अनुसर उन सब मामलों में काम करेंगे जिन मामलों में मन्त्रियों को अधिकार दिये गये हैं।"

इस घोषणा के बाद कांग्रेस ने 7 जुलाई 1937 के प्रस्ताव में अपने सदस्यों को पद-ग्रहण करने के लिए आज्ञा दे दी। मौलाना आजाद लिखते हैं कि "यह एक ऐतिहासिक निर्णय था,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

क्योंकि अब तक कांग्रेस ने नकारात्मक नीति अपनायी थी और शासन का दायित्व स्वीकार करने से इन्कार किया था। अब कांग्रेस ने प्रथमं बार शासन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाया और शासन का भार स्वीकार करन के लिए सहमत हो गयी।"[1]

कांग्रेस के यह निर्णय करने पर अन्तरिम मंत्रिमण्डलों ने त्याग पत्र दे दिया और कांग्रेस ने 6 प्रान्तों (उत्तर प्रदेश, बिहार, मद्रास, बम्बई, उड़ीसा और मध्य प्रान्त) में अपने मंत्रिमण्डल बना लिए। उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त और असम में भी उसने दूसरे दलों को मिलाकर अपनी सरकार बना ली। मुस्लिम लीग ने किसी भी प्रान्त में मंत्रिमण्डल में भाग नहीं लिया।

कांग्रेसी मंत्रियों द्वारा पद त्याग

1937 ई. में प्रान्तीय स्वराज्य भारत के 11 प्रान्तों में शुरु किया गया। सिन्ध, पंजाब, और बंगाल में यह लगभग 10 वर्ष तक चला। बम्बई, मद्रास, बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रान्त और उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त में यह केवल 1939 ई.तक चला। इसका कारण यह था कि ब्रिटिश सरकार ने 1939 में आरम्भ हुए द्वितीय विश्व युद्ध में भारतीय नेताओं से परामर्श किये बिना ही भारत को भी युद्ध में शामिल कर लिया था। अतः कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों ने विरोध स्वरुप त्याग पत्र दे दिया। बाद में उन प्रान्तों में गवर्नरों ने प्रान्तीय प्रशासन अपने हाथ में ले लिया।

प्रान्तीय स्वराज्य (स्वायत्तता) के कार्यक्रम का मूल्यांकन- विभिन्न प्रान्तों के प्रान्तीय स्वायत्तता के कार्यकरण पर दृष्टिपात करने से बहुत सी बातें स्पष्ट होती हैं। इनमें अग्रलिखित बातें विशेष रुप में उल्लेखनीय हैं-

(1) कांगेसी प्रान्तों में गवर्नर का आचरण- पद ग्रहण के समय कांग्रेसी नेताओं को यह भय था कि गवर्नर अपनी असाधारण शक्तियों द्वारा उत्तरदायी सरकार को असफल बना दें। लेकिन उनका यह भय निराधार सिद्ध हुआ। गवर्नर ने कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों के कार्यों में अनावश्यक हस्तक्षेप नहीं किया। जिन प्रान्तों में कांग्रेस की सरकारें थीं, वहां की व्यवस्थापक स्वयं कांग्रेस के नेताओं ने असंतोष प्रकट किया। कांग्रेस के 51वें अधिवेशन में यह स्वीकार किसा गया था कि,'गवर्नरों के द्वारा मन्त्रियों के साथ पर्याप्त सीमा तक सहयोग किया गया' 1939 में महात्मा गांधी ने भी कहा था कि, "गवर्नरों ने अपना कार्य भली-भांति किया, लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं कि गवर्नर संवैधानिक शासक मात्र बन गये थे।"

यद्यपि गवर्नरों ने अपने आचरण से कुछ प्रान्तों समस्याएं खड़ी कर दीं, परन्तु उनका उचित हल ढूंढ लिया गया और कोई गम्भीर संवैधानिक संकट उत्पन्न नहीं हुआ। गवर्नरों के आचरण से निम्नलिखित समस्याएं कुछ कांग्रेसी प्रान्तों में उत्पन्न हुई-

(i) मध्य प्रान्त में खरे विवाद- मध्य प्रान्त के मुख्य मंत्री डॉ. एन.बी.खरे ने अपने मंत्रिमण्डल का पुनर्गठन करने के लिए अपने मंत्रियों से त्याग-पत्र मांगा, परन्तु उसके दो मंत्रियों ने कांग्रेस के हाई कमान के आदेश के बिना त्यागपत्र देने से इन्कार कर दिया। गवर्नर ने अ

1. मौलाना आजाद : इण्डिया विन्स फ्रीडम, पृष्ठ 15.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मंत्रियों को हटा दिया, जिन्होंने डॉ.खरे के आदेश का उल्लंघन किया था। कांग्रेस हाई कमान ने गवर्नर के हस्तक्षेप का विरोध किया और डॉ.खरे को हटाकर रविशंकर शुक्ला को मुख्य मंत्री बना दिया। इसके अच्छे परिणाम निकले।

(ii) उड़ीसा में विवाद- उड़ीसा का गवर्नर स्थायी छुट्टी पर जाना चाहता था। अतः ब्रिटिश सरकार ने उड़ीसा प्रान्त के मुख्य सचिव को उस प्रान्त का कार्यकारी गवर्नर नियुक्त करने का निर्णय किया। उड़ीसा के मंत्रिमण्डल ने इसका विरोध किया, क्योंकि उनकी दृष्टि में मंत्रियों के एक अधीनस्थ अधिकारी को उनके ऊपर नियुक्त करना अनुचित था। उड़ीसा के मंत्रिमण्डल ने धमकी दी कि यदि गवर्नर जनरल ने उड़ीसा के मुख्य सचिव को वहाँ का गवर्नर नियुक्त किया तों वह अपना त्यागपत्र दे देगा। कांग्रेस के हाई कमान ने भी उड़ीसा मंत्रिमण्डल के इस निर्णय का समर्थन किया। उड़िसा के स्थायी गवर्नर ने अपनी छुट्टी को रद्द करवा कर संकट को आगे बढ़ने से बचा लिया।

(iii) उत्तर प्रदेश (संयुक्त प्रान्त) और बिहार में राजनैतिक बन्दियों की रिहाई- फरवरी 1938 में उत्तर प्रदेश और बिहार में मन्त्रियों ने राजनैतिक बन्दियों को रिहा करने का विचार किया, इन प्रान्तों के राज्यपालों ने मंत्रियों के इस निर्ण का शान्ति और व्यवस्था के नाम पर घोर विरोध किया। गवर्नर जनरल ने 1935 के ऐक्ट की धारा 126 के न माने, क्योंकि इससे उनकी विशेष जिम्मेदारी पर प्रभाव पड़ेगा और यह मामला मंत्रियों के अधिकर क्षेत्र में नहीं है। मंत्रियों द्वारा गवर्नर जनरल के हस्तक्षेप का कड़ा विरोध किया गया और उन्होंने त्याग पत्र दे दिया। बाद में गवर्नर जनरल और कांग्रेस हाई कमान के बीच सम्मानजनक समझौता हो गया। इसके अनुसर यह निश्चित हुआ कि राजनीतिक बंदियों को धीरे-धीरे रिहा किया जाये और प्रत्येक राजनैतिक कैदी के केस की पूरी तरह जांच की जाए और उसके अनुसार उससे व्यवहार किया जाए।

(2) गैर-कांग्रेसी प्रान्तों में प्रान्तीय स्वराज्य पर आचरण- यद्यपि कांग्रेसी प्रान्तों में गवर्नरों ने साधारणतया संवैधानिक प्रधानों के रुप में ही कार्य किया, जिसके कारण कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों ने उत्तरदायी शासन का सफल संचालन किया, परन्तु गैर-कांग्रेसी प्रांतों में गवर्नर अपनी मनमानी करते रहे। वे जिस समय भी चाहते, प्रशासनिक कार्यों में अपनी इच्छानुसार हस्तक्षेप कर लेते थे। इसका विशेष कारण यह था कि उन प्रान्तों में कांग्रेस जैसा ब्रिटिश विरोधी कोई संगठित दल नहीं था। उदाहरणस्वरुप, पंजाब के गवर्नर ने राजनैतिक कैदियों को छोड़ने के प्रश्न पर पंजाब के मुख्य मंत्री सर सिकन्दर हयात खां से सलाह तक नहीं ली। सिंध के गवर्नर ने 10 अक्टूबर 1942 को वहां के मुख्य मंत्री नवाब अल्लाह बख्श को विधान सभा में बहुमत का समर्थन प्राप्त होते हुए भी हटा दिया, क्योंकि उन्होंने कुछ अवसरों पर ब्रिटिश सरकार की आलोचना की थी और अपनी 'खान बहादुर' की उपाधि का परित्याग कर दिया था। इसी प्रकार 1943 में बंगाल के गवर्नर ने वहाँ के मुख्य मंत्री फजलुलहक को त्याग पत्र देने के लिए विवश कर दिया था। सिंध और उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त के गवर्नरों ने मुस्लिम लीग को विधान सभा में थोड़ी संख्या होते हुए भी उसको सत्तारुढ़ रखने की कोशिश की। यह बिल्कुल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गैर-संवैधानिक था। गवर्नरों की ये कार्यवाहियों प्रान्तीय स्वायत्तता की भावना के सर्वथा प्रतिकूल थीं। इसलिए डॉ. श्यामा प्रसाद मुकर्जी को यह कहना पड़ कि, "गवर्नर का उचित स्थान मुस्लिम लीग की बेन्चों पर है।"

कांग्रेसी और गैर कांग्रेसी प्रान्तों में प्रान्तीय स्वायत्तता पर आचरण के अन्तर को स्पष्ट करते हुए पं.नेहरु लिखते हैं कि, कांग्रेसी प्रान्तों और पंजाब व बंगाल का अन्तर नागरिक स्वतन्त्रताओं और राजनैतिक बन्दियों के सम्बन्ध में स्पष्ट और तत्काल देखा गया। बंगाल और पंजाब में पुलिस और गुप्तचर सेवा की शक्ति में कोई कमी नहीं हुई और राजनैतिक बन्दियों को रिहा नहीं किया गया। बंगाल में जहां कि मन्त्रिमण्डल यूरोपियन मतों पर आश्रित था, बन्दियों की संख्या में हजारों की वृद्धि हुई और बिना मुकदमा चलाये उन्हें वर्धा जेल में रखा गया-जबकि कांग्रेसी प्रान्तों में सबसे पहला कार्य राजनैतिक बन्दियों की रिहाई का किया गया था।"

(3) मन्त्रालयों का कार्यकरण- प्रान्तीय स्वराजय के अन्तर्गत मंत्रालयों ने अपने कार्यकाल में ठीक ढंग से काम किया। बहुमत दल को नेता मंत्रिमण्डल बनाता था। प्रत्येक प्रान्त में साधारणतया मंत्रिमण्डल उस समय तक पद पर रहा, जब तक उसके पीछे विधान सभा में बहुमत रहा। गवर्नर मुख्य मंत्री के परमर्श से विभागों का वितरण करता था। सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त का पालन किया जाता था। प्रान्तीय विधान सभा उनको अविश्वास प्रस्ताव द्वारा हटा सकती थी और मंत्रियों से प्रश्न पूछ सकती थी। मंत्रिमण्डलों में अल्प संख्यकों को उचित प्रतिनिधित्व दिया जाता था। विधान सभा का मंत्रिमण्डल पर नियन्त्रण वास्तविक था।

(4) संसदीय सचिव- मंत्रियों की दैनिक कार्य में सहायता के लिए संसदीय संचिवों की नियुक्ति की जाती थी। ये सचिव स्थायी सचिवों से बिल्कुल भिन्न थे, जो सार्वजनिक सेवाओं से सम्बन्धित थे। ये रानीतिक व्यक्ति होते थे, जो तंत्रियों को उनके देनिक कार्य में बहुत सहायता करते थे और उनके बोझ को काफी हल्का कर देते थे इस प्रकार, नये राजनीतिज्ञों का प्रशिक्षण मिलता था।

(5) सार्वजनिक सेवाओं का भाग- सरकार ने सार्वजनिक सेवाओं के अधिकारियों की राजनीतिज्ञों से सुरक्षा के लिए अधिनियम में काफी संरक्षण की व्यवस्था की। बड़े-बड़े अधिकारियों की नियुक्तियां, सेवा की शर्तें भारत सचिव तथा उसकी परिषद् के अधीन कर दी गयीं। उनको मंत्रियों के नियंत्रण से मुक्त कर दिया गया। कांग्रेसी मंत्रियों का विचार था कि बड़े-बड़े सरकारी अधिकारी उनकी आज्ञा का पालन नहीं करेंगे, परन्तु अनुभव ने यह सिद्ध कर दिया कि उनका यह भय गलत था। एक बार उत्तर प्रदेश के मुख्य सचिव ने मुख्य मंत्री की बिना आज्ञा के एक परिपत्र जारी कर दिया। जब मुख्य मंत्री को पता चला, तो उन्होंने उससे स्पष्टीकरण मांगा और परिपत्र (सरक्यूलर) को रद्द कर दिया। इसका बड़े-बड़े अधिकारियों पर अच्छा प्रभाव पड़ा और वे मंत्रियों की आज्ञा का उल्लंघन करने का साहस नहीं करते थे।

(6) कांग्रेस हाई कमान का प्रभाव- कांग्रेस हाई कमान का प्रान्तीय विधान मण्डलों पर पूर्ण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नियंत्रण रहता था। 1937 में कांग्रेस ने संसदीय उप-समिति का गठन किया। इसके सदस्य उस समय डॉ.राजेन्द्र प्रसाद, मौलाना आजाद और सरदार बल्लभ भाई पटेल आदि थे। इसका कांग्रेसी मंत्रियों और विधायकों पर पूर्ण नियंत्रण था। यह समिति उनको अनुशासन में रखती थी। उनकी सब समस्याओं का हल ढूँढती थी और उन्हें चुनाव घोषणा-पत्र के अनुसार कार्य कराने के लिए प्रेरित करती थी। हाई कमान की इस समिति का प्रान्तीय स्वराज्य की कार्यविधि पर विशेष प्रभाव पड़ा क्योंकि कांग्रेस के सारे मंत्री इसके निर्देशों से अनुसार कार्य करते थे। मध्य प्रान्तों में कांग्रेस हाई कमान ने डॉ.खरे के स्थान पर पं.रविशंकर शुक्ल को मुख्यमंत्री नियुक्त कर दिया। इससे हाई कमान के प्रभाव के बारे में स्पष्ट पता चलता है।

(7) कांग्रेस मन्त्रिमण्डल पर मुस्लिम लीग के आरोप- 1937 में कांग्रेस और लीग में पद ग्रहण के सम्बन्ध में समझौता न होने के बाद से लीग द्वारा कांग्रेस प्रति स्थायी विरोध की नीति अपना ली गयी थी। जब कांग्रेस ने मुस्लिम लीग ने कांग्रेस का स्थायी विरोध शुरु कर दिया। अब जिन्ना ने यह विषैला प्रचार करना आरम्भ कर दिया कि, "हिन्दु केवल हिन्दुओ के लिए हैं। इतना ही नहीं, मुस्लिम लीग ने कांग्रेस पर अनेक झूठे आरोप लगाने शुरु कर दिये और यह कहना शुरु कर दिया कि कांग्रेस सरकारों द्वारा मुसलमानों पर घोर अत्याचार किये जा रहे हैं। लीग ने मार्च 1938 में संयुक्त प्रान्त में इन अत्याचारों की जांच के लिए पीरपुर के राजा की अध्यक्षता में एक कमेटी गठित की। इस कमेटी ने हिन्दू अत्याचारों की बेबुनियाद और निराधार सूची पेश कर दी और इस रिपोर्ट के आधार पर कांग्रेस मंत्रिमण्डलों की आलोचना आरम्भ कर दी। कांग्रेस ने सभी आरोपों का खण्डन किया। इतना ही नहीं, कांग्रेस के तत्कालीन अध्यक्ष डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने उन आरोपों की संघीय न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से जांच कराने का प्रस्ताव किया, जिसे मि. जिन्ना ने अस्वीकार कर दिया। मैलाना आजाद लिखते हैं कि,"मैं अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर कहता हूं कि ये आरोप निराधार थे। गवर्नर जनरल और विभिन्न प्रान्तों के गवर्नरों का भी यही विचार था।" संयुक्त प्रान्त के गवर्नर मि.हेनीर तक ने उन आरोपों को बेबुनियाद और आधार हीन बताया। माइकेल बेचर ने लिखा है कि," वायसराय ने यह महसूस किया कि जिन्ना के लिए कांग्रेसी सरकारों द्वारा मुस्लिम विरोधी कार्यों को सिद्ध करना अत्यन्त कठिन हो जायेगा। इसके अतिरिक्त प्रान्तीय गवर्नरों को इस बात का पूरा सन्तोष था कि कांग्रेसी मंत्रियों द्वारा मुसलमानों के विरुद्ध कोई भेदभाव नहीं दिखाया गया है।" मौलाना आजाद ने कांग्रेस द्वारा मुस्लिम लीग को मन्मिण्डल में सम्मिलित न करने पर अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा कि," कांग्रेस के मन्त्रिमण्डल में लीगियों को, जो मन्त्रियों के दो पद लेकर संयुक्त सरकार बनाना चाहते थे, न लेना दुर्भाग्यपूर्ण रहा क्योंकि इस प्रकार लीग को नया जीवन प्राप्त हुआ। यू.पी. में ही लीग का पुनर्गठन हुआ। जिन्न ने परिस्थितियों से पूरा लाभ उठाया और उसने आक्रमणात्मक कार्यवाही प्रारम्भ कर दी, जिसका परिणाम हुआ पाकिस्तान की स्थापना।" कांग्रेस के कटु आलेचक मि.कूपलैण्ड ने भी उन आरोपों को नितान्त असत्य बताया।

(8) कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों की उपलब्धियाँ- कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों ने काफी प्रशंसनीय कार्य किये। उन्होंने ने प्रारम्भिक शिक्षा, नशाबन्दी, ग्रामोत्थान, घरेलू व कुटीर उद्योग, कृषि, श्रम,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कल्याण, स्थानीय स्वशासन और हरिजनोंत्थान आदि अनेक कार्य सफलतापूर्व किये। इतना ही नीं, उन्होंने किसानों को ऋण से मुक्ति दिलवाई और उनको साहूकारों के पंजे से बचाया। दुर्भिक्ष से बचाने और किसानों को अपनी वस्तुओं को बेचने की अधिक सहूलियत को देने के लिए भी नियम बनाये गये। जमीदारी प्रंथा की समाप्ति की ओर विशेष ध्यान दिया गया। इसके अतिरिक्त किसानों की दशा में सुधार के सम्बन्ध में उल्लेखनीय कार्य किये। सभी कांग्रेसी प्रान्तां में राजनीतिक बन्दियों को रिहा कर दिया गया। 1938 में बम्बई की कांग्रेसी सरकार ने उन लोगों की जब्त जमीने वापस लौटा दीं, जिन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लिया था। कांग्रेसी सरकारों की सफलता को स्वीकार करते हुए प्रो.कूपलैण्ड ने कहा कि,"28 महीने के शासन के दौरान कांग्रेस ने कतिपय ऐसी सफलताएं प्राप्त की, जिन पर कांग्रेस उचित रुप से गर्व कर सकती थी। उसके नेताओं ने यह दिखाया कि जहां वे बात करना चाहते थे, वहां अच्छा काम करने की भी क्षमता थी। जहां वे आन्दोलन करना जानते थे वहां वे प्रशासन मे भी किसी से कम न थे। उनमें तथा उनके सहायोगियों में सामाजिक क्षेत्र में में सुधार की सच्ची लगन थी।"[1] पायली ने लिखा है कि," प्रान्तों के इन मन्त्रिमण्डलों ने अद्वितीय सफलता से कार्य किया। प्रान्तों के गवर्नर जो शासन के मुखिया थे और भारतीय नेता जिन्होंने कार्यभार ग्रहण किया था, संवैधानिक प्रयोग के भली प्रकार से परखना चाहते थे फलस्वरुप प्रान्तों का शासन संसदीय लोकतंत्र के सिद्धान्तों के अनुसार निर्विघ्न तथा कुशलतापूर्वक चला।"

गवर्नर जनरल लार्ड लिनलिथगो ने भी कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों के कार्यों की सराहना की थी। पं. नेहरु ने लिखा है कि,"कांग्रेस के पद ग्रहण से मनोवैज्ञानिक परिवर्तन इससे भी भारी हुआ और सम्पूर्ण देश में उत्साह की एक लहर-सी दौड़ गयी।"

वस्तुतः प्रान्तों की कांग्रेसी सरकारों की सफलताओं ने भारतीय जनता को इस बात से आश्वस्त कर दिया कि भारत में अंग्रेजों का विकल्प मौजूद है, लेकिन कांग्रेस सत्ता से चिपकी नहीं रही और भारतीय स्वतंत्रता के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अक्टूबर 1939 में कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों द्वारा त्याग-पत्र दे दिये गये। पायली के शब्दों में," प्रान्तीय स्वायत्तता जो अधिनियम के अन्तर्गत परिसीमित संघात्मक शासन का आधार था, एक जीवित सत्य न बनकर पुराने युग की बात बन गई। भारतीय शासन पुनः केंद्रीकृत ढाचें में ढाल दिया गया।" कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल के कार्यों का उल्लेख करते हुए कूपलैण्ड ने लिखा है कि," अन्त में कांग्रेस भारतीय राजनीति में एक रचनात्मक शक्ति बन गई थी। 20 वर्ष तक यह विरोध, शिकायत और आलोचना करती रही और हर गलत कार्य का ब्रिटेन पर दोष लगाती रही। अब इसने यह सिद्ध कर दिया कि इसके महान संगठन की शक्ति एवं इसके सदस्यों के उत्साह को अधिक रचनात्मक कार्य में लगाया जा सकता है। यह अब भी ब्रिटिश विरोधी थी पर अब यह उससे भी कुछ अधिक थी, अब यह एक अर्थ में नहीं, अधिक सत्य अर्थों में भारत की पक्षपाती थी।"

□□□

1. कूपलैण्ड आर : इण्डिया-ऐरिस्टमेटमेन्ट, पृष्ठ 160-161.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

10 द्वितीय विश्वयुद्ध एवं संवैधानिक विकास (1939-1945)

1935 का अधिनियम व 1937 के निर्वाचन- अंग्रेज सरकार ने भारतीयों को सन्तुष्ट करने के लिए 1935 ई. में एक अधिनियम पारित किया, जो भारतीय शासन अधिनियम,1935 ई. के नाम से जाना जाता है। इस अधिनियम द्वारा प्रान्तीय शासन प्रबन्ध का संचालन भारतीयों के हाथों में सौंप दिया गया। सरकार के इस आश्वासन पर कि, गवर्नर दिन-प्रतिदिन के शासन में भारतीय मंत्रियों के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करेंगे, कांग्रेस ने 1937 के चुनाव में भाग लिया और 11 से 8 प्रान्तों में अपने मंत्रिमण्डल बनाये। इन कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों ने गाँधी जी के रचनात्मक कार्यों को क्रियान्वित करने का हर सम्भव प्रयास किया।

द्वितीय विश्वयुद्ध एवं संवैधानिक गतिरोध

1935 ई. में द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ हो गया, तो ब्रिटिश सरकार ने बिना कांग्रेसी मंत्रिमडलों के परामर्श के भारत को इंगलैण्ड के समर्थन में युद्ध में शामिल कर दिया। परिणामस्वरुप अंग्रेज सरकार की इस नीति का विरोध करते हुए कांग्रेस मंत्रिमण्डलों ने त्याग-पत्र दे दिया।

कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों द्वारा तयाग पत्र देने के सम्बन्ध में परस्पर विरोधी मत हैं। वी.पी. मेनन ने कांग्रेसी मंत्रीमण्डलों द्वारा त्यागपत्र दिये जाने की आलोचना की है। उन्होंने लिखा है, "यदि कांग्रेस ने प्रान्तों में, लाभ की इस स्थिति में त्यागपत्र न दिया होता, तो भारतीय इतिहस भिन्न होता। त्यागपत्र देकर, उसने अदूरदर्शिता एवं राजनीतिक बुद्धिमत्ता के अभाव का खेदजनक प्रदर्शन किया था। उसे पदच्युत करने के कम अवसरं थे। निश्चय ही जनता का व्यापक समर्थन प्राप्त ऐसे मंत्रिमण्डलों को पदच्युत करने की हिम्मत ब्रिटिश शासन में नहीं हो सकती थी। न केन्द्र में परिवर्तन की सर्वसम्मत मांग को ही वह अस्वीकार कर सकती थी... यह तो निश्चय है कि कांग्रेस के त्यागपत्र के बिना जिन्ना एवं मुस्लिम लीग को वह स्थिति प्राप्त न होती, जो उन्हें बाद में हो गयी"[1] फ्रेंक मोरिस ने भी इस मत का समर्थन करते हुए लिखा है,"कांग्रेस

1. मेनन, वी.पी. : द ट्रान्सफर ऑफ इन इण्डिया, पृष्ठ 152.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ने त्यागपत्र देकर बड़ी भूल की थी। उसे तो सरकार को मंत्रिमण्डलों को पदच्युत करने के लिए मजबूर करना चाहिए था (त्याग पत्र देकर) कांग्रेस ने अपने को अंधकार में धकेल दिया एवं जिन्ना तथा अंग्रेजों के लिए खुला मार्ग छोड़ दिया।"[1] इसके विपरीत गाँधीजी का यह मत है कि, कांग्रेस के समक्ष त्याग पत्र देने के अलावा अन्य कोई विकल्प ही नहीं रह गया था। कांग्रेस में भी कुछ लोग ऐसे थे, जो त्यागपत्र देने के पक्ष में नहीं थे। उदाहरणार्थ के.एम.मुंशी उनका मानना था कि द्वितीय विश्वयुद्ध की लड़ाई जारी रखकर हम स्वयं अपनी स्वतंत्रता की ओर अग्रसर होंगे। अतः ऐसे समय त्यागपत्र देना बहुत बड़ी भूल होगी। जो कुछ भी हो कांग्रेसी मंत्रिमण्डल के त्यागपत्र के बाद अंग्रेजों और मुस्लिम लीग के लिए मैदान खुला छोड़ दिया। इस पर जिन्ना ने कहा,"भारतीय मुसलमानों को हिन्दुओं के अत्याचार, अन्यायपूर्ण और क्रूर शासन से मुक्ति प्राप्त हुई है। "जिन्ना ने भारतीय मुसलमनों को 22 दिसम्बर, 1939 को घी के दिये जलाकर 'मुक्ति दविस' के रूप में मनाने की अपील की। इसके बाद मुस्लिम लीग एवं जिन्ना ने अपनी स्थिति के दृढ़ किया। तत्पश्चात लार्ड लिनलिथगों का झुकाव मि. मुस्लिम लीग की ओर बढ़ता चला गया। व्यावहारिक दृष्टि से मि. जिन्ना को"समस्त भारत की संवेधानिक प्रगति में निषेधाधिकार प्राप्त हो गया"[2] 1940 में मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान का प्रस्ताव पारित कर दिया और इस मांग को मनवाना ही उसका मुख्य उद्देश्य हो गया।

8 अगस्त, 1940 की घोषणा- ब्रिटिश सरकार ने युद्ध में भारत का सहयोग प्राप्त करने के लिए कांग्रेस से समझौता करना आवश्यक समझा। इसिलए सरकार की ओर से लार्ड लिनलिथगो ने 8 अगस्त 1940 ई. को एक महत्त्वपूर्ण घोषणा की, जो अगस्त घोषणा के नाम से प्रसिद्ध है। इस घोषणा की प्रमुख बातें निम्नलिखित थीं-

(1). ब्रिटिश सरकार का लक्ष्य भारत तें औपनिवेशिक स्वराज्य की स्थापना है।

(2) युद्ध समाप्त होते ही ब्रिटिश सरकार बिना विलम्ब के भारत का नया संविधान बनाने के लिए एक संविधान सभा का आयोजन करेगी, जिसमें भारत के राष्ट्रीय जीवन के सभी प्रमुख तत्त्व भाग लेंगे। ब्रिटिश सरकार उस सभा को अधिक से अधिक सहयोग देगी, किन्तु भारत के लिए संविधान का निर्माण करना मुख्य रूप से भारतीयों की ही जिम्मेदारी होगी, परन्तु ब्रिटिश सरकार अल्पसंख्यकों के हितों का ध्यान रखेगी।

(3) गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद् का विस्तार कर उसमें कुछ ऐसे प्रतिनिधियों को लिया जायेगा, जो भारतीय जनता का प्रतिनिधित्व करते हों ।

(4) ब्रिटिश सरकार को युद्ध सम्बन्धी मामलों में परामर्श देने के लिए एक युद्ध परामर्श समिति स्थापित की जायेगी। इसमें देशी रियासतों एवं अन्य हितों के प्रतिनिधि शामिल होंगे। यह समिति नियमित रूप से समय-समय पर मिलती रहेगी।

---

1. फ्रैंक मोरिस : जवाहर लाल नेहरू, पृष्ठ 221.
2. मेनन, वी.पी. : वही, पृष्ठ 69-72.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(5) ब्रिटिश सरकार भारत की शान्ति तथा कल्याण के अपने उत्तरदायित्व किसी ऐसे दल को नहीं सौंपेगी, जिसे राष्ट्रीय जीवन के बड़े-बड़े और शक्तिशाली तत्त्व मानने के लिए तैयार न हों। इसका यह अभिप्राय था कि वह जब तक कांग्रेस मुस्लिम लीग के साथ समझौता न करे, तब तक कांग्रेस को भविष्य में भारत की सत्ता नहीं सौंपी जा सकती।

(6) जनता से अनुरोध किया गया कि ब्रिटिश सरकार की पूर्णरूपेण सहायता करे और कॉमनवेल्थ का अंग रहते हुए स्वतन्त्रता प्राप्त करने का प्रयत्न करें।

कांग्रेस द्वारा घोषणा की अस्वीकृति- यद्यपि अगस्त प्रस्ताव में स्पष्ट रूप से भारतीयों को युद्ध के बाद औपनिवेशिक स्वराज्य, संविधान सभी की स्थापना तथा अन्तरिम काल में भारत के शासन में भारतीयों को शामिल करने की घोषणा की गई थी। फिर भी यह घोषणा भारतीयों की दृष्टि में निराशाजनक थी। कांग्रेस के अध्यक्ष मौलाना आजाद ने इस घोषणा की कड़ी निन्द करते हुए यह शब्द कहे, "यह पेशकश तो देखने योग्य भी नहीं है।" कांग्रेस ने इस घोषणा को निम्नलिखित कारणों से अस्वीकार कर दिया-

(i) कांग्रेस की यह मांग थी कि तत्काल भातर मे अस्थायी राष्ट्रीय सरकार स्थापित की जाए और रक्षा तथा अन्य मामलों पर नियन्त्रण उसके हाथ में हो। वायसराय की घोषणा में कहीं पर भी इस बात का जिक्र तक नहीं था। इस घोषणा में केवल यह आश्वासन दिया गया था कि गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी में कुछ भारतीय प्रतिनिधियों को ही लिया जायेगा।

(ii) घोषणा में अल्पसंख्यक वर्गों को भविष्य में भारत के संवैधानिक विकास पर रोक लगाने का अधिकार दे दिया गया। अप्रत्यक्ष रूप से मुस्लिम लीग को यह कह दिया गया कि उसकी स्वीकृति के बिना भारत में ब्रिटिश सरकार कोई संवैधानिक परिवर्तन नहीं करेगी। इससे बहुमत अल्पमत की दया पर निर्भर हो गया। यह घोषण राष्ट्रीय हितों के प्रतिकूल थी। ऐसी स्थिति में कांग्रेस द्वारा इस घोषणा को स्वीकार करना सम्भव नहीं था। ब्रिटिश सरकार द्वारा मुस्लिम लीग को कांग्रेस के मार्ग में रोड़े अटकाने का अवसर दिया गया था। परिणामस्वरूप पाकिस्तान की मांग पहले से भी तीव्र हो गई।

इस घोषणा के बाद कांग्रेस अध्यक्ष मौलाना आजाद ने वायसराय के निमन्त्रण को अस्वीकार कर दिया। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि, "कांग्रेस की स्वतंत्रता और वायसराय की कार्यकारिणी समिति के विस्तृत करने में कोई समन्वय नहीं है। अतः पारस्परिक मिलन की कोई आवश्यकता नहीं है।"

मुस्लिम लीग और अगस्त प्रस्ताव- मुस्लिम लीग ने अगस्त घोषणा को अस्वीकार कर दिया, क्योंकि वायसराय की घोषणा में पाकिस्तान की स्थापना के लिए कोई आश्वासन नहीं दिया गया था। मुस्लिम लीग का कहना था कि भारतीय समस्या का एक मात्र हल पाकिस्तान की स्थापना है। इसके अतिरिक्त लीग ने केन्द्रीय कार्यकारिणी परिषद में उसको कांग्रेस के बराबर प्रतिनिधित्व देने की मांग की। इससे भारत की राजनैतिक समस्या और अधिक विकट हो गई।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अगस्त घोषणा दोषपूर्ण होते हुए भी भारत के संवैधानिक विकास के इतिहास में विशेष महत्व रखती है। कूपलैण्ड के शब्दों में, "यह प्रस्ताव वैधानिक समस्या को सुलझाने की दिशा में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा सराहनीय प्रयत्न था।" इस प्रस्ताव मे युद्ध के बाद औपनिवेशिक स्वराज्य और संविधान सभा की स्थापना का आश्वासन दिया गया था। इस प्रस्ताव द्वारा पहली बार यह मान लिया गया था कि भारतवासी अपने भावी संविधान का निर्माण कर सकते हैं। श्री आर.पी.मसानी लिखते हैं कि,"अगस्त प्रस्ताव में दिये गये सुधार और उनके सम्बन्ध में स्वीकृति प्राप्त करने की विधि उत्तेजक थी। भारत मन्त्री एमरी भी इससे अधिक उदार योजना पेश नहीं कर सकता था, क्योंकि चर्चिल की सरकार इससे अधिक रियायते देने के लिए तैयार न थी।" कांग्रेस द्वारा अगस्त घोषणा को अस्वीकृत करने पर भारत मन्त्री श्री एमरी ने कहा कि कांग्रेस भारत में वैधानिक गतिरोध उत्पन्न कर रही है। एमरी ने कहा, "यदि कांग्रेस भारतीय राष्ट्रीय जीवन के सभी क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व कर पाती, जैसा वह घोषित करती है, तो समस्या का रुप कुछ भिन्न ही होता तथा उसका समाधान सरल हो जाता। वर्तमान में जो वैधानिक गतिरोध हो गया है, उसका मुख्य कारण राष्ट्रीय जीवन में पर्याप्त विभिन्नताएं है, न कि हम उनको स्वराज्य नहीं प्रदान करना चाहते।"

व्यक्तिगत सत्याग्रह का आरम्भ एंव स्थगन- ब्रिटिश सरकर द्वारा कांग्रेस की मांगों को पूरा न करने के कारण गांधी जी 1940 ई. में व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ कर दिया हजारों व्यक्ति फिर जेल गये। किन्तु जापान की बढ़ती प्रगति को देखकर (जापान ने 8 मार्च 1942 ई. को रंगून पर अधिकार कर लिया था तथा भारत को अंग्रेजी नियन्त्रण से मुक्त करवाने के लिए भारत पर आक्रमण करने की घाषणा की थी) महात्मा गांधी ने 30 दिसम्बर 1941 ई. को इस आन्दोलन को स्थगित कर दिया।

क्रिप्स मिशन (22 मार्च, 1942 ई.)

ब्रिटिश प्रधान मन्त्री चर्चिल अनुदार दल के नेता थे। अतः भारतीय नेताओं के साथ समान स्तर पर बातचीत करना अपनी प्रतिष्ठा के प्रतिकूल समझते थे। यही कारण था कि वे भारत के संवैधानिक गतिरोध को दूर करने हेतु पहल करने को तैयार नही थे, परन्तु युद्ध के प्रारम्भिक चरण में ब्रिटेन और मित्र राष्ट्रो की स्थिति बिगड़ती जा रही थी। 1942 में जब जापानी सेनाएं बर्मा में भारत की सीमा तक आ पहुंची, तो चर्चिल महोदय भी घबरा उठे। उस समय ब्रिटिश जनमत और मित्र राष्ट्रों ने चर्चिल पर यह दबाव डाला कि भारत की राजनीतिक समस्या के हल के लिए शीघ्र ही कोई उपाय किया जाए। ऐसी स्थिति में प्रधान मंत्री चर्चिल ने राजनीतिक गतिरोध को दूर करने के लिए एवं युद्ध में भारतीयों का सहयोग प्राप्त करने के लिए 22 मार्च 1942 ई. को सर स्टैफर्ड क्रिस को भारत भेजने का निश्चय किया। क्रिप्स इंगलैण्ड के प्रमुख समाजवादी नेता थे ओर उन्होंने ही रुस को अंग्रेजों के पक्ष में युद्ध में शामिल किया गया। उन्हें भारत के शुभ-चिंतक और भारत की स्वाधीनता का पक्षधर समझा जाता था। वे भारत इससे पहले भी दो बार आ चुके थे और जवाहर लाल नेहरु के अं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मित्रों में से थे। अतः 11 मार्च 1942 ई. को ब्रिटिश प्रधान मन्त्री चर्चिल ने ब्रिटेन के हाऊस ऑफ कॉमन्स में इस सम्बन्ध में अपने विचार निम्न शब्दों मे व्यक्त किये-

"जापानियों की प्रगति के कारण भारत के लिए जो भय तथा संकट उत्पन्न हो गया है, उसको देखते हुए हम यह आवश्यक समझते है कि आक्रमण से भारत की रक्षा के लिए हमको भारत के समस्त वर्गों को संगठित करना चाहिये। अगस्त 1940 में हमने भारत के सम्बन्ध में अपने उद्देश्यों और नीति के विषय में पूर्ण रुप से प्रकाश डालते हुए एक घोषणा की थी, जिसका संक्षेप मे आशय यह था कि युद्ध के समाप्त होने पर यथासम्भव शीघ्र से शीघ्र भारत को पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्य प्रदान किया जायेगा।"

"हमने युद्ध मंत्रिमण्डल के एक सदस्य को भारत भेजने का निश्चय किया है, जिससे कि वह वहां जाकर भारतीय नेताओं से विचार-विमर्श करने के उपरान्त इस बात की तसल्ली कर ले कि हमने भारत के सम्बन्ध में जो निर्णय किया है, जो हमारी दृष्टि में न्यायपूर्ण है, गत्यावरोध दूर करने में सहायक होंगे। इस कार्य के लिए लार्ड प्रिवी सील तथा सदन के नेता सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने अपनी सेवा अर्पित कर दी हैं।"[1]

ब्रिटिश सरकार द्वारा क्रिप्स को भारत भेजने की घोषणा का भारतीय जनता ने स्वागत किया। क्रिप्स के उदार विचारों के होने के कारण भारतीयों को उनसे बहुत आशाएं थीं। भारतीय जनता का मानना था कि क्रिप्स भारत का वैधानिक गतिरोध दूर करने में सफल हो सकेंगे।

क्रिप्स को भारत भेजने के कारण- क्रिप्स को भारत भेजने के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे-

(1) गांधीजी का युद्ध के प्रति दृष्टिकोण- यद्यपि गांधीजी नाजीवाद, फासीवाद और जापानी सैनिकवाद के विरुद्ध थे, तथापि उन्होंनन ब्रिटिश सरकार के युद्ध में उस समय तक सहायता न देने का निश्चय किया, जब तक कि सरकार युद्ध समाप्ति के बाद स्वराज्य देने की घोषणा न कर दें। गांधीजी ने ब्रिटिश सरकार के भारत विरोधी रवैये के विरोध में व्यक्तिगत सत्याग्रह आरम्भ कर दिया था। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद लिखते हैं कि उस समय लोगों ने शीघ्र ही नारा बना लिया कि, 'न एक भाई न एक पाई' अर्थात न तो हम अपने किसी भाई को युद्ध क्षेत्र में भेजेंगे और न ही युद्ध के लिए एक पाई की आर्थिक सहायता देंगे। गांधीजी ने जो व्यक्तिगत सत्याग्रह ब्रिटिश सरकार को युद्ध में सहायता न देने के लिए चलाया, उसका भी भारत तथा अन्य देशों की जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा। ब्रिटिश सरकार को भी यह अहसास हो गया कि भारतीयों को कुछ अधिकार दिये बिना युद्ध में सक्रिय सहयोग प्राप्त नहीं किया जा सकता। अतः उसने संवैधानिक गतिरोध को दूर करने के लिए नवीन प्रस्ताव प्रस्तुत करना आवश्यक समझा। माइकेल ब्रेचर लिखते हैं कि,"क्रिप्स मिशन को भारत भेजे जाने का एक कारण गांधी द्वारा संचालित सत्याग्रह था।"

1. चर्चिल : सेकण्ड वर्ल्ड वार से उद्धृत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(2) ब्रिटिश जनमत- इंग्लैण्ड के अनेक प्रभावशाली व्यक्तियों ने ब्रिटिश सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि भारत की राजनीतिक समस्या के समाधान हेतु सरकार को जल्दी ही कोई निश्चित तथा संतोषजनक कदम उठाना चाहिए, ताकि युद्ध में भारतीयों का पूर्ण सहयोग प्राप्त हो सके।

(3) मित्र-राष्ट्रों का ब्रिटेन पर दबाव- द्वितीय विश्व युद्ध की स्थिति गम्भीर होने से पूर्व राष्ट्रपति रुजवेल्ट, च्यांग कई शेक और ब्रिटेन के दूसरे सहयोगियों ने ब्रिटिश सरकार से भारत के साथ समझौता करने का आग्रह शुरु कर दिया था, ताकि भारतीयों के सहयोग से संकट का अधिक अच्छी प्रकार से सामना किया जा सके। मित्र राष्ट्र भी भारतीयों की स्वतंत्रता की मांग को न्यायोचित समझते थे।

फरवरी 1942 ई. में चीन के राष्ट्रपति मार्शल च्यांग काई शेक ने भारत यात्रा के दौरान एक वक्तव्य प्रकाशित किया, जिसमें कहा गया था कि, "मुझे पूरी आशा है दृढ़ विश्वास है कि हमारा मित्र ब्रिटेन भारतीयों की मांग की प्रतीक्षा किय बिना ही उसका शीघ्र से शीघ्र वास्तविक राजनीतिक शक्ति प्रदान करेगी, जिससे वे अपनी आत्मिक और भौतिक शक्तियों को और भी अधिक उन्नत कर सकें और इस प्रकार यह अनुभव कर सकें कि वे केवल आतंकवाद के विरोधी राष्ट्रों की विजय के लिए ही युद्ध में सहयोग नहीं दे रहे हैं, वरन् यह भी अनुभव करें कि उनका यह सहयोग भारतीय स्वतंत्रता के संघर्ष में भी एक युगान्तकारी घटना है। क्रियात्मक दृष्टि से मेरे विचार मे यह सबसे अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण नीति होगी, जो ब्रिटिश साम्राज्य के यश को चतुर्दिक प्रसारित कर देगी।" मार्शल च्यांग ने ब्रिटिश सरकार को लिखा था,"जब तक भारतीयों के क्षोभ को दूर नहीं किया जायेगा, ब्रिटिश सरकार के लिए खतरा दिन-प्रतिदिन बढ़ता जायेगा।"[1]

अमेरिका के राष्ट्रपति रुजवेल्ट ने चर्चिल पर भारत से समझौते के लिए दबाव डाला। इसके बाद रुजवेल्ट ने फरवरी 1942 ई. में यह घोषणा की कि अटलाण्टिक चार्टर विश्व पर समान रूप से लागू होगा।

इसी समय आस्ट्रेलिया के विदेश मन्त्री मि.इवाट्ट ने आस्ट्रेलिया की संसद में कहा कि भारत को स्वराज्य दे दिया जाय, ताकि भारतीय जनता तन-मन-धन से जापान के विरुद्ध ब्रिटेन की पूर्ण सहायता कर सके। पूर्वी देशों में युद्ध के प्रसार से इन मित्र-देशों का दबाव अधिक बढ़ गया। प्रथम तो इसलिए कि जापान के युद्ध में शामिल हो जाने से अमेरिका को युद्ध का उत्तरदायित्व उठाना पड़ रहा था। दूसरे, पूर्वी देशों में युद्ध के भीषण प्रसार ने भारत का युद्ध में सम्मिलित होना अनिवार्य कर दिया था। इन परिस्थितियों में ब्रिटेन के लिए मित्र राष्ट्रों के संयुक्त दबाव की अवलेहना करना कठिन हो गया। अतः उसे अन्त में क्रिप्स को भेजना पड़ा।

1. फॉरेन रिलेशन्स् ऑफ यूनाइटेड स्टेट्स डिप्लोमेटिक पेपर्स, 1942, वोल-I, पृष्ठ 604-605

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(4) युद्ध का भीषण प्रसार एवं भारतीय संकट- युद्ध की बिगड़ती हुई स्थिति के कारण भी क्रिप्स को भारत भेजना अनिवार्य हो गया। जापान ने सिंगापुर, मलाया और इण्डोनेशिया, अण्डमान तथा निकोबार पर विजय प्रप्त कर ली थी। उसके जहाज बंगाल की खाड़ी में घूम रहे थे। 8 मार्च 1942 ई. को जापान रंगून पर कब्जा कर लिया, तो ब्रिटिश प्रधान मन्त्री भी घबरा उठा। मि.चर्चिल ने अपनी आत्मकथा में लिखा है,"8 मार्च को जापानी सेना रंगून में प्रविष्ट हो गयी। मेरे सब मित्रों को यह मालूम हुआ कि यदि भारत की ठीक ढंग से रक्षा करनी है तो राजनीतिक गतिरोध को दूर करने के लिए हर सम्भव तरीके से प्रयत्न किया जाना चाहिए।" अतः रंगून पतन के केवल तीन दिन पश्चात चर्चिल ने यह घोषणा की कि भारत के राजनीतिक गतिरोध को दूर करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने एक योजना तैयार की है और इस हेतु क्रिप्स को शीघ्र ही भारत भेजा जायेगा।

क्रिप्स का भारत में आगमन (22 मार्च 1942)

मि.क्रिप्स 22 मार्च 1942 ई. को दिल्ली पहुँचे। अपने 20 दिन के भारत प्रवास काल में उन्होंने कांग्रेस, मुस्लिम लीग, हिन्दू महासभा, देश नेरेशों, हरिजनों और उदारवादियों के प्रतिनिधियों से भेंट की। इसके बाद उन्होंने भारत के राजनीतिक गतिरोध को दूर करने के लिए प्रस्ताव प्रस्तुत किये, जो 'क्रिप्स प्रस्ताव' के नाम से प्रसिद्ध है।

किप्स प्रस्ताव- क्रिप्स प्रस्ताव को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है- (अ) युद्ध के बाद लागू होने वाले प्रस्ताव और (ब) युद्ध के समय लागू होने वाले प्रस्ताव।

(अ) युद्ध के बाद लागू होने वाले प्रस्ताव

(1) एक नये भारतीय संघ की व्यवस्था की जायेगी, जिसमें ब्रिटिश इण्डिया के प्रान्त और भारतीय रियासतें सम्मिलित होंगी। इस संघ को स्वशासित उपनिवेश का पूर्ण दर्जा प्राप्त होगा। भारतीय संघ को आन्तरिक तथा बाहरी नीति के क्षेत्र में पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त होगी। यदि वह चाहेगा, तो ब्रिटिश सरकार से सम्बंध भी विच्छेद कर सकेगा। प्रारूप में कहा गया कि,"भारत के साथ की गई प्रतिज्ञाओं की पूर्ति के सम्बन्ध में इंग्लैण्ड और भारत में जो चिन्ताएं प्रकट की गई हैं, उनको ध्यान में रखते हुए सम्राट की सरकार ने भारत में शीघ्र ही स्वशासन के विकास के लिए निश्चित कदम उठाने का निश्चय किया है। ब्रिटिश सरकार एक ऐसे भारतीय संघ की स्थापना करना चाहती है, जो एक उपनिवेश या अधिराज्य होगा, जो ब्रिटिश मुकुट के प्रति अपनी भक्ति के कारण ब्रिटेंन तथा उपनिवेश से अपना सम्बन्ध रखेगा। प्रस्ताव में स्पष्ट रुप से यह कहा गया था कि यह उपनिवेश हर दृष्टि से अन्य उपनिवेशों के बिलकुल समान होगा और आन्तरिक तथा बाहरी मामलों में किसी के अधीन न होगा। इसे ब्रिटेन से सम्बन्ध विच्छेदन करने की भी स्वतंत्रता होगी।"

(2) युद्ध को समाप्ति के तुरन्त बाद भारत का नया संविधान बनाने के लिए एक संविधान सभा बनाई जायेगी, जिसमें ब्रिटिस भारत और देशी रियासतों दोनों के प्रतिनिधि शामिल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होंगे।

(3) युद्ध की समाप्ति से पूर्व यदि भारत के विभिन्न सम्प्रदायों के मुख्य नेता किसी अन्य व्यवस्था पर असहमत हों, तो संविधान सभा का निर्माण इस प्रकार से किया जायेगा- युद्ध समाप्ति के तुरन्त बाद प्रान्तीय विधान मण्डलों के चुनाव करवाये जायेंगे और प्रान्तीय विधान मण्डलों के निम्न सदन अर्थात विधान सभाएं अनुपातिक प्रतीनिधित्व पद्धति के अनुसार संविधान सभा के सदस्यों का चुनाव करेंगी। संविधान सभा की सदस्य संख्या निर्वाचक मण्डल की सदस्य संख्या का 10वां भाग होगी। देशी रियासतों के प्रतिनिधियों की नियुक्ति उनकी जनसंख्या के अनुपात में रियासतों के नरेशों के द्वारा की जायेगी। देशी रियासतों और प्रान्तों के प्रतिनिधियों की शक्तियाँ बराबर होंगी।

(4) इस संविधान सभा द्वारा बनाये गये संविधान को ब्रिटिश सरकार केवल तभी स्वीकार और कार्यान्वित करेगी, जबकि निम्नलिखित शर्तें पूरी होती हो-

(i) पहली शर्त यह थी कि जो प्रान्त या देशी रियासतें नये संविधान को स्वीकार न करें, उन्हें अधिकार होगा कि वे अपनी वर्तमान संवैधानिक स्थिति को बनाये रखें। यदि ये प्रान्त बाद में भारतीय संघ में शामिल होना चाहें, तो वे बाद में शामिल हो सकेंगे। जो प्रान्त संविधान सभा द्वारा बनाये गये नये संविधान को मानने और भारतीय संघ में शामिल होने के लिए तैयार न होंगे, उन्हें भारत संघ से अलग रहकर एक नया संविधान बनाने का अधिकार होगा। इन प्रान्तों की स्थिति भी भारतीय संघ की तरह ही होगी।

(ii) भारतीय देशी रियासतों को भी प्रान्तों की तरह नये संविधान को मानने या न मानने का अधिकार होगा, परन्तु उसके साथ हुई पुरानी संधि को नये संविधान की आवश्यकता के अनुसार दोहराना पड़ेगा।

(iii) संविधान की इस स्वीकृति के उपरान्त भारतीय संविधान सभा और ब्रिटिश सरकार के बीच एक सन्धि होगी, जिसमें पूर्ण सत्ता-हस्तान्तरण से उत्पन्न होने वाली समस्त समस्याओं का सुलझाव होगा। इसके अतिरिक्त सम्राट की सरकार ने जाती और धार्मिक अल्पसंख्यक वर्गों की रक्षा के लिए जो वचन दिये हैं, सन्धि में उनकी पूर्ति के लिए व्यवस्था की जायेगी। इस सन्धि में भारत पर ब्रिटिश साम्राज्य के किसी देश से अपने सम्बन्धों को निश्चित करने के बारे में कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया जायेगा।

(ब) युद्ध के समय लागू होने वाले प्रस्ताव

क्रिप्स प्रस्ताव में कहा गया कि जब तक युद्ध के कारण भारतवर्ष खतरे में है और इसके नये संविधान का निर्माण नहीं होता, भारत की रक्षा की जिम्मेदारी ब्रिटिश सरकार की रहेगी। भारत के नैतिक तथा भौतिक साधनों को संग्रहित करना भारत-सरकार की जिम्मेदारी होगी, जिसको भारतीय नेता प्रसन्नता पूर्वक सहयोग देंगे। क्रिप्स प्रस्ताव के अन्त में कहा गया कि,"संम्राट की सरकार की इच्छा है कि भारतीय जनता के विविध वर्गों के नेता अपने देश,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ब्रिटिश राष्ट्र-मण्डल तथा मित्र राष्ट्रों के विचार-विमर्श में शीघ्र तथा प्रभावोत्पादक ढंग से भाग लें तथा इस प्रकार एक महान कार्य के सम्पादन में वे रचनात्मक तथा सक्रिय सहयोग प्रदान कर सकेंगे, जो भारत की स्वाधीनता के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।"

क्रिप्स के सुझावों का मूल्यांकन

क्रिप्स के प्रस्तावों के बारे में डॉ. पट्टाभि सीतारमेया ने लिखा है कि,"इनमें प्रत्येक दल को खुश करने वाली बातें थीं। कांग्रेस को प्रसन्न करने के लिए इन प्रस्तावों की पूर्व भूमिका में औपनिवेशिक स्वराज्य, वेस्त मिनिस्टर कानून और सार्वोपरि बात ऐसी विधान परिषद् का उल्लेख था, जिसे प्रारम्भ में ही ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल से पृथक हो जाने की घोषणा कर देने का अधिकार दिया गया था। मुस्लिम लीग के लिए सबसे बड़ी बात यह थी कि किसी भी प्रान्त को भारतीय संघ से अलग हो जाने का हक था। नरेशों को न केवल इस बात की आजादी थी कि वे चाहें तो इस संघ से शामिल हों या न हों, वरन विधान निर्मात्री परिषद में रियासतों के प्रतिनिधि भेजने का एकमात्र अधिकार भी उन्हें ही दिया गया था।"[1]

क्रिप्स प्रस्ताव अगस्त, 1940 के प्रस्तावों से अधिक महत्त्वपूर्ण, व्यापक तथा सुनिश्चित थे। इनमें भारत को राष्ट्रमण्डल से अलग होने का अधिकार दिया गया था, जबकि 'अगस्त प्रस्ताव' में यह बात नहीं थी। क्रिप्स प्रस्तावों में भारत के नये संविधान को बनाने की जिम्मेदारी पूर्ण रूप से भारत के प्रतिनिधियों को सौंपी जा रही थी। यद्यपि ब्रिटेन ने उस संविधान को स्वीकार करने के लिए कुछ शर्तें लगा दी थीं। इसके अतिरिक्त ये प्रस्ताव अन्तरिम सरकार के स्वरूप के बारे में भी अगस्त प्रस्तावों से कुछ आगे बढ़े हुए थे। इन प्रस्तावों के द्वारा भारतीयों के हाथों में अधिक शक्तियाँ हस्तान्तरित की जानी थीं।

लेकिन क्रिप्स प्रस्तावों का अध्ययन करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि क्रिप्स प्रस्तावों में बहुत से ऐसे दोष भी थे, जिनके कारण भारत के सभी वर्गों ने उनको अस्वीकार कर दिया। कांग्रेस द्वारा सम्पूर्ण भारत के लिए पूर्ण स्वतंत्रता की मांग की जा रही थी, लेकिन क्रिप्स प्रस्तावों में औपनिवेशिक स्वराज्य की बात कही गई थी और उसके लिए भी कोई अन्तिम तारीख निश्चित नहीं की गई थी। यही कारण था कि महात्मा गांधी के द्वारा इन प्रस्तावों को 'दिवालिया बैंक के नाम भविष्य की तिथि में भुनने वाले चैक' (Post deted cheque on a failing Bank)[2] कहा गया था।

क्रिप्स प्रस्तावों में कहा गया था कि युद्ध की समाप्ति के उपरान्त संविधान सभा की स्थापना की जायेगी, लेकिन संविधान सभा के गठन का सिद्धान्त इतना त्रुटिपूर्ण था कि विधान निर्माण की सम्पूर्ण योजना के महत्त्व को ही समाप्त कर देता था। देशी रियासतों को नयें संविधान को मानने या न मानने का अधिकार दे दिया गया। संविधान सभा में दिशी रियासतों

1. पट्टाभिसीतारमैया (डॉ.) : द हिस्ट्री कांग्रेस, वोल-II, पृष्ठ 360.
2. वही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के प्रतिनिधि उनके नरेशों द्वारा मनोनीत किये जाने थे। इस प्रकार, रियासतों के 9 करोड़ व्यक्तियों को अपने प्रतिनिधि चुनने का अधिकार नहीं था। इसके अतिरिक्त देशी रियासतों को संघ में शामिल होने या न होने का अधिकार भी प्रदान कर दिया गया। "रियासतों की इस विशाल जनसंख्या की पूर्ण अवहेलना और उन्हें शासकों के अधिकार की वस्तु के तुल्य समझना प्रजातन्त्र और आत्मनिर्णय के सिद्धान्तों की पूर्ण अस्वीकृति थी।" "संविधान सभा में नरेशों के इन प्रतिनिधियों की उपस्थिति प्रगति में बाधक सिद्ध होती। एक तिहाई भारत के ये तथाकथित प्रतिनिधि अपनी विचारधारा में अनुदार और दृष्टिकोण में प्रजातन्त्र विरोधी होने के कारण वे शेष देश के दो-तिहाई प्रतिनिधियों की प्रगतिशील विचारधारा का आवश्यक रूप से विरोध करते और देशी रियासतों एवं शेष भारत की स्वतंत्रता के लिए निरन्तर संकट बने रहते।"

मुस्लिम बहुमत प्रान्तों को नये संविधान को मानने या अपना अलग संविधान बनाने अथवा अपनी वर्तमान आधुनिक संवैधानिक स्थिति को कायम रखने का अधिकार दे दिया गया। इस प्रकार, अप्रत्यक्ष रूप से मुस्लिम लीग को पाकिस्तान देने की व्यवस्था की गई थी। अल्प वर्ग के हितों के बारे में भी क्रिप्स प्रस्ताव अनिश्चित थे। यह स्पष्ट नहीं था कि सन्धि के समय ब्रिटिश सरकार अल्पसंख्यकों के किन अधिकारों पर जोर देगी। इस प्रस्ताव के बारे में कांग्रेस कार्य समिति का यह मानना था कि इसका लक्ष्य भारत को अनेक खण्डों में विभाजित करना था।

क्रिप्स के तात्कालिक प्रभाव अपूर्ण तथा निश्चित थे। इनसे भारत के वर्तमान ढांचे में किसी भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन की कोई गुंजाइश नहीं थी। वायसराय के अधिकारों में कोई पविर्तन नहीं किया गया था। युद्ध काल में प्रतिरक्षा विभाग पर भारतीयों को प्रभावशाली नियन्त्रण देने से इन्कार कर दिया गया था। क्रिप्स प्रस्ताव की इन अपूर्णताओं के कारण क्रिप्स प्रस्ताव और 1940 के अगस्त प्रस्ताव में कोई अन्तर नहीं रह गया था। इन्हीं कारणों से डॉ.पट्टाभि सीतारमैया ने इन्हें 'अगस्त प्रस्ताव का परिवर्द्धित आकर्षक संस्करण मात्र' (Attractive bromide enlargement of the August offer) कहा था।

पं.जवाहर लाल नेहरू ने क्रिप्स प्रस्तावों पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए लिखा है कि, "मैंने इन प्रस्तावों को जितना अधिक पढ़ा और इसके निहितार्थों पर विचार किया, मुझे उतनी ही अधिक निराशा हुई। भारतीय मामलों से अपरिचित व्यक्ति यह सोच सकता था कि वास्तव में हमारी मांगों को पूरा करने के लिए पर्याप्त सीमा तक प्रयत्न किया गया है लेकिन इसका विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इन पर सीमाएं लगा दी गई थीं और आत्मनिर्णय के सिद्धान्त को ही इस प्रकार प्रतिबन्धित कर दिया गया था कि इससे हमारा भविष्य संकट में पड़ जाता।"[1]

क्रिप्स ने जब इन प्रस्तावों के सम्बन्ध में गांधीजी से बातचीत की, तो गांधीजी ने कहा "यदि आपके पास प्रस्ताव यही थे, तो फिर आपने आने का कष्ट क्यों उठाया? यदि भारत

1. नेहरू, जवाहर लाल : द डिस्कवरी ऑफ इण्डिया, पृष्ठ 481-482.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के सम्बन्ध मे आपकी यही योजना है, तो आपको मेरा परामर्श है कि आप अगले ही हवाई जहाज से इंग्लैण्ड लौट जाएं।[1] वस्तुतः क्रिप्स प्रस्तावों के विरोध का मूल कारण यह था की भारतीय जनता क्रिप्स जैसे उदारवादी नेता से कुछ अधिक रियायतों की अपेक्षा रखती थी, परन्तु ब्रिटिश सरकार की नीति इसमें बाधक थी। अमेरिकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट के विशेष प्रतिनिधि लुई जानसन, जो क्रिप्स की भारतीय नेताओं से बातचीत के समय मध्यस्थता हेतु उपस्थित थे, ब्रिटिश नीति का विश्लेषण करते हुए कहा कि, "क्रिप्स मिशन के समय वायसराय तथा अन्य उच्चाधिकारी इस बात पर तुले हुए थे कि भारतीयों को आवश्यक रियायतें न दी जायें, उनका आज भी वही मत है। अंग्रेज भारत को खोने के लिए तैयार हैं, जैसे उन्होंने बर्मा को खो दिया लेकिन भारतीयों को कोई रियायतें देने को तैयार नहीं, क्योंकि इन्हें विश्वास है कि युद्ध समाप्त होने पर भारत वापस मिल जायेंगा और उनकी स्थिति वही हो जायेगी, जो युद्ध के प्रारम्भ होने से पहले थी।"[2]

क्रिप्स प्रस्ताव की कांग्रेस द्वारा अस्वीकृति

कांग्रेस ने निम्नलिखित कारणों से क्रिप्स प्रस्तावों को अस्वीकार कर दिया-

(1) इन प्रस्तावों में युद्ध के बाद भारत के औपनिवेशिक स्वराज्य देने की बात की गई थी, परन्तु इस सम्बन्ध में कोई काल सीमा नियत नहीं की गई थी।

(2) कांग्रेस इस बात को भी स्वीकार नहीं कर सकती थी कि संविधान सभा के प्रतिनिधि रियासतों की जनता के स्थान पर वहां के शासक भेजें। कांग्रेस संविधान सभा में राजाओं को रियासतों के प्रतिनिधि भेजने का अधिकार नहीं दे सकती थी, क्योंकि एक तो वहां की जनता के अधिकार की उपेक्षा होती; दूसरे, देशी रियासतों के शासक अंग्रेज सरकार को प्रसन्न करने के लिए भारतीय स्वतंत्रता की प्रगति के मार्ग में बाधा उपस्थित करते। कांग्रेस ने अपने प्रस्ताव में कहा था कि,"देशी राज्य की नौ करोड़ जनता की अवहेलना करना और क्रय-विक्रय की वस्तु की भाँति उनके साथ व्यवहार करना प्रजातंत्र और स्वराज्य निर्णय का निषेध है।" पं.जवाहर लाल नेहरू ने कहा था कि," इस सिद्धान्त को स्वीकार करना हमारी नीति के विरुद्ध होगा और देशी राज्यों की जनता को धोखा देना होगा।"[3]

(3) भारतीय कांग्रेस देश की एकता में विश्वास रखती थी, परन्तु क्रिप्स प्रस्तावों में कई ऐसी बातें थीं, जिनसे भारत की अखण्डता नष्ट होने की सम्भावना थी। प्रान्तों तथा देशी रियासतों को संघ में शामिल हाने या न होने अथवा पृथक संघ निर्माण का अधिकार दे दिया गया था। राष्ट्रीय नेता किसी प्रान्त को जबरदस्ती संघ में रखना आत्मनिर्णय के सिद्धान्त के विरुद्ध मानते थे। इसके अतिरिक्त वे इस बात को कभी स्वीकार नहीं कर सकते थे कि

1. पट्टाभिसीतारमैया (डॉ.) : हिस्ट्री ऑफ कांग्रेस, वोल-II, पृष्ठ 364.
2. फॉरेन रिलेशन्स् ऑफ द यूनाइटेड स्टेट्स वोल- (1942), पृष्ठ 649-650.
3. नेहरू जे. एल. : डिस्कवरी ऑफ इण्डिया, पृष्ठ 466.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मुस्लिम लीग की मांग (पाकिस्तान की स्थापना अर्थात् देश का बंटवारा) पहले से ही स्वीकार कर लिया जाये। इस प्रकार, कांग्रेस द्वारा क्रिप्स प्रस्तावों को स्वीकार करने पर साम्प्रदायिक समस्या के और अधिक उग्र होने की सम्भावना थी। इतना ही नहीं, देश की अखण्डता भी नष्ट हो जाती। कांग्रेस की कार्य समिति ने इस दोषपूर्ण व्यवस्था की ओर संकेत करते हुए इस प्रकार कहा," भारतीय संघ के जन्म लेने से पूर्व ही प्रान्तों को इससे पृथक होने की सुविधा देना भारतीय एकता पर आघात करना और पृथकवाद को प्रोत्साहन देना है।" पं. जवाहर लाल नेहरु ने ब्रिटिश सरकार की इस कूटनीति की निन्दा करते हुए कहा कि,"भारत को विभाजित करने का कोई भी प्रस्ताव बहुत दुःखदायी है। यह इस प्रकार की मनोभावनाओं के विरुद्ध है। मनोभावनाओं के अतिरिक्त विभाजन के विरुद्ध ठोस तर्क भी है। भारत के विभाजन का विचार आधुनिक ऐतिहासिक और आर्थिक विकास के प्रवाह के विरुद्ध है, यह पूर्व तथा काल्पनिक दीख पड़ता है।"[1]

(4) कांग्रेस वर्तमान विषम परिस्थिति को देखते हुए केद्र में ऐसी राष्ट्रीय सरकार की स्थापना के पक्ष में थी, जिसमें वायसराय के पास नाममात्र की शक्तियाँ रह जाएं और वास्तविक शक्तियाँ भारतीय प्रतिनिधियों के हाथ में आ जाएं। कांग्रेस अंग्रेजों की नीति का मापदण्ड वर्तमान स्थिति को बनाना चाहती थी। क्रिप्स कांग्रेस के इस विचार से सहमत नहीं हुआ। अतः भारतीयों का क्रिप्स से विश्वास उठ गया। मौलाना अबुल कलाम आजाद ने कहा था कि," जब तक युद्ध काल में कौंसिल को वास्तविक शक्ति और उत्तरदायित्व न सौंपा जाय, तब तक किसी भी प्रकार का परिवर्तन महत्वपूर्ण नहीं होगा। शुरु में क्रिप्स ने मुझे आश्वासन दिया था कि कौंसिल एक मन्त्रिमण्डल की भाती काम करेगी। बातचीत के द्वारा यह स्पष्ट कहा गया कि यह काव्यिक अतिश्योक्ति थी।"[2]

(5) क्रिप्स भारत के प्रतिनिधियों को देश की रक्षा के ऊपर प्रभावशाली नियन्त्रण देने के लिए तैयार नहीं था। इससे भारतीयों को यह पूर्ण विश्वास हो गया कि ब्रिटिश सरकार भारत को किसी भी प्रकार की रियायत देने के पक्ष में नहीं है और इस संकट की घड़ी में भी वह प्रतिरक्षा विभाग पर अपना नियन्त्रण बनाये रखना चाहती है। मौलाना अबुलकलाम आजाद ने क्रिप्स प्रस्तावों को अस्वीकृत करते हुए कहा कि,"हम इन सुधारों को इसलिए स्वीकार नहीं कर सकते क्योंकि ब्रिटिश सरकार इस संकट काल में भी भारत की प्रतिरक्षा की अपेक्षा उस पर अपना शासन बनाये रखने तथा भारतीयों में फूट आदि डालने को अधिक महत्व देती है।"

लीग द्वारा क्रिप्स प्रस्तावों की अस्वीकृति

यद्यपि क्रिप्स प्रस्तावों में पाकिस्तान की मांग को एक प्रकार से स्वीकार कर लिया गया था, तथापि लीग ने 11 अप्रैल, 1942 ई. के प्रस्ताव में निम्नलिखित कारणों से क्रिप्स प्रस्तावों

1. नेहरु, जवाहर लाल : द डिस्कवरी ऑफ इण्डिया, पृष्ठ 465.
2. आजाद अबुल कलाम : इण्डिया विन्स् फ्रीडम, पृष्ठ 57.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

को अस्वीकार कर दिया-

(1) लीग का कहना था कि इन प्रस्तावों में स्पष्ट रुप से पाकिस्तान की मांग स्वीकार नहीं की गई है और सारे भारत को एक रखने की कोशिश की गई है।

(2) मुस्लिम लीग केवल एक संविधान सभा की व्यवस्था अपने हितों के विरुद्ध मानती थीं। वह मुसलमानों के लिए अलग संविधान सभा की मांग करती थी।

(3) संविधान सभा में साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली की कोई व्यवस्था नहीं की गई थी। चुंकि संविधान सभा में निर्णय बहुमत द्वारा लिये जायेंगे, इस लिए मुसलमान हिन्दुओं की दया पर आश्रित रहेंगे।

(4) भारत और ब्रिटेन के बीच सन्धि की शर्तें निश्चित नहीं की गई है।

(5) देशी रियासतों को यह स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए कि वे संविधान सभा में शामिल हों या न हों।

(6) क्रिप्स प्रस्तावों में अन्तर्कालीन व्यवस्था के लिए कोई सुझाव नहीं दिया गया है।

अन्य दलों का रवैया- भारत के अन्य राजनैतिक दलों तथा वर्गों ने भी इन सुझावों के प्रति असंतोष प्रकट किया। सिक्खों ने इस भय से कि भारतीय संघ के पृथक होने की अवस्था में पंजाब में मुस्लिम लीग का शासन हो जायेगा और सिक्खों का पहले जैसा महत्व नहीं रहेगा, क्रिप्स सुझावों को अस्वीकार कर दिया। सिक्खों ने कहा कि वे पंजाब में कभी भी पाकिस्तान नहीं बनने देंगे। हिन्दू महासभा का कहना था कि इन प्रस्तावों द्वारा ब्रिटिश सरकार पीछे के दरवाजे से पाकिस्तान की स्थापना करना चाहती है, अतः उसने इन सुझावों को रद्द कर दिया। हरिजनों के नेताओं ने इस बात से डरते हुए कि वे ऊंची जाति के हिन्दुओं की दया पर आश्रित हो जायेंगे, सुझावों को अस्वीकार कर दिया। सर तेज बहादुर सप्रू और डॉ. जयकर जैसे उदारवादी नेताओं ने भी इन सुझावों को देश के हितों और रक्षा के लिए हानिकारक होने के कारण अस्वीकार कर दिया।

क्रिप्स के सुझावों की असफलता के कारण

भारतीय समस्या को सुलझाने के लिए सम्भवतया सर स्टैफर्ड क्रिप्स सबसे योग्य व्यक्ति थे। मि. क्रिप्स को भी इस बात का विश्वास था कि वह इस समस्या का समाधान आसानी से कर सकेगा। भारतीय नेताओं के साथ उसकी प्रारम्भिक बातचीत में कुछ आशा की झलक भी दिखाई दी। लेकिन इन अनुकूल परिस्थितियों के बावजूद भी क्रिप्स को अपने उद्देश्य में सफलता नहीं मिल सकी और अठारह दिन के घोर परिश्रम के पश्चात उसे निराश होकर वापिस जाना पड़ा। क्रिप्स मिशन की इस असफलता के लिए प्रमुख रुप से निम्नलिखित कारण उत्तरदायी थी-

(1) **सुझावों की अपर्याप्तता-** क्रिप्स की असफलता का प्रमुख कारण यह था कि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उसके द्वारा प्रस्तुत किए गये सुझाव न तों पर्याप्त थे और न ही भारतीय परिस्थिति को हल करने के लिए काफी थे। युद्ध के समय एवं युद्ध के बाद लागू होने वाले दोनों ही प्रकार के सुझावों से भारतीय सन्तुष्ट नहीं थे। युद्ध के बाद लागू होने वाले सुझावों में ब्रिटिश सरकार ने अपने हितों की रक्षा के दृष्टिकोण से कुछ ऐसी बातें जोड़ दी थीं, जिनसे प्रस्तावों का महत्व बिल्कुल समाप्त हो जाता था। युद्ध के समय लागू होने वाले प्रस्ताव भी अस्पष्ट और निराशाजनक थे। क्रिप्स योजना इस दृष्टि से भी त्रुटिपूर्ण थी कि इसमें वर्तमान की अपेक्षा भविष्य पर अधिक बल दिया गया था और भविष्य में भी जो कुछ देने का आश्वासन दिया गया था, वह उपयोगिता की दृष्टि से संदिग्ध था, जबकि भारतीय तत्काल ही कुछ रियायतें प्राप्त करना चाहते थे। मौलाना आजाद लिखते हैं कि,"भारतीयों को यह योजना उसी अवस्था में सन्तुष्ट कर सकती थी, यदि भारत सरकार में तत्काल महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये जाते, लेकिन क्रिप्स योजना द्वारा एक ऐसा वचन दिया जा रहा था, जिसकी सत्यता तथा असत्यता युद्ध के पश्चात प्रमाणित होनी थी। तत्कालीन परिस्थितियों में इस प्रकार के वचनों का कोई विशेष महत्व न था, क्योंकि युद्ध के परिणामों के सम्बन्ध में कोई निश्चित अनुमान नहीं लगाया जा सकता था।"[1]

(2) अंग्रेज अधिकारियों का स्वार्थ तथा असहयोगी रवैया- अंग्रेज अधिकारियों का स्वार्थ और असहयोगपूर्ण रवैया भी क्रिप्स की असफलता का एक प्रमुख कारण बना। अपनी समस्त घोषणाओं के बावजूद भी चर्चिल के मन में भारतीयों के प्रति किसी प्रकार की सहानुभूति नहीं थी। वह इस घोर संकट में भी भारत को किसी प्रकार की रियायतें देने के पक्ष में नही था। डॉ.ए.के.मजूमदार लिखते हैं कि,"मि. चर्चिल ने राष्ट्रवादियों की मांगों को पूरा करने के लिए नहीं, बल्कि अपने मन्त्रिमण्डल के कुछ सदस्यों तथा अमेरिका के राजनीतिज्ञों को सन्तुष्ट करने के लिए क्रिप्स को भारत भेजना स्वीकार किया था। वह इस मिशन को भेजकर यह भी सिद्ध करना चाहता था कि भारतीय समस्या इतनी जटिल है कि उसे हल नहीं किया जा सकता।" वस्तुतः अंग्रेज अधिकारी भारत को वास्तविक सत्ता नहीं देना चाहते थे। माइकेल ब्रेचर लिखते हैं कि, यदि ब्रिटेन को युद्ध के बाद सत्ता का पूर्ण हस्तान्तरण करना था, तो युद्ध की स्थिति में भी मतभेद की जड़, भारत नियन्त्रित रक्षा मन्त्रालय की स्थपना कर सत्ता का सीमित हस्तान्तरण किया जा सकता था।[3]

अंग्रेज अधिकारी भारत को वास्तविक स्वतन्त्रता नहीं देना चाहते थे। ऐसा समझा जाता है कि चर्चिल ने क्रिप्स को आवश्यक सहयोग न दिया। इसके विपरीत उसने क्रिप्स को असफल बनाने का पूर्ण प्रयत्न किया। लास्की ने लिखा है कि,"चर्चिल का सरकार ने सर स्टैफर्ड क्रिप्स को भारत की समस्या को हल करने के सच्चे इरादे से नहीं भेजा था, असली विचार भारत

1. आजाद अबुल कलाम : इण्डिया विन्स फ्रीडम, पृष्ठ 66.
2. मजूमदार ए.के. (डॉ.) : इवेन्ट ऑफ इनडिपेन्डेन्स, पृष्ठ 172.
3. माइकेल ब्रेचर : नेहरु, ऐ पोलिटिकल बायोग्राफी, पृष्ठ 172.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

को स्वाधीनता देना नही, बल्कि मित्र राष्ट्रों की आंखों में धूल झोकना था, जो अमेरिका और फिलीपाइन द्वीप समूहों के सम्बन्धों तथा ब्रिटेन और भारत के सम्बन्धों में जमीन-आसमान का अन्तर पाते थे।"[1]

क्रिप्स अपने सुझावों में किसी प्रकार का परिवर्तन करने के लिए अधिकृत नहीं थी। वह इस सम्बन्ध में कोई भी पग प्रधानमंत्री की पूर्व स्वीकृति के बिना नहीं उठा सकता था। यह एक ऐसा प्रतिबन्ध था, जो समझौते के मार्ग में एक बड़ी बाधा सिद्ध हुआ। अमेरिकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट के विशेष प्रतिनिधि लुई जानसन जो कि क्रिप्स व भारतीय नेताओं की बातचीत के समय मध्यस्थता के लिए भारत आये थे, क्रिप्स पर लगाये गये प्रतिबन्धों के बारे में इस प्रकार लिखा, यदि क्रिप्स को कुछ स्वतंत्रता प्राप्त हो जाती, तो वह और नेहरू इस समस्या, को केवल पांच मिनट में हल कर सकते थे, लेकिन जब भी भारतीयों को कुछ मामूली सी रियायतें देकर समस्या सुलझाती दीख पड़ती थी, तो क्रिप्स मुझे घबरा कर इस प्रकार कहता था,"मैं चर्चिल की स्वीकृति के बिना प्रलेख की मूल रूप-रेखा में कोई परिवर्तन नहीं कर सकता।"[2] कहा जाता है जिन दिनों क्रिप्स भारतीय नेताओं के साथ समझौता-वार्ता में व्यस्त था, उस समय प्रधानमन्त्री चर्चिल ने उसे वायरलैस के द्वारा तीन बार ये शब्द कहे, जब तक लार्ड वेवल अपने व्यक्तिगत तथा वायसराय के रूप में आपके द्वारा मौलिक योजना में प्रस्तावित प्ररिवर्तनों का समर्थन नहीं करेगी, मैं उन्हें स्वीकृति नहीं दूंगा।" दुर्भाग्यवश,"वायसराय ने स्वयं को वार्ता से अलग रखने के प्रति नाराजगी प्रकट की और रक्षा के सम्बन्ध में किसी समझौते का वास्तव में विरोध किया। बहुत कुछ सीमा तक वायसराय के कहने पर ही चर्चिल ने हस्तक्षेप किया।"[3]

फ्रेंक मोरेस और पं.जवाहर लाल नेहरु के मतानुसार लार्ड लिनलिथगो तथा भारत सरकार के अन्य उच्च पदाधिकारी किसी ऐसे समझौते के विरुद्ध थे, जिससे उनकी शक्तियाँ कम होती हों। स्पष्ट है कि इंगलैण्ड तथा भारत के उच्चपदाधिकारियों के सहयोग के अभाव में क्रिप्स का सफल होना सर्वथा असम्भव था। कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले समाचार पत्र 'स्टेट्समैन' ने क्रिप्स की असफलता के लिए पूर्णरूप से ब्रिटिश सरकार को उत्तरदायी ठहराया। उसने इस सम्बन्ध में स्पष्ट लिखा था,"जब तक इण्डिया ऑफिस और भारत सरकार सुझावों का प्रलेख तैयार करेंगी, तब तक कोई भी मिशन भारतीय समस्या को सुलझाने में सफल नहीं हो सकेगा-और इस देश के लिए निरन्तर बढ़ने वाले खतरे का सामना करने के लिए कोई प्रयत्न नहीं किया जायेगा। दोष इण्डिया आफिस और भारतीय सरकार के उच्च पदाधिकारियों का है।"

(3) क्रिप्स की मिथ्या धारणाएं तथा समस्या को सुलझाने में अदक्षता- क्रिप्स की

1. लास्की : हिस्ट्री ऑफ द इण्डियन नेशनल कांग्रेस, वोल-II, पृष्ठ 331
2. मजूमदार ए. के. (डॉ.) : एडवेन्ट् ऑफ इनडिपेन्डेन्स, पृष्ठ 176.
3. आजाद : इण्डिया विन्स् फ्रीडम, पृष्ठ 281.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मिथ्या धारणाएं तथा अचातुर्यपूर्ण कार्य भी मिशन की असफलता के लिए उत्तरदायी थे। यद्यपि क्रिप्स एक चतुर राजनीतिज्ञ थे, तथापि उन्होंने भारतीय समस्या से सम्बन्धि बहुत सी बातों को समझने में भूलें की। प्रथम, उनका यह भी गलत विचार था कि उनके सुझाव ही भारत की विकट समस्या का एकमात्र हल है। द्वितीय, उनका यह विचार भी सर्वथा गलत था कि कांग्रेस में जवाहरलाल नेहरु का निर्णय अन्तिम निर्णय है। पं. नेहरू ने स्वयं इस सम्बन्ध में अपने एक मित्र को इस प्रकार लिखा,"क्रिप्स इस बात को नहीं समझ सके कि ऐसी कुछ सीमाएं हैं, जिनके बाहर मैं कांग्रेस का समर्थन प्राप्त नहीं कर सकता और इसी प्रकार कुछ ऐसी सीमाएं हैं, ज़िनके बाहर कांग्रेस जनता का समर्थन प्राप्त नहीं कर सकती।"[1] अपनी इन गलत धारणाओं के कारण भी क्रिप्स को अपने उद्देश्य में सफलता नहीं मिली।

क्रिप्स की एक बहुत भारी भूल यह थी कि उन्हों ने वार्ता के समय दूरदर्शिता का परिचय न दिया और अपने उलट-पुलट बयानों से राष्ट्रीय नेताओं को सशंकित कर दिया। पं. नेहरु लिखते हैं कि," मि.क्रिप्स ने सर्वप्रथम भारत में राष्ट्रीय सरकार स्थापित करने की पेशकश की, शीघ्र ही वे वायसराय की परिषद पर आ गये और फिर उन्होंने अगस्त 1940 की घोषणा द्वारा पेश किये गये सुझावों को दोहराना शुरु कर दिया।" डीक्वेंसी लिखते हैं कि, "सर क्रिप्स केवल धोखेबाजी, छलकपंट, विश्वासघात तथा दोहरी चालों से काम ले रहे थे, जिस पर इन्हें लेशमात्र भी पश्चाताप न था।"[2]

क्रिप्स ने कॉंग्रेस के प्रधान कटू शब्दों से भरा हुआ पत्र लिखकर भी गलती की। इन सब बातों का परिणाम यह हुआ कि राष्ट्रीय नेता क्रिप्स प्रस्तावों के प्रति उदासीन हो गये और मिशन का असफल होना अनिवार्य हो गया।

(4) भारतीय जनमत का प्रतिकूल होना- अंग्रेजों ने प्रथम महायुद्ध के समय दिये हुए अपने वचनों का पालन नहीं किया था। अतः भारत में अंग्रेजों के प्रति बड़ा भारी अविश्वास था। युद्ध के बाद भी सरकार झूंठे वायदे करती रही। वस्तुतः वह भारतीयों को कुछ भी वास्तविक शक्ति नहीं देना चाहती थी। अंग्रेजों का मुख्य उद्देश्य राष्ट्रवादियों की शक्ति को कुचलना था। 1941 की ग्रीष्म ऋतु में प्रधानमंत्री चर्चिल ने यह घोषणा की थी कि,"मैं इंगलैण्ड नरेश का प्रथम मन्त्री इसलिए नहीं बना हूं कि ब्रिटिश साम्राज्य को दिवालिया कर दूं। ब्रिटेन किसी नयें देश को अपने कब्जे में करने का लालच नहीं करता, पर साथ ही साथ जो उसका हैं, उसे छोड़ना भी नहीं चाहता।" चर्चिल ने तो यहां तक कह दिया था कि, एटलाण्टिक चार्टर में दिया गया 'आत्म निर्णय का अधिकार' भारत पर लागू नहीं होगा। उसकी इस नीति के कारण भारतीयों के हृदय में ब्रिटिश सरकार के प्रति घृणा एवं सन्देह की भावना उत्पन्न हो गई। फ्रैंक मोरेस लिखते हैं कि,"ब्रिटेन निर्बलता की स्थिति से विचार कर रहा था और इस कारण उसकी सत्यता और उदारता के प्रति भारतीयों में सन्देह उत्पन्न हो गया था।" एस.एल.सीकरी के

1. Nehru's unpublished letter Evelyb wood on 5th June, 1942.
2. पट्टाभि सीतारमैया (डॉ.) : हिस्ट्री ऑफ कांग्रेस, पृष्ठ 384-385.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनुसार संदेह तथा निराशा के इस वातावरण में ब्रिटिश सरकार के क्रिप्स मिशन द्वारा कुछ असाधारण तथा ठोस सुझाव पेश करके अपनी उदारता तथा सहानुभूति का परिचय देना चाहिये था, लेकिन वह ऐसा करने में असमर्थ रही।"[1] क्रिप्स भारतीयों के सन्देह को दूर करने में असफल रहा। अतः उसका असफल होना अनिवार्य हो गया।

(5) कांग्रेस की सैद्धान्तिक दृढ़ता- इस अवसर पर कांग्रेस द्वारा अपनाया गया दृढ़ रुख भी मिशन की असफलता का एक कारण बना। कांग्रेस भारतीय स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए कटिबद्ध थी और इससे कम किसी बात पर समझौता करने के लिए तैयार नहीं थी। मौलाना आजाद ने श्री जवाहरलाल नेहरु से कहा कि,"युद्ध ने भारत को स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए अवसर दिया है। हमें केवल अंग्रेजों के वचनों पर विश्वास करके उसे नहीं खोना चाहिये। यदि अंग्रेज अपनें वचनों से फिर गये, तो फिर दुबारा आन्दोलन करने के लिए भी कोई उचित कारण नहीं दिखाई देगा। यदि हमने क्रिप्स के सुझावों को मान लिया, तो हमें बाद में पछताना पड़ेगा।"[2] सम्भवतः कांग्रेसी नेता ब्रिटेन को हानि पहुंचाकर स्वतंत्रता प्राप्त करने के पक्ष में न थे। क्रिप्स मिशन के दौरान और उसके असफल होने के बाद भी कांग्रेस ब्रिटेन के शत्रुओं के विरुद्ध थी। क्रिप्स के लौट जाने के पश्चात ही पं.जवाहरलाल नेहरु ने यह घोषणा की कि, "हम जापानी आक्रमणकारियों के सामने हथियार नहीं डालेंगे और जो कुछ भी हुआ है, उसके बावजूद भी ब्रिटिश सरकार के युद्ध-सम्बन्धी प्रयत्नों में किसी प्रकार का रोड़ा नहीं अटकायेंगे।" क्रिप्स के भारत आगमन के समय कांग्रेस देश की स्वतंत्रता चाहती थी और ब्रिटिश सरकार भारत को तत्काल स्वतंत्र करने के लिए बिल्कुल तैयार न थी। इसलिए दोनों में समझौता कठिन था।

(6) प्रतिरक्षा तथा वायसराय के निषेधाधिकार का प्रश्न- क्रिप्स तथा कांग्रेस की समझौता वार्ता भंग होने का प्रमुख कारण यह था कि प्रतिरक्षा विभाग के प्रश्न पर दोनों में परस्पर असहमति थी। कांग्रेस प्रतिरक्षा विभाग पर भारतीयों का प्रभाव नियंत्रण चाहती थी, ताकि युद्ध में भारतीयों का अधिक से अधिक सहयोग प्राप्त किया जा सके। चूंकि ब्रिटिश सरकार ने इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया, अतः बातचीत टूट गई। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद लिखते हैं कि, "कांग्रेस तथा क्रिप्स के बीच समझौता न हो सकने का सबसे बड़ा कारण प्रतिरक्षा विभाग का प्रश्न ही था।"

दूसरा महत्त्वपूर्ण प्रश्न जिन पर समझौता वार्ता भंग हो गई थी, वायसराय के निषेधाधिकारों की समाप्ति का प्रश्न था। कांग्रेस चाहती थी कि भारतीय वायसराय इंगलैण्ड-सम्राट की भांति एक संवैधानिक मुखिया के रूप में कार्य करे और वास्तवकि शक्तियां भारतीय प्रतिनिधियों के हाथों में निहित हों। इसके लिए क्रिप्स तथा ब्रिटिश सरकार तैयार नहीं हुई। क्रिप्स के इस व्यवहार को देखकर पं.जवाहरलाल नेहरु ने ये शब्द कहे,"सरकार की वर्तमान शासकीय व्यवस्था में किसी प्रकार का अन्तर नहीं आयेगा। वायसराय की निरंकुश स्थिति पहले

1. सीकरी, एस. एल. ए कॉन्टिस्ट्यूशनल हिस्ट्री इण्डिया, पृष्ठ 211.
2. आजाद, अबुल कलाम : इण्डिया विन्स् फ्रीडम, पृष्ठ 30.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की तरह ही बनी रहेगी और हम में से कुछ उसके नौकर-चाकर तथा उसके पीछे चलने वाले बन जायेंगे और कैन्टीनों आदि की देखभाल करेंगे।"[1]

(7) लार्ड हैलीफैक्स का वक्तव्य- जिन दिनों क्रिप्स की भारतीय नेताओं से समझौता वार्ता हो रही थी, लार्ड हैलीफैक्स ने (जो उस समय अमेरिका में ब्रिटिश राजदूत थे और कुछ समय पूर्व भारत में गवर्नर जनरल के पद पर रह चुके थे) एक अविवेकपूर्ण भाषण दिया जिसने मिशन के कार्य पर बहुत प्रभाव डाला। 7 अप्रैल 1942 ई. को लार्ड हैलीफैक्स ने अपने भाषण में न केवल समझौता वार्ता के असफल होने की ही भविष्यवाणी की, बल्कि भारतीयों को इस बात की भी धमकी दी कि मिशन के असफल होने पर ब्रिटिश सरकार समस्त शक्ति अपने हाथ में रखेगी। हैलीफैक्स के इस वक्तव्य से भारतीय जनता में रोष फैल गया और क्रिप्स ने कड़ा रूख अपना लिया। तत्पश्चात क्रिप्स ने कांग्रेस के अध्यक्ष को एक तीखा पत्र लिखा, जिसमें कांग्रेस पर यह आरोप लगाया गया कि वह अल्पसंख्यक वर्गों पर अपना आधिपत्य जमाना चाहती है। इस आरोप में कोई सत्यता नहीं थी इसलिए स्थिति और बिगड़ गई। सामान्य अनुमान यह है कि ब्रिटिश सरकार और प्रधान मन्त्री चर्चिल के प्रोत्साहन पर ही लार्ड हैलीफैक्स ने इस प्रकार भाषण दिया था। जोनसन लिखते हैं कि,"लार्ड हैलीफैक्स के भाषण ने क्रिप्स मिशन की असफलता के कार्य को पूर्ण रूप दिया। शायद उसका उद्देश्य भी यही था।"[2]

(8) अपनी असफलता के सम्बन्ध में क्रिप्स का विचार- इंगलैण्ड लौटने से पूर्व मि. क्रिप्स ने कहा कि कांग्रेस व मुस्लिम लीग में मतभेद होने के कारण उसकी योजना सफल न हो सकी। उसके इस बयान का आशय यह था कि उसकी असफलता के लिए भारत के राजनीतिक दल जिम्मेवार थे। परन्तु क्रिप्स का यह कथन सत्य से बिल्कुल परे था, क्योंकि वार्तालाप के दौरान कांग्रेस और मुस्लिम लीग और कांग्रेस में मतभेद हो सकता था, तो वह वायसराय की कौंसिल में सदस्य संख्या का प्रश्न था, लेकिन वार्तालाप के दौरान यह समस्या उठने से पूर्व ही कांग्रेस और क्रिप्स में बातचीत टूट गई।"

वस्तुतः ब्रिटिश सरकार, क्रिप्स और भारत सरकार क्रिप्स मिशन की असफलता के लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार थे। ब्रिटिश सरकार भारतीय समस्या को हल करने की इच्छुक नहीं थी। वह तो मित्र राष्ट्रों को यह दिखाना चाहती थी कि हम भारतीय समस्या को हल करने के लिए उत्सुक है। चूंकि सभी राजनीतिक दलों ने क्रिप्स प्रस्तावों को अस्वीकृत कर दिया अतः 11 अप्रैल, 1942 ई. को इन सुझावों को वापस ले लिया गया। क्रिप्स इंगलैण्ड लौट गये और भारत का संवैधानिक गतिरोध ज्यों का त्यों बना रहा। इस प्रकार भारत के वैधानिक गतिरोध को दूर करने में क्रिप्स मिशन असफल रहा।

1. नेहरु, जे. एल. : डिस्कवरी ऑफ इण्डिया, पृष्ठ 28.
2. जॉनसन : फॉरेन रिलेशन, 1942.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भारत छोड़ो आन्दोलन (8 अगस्त 1942)

क्रिप्स मिशन की असफलता के बाद भारतीयों के समक्ष स्वतन्त्रता आन्दोलन को आरम्भ करनें के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं था। इसलिए कांग्रेस ने गांधीजी के नेतृत्व में 8 अगस्त 1942 ई. को भारत छोड़ो आन्दोलन आरम्भ कर दिया। यह आन्दोलन 1944 ई. तक चलता रहा।

यद्यपि इस आन्दोलन से भारत को स्वतंत्रता प्राप्त नहीं हुई, तथापि इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि आन्दोलन में दिये बलिदान से भारतीय स्वतंत्रता निकट आ गई। सरदार पटेल ने कहा था,"भारत में ब्रिटिश राज के इतिहास में ऐसा विप्लव कभी नहीं हुआ, जैसा पिछले तीन वर्षों में हुआ। लोगों ने जो प्रतिक्रिया की हमें उस पर गर्व है।"

सी.आर.फार्मूला (राजगोपालाचारी योजना) मार्च 1944 ई- इस समय तक देश में साम्प्रदायिक दंगे बहुत बढ़ चुके थे। जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम लीग मुसलमानों के लिए एक अलग देश पाकिस्तान बनाने की मांग कर रही थी। 1944 ई. में जब गांधी जी जेल से छूट कर आये, तो उन्होंने साम्प्रदायिक परिस्थिति और संवैधानिक गतिरोध को हल करना आवश्यक समझा। इसी समय राजगोपालाचारी ने साम्प्रदायिक समस्या को हल करने हेतु एक फार्मूला या योजना गांधी जी के समक्ष पेश की। यह योजना उन्हीं के नाम पर सी.आर.फार्मूला के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें आत्मनिर्णय के अधिकार के आधार पर मुसलमानों की पाकिस्तान की मांग स्वीकार कर ली गई थी। महात्मा गांधी ने इस फार्मूला को आधार बनाकर मुहम्मद अली जिन्ना से सितम्बर 1944 में बातचीत की। परन्तु उसका कोई परिणाम नहीं निकला। इस फार्मूले की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखत थीं-

(1) मुस्लिम लीग भारतीय स्वतंत्रता की मांग का समर्थन करेगी और कांग्रेस संक्रमण काल में अस्थायी सरकार बनाने में पूर्ण सहयोग देगी।

(2) युद्ध की समाप्ति के पश्चात भारत के उत्तर-पूर्व तथा उत्तर-पश्चिम में मुसलमानों की अधिक संख्या वाले प्रदेशों को सीमाओं को निर्धारित करने के लिए एक-एक कमीशन नियुक्त किया जायेगा। तत्पश्चात इन प्रदेशों में रहने वाले लोगों के वयस्क मताधिकार या अन्य किसी व्यावहारिक मताधिकार के आधार पर यह तय करने के लिए जनमत लिया जायेगा कि ये प्रदेश भारत से अलग होना चाहते हैं या नहीं।

(3) जनमत से पूर्व सभी राजनीतिक दलों को अपने मत का प्रचार करने की पूर्ण स्वतंत्रता होगी।

(4) यदि मुस्लिम बहुसंख्या वाले प्रदेश भारत से अलग रहने के पक्ष में निर्णय देंगे, तो उनका अलग राज्य बन जायेगा। दोनों राज्यों के बीच (भारत और नया राज्य) प्रतिरक्षा, व्यापार, संचार साधनों, यातायात तथा अन्य आवश्यक विषयों के सम्बंध में सन्धि होगी।

(5) जनता का एक राज्य से दूसरे राज्य में जाकर बसना उसकी इच्छा पर निर्भर होगा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अर्थात जनता को एक राज्य से दूसरे राज्य में जाने के लिए विवश नहीं किया जायेगा।

(6) ये शर्तें उस अवस्था में लागू होंगी, जबकि ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत को पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान कर दी जायेगी।

(7) गांधी जी तथा जिन्ना इन शर्तों को स्वीकार करने के बाद इन्हें कांग्रेस और मुस्लिम लीग से मंजूर कराने का यत्न करेंगे।

इस फार्मूले के आधार पर गांधी जी ने 1944 ई. में जिन्ना से बातचीत की, परन्तु जिन्ना ने निम्नलिखित कारणों से इस फार्मूले को अस्वीकार कर दिया-

(1) इसमें मुसलमानों को एक अपूर्ण, अंगहीन और दीमक लगा हुआ पाकिस्तान दिया गया है। इस प्रकार का पाकिस्तान वह नहीं चाहता था। जिन्ना की मांग थी कि पाकिस्तान में उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त, सिन्ध, बलूचिस्तान के साथ-साथ समस्त पंजाब, समस्त बंगाल और असम के प्रान्त सम्मिलित हों। पूर्वी और पश्चिमी पाकिस्तान को मिलाने के लिए वह मार्ग भी चाहता था।

(2) जिन्ना गैर-मुस्लिमों को जनमत संग्रह में शामिल करने के पक्ष में नहीं था।

(3) इस फार्मूला में सयुक्त प्रतिरक्षा, व्यापार और संचार साधनों के लिए प्रस्ताव रखा गया था। जिन्ना इसको भी मानने के लिए तैयार नहीं था।

जिन्ना ने इस फार्मूला को अस्वीकार कर दिया, परन्तु इसका एक परिणाम अवश्य निकला। इससे मुस्लिम लीग पहले से अधिक सशक्त हो गई, मुसलमानों की दृष्टि में जिन्ना का महत्व बढ़ा और वह गांधी जी के स्तर का भारतीय नेता समझा जाने लगा। मौलाना आजाद लिखते हैं, कि "इस अवसर पर गांधी जी का जिन्ना के पास जाना एक भारी राजनीतिक भूल थी। इससे जिन्ना का महत्व और बढ़ गया, जिसका उसने (अपनी स्थिति को दृढ़ करने के लिए) पूर्ण लाभ उठाया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को छोड़ने के बाद जिन्ना का महत्व काफी कम हो गया था, लेकिन गांधी जी के कुछ गलत कार्यों ने उसे राजनीतिक क्षेत्र में पुनः एक महत्वपूर्ण व्यक्ति बना दिया। गांधी जी की जिन्ना के पीछे दौड़ने की नीति से उन मुसलमानों के हृदय में भी जिन्ना के लिए एक विशेष सम्मान उत्पन्न हो गया, जो इसके पूर्व उसके और उसकी नीति के प्रति सन्देहशील थे। इसके अतिरिक्त गांधी जी ने पहली बार जिन्ना को 'कायदे आजम' (महान्) के नाम से सम्बोधित करके भारतीय मुसलमानों की दृष्टि में उसकी स्थिति को दृढ़ किया।"[1]

वेवल योजना (1945 ई.)

अक्टूबर, 1943 ई. में लार्ड लिनलिथगो के स्थान पर लार्ड वेवल भारत के गवर्नर जनरल बनकर आये। वे भारतीय समस्याओं से पूर्ण परिचित थे, क्योंकि वे भारत के प्रधान सेनापति रह चुके थे और उन्होंने क्रिप्स वार्ता में भी संक्रिय भाग लिया था। अपना पद ग्रहण

1. आजाद अबुल कलाम : इण्डिया विनस् फ्रीडम पृष्ठ 92.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करने हेतु इंग्लैण्ड से रवाना होते समय वेवल ने यह घोषणा की, कि "मैं अपने थैले में बहुत-सी चीजें ला रहा हूं।" लेकिन लगभग 2 वर्ष तक अर्थात् 14 जून 1945 ई.तक उन्होंने अपना यह थैला नहीं खोला और गांधी जी को जेल से छुड़ाने के अतिरिक्त और कोई कार्य नहीं किया। 21 मार्च 1945 को लार्ड वेवल भारतीय समस्या को हल करने के बारे में ब्रिटिश सरकार से सलाह करने के लिए लन्दन रवाना हुए और 14 जून 1945 को वे भारत लौटे। 14 जून 1945 को ही उन्होंने संवैधानिक गतिरोध को दूर करने के लिए एक नवीन योजना प्रस्तुत की, जो वेवल योजना के नाम से प्रसिद्ध है।

योजना प्रस्तुत किये जाने के कारण- इस समय इंग्लैण्ड में अनुदार दल की सरकार थी। फिर भी वेवल ने यह नवीन योजना प्रस्तुत की, जिसके प्रमुख कारण निम्नलिखित थे-

(1) 1945 ई. में अंग्रेजों और उनके साथियों को जर्मनी पर विजय नजर आने लगी थी, जर्मनी के मित्र देश इटली ने 1943 ई. में ही हथियार डाल दिये थे। 5 मई 1945 ई. को जर्मनी ने भी अपनी पराजय स्वीकार कर ली थी, परन्तु जापान ने अभी तक हार स्वीकार नहीं की थी। मित्र देशों के सैनिक पदाधिकारियों का यह मत था-जापान के विरुद्ध अभी युद्ध एक या दो वर्ष और चलेगा। चूंकि जापान का मुकाबला करने के लिए भारत से युद्ध करना था, इसलिए भारत का सहयोग प्राप्त करना बहुत ही आवश्यक था। एक महान सेनापति होने के नाते लार्ड वेवल इस बात के महत्व को अच्छी तरह समझते थे। अतः उन्होंने यह महसूस किया कि भारतीय गतिरोध का शीघ्रातिशीघ्र समाधान करना ब्रिटिश सरकार के हित में है।

(2) कांग्रेसी नेताओं को अगस्त, 1942 ई. में जेल में 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के कारण गिरफ्तार किया गया था। उनके साथ जेल में सरकार द्वारा अच्छा व्यवहार नहीं किया जाता था। कांग्रेस नेताओं को लगभग तीन वर्ष जेल में सड़ते हुए हो गये थे, जिसके कारण भारतीयों का क्षोभ दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा था। यह असामान्य परिस्थिति देर तक नहीं रखी जा सकती थी।

(3) 1943-44 ई. में भारत के कई भागों में अकाल पड़ा। यह अकाल मालाबार, बीजापुर, बंगाल और उड़ीसा में विशेष रूप से उग्र था। सरकारी आंकड़ों से पता चलता है कि इसमें 15 लाख व्यक्ति भूख से मर गये और 45 लाख लोगों को असाधारण विपत्तियों का सामना करना पड़ा।पं. नेहरु के शब्दों में,"अकाल ने ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत भारत की निर्धनता और कुरूपता का चित्र उघाड़ कर रख दिया। भारत में ब्रिटिश शासन की यह पूर्णता और चरमोत्कर्ष था।" इसके अतिरिक्त युद्ध के कारण महंगाई बहुत बढ़ गई थी और लोग बहुत परेशान थे। इसलिए इस बिगड़ती हुई आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए राजनीतिक गतिरोध को दूर करना आवश्यक समझा गया।

(4) चूंकि यूरोप में जीत के बाद इंग्लैण्ड और उसके साथियों का ध्यान जापान की ओर खिंच गया। संयुक्त राज्य अमेरिका इस बात से परिचित था कि भारत के सहयोग से जापान की पराजय बहुत सरल हो जायेगी। इसलिए अमेरिका ने दुबारा इंग्लैण्ड पर भारतीय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गतिरोध को हल करने के लिए दबाव डालना शुरु कर दिया था।

(5) यूरोप में युद्ध समाप्त हो चुका था और ब्रिटेन में आम चुनाव होने वाले थे। ब्रिटिश प्रधानमंत्री चर्चिल के भारत विरोधी रुख के कारण आलोचना की जा रही थी और इंग्लैण्ड का जनमत मजदूर दल को हराने के लिए वेवल के साथ परामर्श करके एक नवीन योजना तैयार की, ताकि इंग्लैण्ड के मतदाताओं के सामने यह सिद्ध किया जा सके कि अनुदार दल भारतीय समस्या को हल करने के लिए कम उत्सुक नहीं है।

उपर्युक्त उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वायसराय लार्ड वेवल और भारतमन्त्री लार्ड एमरी ने 14 जुलाई 1945 को एक साथ वक्तव्य प्रसारित किये।

वेवल योजना की शर्तें- वेवल योजना की प्रमुख शर्तें निम्नलिख थीं-

(1) ब्रिटिश सरकार का लक्ष्य भारत के राजनीतिक गतिरोध को दूर करना व उसे स्वशासन की ओर से जाना है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वायसराय की कार्यकारिणी परिषद् का पुनर्गठन इस प्रकार किया जाय कि वायसराय और प्रधान सेनापति को छोड़कर शेष सारे सदस्य भारतीय हों। वायसराय इस कार्यकारिणी परिषद् के अध्यक्ष के रुप में कार्य करेंगे। उनके पास ही प्रतिरक्षा विभाग रहेगा।

(2) वैदेशिक मामलों का विभाग (सीमान्त और कबाइली मामलों को छोड़कर) परिषद् के भारतीय सदस्य के पास रहेगा।

(3) कार्यकारिणी परिषद् में सवर्ण हिन्दुओं और मुसलमानों की संख्या बराबर रहेगी। इस प्रकार, इसमें भारत के सभी प्रमुख सम्प्रदायों को सन्तुलित प्रतिनिधित्त्व प्राप्त होगा।

(4) कार्यकारिणी परिषद् लगभग अस्थायी राष्ट्रीय सरकार की भंति होगी और गवर्नर जनरल अपने निषेधाधिकार का अकारण प्रयोग नहीं करेंगे।

(5) भारत मंत्री का भारतीय शासन पर नियन्त्रण यथावत रहेगा, परन्तु उसका हस्तक्षेप कम से कम होगा और वे इंग्लैण्ड के हित में नहीं, बल्कि भारत के हित में ही अपनी शक्ति का प्रयोग करेंगे।

(6) दूसरे अधिराज्यों के समान ही भारत में भी ब्रिटेन के व्यापारिक और आर्थिक हितों की देखभाल के लिए एक उच्चायुक्त (High Commissioner) नियुक्त किया जायगा।

(7) युद्ध की समाप्ति पर भारतीय स्वयं अपने संविधान का निर्माण करेंगे। इन प्रस्तावों का भारत के भावी संविधान पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

(8) उन प्रान्तों में जहाँ 1935 के अधिनियम की धारा 93 के अन्तर्गत गवर्नर का शासन लागू है, उसे समाप्त कर वहां उत्तरदायी सरकारों की स्थापना की जायेगी।

(9) उपरोक्त प्रस्तावों पर विचार करने के लिए शीघ्र शिमला में एक सम्मेलन बुलाया जायेगा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यद्यपि वेवल योजना भारत के संवैधानिक गतिरोध को दूर करने में असफल रही तथापि भारतीय समस्या को सुलझाने की दिशा मे यह एक सराहनीय प्रयास था। यही कारण था कि देश के सभी प्रमुख राजनीतिक दलों के नेताओं ने शिमला सम्मेलन में भाग लेने का निश्चय किया।

शिमला सम्मेलन (1945 ई.)

योजना केवल विचार करने के लिए अनुकूल वातावरण उत्पन्न करने के उद्देश्य से लार्ड वेवल ने 16 जून 1945 को सभी कांग्रेसी नेताओं को जेल से रिहा कर दिया तत्पश्चात शिमला में एक सम्मेलन आयोजित किया गया, जिसमें 21 नेताओं ने भाग लिया। इनमें मुस्लिम लीग के मुहम्मद अली जिन्ना, कांग्रेस के अध्यक्ष मौलाना आजाद के अतिरिक्त जवाहरलाल नेहरु लियाकत अली खां, अकाली नेता मास्टर तारासिंह, भूलाभाई देसाई, उन प्रान्तों के मुख्य मन्त्री जहां उत्तरदायी सरकार चल रही थी, उसके अतिरिक्त भूतपूर्व कांग्रेस प्रान्तों के मुख्य मन्त्री भी शामिल थे यह सम्मेलन 25 जून 1945 को आरम्भ हुआ। इस सम्मेलन का उद्देश्य वेवल योजना पर विचारविमर्श करना था। यद्यपि सम्मेलन अत्यन्त आशामय वातावरण में प्रारम्भ हुआ था, तथापि इसे सफलता नहीं मिली। इसका कारण यह था कि कांग्रेस वायसराय की कार्यकारिणी परिषद में अपना एक मुसलमान प्रतिनिधि रखना चाहती थी, परन्तु जिन्ना ने इस मांग को मानने से इन्कार कर दिया। जिन्ना का मत था कि मुस्लिम लीग ही भारतीय मुसलमानों की एकमात्र प्रतिनिधि संस्था है। अतः उसे ही सोर मुस्लिम सदस्यों की नियुक्ति का अधिकार है। कांग्रेस ने जिन्ना की इस अनुचित तथा आधारहीन मांग को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। कांग्रेस के अतिरिक्त पंजाब के मुख्य मंत्री मलिक खिज्र हयात तिवाना ने भी जिन्ना के इस दावे का विरोध किया। यदि कांग्रेस लीग के इस दावे को स्वीकार कर लेती, तो इसका स्वरूप बिल्कुल समाप्त हो जाता और जिन्ना इसे हिन्दू संस्था सिद्ध कर देता।

सम्मेलन की असफलता- सम्मेलन में साम्प्रदायिकता की समस्या हल न हो सकने के कारण 14 जुलाई, 1944 ई. को वायसराय ने सम्मेलन की असफलता की घोषणा कर दी। शिमाल सम्मेलन की असफलता के लिए मुख्य रुप से जिन्ना उत्तरदायी था। भारत के 25 करोड़ हिन्दुओं के मुकाबले 9 करोड़ मुसलमानों का वायसराय की कार्यकारिणी परिषद में समान प्रतिनिधित्व दिया गया था। यद्यपि संख्या की दृष्टि से मुसलमानों को हिन्दुओं के समान प्रतिनिधित्व देना औचित्यपूर्ण नहीं था। फिर भी कांग्रेस ने इसलिए स्वीकार कर लिया, क्योंकि वह स्वतंत्रता प्राप्ति के मार्ग में कोई बाधा उपस्थित नहीं करना चाहती थी। परन्तु कांग्रेस इस बात को स्वीकार नहीं कर सकती थी कि परिषद के सभी मुस्लिम सदस्यो को मनोनीति करने का एकमात्र अधिकार मुस्लिम लीग को दिया गया। यह सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों ही दृष्टियों से उचित नहीं था। सैद्धान्तिक दृष्टि से इस मांग को स्वीकार करने का अर्थ होता कि मुसलमानों का नेतृत्व मुस्लिम लीग के हाथों में है और हिन्दुओं का कांग्रेस के। व्यावहारिक दृष्टि से इस मांग को स्वीकार करने का परिणाम यह होता कि मौलाना आजाद जैसे राष्ट्रवादी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मुसलमान कार्यकारिणी परिषद की सदस्यता से हमेशा के लिए वंचित हो जाते। इस प्रकार, जिन्ना की हठधर्मी के कारण शिमाल सम्मेलन असफल रहा। मि. जिन्ना ने कहा कि वेवल योजना को मानना सदा के लिए भारत विभाजन अर्थात् पाकिस्तान की मांग से हाथ धोना था।

सम्मेलन की असफलता के लिए कांग्रेस के तत्कालीन अध्यक्ष मौलाना आजाद ने जिन्ना एवं ब्रिटिश सरकार को उत्तरदायी ठहराया। लार्ड वेवल ने आजाद के सम्मुख यह स्वीकार किया कि जिन्ना की अन्याय संगत माँग एवं हठधर्मिता के कारण ही शिमला सम्मेलन को असफलता का मुंह देखना पड़ता है। मौलाना आजाद के शब्दों में," भारत के राजनीतिक इतिहास में शिमला सम्मेलन एक दुर्घटना है। यह प्रथम अवसर था जबकि वार्ता भारत और ब्रिटेन के बीच आधारभूत राजनीतिक प्रश्न पर नहीं वरन् विभिन्न भारतीय वर्गो को विभाजित करने वाले साम्प्रदायिक प्रश्न पर असफल हो गयी।[1] ब्रिटिश सरकार और गवर्नर जनरल भी सम्मेलन की असफलता क लिए दोषी थे। सम्मेलन के आरम्भ में वेवल ने मौलाना आजाद से कहा था कि," सरकार द्वारा लीग के समर्थन का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। यदि लीग के नेताओं का ऐसा विचार है, तो वे गलती पर हैं-सरकार तटस्थ है और बनी रहेगी।"[2] यह कहना भी गलत न होगा कि वायसराय ने इस अवसर पर अपनी दुर्बलता का प्रदर्शन किया और जिन्ना की अनुचित माँग के सामने झुक कर उसे भारत की संवैधानिक प्रगति में बाधा डालने का विशेष अधिकार दिया। "वायसराय लार्ड वेवल भी मुस्लिम लीग के दावे को अनुचित समझते थे, लेकिन उन्होंने यह कहकर कि यह तो एक ऐसा विषय है, जिसका निर्णय कांग्रेस और लीग के द्वारा ही परस्पर कर लिया जाना चाहिए और वे अपना निर्णय किसी पर थोपना नहीं चाहते, कोई सक्रिय कदम उठाने से इन्कार कर दिया।" वयसराय की यह नीति सम्मेलन की असफलता के लिए कम उत्तरदायी नहीं थी।

वेवल योजना के प्रति सरकार की नीयत साफ नहीं थी। वस्तुतः वेवल योजना इंग्लैण्ड के मतदाताओं को गुमराह करने की एक चाल थी। जैसा कि पं. जवाहरलाल नेहरु ने उनके एक मित्र को लन्दन से पत्र लिखा था कि, "वेवल योजना केवल ब्रिटिश सार्वजनकि निर्वाचन सम्बन्धी एक चाल थी तथा जिन्ना के बिना किसी सरकार का निर्माण न करने की योजना भी इंग्लैण्ड में ही निश्चित हुई थी।"

□□□

1. आजाद अबुल कलाम : इण्डिया विन्स् फ्रीडम, पृष्ठ 110.
2. वही पृष्ठ 112.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

11 स्वतंत्रता की ओर-संवैधानिक विकास (1945-1947)

जुलाई, 1945 में इंग्लैण्ड में आम चुनाव हुए, जिसमें एटली के नेतृत्व में लेबर पार्टी की सरकार बनी। एटली की भारत के साथ सहानुभूति थी। वह शन्तिपूर्ण तरीके से भारत की समस्या को हल करने की दिल से इच्छा रखता था।

भारत में आम चुनाव और उसके परिणाम

सन् 1945-46 ई. में कांग्रेस ने चुनावों में भाग लिया। कांग्रेस को 11 में से 7 प्रान्तों में स्पष्ट बहुमत प्राप्त हुआ। इस निर्वाचन से यह स्पष्ट हो गया कि कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों ही दृढ़ राजनीतिक दल थे।

आजाद हिन्द फौज पर मुकदमें तथा नौ सैन्य विद्रोह- जापान की पराजय के बाद ब्रिटिश सरकार ने आजाद हिन्द फौज के तीन अधिकारियों-कर्नल सहगल, कर्नल ढ़िल्लन और मेजर शनवाज खां पर दिल्ली के लाल किले में नवम्बर, 1945 ई. में मुकदमें चलाए। ब्रिटिश सरकार ने उन तीनों को मृत्यु दण्ड दिया, परन्तु भारतीय जनमत के दबाव के समक्ष विवश होकर गवर्नर जनरल ने अपने विशेषाधिकारों का प्रयोग करके उन तीनों का मृत्यु दण्ड माफ कर दिया।

इन मुकदमों ने भारत में राष्ट्रीय चेतना जाग्रत कर दी। सारे देश में आजाद हिन्द फौज के कार्यों की प्रशंसा की गई। इससे प्रभावित होकर 1945-45 ई. में बम्बई में भारतीय जल सेना ने विद्रोह कर दिया तथा कई अंग्रेज सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया गया। इस घटना ने यह स्पष्ट कर दिया कि अब अंग्रेजों के लिए भारत को और अधिक समय तक अपने अधिकार में रखना कठिन है।

लार्ड एटली की घोषणा (15 मर्च, 1946 ई.)

लार्ड एटली (ब्रिटेन का प्रधानमंत्री) ने 15 मार्च, 1946 ई. को भारतीय समस्या के सम्बन्ध में इंग्लैण्ड के 'हाऊस ऑफ कॉमन्स' में एक महत्वपूर्ण घोषणा की। यह घोषणा ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण थी, क्योंकि इसमें ब्रिटिश सरकार ने पहली बार भारतीयों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के आत्म निर्णय के अधिकार और स्वयं अपने संविधान के निर्माण के अधिकार को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया था। इस घोषणा में यह स्पष्ट कर दिया गया कि ब्रिटिश सरकार भारतीय गतिरोध को हल करने के लिए एक केबिनेट मिशन भेज रही है। इस घोषणा से भारतीयों में आशा का संचार हुआ और वे समझ गये कि भारत की स्वतन्त्रता अब अधिक दूर नहीं है।

केबिनेट मिशन का भारत आगमन

केबिनेट मिशन 24 माच, 1946 ई. को दिल्ली पहुंचा। कमीशन के अध्यक्ष भारत मन्त्री लार्ड पैथिक लारेन्स थे और इसके दो अन्य सदस्य सर स्टैफर्ड क्रिप्स और ए.बी. अलक्जैंडर थे। कमीशन के एक सदस्य सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने भारत आगमन पर यह स्पष्ट कर दिया कि, "हम भारत में विरोधी दावों का निर्णय करने के लिए नहीं आये हैं, वरन् भारतीयों के हाथ में सत्ता सौंपन के उपाय की खोज में आये हैं।"

मिशन की भारतीय दलों से असफल वार्ता- दिल्ली पहुंचते ही मिशन के सदस्यों ने भारत सरकार के अधिकारियों, देश के विभिन्न वर्गों के नेताओं, विशेष रुप से कांग्रेस और मुस्लिम वर्गो के नेताओं से वार्ता आरम्भ की, ताकि भारतीय समस्या का कोई सर्वसम्मति से हल ढूंढा जा सके। यह वार्ता 17 अप्रैल तक चलती रही। इस वार्ता के बाद मिशन के सदस्यों को यह स्पष्ट हो गया कि साम्प्रदायिक समस्या पर भारतीय नेताओं में बहुत मतभेद है। विशेषकर मुस्लिम लीग पाकिस्तान प्राप्त किये बिना कोई समझौता करने के लिए तैयार नहीं थी। जब कांग्रेस और मुस्लिम लीग में कोई समझौता नहीं हो सका तो, मिशन द्वारा शिमला में एक 'त्रिदलीय सम्मेलन' का आयोजन किया गया। इस सम्मेलन में कांग्रेस की ओर से मौलाना आजाद, श्री जवाहरलाल नेहरु तथा सरदार पटेल, मुस्लिम लीग की ओर से मि. जिन्ना, लियाकत अली खां तथा नवाब इस्लाम खां, सरकार की ओर से गवर्नर जनरल व मिशन के तीनों सदस्यों ने भाग लिया। यह सम्मेल 5 मई से 11 मई, 1946 तक चलता रहा, पर्याप्त विचार-विमर्श के बाद भी त्रिदलीय सम्मेलन साम्प्रदायिक समस्या का समाधान ढूंढने में असफल रहा। इसका मुख्य कारण यह था कि मुस्लिम लीग के नेता मि. जिन्ना किसी भी दशा में पाकिस्तान की मांग छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे। दूसरी ओर कांग्रेस किसी भी योजना को स्वीकार करने के लिए तैयार न थी जो कि पाकिस्तान की स्थापना का मार्ग प्रशस्त करती हो। केबिनेट मिशन के सदस्य भी लीग की पाकिस्तान की मांग को अन्यायसंगत मानते थे। ऐसी स्थिति में 12 मई को इस सम्मेलन की असफलता की घोषणा कर दी गई।

केबिनेट मिशन योजना- जब किसी प्रकार भी भारत के प्रमुख राजनीतिक दलों के नेताओं में काई समझौता नहीं हो सका, तो भारत की राजनीतिक समस्या के समाधान के लिए केबिनेट मिशन ब्रिटिश सरकार की अनुमति से अपनी ओर से 16 मई 1946 ई. को एक योजना प्रकाशित की, जो 'केबिनेट मिशन योजना' के नाम से प्रसिद्ध है। इस योजना की प्रमुख शर्तें अग्रलिखित थीं-

(अ) दीर्घकालीन योजना से सम्बन्धि प्रस्ताव

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

केबिनेट मिशन योजना के अन्तर्गत दीर्घकालीन योजना से सम्बंधित प्रस्ताव निम्न प्रकार थे-

(1) भारत में एक संघ राज्य की स्थापना की जायेगी, जिसमें भारत के प्रान्त और देशी रियासतें सम्मिलित होंगी। इस संघ राज्य का अधिकार वैदेशिक मामलों, प्रतिरक्षा तथा संचार आदि विषयों पर भी होगा। इस संघ को इन तीन विभागों का खर्च चलाने के लिए आवश्यक धन इकट्ठा करने का अधिकार होगा।

(2) भारतीय संघ की अपनी कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका सभा होगी, जिनमें ब्रिटिश भारत के प्रन्तों और देशी रियासतो के प्रतिनिधि सम्मिलित होंगे।

(3) संघ राज्य की व्यवस्थापिका में महत्त्वपूर्ण साम्प्रदायिक प्रश्नों के निर्णय के लिए दोनों प्रमुख सम्प्रदायों (हिन्दू और मुसलमानों) के पृथक्-पृथक् उपस्थिति व मत देने वाले सदस्यों के बहुमत का समर्थन आवश्यक होगा।

(4) संघीय सूची में जिन विषयों का उल्लेख नहीं किया गया है, वे सारे विषय और अवशिष्ट शक्तियाँ प्रान्तों में निहित होंगी।

(5) देशी रियासतों के अधिकार उन समस्त विषयों तक सुरक्षित रहेंगे, जो उन्होंने संघ राज्य को अर्पित न किये हों।

(6) प्रान्तों को इस बात की स्वतन्त्रता होगी कि वे परस्पर मिलकर अपने अलग-अलग समूह (Group) बना सकें। प्रान्तों के अलग-अलग विधान-मण्डल तथा कार्यपालिका होंगी। केबिनेट मिशन ने ब्रिटिश भारत के प्रान्तों को तीन ग्रुपों में विभक्त किया। प्रथम ग्रुप में मद्रास, बम्बई, संयुक्त प्रान्त, बिहार, मध्य प्रान्त तथा उड़ीसा के प्रान्त, सिन्ध और बिलोचिस्तान के प्रान्त रखे गये, जिनमें हिन्दुओं की बहुसंख्या थी। द्वितीय ग्रुप में पंजाब, उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त, सिन्ध और बिलोचिस्तान के प्रान्त रखे गये, जिनमे मुसलमानों की बहुसंख्या थी तीसरे ग्रुप में बंगाल और आसाम के प्रान्त रखे गये। प्रत्येक ग्रुप यह निश्चय कर सकता था कि सामूहिक संविधान की व्यवस्था की जाये या नहीं और यदि ऐसा किया जाये, तो कौन से प्रान्तीय विषय सामूहिक शासन को सौंपे जाएं।

(7) केबिनेट मिशन में यह भी प्रस्ताव रखा गया कि भारतीय संघ तथा प्रान्तों के ग्रुपों के संविधानों में यह धारा रखी जाय कि कोई भी प्रान्त अपनी विधान सभा में बहुमत द्वारा प्रस्ताव पास करके इस योजना के आरम्भ होने के दस वर्ष बाद संविधान की धाराओं पर पुनर्विचार के लिए प्रस्ताव पेश कर सकेगा। ऐसा इसके पश्चात प्रत्येक दस वर्ष की अवधि के बाद हो सकेगा।

(ब) संविधान का निर्माण करने सम्बन्धी प्रस्ताव

(1) केबिनेट मिशन में निश्चित किया गया कि भारत का संविधान बनाने हेतु अप्रत्यक्ष निर्वाचन के आधार पर एक संविधान सभा की स्थापना की जायेगी, जिसमें कुल 389 सदस्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होंगे। इनमें से 292 ब्रिटिश प्रान्तों के, 93 देशी रियासतों के और 4 चीफ कमिश्नर के क्षेत्र के प्रतिनिधि होंगे।

(2) लगभग 10 लाख व्यक्तियों पर संविधान सभा में एक सदस्य होगा। प्रान्तों के लिए निर्धारित की गई सीटें जनसंख्या के आधार पर विभिन्न जातियों में बंटेगी।

(3) प्रान्तों को संविधान सभा में प्रतिनिधित्व आबादी के आधार पर दिया जायेगा तथा यह निश्चित किया गया कि प्रान्तीय विधान सभा में प्रत्येक सम्प्रदाय को जितने प्रतिनिधि संविधान सभा में भेजने थे, उनका चुनाव प्रत्येक सम्प्रदाय अलग-अलग करेगा।

(4) अल्पसंख्यक वर्गों को आबादी से अधिक प्रतिनिधित्व देने की व्यवस्था समाप्त कर दी गई। समस्त मतदाताओं को तीन वर्गों में विभक्त करने का निश्चय किया गया। साधारण, मुसलमान एवं सिक्ख (केवल पंजाब में)। साधारण मतदाताओं में सिक्खों और मुसलमानों को छोड़कर शेष सभी सम्प्रदाय जैसे हिन्दू, भारतीय ईसाई, पारसी तथा आंग्ल भारतीय आदि शामिल थे। इस योजना में वयस्क मताधिकार को नहीं अपनाया गया।

(5) रियासतो को भी जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधित्व देने का निश्चय किया गया, किन्तु उनके प्रतिनिधियों के चुव का ढंग ब्रिटिश भारत में सविधान सभा के लिए चुने गये प्रतिनिधियों की समझौता समिति और देशी नरेशों की ओर से नियुक्त समिति के बीच में आपसी बातचीत द्वारा तय किया जायेगा।

(6) इस योजना में जहां प्रान्तों में अलग कार्यपालिकाएं और विधानमण्डल बनाये जाने की व्यवस्था थी, वहीं प्रान्तों के लिए अलग संविधानों की भी इस योजना में व्यवस्था की गई। इसके लिए यह कहा गया कि संविधान सभा की प्रारम्भिक बैठक के बाद सदस्य अपने आपको तीन समूहों में विभक्त कर लेंगे। प्रथम समूह में मद्रास, बम्बई, संयुक्त प्रान्त, उड़ीसा, बिहार तथा मध्य प्रान्त के प्रतिनिधि बैठेंगे। ये हिन्दू बहुमत वाले प्रान्त थे। द्वितीय समूह में सिन्ध, ब्रिटिश बिलोचिस्तान, उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त और पंजाब के प्रतिनिधि बैठेंगे। ये मुस्लिम बहुमत वाले प्रान्त थे, जिन्हें मिलाकर मुस्लिम लीग पाकिस्तान बनाना चाहती थी। तृतीय समूह में बंगाल और आसाम के प्रतिनिधि बैठेंगे। इन प्रान्तों को मुस्लिम लीग पूर्वी पाकिस्तान में मिलाना चाहती थी।

(7) इन तीनों वर्गों को अलग-अलग बैठकर प्रत्येक वर्ग के प्रतिनिधियों को यह निर्णय करना था कि उनके प्रान्तों के लिए कैसा संविधान हो, कौन से विषय समूह के पास रहें और कौन से विषय प्रान्त के विधान मण्डल के पास रहें।

(8) इस नयें संविधान के अधीन प्रथम चुनाव के बाद प्रत्येक प्रान्त को यह छूट थी कि यदि वह अपने विधान मण्डल के बहुमत से समूह को छोड़ने का प्रस्ताव पारित कर दे, तो वह उस समूह को छोड़ सकता था, ज़िसमें वह शामिल था।

(स) ब्रिटेन और भारत के बीच सन्धि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शासन सत्ता के हस्तान्तरण के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वी समस्याओं का सामउशान करने हेतु भारत और ब्रिटेन के बीच एक सन्धि की जायेगी। इस योजना में आशा व्यक्त की गई भारत ब्रिटेन राष्ट्र मण्डल का सदस्य बना रहेगा, लेकिन साथ ही भरत को बिटिश राष्ट्र मण्डल से अलग होने का अधिकार भी दिया गया। योजना में यह भी किया गया कि ब्रिटिश सरकार संविधान सभा द्वारा बनाये गये संविधान को लागू करने के लिए बाध्य होगी। साथ ही यह भी कहा गया कि भातीयों को सत्ता हस्तान्तरित करने के उपरान्त ब्रिटेन के लिए देशी रियासतों पर सर्वोपरिता रखना कठिन होगा, परन्तु ये रियासते नवीन सरकार को भी नहीं दी जायेगी। इसका अर्थ यह था कि रियासतें स्वतंत्र हो सकेंगी।

(द) अन्तरिम सरकार से सम्बन्धित प्रस्ताव

इस योजना में सुझाव दिया गया कि संविधान सभा द्वारा नये संविधान के आधार पर नवीन संरकार के गठन होने तक अन्तरिम सरकार स्थापित की जायेगी। इस सरकार में युद्ध विभाग सहित समस्त विभाग जनता का विश्वास प्राप्त भारतीय मन्त्रियों के हाथों में दिये जायेंगे। इस अन्तरिम सरकार में 14 सदस्य होंगे-6 कांग्रेसी, 5 मुस्लिम लीग, 1 भारतीय ईसाई, 1 सिक्ख और 1 पारसी। योजना में यह भी विश्वास दिलाया गया कि ब्रिटिश सरकार प्रशासकी मामलों में अन्तरिम सरकार को पूर्ण सहयोग करेगी, ताकि सत्ता का हस्तान्तरण तेजी से और शान्तिपूर्ण ढंग से सम्पन्न हो सके।

कैबिनेट मिशन योजना का मूल्यांकन- यह योजना एक व्यापक और महत्वपूर्ण योजना थी। अतः अधिकांश नेताओं और दलों ने इसका स्वागत किया। मुस्लिम लोग के नेता जिन्ना ने भी इस बात को स्वीकार किया था कि अल्पसंख्यक जातियों की समस्या को सुलझाने के लिए इससे और अधिक न्यायसंगत योजना नहीं हो सकती थी।

यद्यपि इस योजना में कई दोष थे, तथापि इसके द्वारा भारत समस्या को सुलझाने का एक सच्चा प्रयत्न किया गया था। केबिनेट मिशन योजना के सम्बन्ध में गांधी जी ने कहा था कि,"तत्कालीन परिस्थितियों में ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रस्तुत यह सर्वोत्तम प्रलेख था। इस प्रलेख के लेखकों ने उन बातों को कम से कम स्थान अवश्य दिया, जिन पर सभी दल भारतीय स्वतन्त्रता के चार्टर के निर्माण के लिए एकत्र हो सकें।" मौलाना आजाद लिखते हैं कि,"कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों के द्वारा मिशन योजना की स्वीकृति भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के इतिहास में एक गौरवपूर्ण घटना है। इसका अभिप्राय था कि स्वतंत्रता के कठिन प्रश्न का निर्णय वार्ता और समझौता से हुआ है न कि हिंसा और विवाद से।" इन कथनों से यह स्पष्ट है कि केबिनेट मिशन योजना के गुणों के कारण ही उसका भारत के संवैधानिक विकास में एक महत्वपूर्ण स्थान है।

योजना के गुण

केबिनेट मिशन योजना के प्रमुख गुण निम्नलिखित थे-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

1. एक सच्चा और वास्तविक प्रयत्न- यह योजना भारतीय राजनीतिक समस्या को हल करने का एक सच्चा और ईमानदार प्रयास था। मिशन के सदस्यों ने कांग्रेस और लीग के नेताओं से वार्ता करने के पश्चात एक ऐसी योजना प्रस्तावित की, जिससे दोनों पक्षों के बीच समझौता सम्भव हो सके। वस्तुतः उन परिस्थितियों में यह योजना भारतीय समस्या का सर्वश्रेष्ठ समाधान थी। लार्ड वेवल ने इस योजना के सम्बन्ध में कहा था कि," यह एक ऐसी योजना है, जिसके द्वारा भारत की मौलिक अखण्डता का सुरक्षित रखने की व्यवस्था की गई है। देशी रियासतों, मुस्लिम लीग, हिन्दू-महासभा, सिक्खों आदि सभी की मांगों को यथसम्भव पूरा करने तथा अल्पसंख्यक जातियों के हितों की रक्षा करने का प्रयास किया गया है। इसके अतिरिक्त इस योजना को स्वीकार करके भारत राजनीतिक गुटबन्दियों के झगड़ों से रहित शान्तिपूर्ण भविष्य की आशा कर सकता है।"

2. भारत की अखण्डता को मान्यता- मिशन ने कांग्रेस के इस दृष्टिकोण को स्वीकार कर लिया कि भारत अखण्ड रहेगा। इस प्रकार, मिशन ने मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की मांग को ठुकरा दिया, क्योंकि इसकी स्थापना से न तो साम्प्रदायिक समस्या हल हो सकेगी और न ही यह प्रशासनिक कुशलता के अनुरूप होगा। इससे भारतीय एकता भंग हो जायेगी और बंटवारे की अवस्था में डाक, तार एवं यातायात के अन्य सभी साधनों को विघटित करना पड़ेगा। ऐसी स्थिति में पाकिस्तान आर्थिक और भागोलिक दृष्टि से कभी सम्पन्न राज्य नही बन सकेगा। सम्पूर्ण भारत के रक्षा के दृष्टिकोण से भी विभाजन उचित न होगा, क्योंकि बंटवारे की अवस्था में सेनाओं का बंटवारा भी करना पड़ेगा, जिससे भारत की सैन्य शक्ति काफी दुर्बल हो जायेगी। इसके अतिरिक्त गैर मुस्लिम बहुसंख्या वाले जिलों-पंजाब, बंगाल और आसाम आदि को पाकिस्तान में सम्मिलित करना न्यायसंगत नहीं होगा। इस प्रकार, कुछ और तर्कों के आधार पर कमीशन ने भारत विभाजन की मांग को अस्वीकार करके सारे भारत के लिए एक संघ स्थापित करने का सुझाव दिया, ताकि देश की अखण्डता को कायम रखा जा सके। इस योजना में अल्पसंख्यक वर्गों के हितों का भी पूरा ध्यान रखा गया। अतः राष्ट्रवादियों ने इस योजना का स्वागत किया। इस प्रकार इस योजना में कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों के दृष्टिकोण में मेल उत्पन्न करने की कोशिश की गई थी।

3. संविधान सभा की प्रजातन्त्रात्मक संरचना- इसमें संविधान सभा की रचना लोकतन्त्रीय आधार पर होनी थी, क्योकि देशी रियासतों तथा प्रान्तों दोनों को आबादी के आधार पर ही प्रतिनिधित्व दिया गया था। अल्पसंख्यक वर्गों को आबादी के अनुपात से अधिक स्थान देने की प्रथा को समाप्त कर दिया गया था तथा साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व को भी मुसलमानों तथा पंजाब में सिक्खों तक सीमित कर दिया गया था। संविधान सभा के सारे सदस्य भारतीय ही थे। यूरोपियनों और ब्रिटिश हितों के प्रतिनिधियों के लिए संविधान सभा में कोई स्थान नहीं था।

4. पाकिस्तान बनाये बिना मुसलमानों को पाकिस्तान जैसी सुविधाएं-केबिनेट मिशन ने मुसलमानों को प्रसन्न करने की दृष्टि को पाकिस्तान बनाये बिना ही मुसलमानों को पाकिस्तान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में प्राप्त होने वाली सुविधाएं प्रदान कर दी। इसी उद्देश्य से प्रान्तों को ग्रुपों में विभक्ति किया गया और उनको पर्याप्त शक्ति प्रदान की गई। मुस्लिम लीग की इच्छानुसार अवशिष्ट शक्तियां केन्द्र के स्थान पर प्रान्तों को दी गई। समूहों को संघ से सम्बन्ध विच्छेद करने का अधिकार भी दिया गया। इसके अतिरिक्त इस प्रकार की व्यवस्था की गई थी कि साम्प्रदायिक प्रश्न पर मुसलमानों को बहुमत के हाथों किसी प्रकार की हानि पहुँच सकती थी। योजना के इन गुणों को दृष्टि में रखते हुए मि.जिन्ना ने इसे स्वीकार करने का परामर्श दिया।

5. देशी रियासतों की जनता के अधिकारों को मान्यता देना-यद्यपि योजना में स्पष्ट रूप से नहीं कहा गया था कि रियासतों की जनता को संविधान सभा में प्रतिनिधि चुनकर भेजना था, परन्तु राजाओं को देशी रियासतों के प्रतिनिधियों को नामजद करने के अधिकार से वंचित कर दिया गया। इस योजना में 'समझौता-समिति' की व्यवस्था की गई थी। यह व्यवस्था इस बात की सूचक थी कि देशी रियासतों में रहने वाली जनता अब स्वयं अपने राजनीतिक भाग्य का निर्णय करेगी।

6. अन्तरिम राष्ट्रीय सरकार की व्यवस्था-इस योजना में नये संविधान बनने तक अन्तरिम काल के लिए एक राष्ट्रीय सरकार के गठन की व्यवस्था की गई थी। योजना में कहा गया था कि अन्तरिम सरकार के सब सदस्य भारतीय होंगे और प्रतिरक्षा विभाग पर भी भारतीयों का नियंत्रण स्थापित कर दिया जायेगा। गवर्नर जनरल संवैधानिक प्रमुख होगा। इस सरकार को शासन संचालन में ब्रिटिश सरकार अपना पूर्ण सहयोग देगी, ताकि वह स्वतंत्रतापूर्वक कार्य कर सके।

7. संविधान सभा की प्रभुसत्ता-योजना क अन्तर्गत संविधान सभा को अपना संविधान बनाने का पूर्ण अधिकार दिया गया था। इस सभा द्वारा बनाये गये संविधान को लागू करने के लिए ब्रिटिश सरकार वचनबद्ध थी। इस प्रकार, पहली बार भारतीयों को ब्रिटिश सरकार ने अपना संविधान बनाने की स्वतंत्रता दे दी।

8. राष्ट्र मण्डल से अलग होने का अधिकार-इस योजना द्वारा भारतीयों को यह अधिकार दिया गया कि भारत ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल का सदस्य रहे अथवा नहीं। भारत की स्वतन्त्रता और प्रभुसत्ता की दृष्टि से यह अधिकार महत्वपूर्ण था।

योजना के दोष

यद्यपि इस योजना में अनेक गुण विद्यमान थे, तथापि इसके कुछ दोष भी थे। इस योजना में प्रमुख दोष निम्नलिखित थे-

(1) दुर्बल केन्द्र- केबिनेट मिशन योजना का एक प्रमुख दोष यह था कि इसमें केन्द्रीय सरकार को केवल तीन शक्तियां-प्रतिरक्षा, वैदेशिक मामले तथा संचार साधन दी गई। दूसरे अनेक महत्त्वपूर्ण विषय-मुद्रा, सिक्कों अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, योजनाकरण, तौल तथा माप एवं संघीय न्यायालय प्रान्तों के हाथ में छोड़ दिये गये। इससे केन्द्र अवश्य ही निर्बल रहता और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भारत कभी भी शक्तिशाली राष्ट्र नहीं बन सकता था।

(2) पाकिस्तान का सार स्वीकार- इस योजना में पाकिस्तान की मांग को अस्वीकार कर दिया गया था, परन्तु एक शासन के अन्तर्गत प्रान्तों का तीन वर्षों में इस प्रकार समूहीकरण किया गया कि एक प्रकार से पाकिस्तान के सार को मान लिया गया था। केन्द्र सरकार को दी गई तीन शक्तियों के अतिरिक्त शेष सभी शक्तियां प्रान्तों के पास रखी गई थीं। इस तरह से अपने-अपने क्षेत्र में प्रान्त अपनी मनमानी कर सकते थे। प्रान्तों का वर्गीकरण भी साम्प्रदायिक आधार पर किया गया था। इसलिए 'ख' तथा 'ग' समूह में मुस्लिम लीग अल्पसंख्यकों के साथ मनमाना व्यवहार कर सकती थी। इस प्रकार इन प्रान्तों में हिन्दुओं और सिक्खों को मुस्लिम लीग की दया पर छोड़ दिया गया था। प्रान्तों का साम्प्रदायिक आधार पर वर्गीकरण कर देश विभाजन का मार्ग प्रशस्त कर दिया।

(3) प्रान्तों के समूह अवैज्ञानिक- प्रान्तों के समूह किसी वैज्ञानिक ढंग से नहीं बनाये गये थे, वरन् मुसलिम लीग को प्रसन्न करने के लिए ही बनये गये थे। आसाम में हिन्दुओं का बहुमत था, किन्तु उसे बंगाल के साथ जोड़ दिया गया, जहां मुसलमानों का बहुमत था। इस प्रकार प्रान्तों के साम्प्रदायिक आधार पर ग्रुप बनाना बहुत ही गलत बात थी।

(4) संविधान निर्माण की दोषपूर्ण प्रक्रिया-केबिनेट मिशन योजना में संघ और प्रान्तों के संविधान निर्माण की प्रक्रिया अत्यन्त दोषपूर्ण थी। योजना के अनुसर पहले प्रान्तों तथा वर्गों को अपना-अपना संविधान बनाना था, इसके पश्चात् संघ शासन का संविधान बनाया जाना था। ऐसा करना निश्चय ही उल्टी गंगा बहाना था। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होता कि सारे भारत में एक ही प्रकार की शासन पद्धति की स्थापना नहीं हो सकती थी। श्री जयप्रकाश नारायण ने संविधान सभा की आलोचना करते हुए कहा कि,"यह संविधान सभा अपने गठन में उस संविधान सभा से बहुत भिन्न है, जिसकी रूपरेखा पं. नेहरु ने हमारे सामने रखी थी। इसकी रचना ब्रिटिश सरकार ने की है, अतः हम इसके द्वारा उस स्वतंत्रता को पाने की आशा कदापि नहीं कर सकते, जिसके लिए हम संघर्ष करते हैं। इस संविधान-सभा की कई ऐसी त्रुटियां हैं कि उनका लाभ उठाते हुए ब्रिटिश सरकार स्वतंत्र भारत को अपनी इच्छानुसार संविधान नहीं बनाने देगी।"[1]

(5) कुछ अस्पष्ट बातें-इस योजना में अनेक प्रावधान बहुत ही अस्पष्ट थे। यह पूर्णरूप से स्पष्ट नहीं था कि प्रान्तों का वर्गीकरण ऐच्छिक होगा या अनिवार्य। अन्तरिम सरकार से सम्बन्धित प्रावधान भी इतने अस्पष्ट थे कि उनकी परंस्पर विरोधी व्याख्या की जा सकती थी। योजना के अनेक प्रावधानों की कांग्रेस और मुस्लिम लीग ने अपनी-अपनी दृष्टि से व्याख्या की, जिसके परिणामस्वरूप योजना की सफलता संदिग्ध हो गई।

(6) रियासतों के लिए शरारतपूर्ण व्यवस्थाएं- योजना में जान-बूझाकर देशी रियासतों

1. जय प्रकाश नारायण का भाषण, 6 जून 1946

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के लिए शरातपूर्ण व्यवस्थाएं की गई थीं। योजना द्वारा यह घोषणा की गई थी कि ब्रिटिश सरकार स्वतंत्रता के बाद देशी रियासतों के उपर सर्वोच्चता न तो स्वयं रखेगी और न ही वह केन्द्रीय सरकार को देगी। इसका तात्पर्य यह था कि देशी रियासतें पूर्ण रुप से स्वतंत्र होंगी और यह उनकी इच्छा पर निर्भर होगा कि वे संघ के संविधान को मानें या न मानें। दूसरे शब्दों में, देशी रियासतें भारतीय संघ से अलग भी रह सकती थीं। उनके लिए संघ में सम्मिलित होना अनिवार्य न था। इस तरह योजना द्वारा भारत के अनेक टुकड़े करते हुए उसे तीन सदी पूर्व की स्थिति में डालने का प्रयत्न किया गया था। निश्चय ही यह व्यवस्था बहुत खतरनाक थी और राष्ट्रीय हितों के प्रतिकूल थी।

(7) सिक्खों क साथ अन्याय-इस योजना में सिक्खों के साथ अन्याय किया गया था। उनके प्रतिनिधियों तथा नेताओं से किसी प्रकार का विचार-विमर्श किये बिना ही पंजाब को उत्तर पश्चिमी प्रान्तीय समूह का अंग बना दिया गया था। इसके अतिरिक्त मुसलमानों जैसी विशेष सुविधाएं उन्हें नहीं दी गई थी। इस प्रकार सिक्खों को मुसलमानों की दया पर छोड़ दिया गया था।

(8) अन्तरिम सरकार से सम्बन्धित प्रस्ताव दोषपूर्ण-इस योजना में अन्तरिम सरकार का प्रस्तावित गठन भी अनुचित था। इतना ही नहीं, अन्तरिम सरकार की अवधि के बार में भी इस योजना में स्पष्ट रुप से कुछ नहीं कहा गया था। इसके अतिरिक्त अन्तरिम सरकार में हिन्दुओं के बराबर मुसलमानों को प्रतिनिधित्व देना भी सैद्धान्तिक दृष्टि से उचित नहीं था।

(9) क्रिप्स योजना की तरह इस योजना में भी यह दोष था कि या तो यह सारी योजना स्वीकार की जा सकती थी या अस्वीकृत ही। कोई भी दल ऐसा नहीं कर सकता था कि इसके कुछ भागों को मान ले और कुछ को न माने। यह जटिल दृष्टिकोण भी योजना का एक बड़ा भारी दोष था।

राजनतिक दलों का योजना को स्वीकार करना

भारत के विभिन्न राजनीतिक वर्गों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से इस योजना की आलोचना की थी। कांग्रेस ने अपने सूचना पत्र में योजना के सम्बन्ध में यह टिप्पणी की कि, "प्रतिबन्धों, आरक्षणों, अभिरक्षणों तथा वर्ग हितों के सन्तुलन से इस वन में स्वतंत्र भारत का स्पष्ट चित्र ही नहीं दिखाई पड़ता था।" यद्यपि योजना की त्रुटियों की कटु आलोचना की गई थी, तथापि इसे सभी राजनीतिक दलों ने स्वीकार कर लिया। लीग ने 6 जून 1946 ई. को और कांग्रेस ने 25 जून 1946 ई. को इस योजना को स्वीकार कर लिया। मुस्लिम लीग ने यह समझते हुए कि योजना में पाकिस्तान का सार विद्यमान है, इसे स्वीकार करने में अपना कल्याण समझा। कांग्रेस कार्यकारिणी समिति ने संविधान सभा द्वारा स्वतंत्र, संयुक्त तथा लोकतांत्रिक भारत के संविधान को बनाने की आशा से प्रेरित होकर इसे स्वीकार कर लिया। सिख इस योजना के विरुद्ध थे। उनके नेता मास्टर तारासिंह ने योजना की आलोचना करते हुए कहा था कि, "इसमें सिक्खों का मुसलमानों की दया पर छोड़ दिया गया है।" परन्तु कांग्रेस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और भारत सचिव के आश्वासन पर उन्होंने (सिक्खों ने) भी इसे मान लिया। हिन्दू महासभा ने इस योजना में प्रान्तों के अनिवार्य समूह को अच्छा नहीं समझा, क्योंकि इससे देश के विभाजित होने का डर था। साम्यवादी दल ने संविधान सभा की प्रभुसत्ता पर लगे हुए प्रतिबन्धों तथा साम्प्रदायिक धाराओं की कटु आलोचना की। फिर भी, हिन्दुओं, सिक्खों तथा मुसलमानों ने इस योजना को स्वीकार कर लिया था। मौलाना आजाद लिखते हैं,"कांग्रेस तथा लीग का इस योजना को स्वीकार करना भारतीय इतिहास की एक गौरवपूर्ण घटना थी। इसका अभिप्राय यह था कि भारतीय स्वतंत्रता की कठिन समस्या का समाधान हिंसा तथा संघर्ष के उपायों से नहीं, बल्कि समझौता, वार्ताओं तथा सहमति से कर लिया गया है। सारा देश उल्लास और हर्ष से भरपूर था और स्वतंत्रता की मांग करने में सारी जनता एक थी। हम यह नहीं जानते थे कि ये सब खुशियां केवल कुछ दिनों की ही बात है और शीघ्र ही हमें एक असाधारण निराशा का मुंह देखना पड़ेगा।"[1]

संविधान सभा का चुनाव- केबिनेट मिशन योजना के अनुसार संविधान सभा के चुनाव जुलाई, 1946 में हुए। इस चुनाव में कांग्रेस को शानदार सफलता प्राप्त हुई। 210 सामान्य निर्वाचन क्षेत्रों में से कांग्रेस को 199 स्थान प्राप्त हुए। शेष 11 स्थानों में से 2 पंजाब की यूनियनिस्ट पार्टी को, 1 कम्युनिस्ट पार्टी को, 1 दलित उद्धार संघ को और 6 स्वतंत्र उम्मीदवारों को प्राप्त हुए। मुसलमानों के लिए 78 स्थान निर्धारित थे, जिनमें से मुस्लिम लीग को 73 स्थान प्राप्त हुए। शेष 5 स्थानों में से कांग्रेस ने 3 स्थान, पंजाब की युनियनिस्ट पार्टी का एक स्थान और बंगाल की कृषक प्रजा पार्टी ने एक स्थान पर कब्जा कर लिया। इस प्रकार, 296 सदस्यों में से 212 सदस्य कांग्रेस के समर्थक थे और 73 सदस्य लीग के समर्थक थे। शेष 11 सदस्यों में से 6 कांग्रेस का नेतृत्व मानने के लिए तैयार थे।

अन्तरिम सरकार की स्थापना-केबिनेट मिशन योजना के आधार पर सितम्बर 1946 में नेहरु के नेतृत्व में अन्तरिम सरकार बनी। यद्यपि वेवल के प्रयासों से मुस्लिम लीग ने अन्तरिम सरकार में भाग लिया था, तथापि उसने कांग्रेस की नीतियों को कभी सफल नहीं होने दिया। हमेशा उसके कार्यों में बाधा उपस्थित करती रही। इस समय देश में पाकिस्तान की मांग को लेकर साम्प्रदायिक दंगों में वृद्धि हुई।

लार्ड एटली की भारत छोड़ने की घोषणा (20 फरवरी 1947 ई.)

वायसराय ने 9 दिसम्बर 1946 से आरम्भ होने वाली संविधान सभा की बैठक में भाग लेने के लिए संविधान सभा के सभी सदस्यों को आमंत्रित किया, परन्तु मुस्लिम लीग ने संविधान सभा की कार्यवाही में भाग नहीं लिया। इस प्रकार देश में विषम स्थिति उत्पन्न होती जा रही थी। ऐसी परिस्थिति में ब्रिटिश प्रधानमंत्री एटली ने 20 फरवरी 1947 ई. को ऐतिहासिक महत्त्व की घोषणा करते हुए कहा कि,"भारत की वर्तमान अनिश्चितता की दशा से अनेक खतरे

1. आजाद इण्डिया विन्स् फ्रीडम, पृष्ठ 151.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सम्पन्न हो सकते हैं और इसलिए उसे और अधिक समय तक बने रहने नहीं दिया जा सकता। सम्राट की सरकार यह स्पष्ट कर देना चाहती है कि वह उत्तरदायी भारतीयों के हाथों में जून 1948 के पूर्व ही सत्ता हस्तान्तरित करने के लिए कृत संकल्प है।"

माउन्ट बेटन योजना-लार्ड माउन्ट बेटन ने 23 मार्च 1947 ई. को भारत के वायसराय पद का भार सम्भाल लिया और शीघ्र ही उत्साहपूर्वक अपने कार्य में संलग्न हो गये। उन्होंने गांधीजी तथा जिन्ना से बातचीत की। इसके पश्चात वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि वर्तमान परिस्थितियों में भारतीय समस्या का एक मात्र हल पाकिस्तान की स्थापना की मांग को स्वीकार कर लेना ही है, क्योंकि मुस्लिम लीग पाकिस्तान की स्थापना के बिना किसी प्रकार का समझौता करने के लिए तैयार नहीं है। कांग्रेस भी परिस्थितियों से विवश होकर भारत के विभाजन को स्वीकार करने के लिए सहमत हो गई। लार्ड माउन्ट बेटन दोनों दलों से वार्ता करने के पश्चात् 18 मई 1947 ई. को ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल से परामर्श करने के उद्देश्य से इंग्लैण्ड गये।

ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल से परामर्श करने के उपरान्त लार्ड माउन्ट बेटन भारत आये और 3 जून 1947 ई. को उन्होंने एक योजना पेश की, जो उनके ही नाम पर 'माउन्ट बेटन योजना' के नाम से प्रसिद्ध है।

योजना की मुख्य बातें- इस योजना की मुख्य बातें निम्नलिखित थीं-

(1) ब्रिटिश सरकार की इच्छा है कि 15 अगस्त 1947 ई. को भारत की सत्ता ऐसी सरकार को सौंप दे, जिसका निर्माण जनता की इच्छानुसार हुआ हो।

(2) ब्रिटिश सरकार चाहती है कि वर्तमान संविधान सभा के कार्य में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित न की जाय।

(3) संविधान सभा द्वारा निर्मित संविधान को केवल उन भागों में कार्यान्वित किया जाय, जो उसको स्वीकार करते हों।

(4) इस योजना के अनुसार भारत को दो अधिराज्यों में बांट दिया जायेगा-इण्डिया तथा पाकिस्तान और दोनों को जून 1948 की बजाए 15 अगस्त, 1947 को ही स्वतंत्रता दी जायेगी।

(5) मुस्लिम लीग चाहती थी कि सम्पूर्ण बंगाल, पंजाब और असम पाकिस्तान में सम्मिलित किए जाएं। लार्ड माउन्ट बेटन तथा कांग्रेसी नेता इस बात के लिए बिल्कुल भी सहमत न थे। यह निश्चित किया गया कि युरोपियन सदस्यों को छोड़कर पंजाब और बंगाल की विधान सभाओं के अधिवेशन दो भागों में किये जायेंगे। एक भाग में मुस्लिम बहुमत वाले जिलों के प्रतिनिधि होंगे और दूसरे भाग में हिन्दू बहुमत वाले जिलों के प्रतिनिधि होंगे। योजना में मुस्लिम बहुमत वाले प्रान्तों के नाम गिनाये गये। प्रत्येक भाग बहुमत के आधार पर यह निश्चित करेगा कि उसके प्रान्त का विभाजन किया जाय या नहीं। यदि बहुमत विभाजन के पक्ष में हो, तो उनको यह निर्णय करना होगा कि वे वर्तमान संविधान सभा में सम्मिलित होना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चाहते हैं अथवा एक पृथक् संविधान सभा का निर्माण करना चाहते हैं।

(6) सिन्ध की विधान सभा को यह निर्णय करना था कि वह भारत की संविधान सभा में शामिल होना चाहती है या पाकिस्तान में।

(7) असम के मुस्लिम बहुमत वाले सिलहट जिले में इस बात का निर्णय जनमत संग्रह द्वारा किया जायेगा कि वहां की जनता आसाम में रहना चाहती है अथवा पूर्वी बंगाल में मिलना चाहती है।

(8) यह भी निश्चित किया गया कि उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त में गवर्नर जनरल द्वारा निर्देशन में इस बात का निर्णय करने के लिए जनमत संग्रह किया जायेगा कि सीमा प्रान्त भारत मे रहना चाहता है अथवा पाकिस्तान में।

(9) बलूचिस्तान को भी भारत संघ में रहने या अलग होने के सम्बन्ध में निर्णय करने का अधिकार होगा।

(10) यदि बंगाल, पंज़ाब और असम के द्वारा विभाजन का समर्थन किया गया, तो भारत और पाकिस्तान की सीमा निर्धारण हेतु गवर्नर जनरल एक कमीशन नियुक्त करेगा।

(11) भारत और पाकिस्तान राज्यों के बीच लेन-देन के विभाजन के लिए भी समझौता होगा।

(12) देशी रियासतों को भी भारत या पाकिस्तान में अपनी इच्छानुसार सम्मिलित होने की छूट होगी।

(13) भारत और पाकिस्तान का राष्ट्रमण्डल की सदस्यता के त्याग का अधिकार होगा।

योजना की स्वीकृति एंव क्रियान्विति-माउन्ट बेटन योजना को स्वीकार करने के प्रश्न पर कांग्रेस के कुछ नेताओं में मतभेद था। जहां मौलाना आजाद और पुरूषेत्तमदास टण्डन ने इस योजना का विरोध किया, वहां गोविन्द वलभपन्त, जवाहरलाल नेहरु, सरदार वलभ भाई पटेल, तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष आचार्य कृपलानी एवं महात्मा गांधी ने इस योजना की स्वीकृति पर बल दिया। इस समय पण्डित गोविन्द वल्लभ पंत ने कहा कि, "3 जून 1947 की योजना की स्वीकृति ही स्वतंन्त्रता प्राप्ति के लिए एकमेव मार्ग है। इससे शक्तिशाली केंद्र बन सकेगा और भारत की उन्नति हो सकेगी। कांग्रेस ने एकता के लिए बहुमत कार्य किया है और इसके लिए अपना सब कुछ न्यौछावर कर दिया है। आज कांग्रेस को या तो इस योजना को स्वीकार करना है अथवा आत्महत्या करनी है। उन्होंने कहा कि मन्त्रिमण्डल मिशन योजना के ग्रुपों और निर्बल केन्द्र से यह योजना अच्छी है।"[1] इसके बाद कांग्रेस ने इस योजना को स्वीकार कर लिया। इसी प्रकर, "मुहम्मद अली जिन्ना ने लंगडे पाकिस्तान को स्वीकार करने से इन्कार

1. मेनन, वी. पी. : द ट्रान्सफर ऑफ पावर इन इण्डिया, पृष्ठ 384-85.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दिया, परन्तु उसे लार्ड माउण्टबेटन के दबाव के कारण स्वीकार करना पड़ा।"[1]

जब कांग्रेस और लीग ने इस योजना को स्वीकार कर लिया, तो लार्ड माउन्टबेटन ने इसे तुरन्त क्रियान्वित कर दिया। पश्चिमी बंगाल व पूर्वी पंजाब ने भारत में रहने का निर्णय किया। उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त, सिन्ध, बलूचिस्तान और आसाम के सिलहट जिले ने भी पाकिस्तान में मिलने का निर्णय किया। इस प्रकार, भारत के विभाजन का मार्ग प्रशस्त हो गया। इसके बाद माउन्टबेटन योजना को क्रियान्वित करने के लिए ब्रिटिश संसद ने 4 जुलाई 1947 को 'भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम' पारित कर दिया, जिसके फलस्वरूप 15 अगस्त 1947 को भारत तथा पाकिस्तान दो स्वतंत्र राज्यों का प्रार्दुभाव हुआ।

भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम, 1947

माउन्टबेटन योजना के आधार पर जुलाई, 1947 ई. को 'भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम' संसद में पेश किया गया। 16 जुलाई तक इसे संसद के दोनों सदनों ने पास कर दिया। 18 जुलाई को ब्रिटिश सम्राट ने उसकी स्वीकृति दे दी। नार्मन डी, पामर के अनुसार, "ब्रिटिश पार्लियामन्ट के इतिहास मे शायद ही कोई इतना महत्त्वपूर्ण विधेयक इतने कम समय और इतने कम वाद-विवाद के पास हुआ हो।"[2] भारत मन्त्री ने इस अधिनियम के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए यह शब्द कहे,"हमारे देश के विधान निर्माण के इतिहास में यह अधिनियम अद्वितीय है। इससे पूर्व कभी भी संसार की आबादी के इतने बड़े भाग ने केवल एक विधान द्वारा पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त नहीं की।"[3] इस अधिनियम में कुल 20 धाराएं थी। इससे भारत में एक नया युग आरम्भ हुआ। इस ऐतिहासिक अधिनियम की प्रमुख धाराएँ निम्नलिखित थी-

(1) दो उपनिवेशों की स्थापना- इस अधिनियम द्वारा भारत का विभाजन कर दिया गया और पाकिस्तान की स्थापना कर दी गई। यह निश्चित किया गया कि 15 अगस्त 1947 को भारत और पाकिस्तान नामक दो अधिराज्य बना दिये जायेंगे और उनको ब्रिटिश सरकार सत्ता सौंप देगी। इस प्रकार, इस अधिनियम द्वारा भारत का विभाजन कर पाकिस्तान की स्थापना कर दी गई।

(2) दोनों अधिराज्यों के प्रदेशों का वर्णन- भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम में दोनों अधिराज्यों-भारत और पाकिस्तान के प्रदेशों का वर्णन किया गया था। भारत में बम्बई, मद्रास, संयुक्त प्रान्त, बिहार, पूर्वी पंजाब, पश्चिमी बंगाल, दिल्ली, अजमेर तथा मारवाड़ आदि शामिल थे। पाकिस्तान में सिन्ध, उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त, पूर्वी बंगाल, पश्चिमी पंजाब, बिलोचिस्तान और असम का सिलहट जिला आदि शामिल थे। बंगाल और पंजाब की विभाजन-रेखा निर्धारित करने का कार्य सीमा आयोग को सौंप दिया गया।

---

1. प्यारेलाल : महात्मा गांधी – द लास्ट फेज, वोल-II, पृष्ठ 215.
2. पामर, डी : मेजर गवर्नमेन्ट्स ऑफ एशिया, पृष्ठ 298.
3. बनर्जी ए.सी. : द कॉन्स्टिट्युन्ट एसेम्बली, पृष्ठ 22.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(3) संविधान सभाओं को कानून बनाने का अधिकार- यह व्यवस्था की गई कि ब्रिटिश सरकार दोनों अधिराज्यों की संविधान सभाओं को शासन सत्ता हस्तान्तरित करेगी। उनको अपनी इच्छानुसार संविधान का निर्माण करने की स्वतंत्रता होगी और ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के साथ रहने या न रहने का निर्णय करने का उन्हें पूरा अधिकार प्राप्त होगा।

(4) दोनों के लिए एक अलग-अलग गवर्नर जनरल-ऐक्ट द्वारा यह निश्चय किया गया कि प्रत्येक अधिराज्य का एक गवर्नर जनरल होगा, जिनकी नियुक्ति उनके मन्त्रिमण्डल की सलाह से की जोयगी। प्रान्तीय गवर्नरों को प्रत्येक उपनिवेश के मन्त्रिमण्डल द्वारा मनोनीत किया जायेगा। गवर्नर जनरल और प्रान्तों के गवर्नर भविष्य में केवल वैधानिक शासक होंगे। स्वतंत्र भारत के प्रथम गवर्नर जनरल के पद के लिए कांग्रेस ने लार्ड माउण्ट बेटन के नाम की सिफारिश की और पाकिस्तान के प्रथम गवर्नर जनरल के पद के लिए मुहम्मद अली जिन्ना के नाम की सिफ़ारिश की।

(5) अधिराज्यों के विधानमण्डलों को कानून बनाने का अधिकार-अधिनियम के अनुसार यह निश्चित किया गया कि संविधान सभा का निर्माण हो जाने तथा उसे लागू होने की तिथि तक प्रत्येक उपनिवेश की संविधान सभाएं वहां के विधान मण्डल के रूप में कार्य करती रहेंगी और उन्हें शासन के लिए कानून बनाने का अधिकार प्राप्त होगा। इन सभाओं द्वारा पारित कानूनों पर ब्रिटिश सरकार को किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं होगा। 15 अगस्त 1947 के बाद ब्रिटिश सरकार का इन उपनिवेशों पर कोई नियन्त्रण नहीं रहेगा और न ही ब्रिटिश संसद इन उपनिवेशों के लिए कोई कानून बना सकेगी।

(6) 1935 के भारतीय अधिनियम द्वारा शासन-जब तक दोनों अधिराज्यों के लिए नया संविधान बनकर तैयार न हो जाए, तब तक दोनों अधिराज्यों तथा उनके प्रान्तों को शासन प्रबन्ध 1935 के भारतीय शासन अधिनियम द्वारा ही चलाया जायेगा, परन्तु इस अधिनियम में से गवर्नर जनरल और प्रान्तीय गवर्नर के आक्षित तथा विशेषाधिकार सम्बन्धी धाराओं को हटा दिया गया। 1947 के अधिनियम द्वारा 1935 के भारतीय शासन अधिनियम में ऐसे संशोधन किये गये, जिससे अन्तरिम काल में इन दोनों राज्यों का शासन प्रजातन्त्रात्मक पद्धति के आधार पर किया जा सके।

(7) प्रान्तीय विधानमण्डल-यह व्यवस्था की गई की जब तक नवीन विधान के अनुसार प्रान्तों में चुनाव नहीं होते हैं, तब तक प्रान्तों में इस समय के विधानमण्डल कार्य करते रहेंगे।

(8) भारत-मन्त्री के पद का अन्त-इस अधिनियम के अनुसार भारत मंत्री का पद समाप्त कर दिया जायेगा, क्योंकि 15 अगस्त 1947 के पश्चात ब्रिटिश संसद का भारत और पाकिस्तान पर काई नियन्त्रण नहीं रहेगा।

(9) देशी रियासतों पर सर्वोपरिता का अन्त-15 अगस्त 1947 से ब्रिटिश सरकार की देशी रियासतों के ऊपर सर्वोपरिता (सबसे ऊँचे अधिकार) को समाप्त कर दिया गया। इसके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पश्चात देशी रियासतें नये अधिराज्यों की सरकारों से अपने राजनीतिक सम्बन्धों में स्वतंत्र होगी। इसका यह अर्थ था कि भारत की देशी रियासतों को भी पूर्ण रुप से स्वतंत्र कर दिया जायेगा और स्वतंत्रता के पश्चात यह उनकी इच्छा पर निर्भर होगा कि वे भारत तथा पाकिस्तान में से किसी भी अधिराज्य में शामिल हों अथवा पूर्णरूप से स्वतंत्र रहे।

(10) भारतीय नागरिक सेवाओं के सदस्यों के अधिकारों को कायम रखना-यह व्यवस्था की गई कि राज्य सेवाओं के सदस्यों की नौकरी की शर्तें यथावत रहेंगी।

माइकेल ब्रेचर के अनुसार, "भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम इस दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण था कि इसके द्वारा ब्रिटिश इण्डिया की राजनीतिक संस्थाओं, वेधानिक तथा न्यायिक पद्धति और संवैधानिक ढांचे को काफी सीमा तक कायम रखा गया।"[1] स्वतन्त्रता की स्वर्णिम बेला पर अपने उद्गार प्रकट करते हुए डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने कहा था,"भारत पर ब्रिटिश प्रभुत्व का काल आज समाप्त होता है और अब से ब्रिटेन के साथ हमारा अपना सम्बन्ध समानता, पारस्परिक सद्भावना और पारस्परिक लाभ के आधार पर रहेगा।"[2] 'द हिन्दुस्तान टाइम्स' एवं 'द डॉन' आदि समाचार पत्रों ने भी 1947 के 'भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम' को ब्रिटिश शासन का एक गौरवपूर्ण कार्य बताया।

स्वतन्त्रता की प्राप्ति- भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम के अनुसार 15 अगस्त 1947 ई. की मध्य रात्रि को भारत को स्वतन्त्र कर दिया गया और भारत की शासन सत्ता भारतीय जनप्रतिनिधियों के हाथों में सौप दी गई। इस प्रकार भारत में ब्रिटिश शासन का अन्त हुआ। भारत का विभाजन हो जाने से भारत तथा पाकिस्तान दो स्वतंत्र राज्य अस्तित्व में आये। भारतीयों को संविधान सभा द्वारा स्वतंत्र भारत के संविधान का निर्माण का अधिकार दिया गया।

कांग्रेस चाहती थी कि दोनों अधिराज्यों के गवर्नर जनरल एक ही रहें, ताकि संक्रमण काल की समाप्ति शान्तिमय ढंग से हो सके, लेकिन पाकिस्तान ने इस प्रकार के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। अतः स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात लार्ड माउन्ट बेटन भारत के गवर्नर जनरल तथा श्री जिन्ना पाकिस्तान के गवर्नर जनरल बने। माउन्ट बेटन के चले जाने पर भारत के वरिष्ठतम नेता चक्रवर्ती राज गोपालचारी भारत के प्रथम तथा अन्तिम गवर्नर जनरल बने। 26 जनवरी 1950 ई. को जब भारत का नया संविधान लागू हुआ, तो गवर्नर जनरल का पद समाप्त हो गया और नये प्रभुत्व सम्पन्न गणतन्त्र के प्रथम राष्ट्रपति पद पर डॉ. राजेन्द्र प्रसाद आसीन हुए।

भारत की स्वतंत्रता में सहायक तत्व- भारत की स्वतंत्रता में निम्न तत्व सहायक सिद्ध हुए हैं-

(1) गांधी जी का योगदान-गांधीजी के नेतृत्व में चलाए गए राष्ट्रीय आन्दोलन ने भारत की स्वतन्त्रता में महत्वपूर्ण योगदान दिया, यद्यपि असहयोग आन्दोलन, सविनय अवज्ञा आन्दोलन तथा

---

1. माइकेल ब्रेचर : नेहरु, ऐपोलिटिकल बायोग्राफी, पृष्ठ 377.
2. राजेन्द्र प्रसाद (डॉ.) : इण्डियां डिवाइडेड्

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भारत छोड़ो आन्दोलन असफल रहे, तथापि इन आन्दोलनों ने राष्ट्रीय आन्दोलनों को जन आन्दोलन बना दिया। जनता ब्रिटिश शासन से घृणा करने लगी एवं उसमें सरकार से टक्कर लेने की भावना जागृत हुई।

(2) इंग्लैण्ड की दुर्बलता-द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण इंग्लैण्ड की स्थिति काफी खराब हो गई थी। अब उसके लिए अधिक समय तक भारत पर शासन करना असम्भव था। ब्रिटिश प्रधान मन्त्री एटली ने स्वयं ब्रिटिश संसद में इस बात को स्वीकार किया था।

(3) नौ-सेना का विद्रोह-राष्ट्रीय चेतना की लहर जनता के अतिरिक्त पुलिस और सेना में भी पहुँच चुकी थी। जब ब्रिटिश सरकार ने आजाद हिन्द फौज के अधिकारियों पर मुकदमें चलाए, तब सेना में चेतना की लहर तीव्र गति से फैली। फलतः 1946 ई. में भारतीय नौ-सैनिकों ने अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया, जिससे कई ब्रिटिश पदाधिकारी हताहत हुए। इससे अंग्रेज सरकार को यह स्पष्ट हो गया कि जब भारतीय नौ-सैनिकों में सरकार के प्रति पहले जैसी स्वामि भक्ति नहीं है, इसलिए भारतीय सेना पर निर्भर रहकर भारत पर शक्ति के बल पर शासन नहीं किया जा सकता।

(4) इंग्लैण्ड में मजदूर दल की सरकार-इंग्लैण्ड का मजदूर दल भारतीय स्वतन्त्रता का समर्थक था। उसने सत्ता में आने से पूर्व आम चुनावों में घोषणा की थी कि यदि उसकी सरकार बनी, तो वह भारत को आजाद कर देगा। 1945 ई. में इंग्लैण्ड की लेबर पार्टी की सरकार बनी तो भारत की स्वतन्त्रता अधिक निकट आ गई।

(5) साम्प्रदायिक दंगों का प्रभाव- मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान की मांग को लेकर देश में चारों ओर साम्प्रदायिक दंगे करवा दिये। इन दंगों का प्रभाव पुलिस, सेना और प्रशासन में भी फैल चुका था। अब केवल मुसलिम लीग की सहायता से ब्रिटिश सरकार के लिए भारत पर शासन करना कठिन था।

(6) ब्रिटेन पर अन्तर्राष्ट्रीय दबाव- अमेरिका, रूस और चीन आदि मित्र देश पिछले कई वर्षों से भारत को स्वतन्त्रता देने के लिए ब्रिटेन पर दबाव डाल रहे थे। अतः इंग्लैण्ड विश्व जनमत की अवहेलना नहीं कर सकता था। इसके लिए भारत को स्वतन्त्रता देना जरूरी हो गया।

(7) कांग्रेस द्वारा विभाजन की योजना को स्वीकार करना- कांग्रेस ने इंग्लैण्ड से शीघ्र स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए देश के विभाजन की योजना को स्वीकार कर लिया था। यदि कांग्रेस देश का विभाजन स्वीकार नहीं करती, तो मुस्लिम लीग से समझौता नहीं होता और ब्रिटिश सरकार आगामी कुछ वर्षों तक कांग्रेस और लीग के इस मतभेद का लाभ उठाकर भारत पर शासन करती रहती। अतः कांग्रेस ने शीघ्र स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए देश का विभाजन भी स्वीकार कर लिया।

(8) इंग्लैण्ड की विवशता-इंग्लैण्ड ने विवश होकर भारत को स्वतंत्रता प्रदान की थी। युद्ध के दौरान इंग्लैण्ड की आर्थिक स्थिति काफी खराब हो गई थी। वह अमेरिका से भारी मात्रा में ऋण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ले रहा था। युद्ध के समय भारत का ऋण भी इंग्लैण्ड पर चढ़ गया। ऐसे समय ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने यह कहा था कि इंग्लैण्ड को भारत पर शासन करने से आर्थिक दृष्टि से नुकसान उठाना पड़ रहा है।

यद्यपि स्वतंत्रता प्राप्ति में कांग्रेस का महान योगदान था, तथापि क्रान्तिकारियों ने अपने बलिदान के द्वारा महान् योगदान दिया था। जिस समय सरकार निरंकुश होकर जनता पर राज्य कर रही थी और कांग्रेसी नेताओं का मनोबल गिर चुका था, ऐसे समय में क्रान्तिकारियों ने राष्ट्रीय आन्दोलन-का नेतृत्व किया तथा ब्रिटिश सरकार को ईंट का जवाब पत्थर से दिया। इसके अतिरिक्त भारतीय समाचार पत्रों, लेखकों एवं विद्यार्थियों ने भी स्वतंत्रता प्राप्ति में सराहनीय योगदान दिया था।

□□□

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

12 संविधान सभा एवं संविधान का निर्माण

पण्डित जवाहर लाल नेहरु के अनुसार, "यह (संविधान सभा) एक चलायमान राष्ट्र है, जो अपनी पुरानी पोशाक को उतारकर स्वनिर्मित नवीन पोशाक धारण करता है। इसमें राष्ट्र के नागरिक अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों के माध्यम से कार्यरत हैं। इस दृष्टि से इसका निश्चित क्रांतिकारी महत्त्व है।"[1]

प्रत्येक स्वाधीन देश का अपनां संविधान होता है, जिसके द्वारा उस राष्ट्र की शासन व्यवस्था संचालित होती है। जिस देश की जनता स्वयं अपने संविधान का निर्माण करती है अथवा जिसे उस दिन की संविधान निर्मात्री संस्था ने बनाया हो, वही संविधान राष्ट्र के विकास में चहुँमुखी योगदान दे सकता है। संविधान निर्मात्री सभा द्वारा सभा का निर्माण इस बात की पुष्टि करता है कि वह राष्ट्र स्वाधीन राष्ट्र है। अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा संविधान निर्माण के अधिकार की मांग का सीधा सम्बन्ध 'स्वाधीनता की मांग' से ही है।

संविधान सभा का अर्थ

संविधान निर्माण के लिए गठित प्रतिनिधिक सभा को संविधान सभा की संज्ञा दी जाती है। पूर्ण प्रभुत्ता सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक राष्ट्रों में जहाँ भी लिखित संविधान है, उसका निर्माण वहाँ की जनता ने संविधान सभाओं के द्वारा किया है। 17वीं और 18वीं सदी की प्रजातान्त्रिक क्रान्तियों का संविधान सभा की प्रेरणा का स्रोत माना जाता है। इन क्रान्तियों ने इस विचार को जन्म दिया कि शासन के मौलिक कानूनों का निर्माण नागरिकों की एक विशिष्ट प्रतिनिधि सभा द्वारा किया जाना चाहिए। इंग्लैण्ड के समतावादियों तथा हेनरीमेन ने संविधान सभा के विचार का प्रसार किया था, परन्तु सर्वप्रथम अमेरिका और फ्रांस ही ऐसे देश थे, जिनमें इस विचार को क्रियान्वित किया गया। जैनिंग्ज़ के शब्दों में,"संविधान सभा एक ऐसी प्रतिनिध्यात्मक संस्था होती है, जिसे नवीन संविधान पर विचार करने और अपनाने या विद्यमान संविधान में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन करने के लिए चुना जाता है।"

1. कृष्णामूर्ति; वाई जी : कॉन्स्टियन्ट ऐसेम्बली (फारवरडेड बाई पं. नेहरु); पृष्ठ V

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भारत में संविधान सभा की अवधारणा का विकास

भारत में संविधान सभा के सिद्धान्त का राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। भारत के लोग स्वयं अपने राजनीतिक भविष्य का निर्माण करना चाहते थे। अतः उन्होने संविधान सभा की मांग की। उनकी यह मांग एक प्रकार से राष्ट्रीय स्वतंत्रता की मांग भी थी। तिलक के निर्देशन में 1895 में 'स्वराज्यं विधेयक' (Swarajya Bill) तैयार किया गया था, उसमें सर्वप्रथम संविधान सभा के सिद्धान्त के दर्शन होते हैं। यह तिलक की दूरदर्शिता ही थी कि वे 19वी सदी में भी इस सम्बन्ध में सोच सके। सन् 1906 ई. में दादा भाई नैरोजी ने कांग्रेस के मंच से 'स्वराज्य' की मांग की। प्रथम विश्व युद्ध में कुछ राष्ट्रवादी भारतीयों ने आत्म निर्णय के विचार का समर्थन किया। सन् 1922 ई. में महात्मा गांधी ने इस सम्बन्ध में स्पष्ट रुप से अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा था, "भारतीय संविधान भारतीयों की इच्छानुसार ही होगा।" सन् 1924 ई. में पण्डित मोती लाल नेहरु ने स्पष्ट रुप से भारत के संविधान के निर्माण के लिए भारतीय संविधान सभा के गठन की मांग प्रस्तुत की, परन्तु उस समय ब्रिटिश सरकार ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया तत्पश्चात एम.एन.राय ने औपचारिक रुप से संविधान सभा के विचार का प्रतिपादन किया, जिसे जवाहरलाल नेहरु ने लोकप्रिय बनाया एवं मूर्त रुप प्रदान किया प्रमुख रुप से उन्हीं के प्रयत्नों के परिणाम स्वरुप कांग्रेस ने 1934 ई. में यह घोषणा की थी कि,"यदि भारत को आत्म निर्णय का अवसर मिलना है, तो भारत के सभी विचारों के लोगों की एक प्रतिनिधि सभा बुलाई जानी चाहिये, जो सर्वसम्मत संविधान का निर्माण कर सके। यहीं संविधान सभा होगी।" कांग्रेस के 'फैजपुर' अधिवेशन में कहा गया था कि,"कांग्रेस का उद्देश्य भारत में एक वास्तविक लोकतन्त्रात्मक राज्य की स्थापना करना है, जिसमें सत्ता सम्पूर्ण जनता को सौंप दी जाय, एवं सरकार उसके प्रभावशाली नियन्त्रण में रहे। ऐसे राज्य की स्थापना केवल एक देशी संविधान सभा द्वारा ही हो सकती है, जो अन्तिम रुप में देश के संविधान का निर्माण करें।"[1]

इस समय तक संविधान सभा के विचार ने पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त कर ली। अतः प्रान्तीय विधान सभाओं एवं केन्द्रीय विधान मण्डलों ने प्रस्ताव पारित कर संविधान सभा की स्थापना का प्रबल समर्थन किया। दिसम्बर 1936 के लखनऊ कांग्रेस अधिवेशन में संविधान सभा के अर्थ एंव महत्त्व पर विस्तृत प्रकाश डाला गया और 1937 तथा 1938 के अधिवेशनों में संविधान सभा की मांग दुहराई गयी। 1938 ई. में कांग्रेस के अधिवेशन में इस मांग को दोहराते हुए एक प्रस्ताव पारित किया गया, जिसके अनुसर, "एक स्वतन्त्र देश के संविधान का निर्माण का एक मात्र तरीका संविधान सभा है। सिर्फ प्रजातंत्र और स्वतंत्रता में विश्वास न रखने वाले ही इसका विरोध कर सकते हैं।"

पं. जवाहरलाल नेहरु ने संविधान सभा की स्थापना का प्रबल समर्थन करते हुए 1938 ई. में कहा था कि,"कांग्रेस का उद्देश्य स्वतंत्रता एवं लोकतंत्र राज्य है। भारत के संविधान का

1. सीतारमैया; पी : दी हिस्ट्री द इण्डियन नेशनल कांग्रेस, पृष्ठ 36.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निर्माण बिना किसी बाह्य हस्तक्षेप के वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचन संविधान सभा द्वारा होना चाहिये।" जब 1939 ई. में द्वितीय विश्व युद्ध आरम्भ हुआ, तब कांग्रेस ने स्पष्ट रुप से कहा था कि भारत युद्ध में अंग्रेजो की सहायता तभी कर सकता है, जबकि उसे सम्पूर्ण प्रभुसत्ता सम्पन्न संविधान सभा बनाने का अधिकार दिया जाय। नवम्बर 1939 में 'कांग्रेस कार्य समिति' ने एक प्रस्ताव पारित किया, जिसमें कहा गया था कि,"एक स्वतन्त्र देश के संविधान के निर्माण का एक प्रस्ताव पारित किया, जिसमें कहा गया था कि,"स्वतन्त्र देश के संविधान के निर्माण का एक मात्र लोकतंत्रीय मार्ग संविधान सभा ही है तथा जो व्यक्ति लोकतंत्र एवं स्वतंत्रता में विश्वास करते हैं, वे इसका विरोध नहीं कर सकते।" इसी समय महात्मा गाँधी ने कहा था कि,"संविधान सभा से इस देश की साम्प्रदायिक आशान्ति दूर होगी और वह देश को उचित राजनीतिक दिशा प्रदान करेगी।" उन्होंने इस सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए आगे कहा कि,"हम एक ऐसा संविधान चाहते हैं, जो भारतीय मस्तिष्क का वास्तविक दर्पण हो।"

ब्रिटिश सरकार ने भारतीय जनता की संविधान सभा की स्थापना की मांग का विरोध किया। इस मांग के स्वीकार हो जाने पर देशी नरेशों एवं यूरोपवासियों के निहित स्वार्थों और विशेषाधिकारों को खतरा उत्पन्न हो सकता था। अतः उन्होंने इसका विरोध किया, परन्तु उदारवादियों ने इसे अत्यधिक प्रजातान्त्रिक बताया। प्रारम्भ में मुस्लिम लीग ने भी इसका विरोध किया, किन्तु 1940 में पाकिस्तान प्रस्ताव के प्रतिपादन हेतु उसने यह मांग की कि दो पृथक्-पृथक् संविधान सभाओं की स्थापना की जाय। इस समय अछूत जाति संघ के अध्यक्ष डॉ. अम्बेडकर ने संविधान सभा की स्थापना की मांग के प्रति उदासीनता और आंशिक विरोध का भाव प्रकट किया। उन्होंने इस सम्बन्ध में कहा था कि, "एक संविधान सभाा की आवश्यकता नहीं है और 1935 ई. के बाद अधिनियम के आँधार पर कार्य किया जा सकता है।" आगे आने वाले वर्षों में उन्होंने भारतीय संविधान के निर्माण में बहुमूल्य योगदान दिया, उससे स्पष्ट है कि उन्होने भ्रान्तिवश ही यह बात कही थी।

यद्यपि ब्रिटिश सरकार नहीं चाहती थी कि वह भारतीय जनता की संविधान सभा की मांग को स्पष्ट रुप से स्वीकार करे, किन्तु द्वितीय विश्व युद्ध में भारत की सहायता प्राप्त करने एवं राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियों के दबाव ने उसे ऐसा करने के लिए विवश कर दिया। ब्रिटिश सरकार ने पहली बार अगस्त 1940 के प्रस्ताव में कांग्रेस की इस मांग को स्वीकार कर लिया कि,"भारत का संविधान स्वयं भारतवासी ही तैयार करेंगे। इसके बाद 1942 की क्रिप्स योजना में ब्रिटिश सरकार ने स्पष्ट रुप से यह स्वीकार किया था कि युद्ध के बाद भारतीय संविधान निर्माण करने हेतु भारत में एक निर्वाचित सभा का गठन किया जायेगा। परन्तु मुस्लिम लीग एंव कांग्रेस दोनों ने क्रिप्स योजना को अस्वीकार कर दिया कांग्रेस ने प्रस्ताव को इसलिए स्वीकार नहीं किया कि उसकी दृष्टि में संविधान सभा के गठन के बारे में प्रस्तुत किये गये प्रस्ताव सर्वथा अनुचित थे। इसके अतिरिक्त संविधान सभा में देशी रियासतों के प्रतिनिधियों की उपस्थिति भारतीय प्रगति में बाधा उपस्थिंत कर सकती थी। इन प्रस्तावों में दो संविधान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सभाओं की व्यवस्था का सुझाव नहीं होने से मुस्लिम लीग ने इन प्रस्तावों को अस्वीकार कर दिया था।[1]

'भारत छोड़ो' प्रस्ताव में कांग्रेस ने स्पष्ट रुप से यह घोषणा की थी कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात अस्थायी राष्ट्रीय सरकार देश के लिए एक सर्वमान्य संविधान का निर्माण करने हेतु एक संविधान सभा को स्थापना करेगी। अन्त में 1946 में केबिनेट मिशन योजना में भारतीय संविधान सभा के प्रस्ताव को स्वीकार कर व्यवहारिक रुप प्रदान कर दिया गया। मिशन ने यह स्पष्ट कर दिया था कि,"उसका उद्देश्य भारत के लिए संविधान का निर्माण करना नहीं है, बल्कि एक ऐसी व्यवस्था को निश्चित कर देना है, जिसके द्वारा भारतीय अपने लिए संविधान का निर्माण कर सके।"

केबिनेट मिशन योजना एंव संविधान सभा का निर्माण

24 मार्च 1946 ई. को 'केबिनेट मिशन' दिल्ली पहुंचा। 16 मई 1946 ई. में मिशन ने अपनी योजना प्रकाशित की। मिशन का विचार था कि वर्तमान परिस्थितियों में यह सम्भव नहीं है कि संविधान के निर्माण के लिए वयस्क मताधिकार के आधार पर संविधान सभा का गठन किया जाय। अतः केबिनेट योजना में निश्चित किया गया कि भारतीय संविधान के निर्माण हेतु परोक्ष निर्वचन के आधार पर एक संविधान सभा की स्थापना की जाय। इस संविधान सभा में कुल 389 सदस्य हों, जिनमें 292 ब्रिटिश प्रान्तों के प्रतिनिधि, 92 देशी रियासतों के प्रतिनिधि और 4 चीफ कमिश्नर क्षेत्रों के हों। योजना में यह निश्चित किया गया था कि (i) प्रान्तों को संविधान सभा में प्रतिनिधित्व जनसंख्या के आधार पर दिया जाय। (ii) दस लाख की जनसंख्या पर एक प्रतिनिधि लेने का नियम बनाया जाय। (iii) प्रान्तीय विधान सभा के प्रत्येक सम्प्रदाय को जिने प्रतिनिधि संविधान सभा में भेजने थे, उनका निर्वाचन प्रत्येक सम्प्रदाय द्वारा अलग-अलग किया जाय। (iv) मतदाताओं को तीन वर्गों में विभाजित करने का निश्चय किया गया- साधारण मुसलमान एवं सिक्ख (केवल पंजाब)। (v) रियासतों को भी जनसंख्या के आधार पर ही प्रतिनिधित्व देने का निश्चय किया गया। (vi) प्रान्तों के लिए अलग संविधान बनाने का प्रावधान भी इस योजना में रखा गया। इसके लिए यह कहा गया था कि संविधान सभा की आरम्भिक बैठक के बाद सदस्य अपने आपको तीन वर्गों में विभक्त कर लेंगे- प्रथम, हिन्दू, बहुमत वाले प्रान्तों के प्रतिनिधि, द्वितीय मुस्लिम बहुमत वाले उत्तर पूर्वी प्रान्तों के प्रतिनिधि, एवं तृतीय मुस्लिम बहुमत वाले उत्तर पश्चिमी प्रान्तों के प्रतिनिधि। यह तीनों वर्ग पहले अपने-अपने प्रान्तों एवं वर्गों के संविधान का निर्माण करेंगे। इसके बाद संघीय संविधान का निर्माण किया जायेगा।

संविधान सभा के गठन एंव संविधान निर्माण की यह योजना दोष रहित नहीं थी, परन्तु तत्कालीन परिस्थितियों में इससे अच्छी कोई योजना प्रस्तुत नहीं की जा सकती थी। योजना का एक विशिष्ट गुण यह था कि इसमें केवल एक संविधान सभा की व्यवस्था की गई थी।

1. क्रिप्स योजना के विस्तृत अध्ययन हेतु कृपया अध्याय सात को देखने का श्रम करें।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इसमें मुसलमानों के लिए पृथक् संविधानन की व्यवस्था नहीं होने से मुस्लिम लीग इससे नाराज थी। अतः कांग्रेस ने इस योजना को स्वीकार कर लिया। मुस्लिम लीग ने इस योजना की अपने ढंग से व्याख्या की। उसने यह महसूस किया कि वर्गीय आधार पर संविधान के निर्माण से उसकी पाकिस्तान की स्थापना का सपना भविष्य में साकार हो सकता है। अतः उसने भी इस योजना को स्वीकार कर लिया। अन्य छोटे दलों ने भी केबिनेट मिशन योजना को स्वीकार कर लिया।[1]

संविधान सभा का गठन : चुनाव

केबिनेट मिशन योजना के अनुसार जुलाई 1946 में संविधान सभा के 389 सदस्यों में से, प्रान्तों के लिये निर्धारित 296 सदस्यों के लिये ही चुनाव हुए। चुनाव में कांग्रेस ने 208 स्थानों पर विजय प्राप्त की। मुस्लिम लीग को 73 एवं स्वतंत्र उम्मीदवारों को 15 स्थान प्राप्त हुए। चुनावों के परिणाम स्वरूप संविधान सभा में जो दलीय स्थिति उत्पन्न हुई, उसे निम्न तालिका से स्पष्ट रुप से समझा जा सकता है-

कांग्रेस	208
मुस्लिम लीग	73
युनियनिस्ट पार्टी	1
यूनियनिस्ट मुस्लिम	1
यूनियनिस्ट शिड्यूल कास्ट	1
कृषक प्रजा पार्टी	1
अछूत प्रजा पार्टी	1
सिक्ख (कांग्रेस के अतिरिक्त)	1
साम्यवादी	1
स्वतंत्र	8
	296

संविधान सभा के चुनाव में मुस्लिम लीग को अच्छी सफलता प्राप्त नहीं हुई थी। अतः 9 दिसम्बर 1946 को होने वाले संविधान सभा के प्रथम अधिवेशन में मुस्लिम लीग के प्रतिनिधि शामिल नहीं हुए। अब मुस्लिम लीग ने यह मांग की कि पाकिस्तान के लिए बिल्कुल पृथक् संविधान सभा की स्थापना की जाय। ब्रिटिश सरकार और कांग्रेस ने इस बात के प्रयत्न किये कि लीग व्यर्थ के हठ को छोड़ दे और संविधान सभा के कार्य में सहयोग दे, परन्तु समस्त प्रयास असफल सिद्ध हुए।[2]

1. केबिनेट मिशन योजना के विस्तृत अध्ययन हेतु कृपया अध्याय संख्या आठ को देखने का श्रम करें।
2. T : Farming of India's Constitution.
   - Ed. B. Shiva Rao, P. 97.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वस्तुतः भारत की संविधान सभा का गठ्न तीन चरणों में पूरा हुआ। प्रथम, केबिनेट मिशन योजना के अनुसार संविधान सभा के सदस्यों का चुनाव हुआ, जिसमें कुल सदस्यों की संख्या 389 निश्चित की गयी थी। द्वितीय चरण के अन्तर्गत 3 जून 1947 की विभाजन की योजना के अनुसार संविधान सभा का पुनर्गठ्न किया गया, जिसके अनुसार संविधान सभा के कुल सदस्यों की संख्या 324 निश्चित की गयी थी। तृतीय चरण देशी रियासतों से सम्बन्धित थी और उनके प्रतिनिधि संविधान में अलग-अलग समय में सम्मिलित हुए। हैदराबाद नामक रियासत के प्रतिनिधि इसमे शामिल नहीं हुए। संविधान सभा के गठ्न के बाद 14 अगस्त 1947 को जवाहर लाल नेहरु ने यह शब्द कहे,"स्वाधीनता और सत्ता अपने साथ उत्तरदायित्व लाती हैं। वह उत्तरदायित्व अब इस भारत के लोगों की प्रतिनिधि, प्रभुता सम्पन्न संविधान सभा के कन्धो पर है।"

संविधान सभा के प्रमुख सदस्यः प्रमुख संविधान-निर्माता

संविधान सभा में जिन लोगों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा, उनमें पंडित जावाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभ भाई पटेल, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, डॉ. अम्बेडकर, के.एम. मुन्शी, गोपालास्वामी आयंगर, अलादि कृष्णा स्वामी अय्यर, पट्टाभि सीतारमैया, श्रीमती दुर्गा बाई, ठाकुरदास भार्गव एवं मौलाना आजाद का नाम विशेष रुप से उल्लेखनीय है। संविधान सभा के केन्द्र बिन्दु नेहरु तथा पटेल थे। जब उन दोनों में किसी प्रश्न पर परस्पर मतभेद की स्थिति उत्पन्न हो जाती थी, तो उनके आप-पास समर्थक एकत्रित हो जाते थे, जिसके परिणामस्वरुप संविधान सभा में लम्बी बहस चलती थी। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद संविधान सभा के अध्यक्ष होने के कारण अपने प्रभाव का खुलकर प्रयोग नहीं कर पाते थे। प्रसाद तथा पटेल अनुदारवादी थे, जबकि नेहरु आदर्शवादी थे, डॉ. अम्बेडकर कानून के प्रकाण्ड पण्डित थे, तो गोपालस्वामी आयंगर भी बहुत योग्य एंव अनुभव पुरुष थे। नेहरु के मुख्य परामर्शदाता कृष्णा स्वामी एवं बी.एन.राव थे, जबकि पटेल के के.एम.मुन्शी और वी.पी. मेनन थे। के.एम.मुन्शी कांग्रेस दल की ओर से आरम्भ से ही संविधान सभा में काम कर रहे थे। अतः उन्होंने संविधान के कार्य में महत्वपूर्ण योगदान किया था। मौलाना आजाद मुस्लिम सम्प्रदाय के प्रमुख नेता थे। अतः उनकी बात को बड़े ध्यान से सुना जाता था।

संविधान सभा में दो सौ पचास सदस्यों ने भाषण दिये, जिनमें से दो सौ से अधिक सदस्यों ने सक्रिय रुप से अपने विचार व्यक्त किये। संविधान सभा में होने वाली बहसों में सदस्यों द्वारा भाग लिया जाता था, परन्तु यह विशेष रुप सें उल्लेखनीय है कि संविधान से सम्बन्धित अधिकांश कार्य लगभग पचास व्यक्तियों ने किया। इनमें से बारह से कम व्यक्तियों ने सशक्त नेतृत्व प्रदान किया जिसके कारण महत्वपूर्ण निर्णय लिये गये।

संविधान निर्माण की कहानी

जुलाई 1946 में संविधान सभा के निर्वाचन हुए। कांग्रेस चाहती थी कि संविधान सभा यथाशीघ्र संविधान निर्माण का कार्य प्रारम्भ करे। जवाहरलाल नेहरु ने संविधान सभा के लिए

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आवश्यक सामग्री जुटाने हेतु कांग्रेस की ओर से एक विशेषज्ञ समिति की नियुक्ति की। इस समिति ने यह निश्चित किया कि किस प्रकार संविधान सभा के कार्य का संचालन हो।

संविधान सभा की प्रथम बैठक 9 दिसम्बर, 1946 ई. को संसद भवन के केन्द्रीय कक्ष में प्रारम्भ हुई। इसी दिन डॉ. सच्चिदानन्द सिन्हा को सर्वसम्मति से संविधान सभा का अस्थायी अध्यक्ष चुना गया। संविधान सभा की इस पहली बैठक में 210 सदस्य उपस्थित थे। सदस्यों ने अपने परिचय पत्र पेश किये एवं रजिस्टर में हस्ताक्षर किये। 11 दिसम्बर 1946 ई. की बैठक में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को संविधान सभा का स्थायी अध्यक्ष चुना गया और वे अन्त तक अध्यक्ष बने रहे। श्री बी.एन.राव को 'संविधान सलाहकार' के पद पर नियुक्त किया गया।

(1) उद्देश्य प्रस्ताव-संविधान निर्माण की दिशा में सबसे पहला काम था जवाहर लाल नेहरु द्वारा प्रस्तुत 'उद्देश्य प्रस्ताव'। 13 दिसम्बर 1946 में इस प्रस्ताव को प्रस्तुत कर पं. जवाहर लाल नहरु ने संविधान की आधारशिला रखी। इसमें देश को एक स्वतन्त्र सर्वोच्च सत्ता सम्पन्न गणराज्य घोषित किया गया था। संविधान सभा ने 13 दिसम्बर से 19 दिसम्बर 1946 तक आठ दिन पं. नेहरु के 'उद्देश्य प्रस्ताव' पर विचार-विमर्श किया। 22 जनवरी 1947 ई. को इस प्रस्ताव का संविधान सभा के समस्त सदस्यों ने सर्वसम्मति से पारित कर दिया। उद्देश्य प्रस्ताव के सम्बन्ध में पं.नेहरु ने कहा था कि "इस प्रस्ताव में हमारी वे आकांक्षाएँ व्यक्त की गई है। जिनके लिये हमने कठोर संघर्ष किये हैं। संविधान सभा उन्ही उद्देश्यों के आधार पर हमारे संविधान का निर्माण करेगी।" के.एम.मुन्शी के अनुसार "नेहरु का उद्देश्य सम्बन्धी यह प्रस्ताव ही हमारे स्वतंन्त्र गणतन्त्र की जन्म कुण्डली है।" जो महत्व अमेरिकी संविधान में स्वतंत्र की घोषणा का है, वही भारतीय संविधान में 'उद्देश्य प्रस्ताव का है।'

(2) संविधान सभा द्वारा विभिन्न समितियों का निर्माण-'उद्देश्य प्रस्तव' की स्वीकृति के बाद संविधान सभा ने संविधान निर्माण के कार्य को सुगम बनाने के लिये विभिन्न समितियों का निर्माण किया। मुख्य रुप से इन समितियों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम वर्ग की समितियों में प्रक्रिया समिति, वार्ता समिति, संचालन समिति एंव कार्य समिति आदि थीं, जिनका प्रमुख कार्य संविधान निर्माण की प्रक्रिया के प्रश्नों को हल करना था। दूसरे वर्ग में संविधान समिति, प्रान्तीय संविधान समिति, संघ शक्ति समिति मूल अधिकारों एवं अल्प संख्यकों आदि से सम्बन्धित समिति थी, जिनका प्रमुख कार्य संविधान का निर्माण करना था।

इसके अतिरिक्त संविधान को अन्तिम रुप प्रदान करने हेतु 'प्रारुप समिति' का गठन किया गया था। 29 अगस्त 1947 ई. को 'प्रारुप समिति' गठित की गई थी। डॉ. अम्बेडकर इस समिति के अध्यक्ष चुने गये। इस समिति के अन्य सदस्यों में श्री एन गोपालास्वामी आयंगर, अल्लादि कृष्ण स्वामी अय्यर, मोहम्मद सादुल्ला, के.एम.मुन्शी, बी.एल.मित्तल और डी.पी.खेतान आदि थे। कुछ समय बाद बी.एल.मित्तल के स्थान पर एन. माधवराज को सदस्य बना दिया गया और 1948 में डी.पी. खेतान की मृत्यु हो जाने से उनके स्थान पर टी.टी. कृष्णामाचारी को लिया गया। प्रारुप समिति का यह काम था कि वह परामर्श शाखा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

द्वारा तैयार किये गये संविधान का परीक्षण करे और फिर संविधान को विचार के लिये संविधान सभा के सन्मुख प्रस्तुत करे।

(3) संविधान निर्माण की अवस्थाएँ

(i) संविधान सभा कार्यालय द्वारा निर्मित प्रथम प्रारुप- संविधान सभा के कार्यालय की परामर्श शाखा ने 17 मार्च 1947 ई. को प्रस्तावित संविधान के बारे मे अपने विचार व्यक्त करने हेतु संविधान की मुख्य विशेषताओं के सम्बन्ध में एक प्रश्न सूची विभिन्न प्रान्तीय विधान मण्डलों तथा केन्द्रीय विधान मण्डलों के पास भेजी। इसी समय ब्रिटिश सरकार ने 3 जून 1947 ई. को देश के विभाजन की योंजना प्रस्तुत की।

अक्टूबर 1947 में संविधान सभा के सचिवालय की परामर्श शाखा ने संविधान का पहला प्रारुप तेयार किया। यह पहला प्रारुप संवैधानिक परामर्शदाता बी.एन.राव के निर्देशन में तैयार किया।यह पहला प्रारुप तैयार करने से पूर्व इस कार्यालय ने 60 देशों के संविधानों के सम्बन्ध मे महत्वपूर्ण तथ्य तीन ग्रन्थों में प्रकाशित किये और उनकी प्रतिलिपियाँ संविधान सभा के सदस्यों में वितरित कर दी। प्रथम प्रारुप तैयार होने के बाद संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेन्द्र प्रसद ने संवैधानिक परामर्शदाता श्री बी.एन.राव को अमेरिका, कनाडा, आयरलैण्ड तथा ब्रिटेन आदि देशों की यात्रा पर भेजा, ताकि वह विश्व के प्रमुख संविधान-विशेषज्ञों से विचा-विमर्श कर एक प्रतिवेदन प्रस्तुत कर सकें। उन्होंने 1947 के अन्तिम तीन महीनों में यात्रा कर अपने विचार-विमर्श के महत्त्वपूर्ण परिणाम प्रतिवेदन के रुप में संविधान सभा के सम्मुख प्रस्तुत किये।

(ii) प्रारुप समिति द्वारा द्वितीय प्रारुप-संविधान सभा द्वारा तैयार प्रारुप प्रकाशित होने के बाद उस पर अनेक टिप्पणियाँ एवं आलोचनाएँ प्राप्त हुई। इसके अतिरिक्त इसमें सुधार हेतु अनेक सुझाव प्राप्त हुए। सभा के अध्यक्ष ने प्रारुप समिति को यह काम सौंपा कि इन सभी सुझावों को ध्यान में रखते हुए, संविधान का नवीन प्रारुप तैयार कर उसे संविधान सभा के सम्मुख प्रस्तुत करे। प्रारुप समिति ने भारत का जो प्रारुप संविधान तैयार किया, वह फरवरी 1948 में संविधान सभा के अध्यक्ष को सुपुर्द कर दिया गया। प्रारुप संविधान के प्रकाशित होने के बाद संविधान में संशोधन हेतु अनेक सुझाव प्राप्त हुए। एक विशिष्ट समिति ने इन सुझावों पर विचार किया तथा परिवर्तन के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण सहित संशोधित प्रारुप का मुद्रित संस्करण 26 अक्टूबर 1948 ई. को संविधान सभा के अध्यक्ष के सम्मुख प्रस्तु कर दिया इसके बाद इस संस्करण की प्रतिलिपियाँ संविधानं सभा के सदस्यों में वितरित कर दी गयी। 15 नवम्बर 1948 को प्रारुप संविधान पर धारावार विचार प्रारम्भ हुआ। 8 जनवरी 1949 ई. तक 67 अनुच्छेदों पर संविधान सभा में विचार हो चुका था। इसे प्रथम वाचन कहा जाता है क्योंकि इस कालावधि में संविधान पर सामान्य वाद-विवाद हुआ था।

(iii) संविधान प्रारुप का द्वितीय वाचन- संविधान सभा के दसवें अधिवेशन में प्रारुप संविधान के 315 अनुच्छेदों पर धारावार विचार पूरा हुआ इसके बाद प्रस्तावना पर विचार कर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उसे अन्तिम रूप से स्वीकार कर लिया गया इस प्रकार के समस्त वाद विवाद की विशेषता यह थी कि सभी प्रश्नों पर निर्णय लगभग पूर्ण सहमति से लिये गये थे। यह संविधान का दूसरा वाचन था।

संविधान प्रारूप का तृतीय वाचन- संविधान सभा के ग्यारहवें अधिवेशन में संविधान के प्रारूप का तीसरा वाचन हुआ, जो 14 से 27 नवम्बर 1949 तक चला। संविधान सभा के अन्तिम दिन 26 नवम्बर 1949 को संविधान की तीन प्रतियाँ सभा पटल पर रखी गयी। तदन्तर डॉ. अम्बेडकर ने संविधान सभा द्वारा निर्मित संविधान को पारित करने का प्रस्ताव रखा और 26 नवम्बर 1949 को संविधान पारित घोषित कर दिया गया। संविधान सभा का बारहवाँ अधिवेशन 24 जनवरी, 1950 ई. को हुआ। सभा के अध्यक्ष ने सभी सदस्यों से प्रार्थना की कि वे एक-एक करके तीनों प्रतियों पर हस्ताक्षर करें। इस पर 308 सदस्यों द्वारा संविधान पर हस्ताक्षर किये गये। इसी अवसर पर डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को भारतीय गणतन्त्र का प्रथम राष्ट्रपति चुना गया।

सम्पूर्ण संविधान के निर्माण में 2 वर्ष 11 माह एवं 18 दिन का समय लगा। इसके निर्माण पर 64 लाख रुपया खर्च हुआ। संविधान के प्रारुप पर 114 दिन तक चर्चा हुई अपने अन्तिम रुप में संविधान में 395 अनुच्छेद एवं 8 अनुसूचियाँ थीं। यद्यपि संविधान के कुछ अनुच्छेदों को 26 नवम्बर 1949 से ही लागू कर दिया गया था, परन्तु शेष संविधान 26 जनवरी के दिन ऐतिहासिक महत्व के कारण 26 जनवरी 1950 ई. से लागू किया गया।

डॉ. अम्बेडकर ने कहा था कि," अमेरिका, कनाडा, दक्षिण अफ्रीका और आस्ट्रेलिया की संविधान सभाओं को अपने सविधानों की रचना में जितना समय लगा था, उसे देखते हुए भारतीय संविधान सभा ने देश के लिये बहुत शीघ्र संविधान बना लिया था और उसे बधाई दी जा सकती है।"

संविधान सभा के विवादास्पद प्रसंग

संविधान सभा में जब किसी भी विषय पर चर्चा होती थी, तो छोटे-छोटे प्रश्नों को लेकर भी कभी-कभी मतभेद एवं वाद-विवाद उत्पन्न हो जाता था। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद मन्त्रिमण्डल के सदस्य होने के साथ-साथ संविधान सभा के भी अध्यक्ष थे अतः प्रश्न यह पैदा हुआ कि उन्हें सभा की वैधानिक कार्यवाहियों की अध्यक्षता करने का अधिकार नहीं है। नेहरु तथा पटेल का मत था कि संविधान सभा के अध्यक्ष पद के लिए डॉ राजेन्द्र प्रसाद के स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति को चुन लिया जाय और उन्हें मन्त्रिमण्डल के सदस्य के रुप में बना रहने दिया जाय। नेहरु ने जब यह मत व्यक्त किया कि केबिनेट के एक सदस्य का संविधान सभा की अध्यक्षता करना लोकतन्त्र शासन में सर्वथा अनुचित है, तो बी.एन.राव ने सुझाव दिया कि एक उपाध्यक्ष का चुनाव किया जाय, जो संविधान सभा के अध्यक्ष के नाम से सभा की वैधानिक कार्यवाहियों की अध्यक्षता करे। इससे पटेल के प्रसाद के साथ सम्बन्ध तनावपूर्ण हो गये परिणामस्वरुप मन्त्रिमण्डल की एक बैठक में दोनों के बीच कहासुनी भी हो गई। इस बैठक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में उपस्थित एक अधिकरी ने इस घटना पर टिप्पणी करते हुए कहा कि,"ये लोग, जिनकी हम महामानवों के रुप में पूजा करते हैं, बच्चों की तरह झगड़ा कर रहे हैं।"

वैधानिक दृष्टि से प्रसाद और स्पीकर के रुप में मावलंकर की स्थिति के प्रश्न को लेकर एक दूसरा विवाद उत्पन्न हो गया। प्रसाद संविधान सभा के अध्यक्ष एंव मावलंकर अन्तः कालीन संसद के स्पीकर थे। प्रसाद ने अपनी इच्छा के विरुद्ध एक स्पीकर की नियुक्ति के लिए इस शर्त पर स्वीकृति दे दी कि वह संविधान सभा के अध्यक्ष के अधीन रहेगा। मावलंकर ने समान पद और अपने सचिवालय पर पूर्ण नियत्रण की मांग की। काफी संघर्ष के बाद प्रसाद ने यह स्वीकार कद लिया कि उन्हें संविधान सभा का अध्यक्ष और मावलंकर को अन्तः कालीन संसद का स्पीकर बना दिया जाये।

तीसरा विवाद यह पैदा हुआ कि बी.एन.राव अपने साथ लेजिस्लेटिव असेम्बली का पद सचिवालय ले गये। इस पर प्रसाद ने यह कहा कि उनकी अनुमति के बिना नये सचिवालय की नियुक्ति का अधिकार मावलंकर को नहीं है। यह समस्या जब नेहरु के समक्ष उपस्थित हुई, तो उन्होंने प्रसाद को इस बात के लिये तैयार किया कि मावलंकर को इन नियुक्तियों को करने का पूर्ण अधिकार है।[1]

संविधान सभा की स्थिति, रचना एवं कार्यकरण के सम्बन्ध में कतिपय आलोचनात्मक टिप्पणियाँ

नेहरु के अनुसार,"हमारी संविधान सभा एक अन्धेरी घाटी से निकालकर स्वतन्त्रता की सूर्य किरणों तक पहुँची थी।" कई सदस्य तो कुछ समय पूर्व ही जेल से रिहा हुए थे। यकायक उन्हें स्वतन्त्र भारत के लिए संविधान निर्माण करने का अवसर प्राप्त हो गया। फिर भी, अनेक लोगों ने अपने तर्क के आधार पर संविधान सभा की आलोचना की है, जो इस प्रकार है-

(1) संविधान सभा भारतीय जनता की प्रतिनिधिक संस्था नहीं-कतिपय आलोचकों का मत है कि संविधान सभा के सदस्यों का परोक्ष निर्वाचन नहीं होने के कारण इसे भारतीय जनता की प्रतिनिधिक संस्था नहीं माना जा सकता। चर्चित ने कहा था कि,"संविधान सभा में देश की एक बड़ी जाति का ही प्रतिनिधित्व हुआ।" लार्ड साइमन ने कहा कि,"संविधान सभा हिन्दुओं की एक संस्था है।" और पूछा कि "क्या सरकार दिल्ली में सर्वण हिन्दुओं की इस बैठक को संविधान सभा भी कह सकती है?" राष्ट्रीय कांग्रेस समाजवादी वर्ग के नेता श्री जयप्रकाश नारायण ने इस सम्बन्ध सभा से बहुत भिन्न है, जिसकी रुपरेखा पं. नेहरु ने हमारे सामने रखी थी। इसकी रचना ब्रिटिश सरकार ने की है, अतः हम इसके द्वारा उस स्वतन्त्रता को पाने की आशा कदापि नहीं कर सकते, जिसके लिए हम संघर्ष करते रहे हैं।"

यद्यपि संद्धान्तिक दृष्टि से उपर्युक्त विचार सत्य है, परन्तु व्यवहारिक दृष्टि से इसमें

1. दुर्गादास; कर्जन से नेहरु और उसके पश्चात, पृष्ठ 286-187.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कोई बल नहीं है।

(i) कांग्रेस ने केबिनेट मिशन योजना के संविधान सभा सम्बन्धी प्रस्तावों को तत्कालीन परिस्थितियों में भारत की एकता का एक सुन्दर हल समझा। अतः उसने इसे स्वीकार कर लिया। इसके अतिरिक्त भारतीय स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व तथा उसके तुरन्त बाद भारत में विशाल पैमाने पर साम्प्रदायिक दंगे हो रहे थे। अतः ऐसी परिस्थितियों में संविधान सभा के प्रत्यक्ष चुनाव की बात व्यवहारिक नहीं थी।

(ii) यदि संविधान सभा के सदस्य प्रत्यक्ष रूप से चुने जाते, तो भी उसका स्वरूप कम-अधिक रूप में ऐसा ही होता। उदाहरणस्वरूप, 1952 के प्रथम आम चुनाव में संविधान सभा के सदस्यों ने प्रत्यक्ष रूप से चुनाव में भाग लिया और बहुत अच्छे मतों से विजयी हुए।

(iii) तृतीय, यह भी कहा जाता है कि संविधान सभा में एक ही दल कांग्रेस का बोलबाला था। ग्रेन विल आस्टिन ने लिखा है कि,"एक दलीय देश में संविधान सभा निश्चित रूप से एक दलीय संस्था थी।"

कांग्रेस के तो प्रायः सभी चोटी के नेता संविधान सभा के सदस्य थे। इनमें पं. नेहरु सरदार पटेल, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, मौलाना आज़ाद, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, पं. गोविन्द वल्लभ पंत, बालगोविन्द खेर, बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन, के.एम.मुन्शी एंव आचार्य जी.बी.कृपलानी आदि कांग्रेस नेता संविधान सभा के सदस्य थे। फिर भी, कांग्रेस ने सभी प्रमुख सम्प्रदायों एवं राजनीतिक विचारधाराओं को प्रतिनिधित्व दिया था। संविधान सभा के सदस्यों में से कुछ ऐसे सदस्य थे, जिनका कांग्रेस दल से कभी कोई सीधा सम्बन्ध नहीं था। ऐसे सदस्यों में डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन, गोपाल स्वामी आयंगर, डॉ. अम्बेडकर, ए.के. अय्यर, एन जी आयंगर, के संथानम् एम.आर.जयकर, सच्चिदानंद सिन्हा, श्यामाप्रसाद मुकर्जी, बी.सिवाराव, के.टी.शाह, एम.सी.मुखर्जी एवं डॉ. हृदयनाथ जैसे कांग्रेस विरोधी व्यक्ति भी इसके सदस्य थे। डॉ. अम्बेडकर तो प्रारुप समिति के सभापति पद पर चुने गये थे। वास्तव में प्रारुप समिति के नौ सदस्यों में केवल एक प्रमुख कांग्रेसी के.एम.मुन्शी थे।

तेज बहादुर सप्रू एवं जय प्रकाश नारायण को भी संविधान सभा की सदस्यता के लिए आमंत्रित किया गया था, परन्तु सप्रू ने स्वास्थ्य सम्बन्धी कारणों से इसका सदस्य बनने से इन्कार कर दिया, जबकि जयप्रकाश नारायण ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया। इन सम्बन्ध में सभा की सद् इच्छा का प्रमाण यह है कि उसने लीग के टिकिट पर निर्वाचित ऐसे मुस्लिम सदस्यों को भी संविधान सभा की सदस्यता प्रदान की, जिन्होंने विभाजन के बाद भारत में रहना पसन्द किया था। लीग के एक प्रतिनिधि मोहम्मद सादुल्ला को प्रारुप समिति का सदस्य नियुक्त किया गया था। सभा में अल्पसंख्य वर्गों को प्रर्याप्त प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया था। इसमें वर्गीय आधार पर संविधान सभा का गठन किया गया। इस बात की पुष्टि निम्नलिखित तालिका से हो जाती है-

नेपाली	1 (बंगाल से निर्वाचित।)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सिक्ख	5 (केबिनेट मिशन योजना मे दिये गये प्रतिनिधित्व से एक अधिक।
पारसी	3
ईसाई	7
आंग्ल भारतीय	3
पिछड़ी हुई जनजातियाँ	5
अनुसूचित जातियाँ	33
मुस्लिम	31 (केबिनेट मिशन योजना मे दिये गये प्रतिनिधित्व से तीन अधिक)

इस प्रकार विभाजन के बाद देशी रियासतों के प्रतिनिधित्व के अतिरिक्त संविधान सभा का गठन हो चुका था अल्पसंख्यकों को 253 में से 88 सीटों पर प्रतिनिधित्व दिया गया, जो 37 प्रतिशत था।

इस प्रकार दलीय दृष्टि से संविधान सभा मे भारतीय जनता को पूर्ण प्रतिनिधित्व प्राप्त था। यद्यपि साम्यवादी दल का कोई भी सदस्य संविधान सभा के लिए नहीं चुना गया था, परन्तु मार्क्सवादी तथा फारवर्ड दल के सदस्य संविधान सभा के लिए निर्वाचित हुए थे। समाजवादी दल ने प्रतिनिधित्व को स्वीकार नहीं किया था, परन्तु इस विचारधारा से सम्बन्धित अनेक व्यक्ति कांग्रेस दल की ओर से संविधान सभा के सदस्य थे। डॉ. जयकर एवं डॉ श्यामा प्रसाद मुखर्जी दोनों ही हिन्दू महासभा के अध्यक्ष रह चुके थे और वे संविधान सभा के सदस्य थे।

इन सबके अतिरिक्त कांग्रेस दल का क्षेत्र बहुत व्यापक था। सही अर्थों में वह एक राजनीतिक दल नहीं, अपितु राष्ट्रीय आन्दोलन के संचालन की राष्ट्रीय संस्था थी और स्वयं कांग्रेस के अन्तर्गत विभिन्न विचार धाराओं के प्रतिनिधि थे। इन सभी तथ्यों के आधार पर के संस्थानम् प्राप्त न हो।" संविधान सभा के एक सदस्य बी.शिवाराव ने अपने सम्पादित ग्रन्थ में इसी विचार का समर्थन किया है। ग्रेनविल ने विशद् अध्यक्ष एवं संविधान सभा के अनेक सदस्यों सें साक्षात्कार करने के बाद अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि,"अप्रत्यक्ष रुप से निर्वाचित और इस दृष्टि से भारतीय जनता के प्रति उत्तरदायी न होने पर भी संविधान सभा अत्याधिक प्रतिनिध्यात्मक संस्था थी।"

संविधान सभा में बहुमत के बल पर निर्णय लेने के बजाय सर्व सम्मति प्राप्त करने की कोशिश की गई। नेहरु ने संविधान सभा के सदस्यों से कहा था, "आप जल्दबाजी न करें और जहाँ तक सम्भव हो, एक राय से फैसले करें।" कुछ नेताओं का यह मानना था कि बहुमत के बल पर बना हुआ संविधान स्थायी नहीं होता। इसलिए जिस समय राष्ट्र भाषा के प्रश्न पर तीखी बहस चल रही थी, उस समय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने सदस्यों से कहा था कि,"इस विषय पर जो निर्णय हो, वह यदि पूरे देश को स्वीकार नहीं होगा, तो उसे अमल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में लाना बहुत कठिन होगा।"[1] इन तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि संविधान सभा में एक ही दल कांग्रेस दल का बोलबाला नहीं था।

(2) संतिधान सभा प्रभुत्व सम्पन्न संस्था नहीं- संविधान सभा के गठन एवं उसके द्वारा कार्य आरम्भ किये जाने के बाद ही संविधान सभा की स्थिति के बारे में एक विवाद उठ खड़ा हुआ। ब्रिटिश संसद के एक वाद-विवाद में विस्टन चर्चिल ने संविधान सभा की वैधता को चुनौती दे दी।[2] संविधान सभा के एक सदस्य एम.आर.जयकर ने कहा था कि, "संविधान सभा एक सम्प्रभु संस्था नहीं है और इसकी शक्तियाँ मूलभूत सिद्धान्तों एवं प्रक्रिया दोनों की दृष्टि से मर्यादित है।"[3] जयकर का मानना था कि केबिनेट मिशन योजना के अनुसार संविधान सभा का गठन किया गया था और यह ब्रिटिश संसद की सत्ता के ही अधीन थी। उसे केबिनेट मिशन योजना में वर्णित संविधान की मूल रुपरेखा में परिवर्तन करने का कोई अधिकार नहीं था, लेकिन संविधान सभा के अधिकांश सदस्यों ने इन प्रतिबन्धों को मानने से इन्कार करते हुए संविधान सभा की सम्प्रभुता पर बल दिया। संविधान सभा की प्रभुसत्ता पर विचार करते हुए 11 दिसम्बर 1946 को जी.एन.आयंगर ने संविधान सभा में स्पष्ट कहा कि," इस संविधान सभा का स्त्रोत यह नहीं है कि इसके निर्माता सम्राट की सरकार के तीन सदस्य थे, वरन् यह है कि उसे प्रस्तावों को जनता ने स्वीकार कर लिया है।"[4] जवाहर लाल नेहरु ने संविधान सभा की प्रभुसत्ता को स्वीकारते हुए स्पष्ट रुप से कहा था कि, "सरकारें राजकीय पत्रों से पैदा नहीं होती। वास्तव में वे जनता की इच्छा की अभिव्यक्ति होती है। हम आज यहाँ इसलिये एकत्रित हो पाये है क्योंकि हमारे पीछे जनता की शक्ति है। जहाँ तक जनता, कोई दल या वर्ग नहीं, वरन् समूची जनता चाहेगी, वहाँ तक हम यहाँ रहेंगे।"[5]

उपर्युक्त कथनों से यह स्पष्ट हो जाता है कि संविधान सभा ने अपनी पूर्ण प्रभुता को प्रदर्शित भी किया था। प्रथम यह प्रस्ताव पारित किया गया था कि ब्रिटिश सरकार या बाहर की किसी अन्य शक्ति के आदेश से संविधान सभा विघटित नहीं होगी। जब सभा स्वयं दो तिहाई बहुमत से इसे भंग करने का प्रस्ताव पारित कर दे, तभी संविधान सभा को भंग किया जायेगा। द्वितीय, संविधान सभा के संचालन की पूर्ण शक्ति निर्वाचित सभापति के हाथ में थी। इस प्रकार भारतीय संविधान सभा ने संविधान निर्माण का कार्य पूर्ण प्रभुता की भावना से आरम्भ किया। इसके अतिरिक्त 3 जून 1947 की 'माउण्ड बैटन घोषणा' से संविधान सभा की स्थिति पूर्ण परिवर्तित हो गई। इस घोषणा के आधार पर 15 अगस्त 1947ई. को भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम पारित किया गया, जिसके द्वारा भारतीय संविधान सभा को पूर्ण प्रभुसत्ता

1. रजनी कोठारी, भारत में राजनीति, पृष्ठ 77-78.
2. बनर्जी; ए. सी. : द मेंकिंग ऑफ द इण्डियन कॉनस्टिट्यूशन, पृष्ठ 358.
3. सी. ए. डी; खण्ड 1, पृष्ठ 70.
4. वही, पृष्ठ 70.
5. सी. ए. डी. : खण्ड 1, पृष्ठ 70

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सम्पन्न संस्था बना दिया गया। इससे संविधान सभा पर केबिनेट मिशन द्वारा लगाये गये प्रतिबन्ध वैधानिक दृष्टि से भी समाप्त हो गये।

(3) संविधान सभा प्रत्यक्ष रुप से निर्वाचित नहीं- संविधान सभा के सदस्यों का चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर और प्रत्यक्ष निर्वाचन के आधार पर नहीं किया गया था। उसका निर्वाचन प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओं के सदस्यों द्वारा हुआ था तथा देशी रियासतों के प्रतिनिधियों का चुनाव भी जनता द्वारा वयस्क मताधिकार के आधार पर नहीं किया गया था। ऐसा कहा जाता है कि संविधान सभा द्वारा निर्मित संविधान न तो जनमत संग्रह हेतु प्रस्तुत किया गया था और न ही जनमत संग्रह ने इस पारित किया था, इसलिये यह कहा जाता है कि संविधान सभा को जनता से प्रत्युक्ष अनुज्ञप्ति (मेण्डेट) का अधिकार प्राप्त नहीं था। यदि तत्कालीन परिस्थितियों में प्रत्यक्ष निर्वाचन के आधार पर संविधान सभा का गठन सम्भव नहीं था, तो कम से कम संविधान जनमत से पारित होने के बाद ही लागू किया जाना चाहिये था।

लेकिन इस प्रकार की आलोचना में काई सार नहीं है। व्यावहारिक कारणों से प्रत्यक्ष निर्वाचन एवं जनमत संग्रह करवाया जाना सम्भव नहीं था। राष्ट्रव्यापी जनमत संग्रह की व्यवस्था, जिसमें 18 करोड़ मतदाता हों अत्यधिक दुर्बोध एवं व्यय साध्य होती। यह बात भी पूर्ण रुप से स्पष्ट है कि यदि संविधान सभा का वयस्क मताधिकार के आधार पर प्रत्यक्ष निर्वाचन भी होता या जनमत संग्रह करवाया जाता, तो भी उससे संविधान के स्वरुप एवं संगठन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। दो वर्ष बाद प्रथम आम चुनाव (1952 में) में संविधान सभा के अधिकांश सदस्य सरलता से जनता द्वारा निर्वाचित हो गये थे।

(4) साम्प्रदायिक आधार पर संविधान सभा का संगठन-कतिपय आलोचकों का मत है कि साम्प्रदायिक आधार पर संविधान सभा का गठन किया गया था। प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओं के सदस्यों द्वारा साम्प्रदायिकता के आधार पर ही संविधान सभा के सदस्यों को चुनना था। यह व्यवस्था इसलिये की गई, ताकि साम्प्रदायिक सहयोग प्राप्त हो सके एवं संविधान सभा मे किसी एक ही सम्प्रदाय को बहुमत प्राप्त न हो सके।

(5) वकीलों का प्रभुत्व- आलोचकों का कहना है कि संविधान सभा में वकीलों का प्रभुत्व था और किसानों एवं मजदूरों को समुचित प्रतिनिधित्व प्रदान नहीं किया गया था। भारत कृषि प्रधान देश होने के कारण यहाँ अधिकांश लोग कृषक हैं। दूसरी तरफ इस संविधान का निर्माण वकीलों ने किया है। अतः यह विवाद बढ़ायेगा एवं वकीलों को लाभ पहुंचाएगा, किन्तु इस आलोचना में भी कोई सार नहीं है, क्योंकि संविधान एक कानून होता है और उसके निर्माण कानून की जानकारी रखने वाले लोग बहुत अच्छा योगदान दे सकते है। सामान्यतः मजदूर तथा किसान संवैधानिक कानून की बारीकियों को आसानी से नहीं समझ सकते।

संविधान निर्माण की समस्याएँ

संविधान सभा को आरम्भ से ही अनेक राजनीतिक, संवैधानिक एवं व्यावहारिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा इसकी प्रमुख समस्याएँ निम्नलिखित थी-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(1) संविधान सभा की प्रथम समस्या अनेकता में एकता स्थापित करने की थी। भारत मे अनेक जाति, धर्म, भाषा के लोगों का निवास होने के कारण सर्वसम्मति से संविधान का निर्माण करना एक अत्यन्त जटिल समस्या थी।

(2) केबिनेट मिशन योजना के अनुसार संविधान सभा केवल तीन विषय संघीय सरकार को देगी एवं शेष विषय प्रान्तों को। इस प्रकार द्वितीय कठिनाई यह भी कि क्या संविधान सभा उन अंशों से बंधी हुई थी।

(3) तीसरी कठिनाई यह थी कि मुस्लिम लीग ने सभा की बैठक में सम्मिलित होने से इन्कार कर दिया था। अतः यह स्पष्ट नहीं हो पा रहा था कि उंसकी अनुपस्थिति में लिये जाने वाले निर्णय उचित होंगे या नहीं।

(4) चौथी कठिनाई साम्प्रदायिक समस्या की थी। साम्प्रंदायिक समस्या के कारण भारत का विभाजन हुआ था। अतः अल्पसंख्यकों का विश्वास प्राप्त करेने के लिए साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली को किस प्रकार समाप्त की जाए।

(5) पांचवीं कठिनाई देशी रियासतों से सम्बन्धित थी। भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम ने देशी रियासतों को बहुत अधिक स्वतन्त्रता तथा छूट प्रदान कर दी थी। देशी नरेश संविधान सभा में भाग लेंगे या नहीं; कुछ नरेश भारतीय संघ में सम्मिलित नहीं होना चाहते थे। अतः एक प्रमुख समस्या यह थी कि इन देशी रियासतों को किस प्रकार से भारत का अभिन्न अंग बनाया जाए। इन कठिनाइयों के बावजूद भी भारतीय संविधान सभा ने सहजता से कार्य किया। रजनी कोठारी ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि,"एशिया और अफ्रीका के नये स्वतंत्र देशों को अपना संविधान बनने और उसे अमली रुप देने में बहुत कठिनाई हुई है। भारत में ऐसी कोई कठिनाई नहीं हुई। न सिर्फ यहाँ तेजी से विस्तृत संविधान बना लिया गया, बल्कि उसके आधार लोकतन्त्रीय संस्थाओं का लम्बा-चौड़ा ढाँचा भी खड़ा कर दिया गया, जो अब तक काम कर रहा है।[1]

संविधान सभा की विशेषताएँ

श्री पुरुषोत्तम दास टण्डन ने भारत की संविधान सभा की तुलना फ्रान्सीसी संविधान सभा से की है। ग्रेनविल आस्टिन के अनुसार भारतीय संविधान सभा ने रुस तथा चीन के उदाहराणों को स्वीकार नहीं किया, जहाँ संवैधानिक प्रयोक्ति, राष्ट्रीय एकता एैर सामाजिक पुनरुद्धार को निरंकुश साधानों से प्राप्त किया गया था। जब हम सोंवेधान सभा की क्रियाशीलता का गहन अध्ययन करते हैं, तो उसकीं कई विशेषताओं के बारे में स्पष्ट रुप से जानकारी प्राप्त होती है।

प्रथम, संविधान सभा ने सहमति से कार्य किया है। सहमति के अन्तर्गत सर्वसम्मति से निर्णय लिये जाते हैं। संविधान सभा के सदस्यों ने इसका महत्व समझाते हुए अपनी

---

1. रजनी कोठारी : भारत में राजनीति, पृष्ठ 74-75.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सम्पूर्ण शक्ति इस दिशा में इस विश्वास के साथ लगा दी कि सहमति से निर्मित संविधान स्थिरता देगा तथा प्रभावपूर्ण तरीके से कार्य करेगा। संविधान की सुनने के बाद ही उन पर निर्णय लिया जाता था। सभा के एक सदस्य ठाकुर दास भार्गव ने संविधान के सम्बन्ध में ठीक ही कहा था,"मुझे वास्तव में काफी प्रसन्नता है कि हम सर्व सम्मति से एक भव्य संविधान का निर्माण कर सके है।"[1]

द्वितीय, संविधान सभा ने समायोजन के सिद्धान्त को आधार बनाकर कार्य किया। समायोजन में अनुकूलता एवं सामंजस्य की क्षमता होती है। इसका उद्देश्य किसी कार्य को उसके स्वरुप में परिवर्तन किये बिना सम्पादित करना एंव सद्भावना का प्रसार करना है। संविधान सभा ने विदेशी संविधानों की अच्छाइयों को बहुत कुशलता से भारतीय संविधान में समायोजित किया है।

तृतीय, संविधान सभा ने "चयन और परिवर्तन" की भूमिका अदा की है एवं उसने विदेशी धातु को भारतीय सिक्कों में कुशलतापूर्वक ढाला है। संविधान सभा ने अन्य संविधानों से ली गई धाराओं को आवश्यकतानुसार बदलकर संविधान में जोड़ दिया है।

ग्रेनविल ऑस्टिन के अनुसार,"यह सोचना कि भारतीय संविधन सभा एक अनुकृति थी, गलत होगा, क्योंकि जिन धाराओं को अपनाया गया, उसमें संविधान सभा चयन के दायित्व से मुक्त नहीं थी।" डॉ. सुभाष काश्यप लिखते है कि,"संविधान सभा में नेताओं की बाराबर कोशिश यही रही कि समझौते और समन्वय की भावना से काम हो तथा निर्णय बहुमत के आधार पर नहीं, बल्कि आमराय के आधार पर लिए जाएँ। इसी का परिणाम था कि जो संविधान बना, उसे संविधान सभा की ही नहीं, अपितु विस्तृत जनमत की भी भारी सहमति और स्वीकृति प्राप्त थी।"

संविधान सभा का दृष्टिकोण एवं प्रवृत्तियाँ

मत-मतान्तर लोकतांत्रिक व्यवस्था का प्राण है। संविधान निर्माण करने वाली संविधान सभा के अन्दर एवं बाहर संविधान के विषय में विभिन्न दृष्टिकोण अपनाये गये थे। कुछ लोगों का मानना था कि संविधान सभा को देश की पुरानी संस्थाओं को नये युग के अनुरुप कुछ परिवर्तन के साथ स्थापित करना चाहिये। कुछ लोग अशिक्षित जनता को वोट तथा चुनाव का अधिकार देने के पक्ष में नहीं थे, क्योंकि यें चीजें उनकी दृष्टि में पुरानी परम्पराओं के प्रतिकूल थी। परन्तु आधुनिकवादी, जो अधिक संख्या में थे, उनका मानना था कि प्राचीन राज्य का अनुभव अब उपयोगी सिद्ध नहीं होगा, क्योंकि आधुनिक युग की मांग है कि जनसमूह को देश के शासन में भाग लेने का अवसर दिया जाए। संविधान सभा के सदस्यों ने स्वतन्त्रता पूर्वक अपने मतों और विचारों को प्रस्तुत किया और प्रभावपूर्ण तरीके से दो पूर्णतः भारतीय विचारों- सहमति व समायोजन को लागू किया। संविधान निर्माण में संविधान सभा के दृष्टिकोण एवं उसकी प्रमुख प्रवृत्तियों का उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है-

1. सी.ए.डी. : XI, 5,685

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(1) प्रस्तावना- जवाहरलाल नेहरु ने 'उद्देश्य प्रस्ताव' को प्रस्तुत किया था, जिससे संविधान की प्रस्तावना का आधार बनाया गया था। कुछ सदस्य यह चाहते थे कि प्रस्तावना में राष्ट्र का सम्बन्ध किसी विचार धारा से जोड़ दिया जाये। हसरत मोहानी चाहते थे कि 'सोवियत समाजवादी गणराज्य संघ' के ढंग पर भारत को 'भारतीय समाजवादी गणराज्य संघ' के नाम से पुकारा जाए। हरिविष्णु कामठ का मानना था कि प्रस्तावना के आरम्भ में 'ईश्वर के नाम में' शब्द रखे जाएँ। इस संशोधन का विरोध करने वालों का यह कहना था कि प्रस्ताव में ईश्वर का नाम लेना धर्म की स्वतन्त्रता के प्रतिकूल है। संविधान की प्रस्ताव में देश को सम्पूर्ण प्रभूत्तासम्पन्न देश घोषित किया गया है, जबकि कुछ लोगों का यह कहना था कि भारत राष्ट्रमण्डल का सदस्य होने से उसकी प्रभुसत्ता पर आंच आती है उसकी स्पष्टीकरण देते हुए पटेल ने कहा था कि,"भारत सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न गणतन्त्र गणराज्य है। इसलिये हमारे राष्ट्रमण्डल का सदस्य बने रहने का भारत पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।"

(2) मौलिक अधिकार- संवैधनिक परामर्शदाता बी.एन.राव के सुझाव पर संविधान सभा ने संवैधानिक अधिकारों को दो भागों में विभक्त किया है-वाद योग्य अधिकार एंव अवाद योग्य अधिकार। इसके विपरित सोमनाथ लाहिड़ी, प्रमोद रंजन ठाकुर और हृदय कुँजरु ने इस विभाजन का विरोध किया था। उनका मानना था कि अधिकारों के बीच वाद योग्य की रेखा खींचना ठीक नही था। वे 'काम पाने के अधिकर' को मौलिक अधिकरों में स्थान दिये जाने के प्रबल पक्षधर थे। हरिविष्णु कामठ, सोमनाथ लाहिड़ी, बख्शी टेकचन्द आदि सदस्यों का मानना था कि संविधान में मूल अधिकरों पर बहुत अधिक प्रतिबन्ध लगा दिये गयें हैं।

जिन मूल अधिकारों को संविधान में सम्मिलित किया जोयग, क्या उनके अन्तर्गत इस बात की गारण्टी होगी कि जो निजी सम्पति राज्य ले लेगा, उसके बदले में उचित मुआवजा दिया जायेगा और यह अधिकार न्यायाधीन होगा। इस प्रश्न पर काफी वाद-विवाद हुआ। नेहरु यह अधिकार न्यायाधीन दिये जोन के विरुद्ध थे। 1931 ई. में कराची के 'कांग्रेस अधिवेशन' में पटेल की अध्यक्षता में जिन मौलिक अधिकरों को अपनाया गया था, पटेल चट्टान की तरह उनके पक्ष में डटे रहे।[1] डॉ.अम्बेडकर ने कहा था कि,"जब 31वी धारा की रचना हो रही थी, उस समय कांग्रेस दल अपने भीतर इस तरह विभाजित था कि हम यह नहीं जानते थे कि हम क्या करें, उसमें क्या व्यवस्था करे और क्या व्यवस्था न करें।[2]

(3) नीति निर्देशक सिद्धान्त-संविधान के चौथे भाग के बारे में जितनी गलत धारणा थी, उतनी अन्य किसी भाग के बारे में नही थी। के.टी.शाह, हरिविष्णु कामठ आदि सदस्य चाहते थे कि राज्य को इन सिद्धान्तां का क्रियान्वयन अनिवार्य रूप से करना चाहिये। कुछ

---

1. दुर्गादास; भारत-कर्जन से नेहरु और पश्चात्, पृष्ठ 285-289.
2. संसदीय वाद-विवाद-राज्य सभा, प्रतिवेदन, खण्ड IX नं. 19, 19 मार्च 1955.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सदस्य चाहते थे कि निर्देशक के स्थान पर मौलिक शब्द का प्रयोग किया जाना चाहिये। संविधान सभा के कतिपय मुस्लिम सदस्यों ने एक समान नागरिक संहिता पर आपत्ति की थी। कुछ सदस्यों का कहना था कि निर्देशकों जिनकी राज्य द्वारा अवहेलना किये जाने पर न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सके, विशेष लाभकारी नहीं कहे जा सकते। कुछ ने इन्हें 'राजनीतिक घोषणा पत्र' की संज्ञा दी, तो कुछ ने उन्हें 'नीरस नैतिक उपदेश' कहा।

(4) राष्ट्रपति एवं राज्यपाल- क्या गणतन्त्र के राष्ट्रपति और प्रान्तों के राज्यपाल को सार्वजनिक वोट से चुने जाएँ? क्या उन्हें विवेकाधिकार दिये जाएँ? इस प्रश्न पर बहुत गरमागरम बहस हुई। नेहरु तथा पटेल राज्य के प्रमुखों को सार्वजनिक मतदान द्वारा चुने जाने के विरुद्ध थे। पटेल गृह मन्त्री थे। अतः उन्होंने निर्णायक रूप से यह बात निश्चित करवा दी कि राज्यों के राज्यपाल की नियुक्ति संघ सरकार द्वारा की जाए। के.टी.शाह ने सुझाव दिया था कि राष्ट्रपति का चुनाव प्रत्यक्ष रुप से किया जाए।

(5) मन्त्रिमण्डलात्मक शासन प्रणाली- संविधान सभा के एक अधिवेशन में हुए लम्बे वाद-विवाद के बाद यह निर्णय लिया गया था कि भारत में मन्त्रिमण्डलात्मक शासन प्रणाली अपनायी जाए। कुछ सदस्यों ने अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली को लागू किये जाने का समर्थन किया, जबकि के.एम.मुन्शी ने मन्त्रिमण्डलात्मक शासन व्यवस्था को लागू किये जाने का प्रबल समर्थन किया। उनका मानना था कि आज भारतीय अधिराज्य एक पूर्ण रुपेण संसदीय सरकार के रूप में कार्य कर रहा है। इतने अनुभव के बाद हम परम्परा को तोड़कर नवीन प्रयोग क्यों करें।

(6) संघीय व्यवस्था- भारतीय संघ के स्वरुप के बारे में सदस्यों में मतभेद थे। वस्तुतः इस विषय पर दो दृष्टिकोण थे। प्रथम मत उन सदस्यों का था, जो संघीय सरकार को शक्तिशाली बनाये जाने के समर्थक थे। दूसरे मत के सदस्य नहीं चाहते थे कि प्रान्तीय शासनों का संघीय सरकार पर आश्रित बना दिया जाय।

(7) संघीय संसद- के.एम.पनिक्कर, गोपाला स्वामती आयंगर एवं अल्लादि कृष्ण स्वामी अय्यर ने द्विसदनीय संसद का समर्थन किया, परन्तु मोहम्मद ताहिर नहीं चाहते थे कि द्वितीय सदन का प्रावधान रख जाये। श्री शिब्बनलाल सक्सेना ने ताहिर के मत का समर्थन करते हुए कहा कि द्वितीय सदन की रचना अप्रजातान्त्रिक होने से इससे देश के विकास में अनावश्यक रूप से बाधा उपस्थित होगी। श्री जय प्रकाश नारायण ने भी यही सुझाव दिया कि संसद एक सदनीय बनाई जानी चाहिये।

(8) संघीय न्यायपालिका- संविधान में स्वतन्त्र संघीय न्यायपालिका की व्यवस्था की गई थी। प्रो.के.टी.शाह ने संविधान सभा में इस आशय का संशोधन प्रस्तुत करते हुए कहा था कि,"न्यायापालिका को व्यवस्थापिका और कार्यपालिका से पूर्णतया पृथक् और स्वतंत्र रखा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जायेगा।"[1] प्रारूप समिति ने शाह के प्रस्ताव को अव्यावहारिक मानकर अस्वीकार कर दिया। के.एम.मुन्शी ने कहा था कि,"अमेरिका में भी, जहाँ पृथक्करण के सिद्धान्त को अस्वीकार किया गया है, ऐसे बहुत से न्यायाधिकार हैं, जिन्हें कार्यपालिका और प्रशासकीय अभिकरणों में निहित किया गया है।" न्यायपालिका के बारे में संविधान सभा ने जो दृष्टिकोण अपनाया था, उसके बारे में डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि,"हम राज्य के भीतर राज्य की रचना नहीं करना चाहते, परन्तु उसके साथ ही यह चाहते हैं कि न्यायपालिका को पर्याप्त स्वतन्त्रता प्रदान की जाए, जिससे वह कार्यपालिका के भय अथवा पक्षपात के बिना कार्य कर सके।"[2] संविधान सभा ने न्यायपालिका की स्वतन्त्रता को मान्यता दे दी, परन्तु साथ ही इस बात का ध्यान भी रखा कि सर्वोच्च न्यायालय इतना शक्तिशाली न हो जाए कि वह राज्य के कार्यों में हस्तक्षेप करने लगे। इस प्रकार उसने ऐसी व्यवस्था की, जिससे न्यायपालिक और व्यवस्थापिका की सर्वोच्चता के बीच समन्वय बना रहे।

(9) उपराष्ट्रपति का पद- प्रो. के.टी.शाह एवं मोहम्मद ताहिर राष्ट्रपति एवं उपराष्ट्रपति का चुनाव एक जैसी रीति से करवाना चाहते थे। डॉ मेहबूब अली बेग चाहते थे कि उपराष्ट्रपति की पदच्युत के लिये दोनों सदनों के दो तिहाई बहुमत की व्यवस्था होनी चाहिए। मोहम्मद ताहिर चाहते थे कि उपराष्ट्रपति को पदच्युत करने वाली सूचना तीस सदस्यों के हस्ताक्षर बिना प्रभावी न हो।

(10) वयस्क मताधिकार-वयस्क मताधिकार की व्यवस्था को लागू किया जाए या नहीं, क्योंकि इसको लागू करते ही निर्वाचकों की संख्या 3 करोड़ 50 लाख से बढ़कर 17 करोड़ हो जायेगी। मोलना आजाद ने इस कदम को पन्द्रह वर्ष के लिए स्थगित करने का सुझाव दिया। राजेन्द्र प्रसाद एवं जवाहर लाल नेहरू ने कहा कि कांगेस ने वयस्क मताधिकार का वचन किया था। अतः इसे तोड़ा नहीं जा सकता। इसलिये उसे जल्दी से जल्दी लागू किया जाना चाहिए। यह प्रस्ताव करतल नाद के साथ पारित हुआ।

(11) राष्ट्रीय सम्पर्क भाषा-राष्ट्रीय सम्पर्क भाषा के प्रश्न पर सबसे अधिक कठिनाई का सामना करना पड़ा। प्रसाद और पटेल हिन्दी के पक्ष में थे, जबकि नेहरू ने हिन्दी समर्थकों से ऐसा फार्मूला तैयार करने को कहा, जो बंगाल तथा मद्रास जैसे अहिन्दी प्रदेशों को भी स्वीकार हो। अन्त में यह फार्मूला संविधान में शामिल कर लिया गया कि पन्द्रह वर्ष में हिन्दी अंग्रेजी का स्थान ले लेगी, हालांकि हर पक्ष ने इस फार्मूले पर आपत्ति की थी।

(12) जम्मू एवं काश्मीर-नेहरू जम्मू और काश्मीर राज्य के विशेष उपबन्धों के बारे में एक धारा संविधान सम्मिलित करने के पक्ष में थे। उसके अनुसार भारतीय संघ का अंग होने के बावजूद भी उस राज्य को यह अधिकार होगा कि वह अपने लिए अलग विधान बना

1. सी. ए. डी.; वोल. VII पृष्ठ 219.
2. वही, पृष्ठ 97.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सके। पटेल काश्मीर राज्य का पूरी तरह से भारतीय संघ में विलय करना चाहते थे। परन्तु जब यह प्रश्न संसद के सम्मुख प्रस्तुत किया गया, तो पटेल ने सरकार के एकता के हित में अपना दृष्टिकोण वापस ले लिया।

(13) अल्पसंख्यकों की सुरक्षा-सबसे महत्वपूर्ण मामला अल्पसंख्यकों की सुरक्षा का था। आजाद चाहते थे कि सामन्य चुनाव क्षेत्रों के बावजूद भी मुसलमानों एवं अन्य अल्पसंख्यकों के लिए आरक्षित सीटों की व्यवस्था की जाए। पटेल इस प्रकार के आरक्षणों के विरुद्ध थे। इस समय के समाधान में दो महिलाओं ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। राजकुमार अमृत कौर ने कहा कि यदि भारतीय इसाइयों को धर्म व जाति के आधार पर आरक्षण एवं अन्य सुविधाएँ दी जायेंगी, तो इससे भारतीय संघ की एकता खण्डित हो जायेगी। पटेल के आग्रह पर लखनऊ की बेगम एजाज रसूल ने मुसलमानों का पक्ष प्रस्तुत करते हुए कहा कि जो मुसलमान भारत मे रह गये थे, राष्ट्र का अभिन्न अंग थे और इसलिये उन्हें कोई विशेष सुरक्षा की आवश्यकता नहीं थी। पटेल ने इस बात को पकड़कर कहा कि मुसलमान सर्वसम्मति से संयुक्त चुनाव क्षेत्रों के पक्ष में थे और बैठक समाप्त कर दी।

(14) संवियान की संशोथन व्यवस्था-संविधान में संशोधन करने की व्यवस्था के बारे में भी कुछ मतभेद थे। एक दृष्टिकोण यह था कि प्रारुप समिति द्वारा प्रस्तावित संशोधन प्रणाली नहीं होनी चाहिए, क्योंकि यह अत्यन्त कठिन थी।

इस प्रकार संविधान सभा के सदस्यों ने भारतीय संविधान की रचना के विभिन्न पहलुओं पर खुलकर विचार विमर्श किया। संविधान निर्माण के प्रत्येक पहलू पर अलग-अलग मत एवं दृष्टिकोण व्यक्त किये गये एवं वाद-विवाद में विभिन्न प्रवृत्तियों का कोशिश की गई। रजनी कोठारी ने लिखा है कि, "इन दृष्टिकोण से पता चलता है कि नए राष्ट्र की संस्थाओं का ढांचा तैयार करते समय किस प्रकार निर्णय लिए गये। यह संविधान भारत के भविष्य की आधारशिलावत् था और इसकी रचना में नेताओं ने पुराने और नए विचारों में अधिक से अधिक सामंजस्य लाने का प्रयत्न किया।"[1]

□□□

1. रजनी कोठारी : भारत में राजनीति, पृष्ठ 78.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

13 भारतीय संविधान की विशेषताएँ

15 अगस्त 1947 ई. की आधी रात को भारत दासता की बेड़ियों से मुक्त हुआ। स्वाधीन होते ही भारत की गम्भीर समस्याओं का सामना करना पड़ा-प्रथम, भारतीय राज्यों का एकीकरण एवं भारत के लिए नए संविधान का निर्माण। अंग्रेजों ने भारत छोड़कर जाने से पूर्व यह घोषणा की थी कि देशी राज्यों के ऊपर सम्राट की सर्वोच्चता समाप्त हो जाएगी और देश राज्यों को यह निर्णय करने का अधिकार होगा कि वे पाकिस्तान में मिलें या हिन्दुस्तान में अथवा अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाए रखें। इस घोषणा के बाद अनेक देशी रियासतों ने अपना अस्तित्व बनाए रखने का स्वप्न देखना आरम्भ कर दिया था, परन्तु तत्कालीन गृहमंत्री पटेल के अथक प्रयासों से देशी रियासतें भारतीय संघ में मिलने के लिए तैयार हो गई। इस प्रकार भारतीय राज्यों का एकीकरण हुआ।

नए संविधान के निर्माण के सम्बन्ध में केबिनेट मिशन योजना के अनुसार संविधान सभा के चुनाव हुए। संविधान सभा का अधिवेशन 9 सितम्बर 1946 ई. को आरम्भ हुआ। 11 दिसम्बर 1946 ई. को डॉ. राजेन्द्र प्रसाद संविधान सभा के अध्यक्ष चुने गए। संविधान सभा ने 2 वर्ष, 11 माह और 18 दिन का लम्बा समय लगाकर भारत के नवीन संविधान का निर्माण किया। संविधान सभा में विचार करते समय दो हजार से अधिक संविधानों पर विचार विमर्श हुआ। 26 नवम्बर 1949 ई. को संविधान सभा ने संविधान को पास कर दिया और 26 जनवरी 1950 ई. को सम्पूर्ण संविधान देश के एक कोने से दूसरे कोने तक सब प्रदेशों और सब जातियों पर लागू कर दिया।

भारतीय संविधान की विशेताएँ-

भारतीय संविधान की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित थी-

(1) लिखित एवं विश्व का सबसे विशाल संविधान-भारत का संविधान पूर्णरूप से लिखित एवं संसार का सबसे विशाल संविधान है। भारत के मूल संविधान में कुल 395 धाराएँ,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

22 भाग और 9 अनुसूचियां है। जबकि अमेरिका के संविधान में 7, नेपाल के संविधान में 74, चीन के संविधान में 30, सोवियत रूप के संविधान में 146, कनाडा के संविधान में 147 तथा आस्ट्रेलिया के संविधान में 146 और दक्षिण अफ्रीका को संविधान में 135 धाराएँ हैं। भारतीय संविधान में 44 संशोधन किए जा चुके है। अतः अब संविधान में कुल धाराएं 404 हो गई है, जो 24 भागों में विभक्त हैं और इसके साथ ही 9 अनुसूचियां भी हैं।

भारतीय संविधान की विशालता के प्रमुख कारण हैं- (1) इसमें न केवल केन्द्रीय, बल्कि प्रान्तीय सरकारो के स्वरूप और शक्तियों का विस्तृत वर्णन किया गया है, (2) शासन सबन्धी सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है, (3) संविधान में हरिजनों, पिछड़ी जातियों और कबीलों के लिए विशेष व्यवस्था की गई है, (4) केन्द्र और राज्यों के बीच जटिल सम्बन्धों पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है, (5) संघ सूची और राज्य सूची के साथ समवर्ती सूची का भी विस्तृत वर्णन किया गया है, (6) संविधान में न केवल मौलिक अधिकारों का, बल्कि राज्य के नीति निर्देशक तत्त्वों का भी विस्तार से वर्णन किया गया है, (7) राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियों का विस्तृत विवरण संविधान में किया गया है।

(2) एकल नागरिकता- साधारणतया संघात्मक राज्य में दोहरी नागरिकता पाई जाती है। (अ) संघ की नागरिकता, एवं (ब) राज्य की नागरिकता। संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे संघात्मक संविधान में दोहरी नागरिकता की व्यवस्था है, लेकिन भारतीय संविधान में इकहरी नागरिकता की व्यवस्था की गई है और वह है भारतीय नागरिकता। प्रत्येक भारतीय सम्पूर्ण देश का नागरिक है और प्रत्येक राज्य के नागरिकों को एक समान नागरिकता का अधिकार प्राप्त है। भारतीय संविधान में राज्य की पृथक् नागरिकता का अधिकार प्राप्त है। भारतीय संविधान में राज्य की पृथक् नागरिकता को कोई स्थान नहीं दिया गया है। संविधान निर्माताओं का विचार था कि दोहरी नागरिकता भारत की एकता को बनाए रखने में बाधक सिद्ध हो सकती है। अतः इकहरी नागरिकता की व्यवस्था कर उन्होंने बुद्धिमता का परिचय दिया है।

(3) समाजवादी राज्य- संविधान सभा में इस प्रश्न पर बड़ा विवाद हुआ था कि भारत समाजवाद को राज्य दर्शन के रूप में स्वीकार करे या नहीं। अन्त में यह निश्चित हुआ कि किसी एक विशेष दर्शन को स्वीकार करने से नवीन विवादों का जन्म होगा। फिर भी सभी भारतीय इस बात पर सहमत थे कि भारत के लिए समाजवाद का मार्ग ही उपयुक्त हो सकता है। इसी सामान्य भावना को आधार मानकर 42वें संवैधानिक संशोधन द्वारा संविधान की प्रस्तावना में भारत को 'सामाजवादी राज्य' घोषित कर दिया गया। मार्च, 1977 ई. में जनता पार्टी की सरकार बनी, जिसने संविधान मं 44वां संविधान संशोधन के अनुसार समाजवाद का अर्थ सभी प्रकार की सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक शोषण से मुक्ति दिलवाना था।

वस्तुतः प्रस्तावना में भारत को 'सामाजवादी राष्ट्र' घोषित करने से वस्तु-स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया है। प्रथम, भारत किसी विशेष दर्शन से बंधा हुआ नहीं है। द्वितीय, समाजवादी शब्द अपने आपमें बहुत अधिक अस्पष्ट है। भारतीय राजनीतिक नेताओं ने अनेक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बार यह स्पष्ट कर दिया कि देश अपनी विशेष परिस्थितियों के आधार पर ही समाजवाद को अपनाएगा और भारतीय समाजवाद अन्य परिचित समाजवादों से भिन्न होगा।

(4) सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य की स्थापना- हमारे संविधान की प्रस्तावना में कहा गया है कि भारत में सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य की प्रस्तावना में कहा गया है। सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न का अर्थ यह है कि किसी भी बाहरी शक्ति का भारत की विदेश नीति पर नियन्त्रण रखने या आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं हैं। भारत एक लोतंत्रात्मक गणराज्य है अर्थात् भारत में राजसत्ता जनता के हाथ में निहित है। जनता द्वारा चुने गए प्रतिनिधि शासन कार्य चलाते हैं। प्रत्येक पांच वर्ष बाद आम चुनाव होते हैं, जिसमें 18 वर्ष या इससे अधिक आयु वाले प्रत्येक स्त्री पुरुष को मताधिकार दिया गया है। अल्पसंख्यकों के हितों को हर प्रकार से सुरक्षित रखने की व्यवस्था की गई है। राजनीतिक लोकतन्त्र के साथ-साथ सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्र में लोकतन्त्र की स्थापना भी संविधान का लक्ष्य है।

संविधान में भारत को गणराज्य कहा गया है। गणराज्य का अर्थ केवल राज्य के अध्यक्ष के निर्वाचन तक ही सीमित नहीं है। इसका अर्थ यह है कि हमारे देश के सर्वोच्च अधिकारी अर्थात् राष्ट्रपति का पद पैतृक या वंशानुगत नही होगा, अपितु इसका निर्वाचन जनता के प्रतिनिधियों द्वारा अप्रत्यक्ष रुप से 5 वर्ष के लिए किया जाएगा। हमारे देश का राष्ट्रपति संसद तथा राज्य विधान सभाओं के सदस्यों द्वारा चुना जाता है।

यह सत्य है कि भारत ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल का सदस्य है, लेकिन इस सदस्यता से भारत की प्रभुसत्ता पर कोई आघात नहीं पहुंचता। भारत किसी भी समय बिना किसी विशेष प्रयत्न के राष्ट्रमण्डल के पृथक् हो सकता है। इस प्रकार राष्ट्रमण्डल का सदस्य होते हुए भी भारत सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य है।

(5) एकात्मक लक्षणों सहित संघात्मक शासन- भारत का संविधान संघात्मक है, तथापि इसका झुकाव एकात्मकता की ओर है। संविधान के अनुसार भारत में संघात्मक शासन की स्थापना की गई और इसमें संघात्मक शासन की सभी विशेषताएं निहित है, तथा- (1) लिखित संविधान और उसकी सर्वोच्चता, (2) केन्द्र और राज्यों के बीच शक्तियों का विभाजन, (3) राज्यों तथा केन्द्र के बीच उत्पन्न संवैधानिक झगड़ों का निर्णय करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय, (4) सम्यक् नागरिकता, (5) दुष्परिवर्तनशील संविधान तथा दोहरा शासनतन्त्र।

अपनी इन संघात्मक विशेषताओं के बावजूद भी भारतीय संविधान पूर्णरुप से संघात्मक नहीं है। इसमें कुछ ऐसे तत्त्व भी हैं, जिनसे इनका झुकाव एकात्मक शासन की ओर स्पष्ट होता है, तथा (1) संघ किसी भी दशा में भंग नहीं किया जा सकता और न कोई इकाई ही अपना पृथक् संविधान बना सकती है, (2) केन्द्र द्वारा राज्य प्रशासन में बाह्य हस्तक्षेप, (3) राष्ट्रपति द्वारा राज्य के राज्यपालों की नियुक्ति, (4) इकहरी नागरिकता, (5) इकहरी न्यायपालिका, (6) अखिल भारतीय सेवाएँ, (7) संसद द्वारा राज्यों के नाम, क्षेत्र तथा सीमा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में परिवर्तन, (8) राष्ट्रपति के संकटकालीन अधिकारों के अन्तर्गत संकट काल की घोषणा द्वारा सम्पूर्ण देश के शासन को अपने हाथ में ले सकता है। इस प्रकार संकट काल में संघीय शासन प्रणाली को बदलकर एकात्मक शासन प्रणाली का रूप दिया जा सकता है।

(6) वयस्क मताधिकार- हमारे संविधान की एक प्रमुख विशेषता यह है कि 18 वर्ष या इससे अधिक आयु वाले प्रत्येक स्त्री-पुरुष का मतदान का समान अधिकार दिया गया है। निःसंदेह स्वतंत्र भारत की यह एक बहुत बड़ी रियायत है, जो उसने अपने नागरिकों को प्रदान की है। प्रो. श्रीनिवास के शब्दों में "सम्प्रदायिक चुनाव पद्धति की समाप्ति और वयस्क मताधिकार का प्रारम्भ नए संविधान की महान् और क्रांतिकारी विशेषता है।"[1]

(7) संसदीय शासन व्यवस्था की स्थापना- संविधान द्वारा भारत में संसदीय शासन व्यवस्था की स्थापना की गई है केन्द्र में राष्ट्रपति संवैधानिक प्रधान है, उनके पास केवल नाम मात्र की शक्तियां हैं। शासन की वास्तविक शक्तियां मंत्रिमण्डल में निहित है, जो संसद के प्रति उत्तरदायी है। लोकसभा अविश्वास प्रस्ताव द्वारा मन्त्रिमण्डल को कभी भी पदच्युत कर सकती है। यद्यपि भारत के राष्ट्रपति को संसद को संदेश भेजने तथा विधेयकों पर निषेधाधिकार (Veto) का प्रयोग करने का अधिकार है, परन्तु इनका प्रयोग संसद की इच्छा प्रणाली प्रधानतः संसदीय होते हुए भी उसमें अध्यक्षीय शासन प्रणाली के तत्त्व निहित हैं।

(8) मौलिक अधिकार- हमारे संविधान द्वारा नागरिकों को मौलिक अधिकार प्रदान किए गए हैं। नागरिकों को समता का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार, शोषण के विरुद्ध अधिकार, धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार, सांस्कृतिक तथा शिक्षा सम्बन्धी अधिकार, सम्पत्ति का अधिकार एवं संवैधानिक उपचारों का अधिकार आदि प्रदान किए गए हैं। देश में 18 वर्ष या इससे अधिक आयु वाले प्रत्येक स्त्री-पुरुष को मतदान का अधिकार दिया गया है। संविधान में साम्प्रदायिक चुनाव प्रणाली को समाप्त कर संयुक्त निर्वाचन प्रणाली की व्यवस्था की गई है। श्रीनिवास ने लिखा है कि "पूर्ण वयस्क मताधिकार की स्थापना और साम्प्रदायिक चुनाव पद्धति की समाप्ति के कारण नए संविधान को प्रगतिशील कहा गया है। यह सत्य है कि ऊपर लिखी हुई दोनों बातें ही नए संविधान की महान् और क्रान्तिकारी विशेषताएँ हैं" संविधान में धर्म, मूल-वंश, जाति, रंग या जन्म स्थान पर आधारित भेदभावों को समाप्त कर दिया गया है और बेगार को कानून द्वारा बन्द कर दिया गया है।

(9) अल्पसंख्यकों तथा पिछड़े वर्गों के हितों की रक्षा- भारतीय संविधान के चौथे अध्याय में राज्य की नीति के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक तत्त्वों की स्पष्ट व्यवस्था की गई है। इन्हें राज्य नीति के निर्देशक तत्त्व कहा जाता है। ये केन्द्र और राज्य सरकारों के पथ प्रदर्शक है। जनता राज्य से अपेक्षा करती है कि वह नीति निर्धारित करते समय या कोई कानून बनाते समय इन तत्त्वों का अवश्य ध्यान रखे, ताकि भारत में कल्याणकारी राज्य की स्थापना हो सके।

इन सिद्धान्तों द्वारा केन्द्र व राज्य सरकारों को यह आदेश दिया गया है कि वे शासन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कार्य में ऐसी नीति अपनाएँ, जिससे सभी नागरिकों को जीवन निर्वाह के पर्याप्त साधन हो, राज्य की आर्थिक व्यवस्था इस तरह से चलाई जाए कि थोड़े से पूंजीपतियों के हाथों में धन केन्द्रीय न हों, पुरुष व स्त्रियों को समान कार्य के लिए समान वेतन मिले, राज्य 14 वर्ष तक की आयु के बच्चों के लिए निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था करे, ग्राम पंचायतों की स्थापना और स्वशासन की क्रियाशील इकाइयों के रूप में उनका विकास किया जाए, नागरिकों को विवश होकर ऐसा रोजगार न करना पड़े, जो उनके स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो, कलात्मक एवं ऐतिहासिक वस्तुओं की सुरक्षा की व्यवस्था की जाए, जनता का जीवन स्तर ऊंचा हो, न्यायपालिका और कार्यपालिका का पृथक्करण, अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा के लिए प्रयत्न तथा कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन दिया जाए आदि।

यह सत्य है कि नीति निर्देशक तत्त्वों का पालन करवाने के लिए नागरिक न्यायालय की शरण नहीं ले सकता। फिर भी संविधान का यह आदेश है कि वे (नीति निदेशक तत्त्व) देश के शासन के मूलभूत आधार होंगे और उनका पालन करना राज्यों का नैतिक कर्तव्य होगा।" इस प्रकार नीति निर्देशक तत्त्वों द्वारा भारत में एक सच्चा लोकतन्त्र स्थापित करने की व्यवस्था की गई है।

(11) न्यायपालिका की स्वतंत्रता एवं सर्वोच्चता- भारतीय संविधान की एक और विशेषता यह है कि इसके द्वारा स्वतंत्र एवं सर्वोच्च न्यायपालिका की स्थापना की गई है, जिसे न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति प्राप्त है। वह केन्द्र तथा राज्यों के आपसी विवादों के निर्णय करती है। ऐसे किसी कानून को, जो संविधान की किसी धारा के प्रतिकूल हो, अवैध करार दे सकती है। इसके निर्णय को कार्यपालिका और व्यवस्थापिका दोनों को मानना पड़ता है। न्यायपलिका की स्वतंत्रता हेतु संविधान में अनेक विशेष व्यवस्थाएँ की गई यथा-न्यायधीशों की शक्तियां तथा अधिकारों को संविधान में स्थान दिया गया है और भारतीय संसद उनमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं कर सकती, न्यायधीशों की नियुक्तियां राष्ट्रपति द्वारा ही की जाती है, परन्तु उनको अपदस्थ करने की शक्ति कार्यपालिका में निहित नहीं है। न्यायधीशों को सुगमता से पदच्युत नहीं किया जा सकता। उन्हें केवल महाभियोग द्वारा ही अपदस्थ किया जा सकता है। न्यायधीशों के कार्यकाल में न ही उनके वेतन से कटौती की जा सकती है और न ही उनके आचरण पर व्यवस्थापिका सभा द्वारा विचार किया जा सकता है। न्यायपालिका के कार्यों में न तो कार्यपालिका हस्तक्षेप कर सकती है और न व्यवस्थापिका ही अर्थात् न्यायपालिका पूर्णरूप से स्वतंत्र है। भारतीय न्यायालयों की स्वतंत्रता पर प्रकाश डालते हुए श्री एम.सी.छागला ने ये शब्द कहे थे-"हमारे संविधान में सुप्रीम कोट तथा हाई कोर्ट्स के रूप में एक ऐसी न्यायपालिका की स्थापना की गई है, जिस पर व्यवस्थापिका और कार्यकारिणी का बिल्कुल नियन्त्रण नहीं है। यह उसके शक्तिशाली होने का एक प्रमुख कारण है।

(12) संसदीय प्रभुत्ता एवं न्यायिक सर्वोच्चता का सम्मिश्रण : भारतीय संविधान में इंग्लैण्ड की संसदीय सर्वोच्चता तथा संयुक्त राज्य अमेरिका की न्यायिक सर्वोच्चता के माध्यम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मार्ग का अनुसरण किया गया है। इंग्लैण्ड में संसदीय सर्वोच्च है और वहां के न्यायालयों को संसद के निर्णयों के सामने झुकना पड़ता है। वे उसके द्वारा पारित किसी भी कानून को अवैध घोषित नहीं कर सकता है। इसके विपरीत अमेरिका में न्यायपालिका सर्वोच्च है। अमेरिका के न्यायालय ऐसे किसी कानून को अवैध करार दे सकते हैं, जो संविधान की किसी भी धारा के प्रतिकूल हो। न्यायालय की इस शक्ति को "न्यायिक पुनरालोकन का अधिकार" (Judicial Review) कहते हैं। यही कारण है कि अमेरिका में न्यायपालिका बहुत अधिक शक्तिशाली है।

भारतीय संविधान में अमेरिका की भंति स्वतंत्र और सर्वोच्च न्यायपालिका की व्यवस्था की गई है, जिसे न्यायिक पुनरावलोकन का अधिकार भी प्राप्त है भारतीय न्यायालय ऐसे किसी भी कानून को अवैध कर सकती है, जो संविधान के विरुद्ध हो। इसके साथ ही संसद को भी यह अधिकार है कि वह न्यायालय की शक्तियों को आवश्यकतानुसार सीमित कर सकती है। इस प्रकार भारतीय संविधान में न तो इंग्लैण्ड की तरह संसदीय सर्वोच्चता को अपनाया गया है और न ही अमेरिका की तरह न्यायालय की सर्वोच्चता की व्यवस्था की गई है, वरन् उपर्युक्त दोनों पद्धतियों के बीच की प्रणाली को अपनाया गया है। श्री दुर्गादास बसु के शब्दों में-"संविधान ने अद्भुत ढंग से अमेरीकी न्यायालय की सर्वोच्चता के सिद्धान्त एवं इंग्लैण्ड के संसदीय प्रभुसत्ता के सिद्धान्त के बीच का मार्ग अपनाया है।"[2]

(13) धर्म निरपेक्ष राज्य- धर्म निरपेक्ष राज्य की स्थापना भारतीय संविधान की एक प्रमुख विशेषता है। धर्म निरपेक्ष राज्य का अर्थ है कि भारत का कोई राज्य धर्म नहीं है और न ही इसमे धर्म के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव किया जाता है। राज्य की दृष्टि में सभी धर्म समान है और राज्य द्वारा विभिन्न धर्मावलम्बियों में कोई भेदभाव नही किया जाएगा। श्री वेंकटरमण के शब्दों में, "धर्म निरपेक्ष राज्य न धार्मिक है और न अधार्मिक और न धर्म विरोधी, परन्तु धार्मिक कार्यों और सिद्धान्तों से सर्वथा पृथक् है और इस प्रकार धार्मिक मामलों में पूर्णतया तटस्थ है।" धर्म निरपेक्ष राज्य न तो धर्म विरोधी होता है और न अधार्मिक ही। वह धार्मिक मामलों के प्रति पूर्णतः तटस्थता की नीति अपनाता है।

यद्यपि हमारे संविधान मे कहीं भी 'धर्म निरपेक्ष' नामक शब्द का उल्लेख नहीं है, तथापि संविधान की रूपरेखा तथा धाराओं से स्पष्ट होता है कि संविधान ने भारत में धर्मनिरपेक्ष की स्थापना की है। प्रस्तावना में सभी नागरिकों को धर्म, विश्वास और पूजा की स्वतन्त्रता दी गई है अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति को किसी भी धर्म को मानने, प्रचार करने अथवा धर्म परिवर्तन करने की पूर्ण स्वतंत्रता है। मौलिक अधिकारों के अन्तर्गत यह कहा गया है कि राज्य धर्म, जाति, लिंग या इनमें से किसी आधार पर सरकारी नौकरियों तथा किसी अन्य क्षेत्र में अपने नागरिकों में कोई भेंदभाव पूर्ण व्यवहार नहीं करेगा। अल्पसंख्यकों को अपनी धर्मिक संस्थाएं चलाने का पूर्ण अधिकार दिया गया है। प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदाय को अपनी संस्कृति की रक्षा के लिए अपनी भाषा के विकास, शिक्षण संस्थाओं की स्थापना तथा सम्पत्ति अर्जन का पूर्ण अधिकार प्राप्त है। इस प्रकार भारत धार्मिक सहिष्णुता पर आधारित एक धर्म निरपेक्ष राज्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है, परन्तु राष्ट्र की सुरक्षा, समाज का जित नागरिकों की उन्नति के लिए आवश्यक होने पर राज्य धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप नही कर सकती है।

(14) लचीला तथा कठोर संविधान- भारतीय संविधान में लचीलापन और कठोरता का सुन्दर सम्मिश्रण है। वह न तो ब्रिटिश संविधान की भांति अत्याधिक लचीला है और न ही अमेरिकी संविधान की भांति कठोर है। लचीला और कठोर दोनों प्रकार के संविधानों के लक्षण भारतीय संविधान में पाए जाते है। भारतीय संविधान की सभी धाराओं में संशोधन की प्रणाली एक सी नही है। संशोधन की दृष्टि से संविधान की धाराओं को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है।

प्रथम श्रेणी में कुछ ऐसी धाराएँ हैं, जिनमें संसद साधारण बहुमत से ही संशोधन कर सकती है। उदाहरणस्वरूप, नए राज्यों के निर्माण, वर्तमान राज्यों का पुनर्गठन, भारतीय नागरिकता के अर्थ में परिवर्तन, राज्य में विधान परिषदों की समाप्ति या स्थापना आदि संशोधन की प्रणाली सरल है। द्वितीय श्रेणी में कुछ ऐसी धाराएं हैं, जिनमें संशोधन करने के लिए संसद के दोनों सदनों के कुल सदस्यों का बहुमत तथा मतदान करने वाले सदस्यों का दो-तिहाई (2/3) मत आवश्यक है। संविधान की अधिकांश धाराएं इसी श्रेणी में आती है। तृतीय श्रेणी में कुछ ऐसी धाराएं हैं, जिनका सम्बन्ध भारत में संघीय शासन की स्थापना से है। इन धाराओं में संशोधन करने के लिए संसद के सभी सदस्यों का साधारण बहुमत और उपस्थित सदस्यों के दो तिहाई बहुमत के अतिरिक्त कम से कम आधे राज्यों की विधान सभाओं की सहमति भी आवश्यक है। जैसे राष्ट्रपति के चुनाव, संघ और इकाइयों के बीच शक्ति विभाजन, संसद में राज्यों का प्रतिनिधित्व आदि संशोधन की उपर्युक्त प्रणाली निश्चित रूप से कठोर है। यह संयुक्त राज्य अमेरिका की संशोधन प्रणाली से मिलती-जुलती है।

इस प्रकार भारतीय संविधान की कुछ धाराओं में साधारण विधि की प्रक्रिया के द्वारा सरलता से संशोधन किया जा सकता है तथा कुछ धराओं में संशोधन लाने के लिए जटिल प्रक्रिया की व्यवस्था की गई है।यह कठोरता और लचीलेपन का अपूर्व सम्मिश्रण है। संसद के सुप्रसिद्ध संविधान शास्त्रियों ने भारतीय संविधान के एक साथ ही कठोर तथा लचीलेपन होने को इसका एक प्रशंसनीय गुण माना है। जवाहरलाल नेहरू ने इस विषय पर प्रकाश डालते हुए संविधान सभा में कहा था,"यद्यपि जहां तक सम्भव हो हम इस संविधान को ठोस और स्थायी संविधान का रूप देना चाहते है, संविधान में कोई स्थायित्व नही होता, उसमें लचीलापन होना चाहिए। यदि संविधान में सभी कुछ स्थायी और कठोर बना दिया जाए, तो राष्ट्र का विकास रुक जाएगा, क्योंकि राष्ट्र जीवित विकासशील प्राणियों का समूह है किसी भी स्थिति में हम अपने संविधान को इतना कठोर नहीं बनाना चाहते कि वह बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप परिवर्तित न हो सके।"

(15) संविधान पर व्यापक विदेशी प्रभाव- भारतीय संविधान अनेक स्रोतों से तैयार किया गया है। इन प्रश्न पर ब्रिटेन, अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, संयुक्त राज्य अमेरिका,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आयरलैण्ड एवं दक्षिण अफ्रीका आदि देशों के संविधानों का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। हमारे संविधान की संसदीय पद्धति इंग्लैण्ड से ली गई है। संघ की प्रस्तावना मौलिक अधिकार, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा संविधान की रक्षा, संविधान संशोधन की प्रक्रिया और राष्ट्रपति की कुछ शक्तियां पर अमेरिका का प्रभाव दिखाई देता है। राज्य के नीति निर्देशक तत्त्व आयरलैण्ड के संविधान से लिए गए है। कनाडा के संविधान के आदर्श पर ही भारतीय संघ को भी 'यूनियन' नाम दिया गया है। केन्द्रीय सरकार को शक्तिशाली बनाने की व्यवस्था कनाडा से ली गई है।

केन्द्र और राज्यों के पारस्परिक विवादों को निपटाने की प्रणाली आस्ट्रेलिया के संविधान से ली गई है। वित्तीय आयोग का विचार आस्ट्रेलिया के संविधान से ली गई है। वित्तीय आयोग का विचार आस्ट्रेलिया के ग्राण्टस कमीशन से लिया गया है। संविधान में संशोधन की पद्धति तथा राज्य सभा की निर्वाचन पद्धति दक्षिणी के संविधान से ली गई है। भारत के राष्ट्रपति को संकटकालीन अवस्था में संविधान स्थगित की जो शक्तियां दी गई हैं, वे जर्मनी के वाइमर संविधान से मिलती जुलती है। इन विदेशी प्रभावों के अतिरिक्त हमो संविधान पर 1982ई. की नेहरू रिपोर्ट का प्रभाव भी स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। 1935 ई. के अधिनियम ने भी हमारे संविधान को बहुत अधिक प्रभावित किया है। संविधान के आकार उसकी विषय सूची और उसकी भाषा आदि पर इस अधिनियम की गहरी छाप दृष्टिगोचर होती है।

लेकिन इन प्रभावों का यह आशय नहीं कि हमारे संविधान निर्माताओं ने दूसरे देशों के संविधानों की नकल की है। उन्होंने विदेशी संविधानों के केवल उन्हीं प्रावधानों को अपनाया, जो वहां सफल सिद्ध हो चुके थे और जो भारतीय परिस्थिति के अनुकूल तथा उपयोगी थे। इस प्रकार हमारे संविधान निर्माताओं ने संसार के अन्य संविधानों से अच्छी बातों को ग्रहण कर उन्हें अपनी आवश्यकता के अनुरूप ढाला है। ऐसा करने में हमारी अपनी मौलिकता रही है, विदेशी संविधान की अन्धा होकर नकल नहीं की गई है। सही अर्थों में भारतीय संविधान अनेक स्रोतों से संग्रहीत एक अनूठा संविधान है।

(16) नागरिकों के मूल कर्त्तव्य- मूल संविधान में तो केवल नागरिकों के मौलिक अधिकार की ही व्यवस्था की गई थी, उनके कर्त्तव्यों के बारे में कोई स्पष्ट उपबन्ध नहीं थे। लेकिन 42वें संविधान संशोधन, 1976 के द्वारा एक नया भाग 'चौथा अ' जोड़ा गया है जिसमें नागरिकों के 10 मूल कत्तव्यों का उल्लेख किया गया है। ये मूल कर्त्तव्य इस प्रकार है।

1. भारत के नागरिकों का कर्त्तव्य होगा कि वे संविधान का पालन करें तथा राष्ट्रध्वज एवं राष्ट्रगान का आदर करें।

2. स्वतंत्रता आन्दोलन के आदर्शों को हृदय में संजोए रखें और उनका पालन करें।

3. भारत की प्रभुत्ता, एकता और अखण्डता की रक्षा करे और उसे बनाए रखें।

4. देश की रक्षा करें और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करें।

5. भारत के सभी लोगों में समरूपता और भातृभाव का निर्माण करें और स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध प्रथाओं का त्याग करें।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

6. हमारी संस्कृति की गौरवशाली परम्परा का महत्त्व समझें और उसका संरक्षण करें।

7. प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा और संवर्द्धन तथा प्राणी मात्र के प्रति दया का भाव रखें।

8. वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करें।

9. सार्वजनिक सम्पत्ति को सुरक्षित रखें व हिंसा से दूर रहें।

10. व्यक्तिगत तथा सामूहिम गतिविधियों के सभी क्षेत्रो में उत्कर्ष के लिए प्रयास करें, ताकि राष्ट्र उपलब्धियों की नवीन ऊँचाइयों को छू सकें।

(17) जन निर्मित संविधान- भारतीय संविधान का निर्माण भारतीय जनता ने किया है और इस संविधान द्वारा अन्तिम शक्ति भारतीय जनता को प्रदान की गई है। संविधान की प्रस्तावना में कहा गया है कि-"हम भारत के लोग...दृढ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज दिनांक 26 नवम्बर 1947 ई. को एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्म समर्पित करते हैं।

भारतीय संविधान 1935 ई. के भारतीय शासन अधिनियम की तरह किसी देश की या किसी अन्य बाहरी शक्ति की कृति नहीं; अपितु भारतीयों द्वारा निर्मित अधिनियमित तथा अंगीकृत है।

(18) लोक कल्याणकारी राज्य- संविधान के नीति निर्देशक तत्त्वों से स्पष्ट होता है कि संविधान निर्माताओ का उद्देश्य भारत में एक लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना है। संविधान निर्माता यह चाहते थे कि केन्द्रीय तथा राज्य सरकारें भारतीय नागरिकों का आर्थिक क्षेत्र में समानता स्थापित करें। एक लोक कल्याणकारी राज्य का यही मूल आधार है। केन्द्रीय तथा राज्य सरकारें संविधान में निर्दिष्ट इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील है।

(19) सामाजिक समानता की स्थापना- सामन्यतः संविधानों में सामाजिक समानता की अपेक्षा राजनीतिक और कानूनी समानता पर ही बल दिया जाता है। परन्तु भारतीय संविधान में समाजिक क्षेत्र में भी नागरिको की समानता के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। संविधान के अनुच्छेद (धारा) 17 में कहा गया है कि-अस्पृश्यता का अन्त किया जाता है और उसका किसी भी रूप में आचरण निषिद्ध किया जाता है। किसी भी रूप में अस्पृश्यता का आचरण कानून के अनुसार दण्डनीय होगा।" सामाजिक क्षेत्र में समानता स्थापित करने हेतु दलित वर्गों की स्थिति में सुधार लाने के लिए संविधान में विशेष व्यवस्था की गई है।

(20) एक राष्ट्र भाषा की व्यवस्था- राष्ट्रीय एकता को सुदृढ करने के लिए हमारे संविधान में हिन्दी की देवनागरी लिपि में भारत की राष्ट्र भाषा घोषित किया गया है। किन्तु व्यावहारिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए संविधान लागू होने के 15 वर्ष बाद तक संघीय सरकार के सभी कर्यालयों में अंग्रेजी के प्रयोग की आज्ञा दी गई। 1965 में 'सह भाषा विधेयक,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पारित किया गया, जिसके द्वारा हिन्दी के साथ अंग्रेजी को भी जारी रखने की अनुमति दे दी गई।

उल्लेखनीय है कि एक राष्ट्र भाषा प्रावधान क्षेत्रीय भाषाओं के विकास के मार्ग में बाधक नहीं है। संविधान के अनुसर भारतीय भाषाओं का विभिन्न राज्यों में प्रादेशिक भाषा के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

(21) विश्वशान्ति का समर्थक- भारतीय संविधान विश्व शान्ति का प्रबल समर्थक है। वह राष्ट्रों की सुरक्षा के सामूहिक प्रयास में विश्वास करता है। भारत के परम्परागत "वसुधैव कुटुम्बकम्" के आदर्श के अनुपालन में नीति निर्देशक तत्वों में कहा गया है कि भारत अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा की उन्नति का और राष्ट्रों के बीच न्याय तथा सम्मानपूर्ण सम्बन्ध बनाए रखने की चेष्टा करेगा और अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को मध्यस्थता के द्वारा हल करने का प्रयत्न करेगा। व्यवहार के अन्तर्गत भी भारत सरकार द्वारा विश्व शान्ति बनाए रखने का हरसम्भव प्रयास किया गया है।

संक्षेप में, भारतीय संविधान एक ऐसा आदर्श प्रलेख है, जिसमें सिद्धान्त और व्यावहारिकता का श्रेष्ठ समन्वय है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रो. श्रीनिवासन- डेमोक्रेटिक गवर्नमेंट इन इण्डिया, पृ. 151

2. बसु, डी.डी.- कमेण्ट्रीय ऑन द कॉन्स्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया, भाग प्रथम, पृ. 31

प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

निम्न प्रश्नों का उत्तर लगभग पांच पृष्ठों में दीजिए :

1. भारतीय संविधान की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

(अजमेर, 2000 एवं 2002)

2. "भारत एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतान्त्रिक धर्मनिरपेक्ष गणराज्य है।" इस कथन की विवेचना कीजिए।

लघु उत्तरात्मक प्रश्न

निम्न प्रश्नों का उत्तर लगभग 100 शब्दों में दीजिए-

1. भारतीय संविधान के प्रमुख स्रोतों का विवेचन कीजिए।

2. भारतीय संविधानं मे कठोरता और लचीलेपन का सम्मिश्रण कैसे दिखाई देता है?

3. भारतीय संविधान में प्रदत्त मौलिक अधिकारों एवं नीति निर्देशक तत्त्वों का वर्णन कीजिए।

□□□

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सन्दर्भ ग्रंथ-सूची

(अ) हिन्दी

अय्यर, रामास्वामी सी. पी.	:	एनीबीसेन्ट
आचार्य भगवानदेव	:	बलिदान
अग्रवाल, आर.सी	:	भारतीय संविधान का विकास तथा राष्ट्रीय आन्दोलन
इन्द्र विद्यावाचस्पति	:	भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास
उसमान सहराई	:	जिन्ना की तकदीरें
कर्णसिंह	:	भारतीय राष्ट्रीयता का अग्रदूत
गांगुली, मनमोहन	:	स्वामी विवेकानन्द-एक अध्ययन
छाबड़ा एवं द्विवेदी	:	आधुनिक भारतीय इतिहास, 3 भाग
जागीरदार, पी.जे.	:	महादेव गोवन्दि रानाडे
जैन, पुखराज	:	भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन एवं संवैधानिक विकास
झा, सीताराम (डॉ.)	:	भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम की रुपरेखा
टेगोर, रवीन्द्रनाथ	:	विश्व मानवता की ओर
ताराचन्द (डॉ.)	:	भारतीय स्वतन्त्रा आन्दोलन का इतिहास, 2 भाग
तूफैल अहमद	:	मुसलमानों का रोशनमुस्तकबिल
दर्गादास	:	कर्जन से नेहरु और उसके पश्चात्
दत्त, वी.एन.	:	जलियांवाला बाग
नेहरु जे.एल.	:	(i) हिन्दुस्तान की कहानी (ii) विश्व इतिहास की झलक
नागोरी, एस.एल. (डॉ.)	:	(i) विश्व का इतिहास (ii) आधुनिक भारत (iii) भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन (iv) भारत के स्वतंत्रता सेनानी
पर्वत, टी.वी.	:	गोपालकृष्ण गोखले
पायली, एम.वी.	:	भारतीय संविधान
पट्टाभि सीतारमैया (डॉ.)	:	(i) कांग्रेस का इतिहास, भाग (प्रथम) (ii) गांधी और गांधीवाद
परमात्मा शरण (डॉ.)	:	भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन
फ्रेंक मोरेस	:	जवाहरलाल नहेरु : जीवनी
बोस, एस.के.	:	आधुनिक भारत के निर्माता
भट्टाचार्य, प्रभातकुमार	:	गाँधी दर्शन
मिश्र रामनारायण	:	महादेव गोविन्द रानाडे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मुन्शी, सूरजनारायण : दादा भाई नौरोजी
मिश्र, जगन्नाथ प्रसाद : रवीन्द्रनाथ ठाकुर कृतित्त्व और व्यक्तित्व
रामगोपाल : (i) भारतीय राजनीति-विक्टोरिया से नेहरु तक
(ii) लोकमान्य तिलक
रामानन्द अग्रवाल : हमारा राष्ट्रीय आन्दोलन तथा संवैधानिक विकास
राधाकृष्णन (डॉ.) : नेहरु
रजनी, कोठारी : भारत की राजनीतिक
राजेन्द्र प्रसाद (डॉ.) : (i) आत्मकथा
(ii) खण्डित भारत
विष्णु भगवान (डॉ.) : भारत का संवैधानिक विकास तथा भारतीय संविधान
शशि भूषण : नेहरु और मार्क्सवाद
स्वामी दयानन्द : सत्यार्थ प्रकाश
स्वामी विवेकानन्द : (i) धर्म तत्त्व
(ii) धर्म रहस्य
(iii) भारतीय नारी
सुमन, रामनाथ : गाँधीवाद की रुपरेखा
सुन्दरलाल : भारत में अंग्रेजी राज, 2 भाग
सावरकर, वीर विनायक दामोदर : 1857 का भारतीय स्वातन्त्र्य समर
सिंह, जी.एन. : भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास
सूद : भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन तथा वैधानिक विकास
सीकरी, एम. एल. : भारतीय संविधान का इतिहास
सिंह, वीरकेश्वर प्रसाद : भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन एवं संवैधानिक विकास
शर्मा, भद्रदत्त : भारत का संवैधानिक विकास
सुभाष कश्यप : भारत का संवैधानिक विकास और स्वाधीनता संघर्ष
हजेला, तिलक नारायण : आर्थिक विचारों का इतिहास
क्षितीश राय : गुरुदेव रवीन्द्रनाथ
त्रिपाठी, शम्भूरत्न : गाँधी, धर्म और सामाज

(ब) अंग्रेजी

अलहमजा : पाकिस्तान-ए-नेशन
एनीबीसेण्ट : (i) हाऊ इण्डिया रॉट फॉर फ्रीडम
(ii) द बर्थ ऑफ न्यू इण्डिया
(iii) इण्डिया बाउण्ड ऑर फ्री
आजाद, अबुल कलाम : इण्डिया विन्स फ्रीडम
एण्डूज : इण्डिया एण्ड द साइमन कमीशन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अम्बा प्रसाद (डॉ.) : द इण्डियन रिवोल्ट ऑफ 1942

अलबेरुनी, ए. एच. : मेकर्स ऑफ पाकिस्तान

अजीज, के.के. : (i) द मेकिंग ऑफ पाकिस्तान
(ii) ब्रिटेन एण्ड मुस्लिम इण्डिया

आनन्द, सी.एल. : गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया

अग्रवाल, आर.एन. : नेशनल मूवमेन्ट एण्ड कॉन्स्टिट्यूशनल डवलपमेन्ट ऑफ इण्डिया

अशोकचन्द : फ्रीडम इन इण्डिया

आयंगर, एन. राजगोपाल : द गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया ऐक्ट, 1935

ऑस्टिन, ग्रेन विल : द इण्डियन कॉन्स्टिट्यूशन

अहलूवालिय, एस.एम. : फ्रीडम स्ट्रगल इन इण्डिया

ऐय्यर, सर पी.एस.एस. : इण्डियन कॉन्स्टिट्यूशनल प्रोबलम्

अहमद, जमीलुद्दीन : द इण्डियन कॉन्स्टिट्यूशनल ट्रेन्गल

अहमद, जे.ए. : द इण्डियन फेडरेशन

अम्बेडकर, बी.आर. : पाटिशन ऑफ इण्डिया

अलेक्जेन्ड्रोविक्स, सी.एच. : कॉन्स्टिट्यूशनल डवलपमेन्ट ऑफ इण्डिया

बोस, सुभाषचन्द्र : द इण्डियन स्ट्रगल

बोस, नेमाई साधन : द इण्डियन नेशनल मूवमेन्ट

बोस, एम.एम. : द वर्किंग ऑफ कॉन्स्टिट्यूशन इन इण्डिया

बसु, डी.डी. : कमेन्ट्री ऑन द कॉन्स्टिट्यूशन ऑफ इण्डिया भाग (प्रथम)

ब्लण्ट, डब्ल्यू.एस. : इण्डिया अण्डर रिपोर्ट

बार्कर, ए.टी. : द महात्मा लेटर्स.

बाजपेयी, ज.एन. : (i) द पोलिटकल मूवमेंट इन इण्डिया
(ii) द एक्स्ट्रीमिस्ट मूवमेंट इन इण्डिया

बनर्जी, ए.सी.एवं बोस, डी.आर : द कैबिनेट मिशन इन इण्डिया

बर्डवुड, लेफ्टिनेन्ट कर्नल सी.बी. : ए कॉन्स्टिट्यूशन एक्सपेरीमेण्ट

बूचान : लार्ड मिण्टो

भुट्टो, जुल्फिकार अली : द मिथ ऑफ इन्डेपेन्डेन्स

बनर्जी, सुरेन्द्रनाथ : (i) ए नेशन् इन मेकिंग
(ii) अण्डरवुड इन कण्टमपरेरी थॉट ऑफ इण्डिया

बनर्जी, ए.सी. : (i) द मेकिंग ऑफ इण्डियन कॉन्स्टिट्यूशन
(ii) इण्डियन कॉन्स्टिट्यशनल डॉकोमेन्ट्स, वोल (द्वितीय) i, ii, iii, एवं iv
(iii) द कॉन्स्टिट्यूण्ट एसेम्बली

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बाल शास्त्री हरदास : आर्म्डस्ट्रगल फॉर फ्रीडम
बेल्स फोर्ड : (i) सब्जेक्ट इण्डिया
(ii) रिबेल इण्डिया
चटर्जी, ए.सी. : इण्डिया स्ट्रगल फॉर फ्रीडम
चटर्जी, एन.एल. : क्लाइव एज एन एडमिनिस्ट्रेटर
चार्ल्स डिके : ग्रेटर इण्डिया
चिन्तामणि एण्ड मसानी : इण्डियाज कॉन्स्टिट्यूशन ऐट वर्क
चिन्तामणि, सी.वाई. : इण्डियन पोलिटिक्स सिंस द मयू-टिनी
चर्चिल : सेकण्ड वर्ल्ड वार
चटर्जी, अमीव : द कॉन्स्टिट्यूशनल डवलपमेन्ट ऑफ इण्डिया
चेस्टर बोल्स : जवाहरलाल नेहरु, द अमेरिकन रिव्यू
चेरी, एन.डिकन्स : द कॉन्स्टिट्यूशनल फिलोसोफी ऑफ इण्डिया
चार्ल्स वुड : पार्लियामेन्ट्री डिबेट्स
छागला, एम.सी. : एन् ऐम्बेसेडर स्पीक्स्
डॉडवेल, एच. एच. : द कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग (पंचम)
देसाई, ए.आर. : सोशल बेकग्राउण्ड ऑफ इण्डियन नेशनलिज्म
दत्त, आर.पी. : इण्डिया टूडे
दत्त : हिस्ट्री ऑफ बंगाल सूबा
दास, एम.एन. : (i) इण्डिया फॉर पाकिस्तान
(ii) बिल्डर्स ऑफ मॉडर्न इण्डिया
दुर्रानी एफ.के.खन : द मीनिंग ऑफ पाकिस्तान
द्वारकादास, कणजी : इण्डियाज फाइट फॉर फ्रीडम
दिवाकर, आर.आर. : सत्याग्रह इन एक्शन
फिशर, लुई : द लाइफ ऑफ महात्मा गाँधी
फिशर : द ग्रेट चेलेन्ज
फ्रेंक मोरेस : जवाहरलाल नेहरु
फ्रेजर : इण्डिया अण्डर कर्जन एण्ड आफ्टर
फिलिप, सी.एच. : (i) द ईस्ट इण्डिया कम्पनी (1784-1834)
(ii) इण्डिया
फोरेस्ट : द लाइफ ऑफ रॉबर्ट क्लाइव
गैरेट : एन् इण्डियन कॉमेन्ट्री
गुप्ता, डी.सी : इण्डियन नेशनल् मूवमेन्ट
गुप्ता, एच.डी. : बिल्डर्स ऑफ मॉडर्न इण्डिया
ग्राहम, पोल : इण्डिया इन ट्रान्जिसन
गजेन्द्र गड़कर, पी.बी. : द कॉन्स्टिट्यूशन ऑफ इण्डिया

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गाँधी, एम.के. : (i) द साइन्स ऑफ सत्याग्रह
(ii) इण्डिया ऑफ माई ड्रीम
(iii) फ्रीडम बेटिल, 1921
(iv) इण्डियाज स्ट्रगल फॉर स्वराज
(v) माई एक्सपेरीमेन्ट्स विथटूथ

गौड़, हरीसिंह : गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया ऐक्ट, 1935

ग्वेर, मॉरिस एण्ड अप्पादोराई, ए. : स्पीचेज़ एण्ड डॉकोमेन्ट्स ऑन द इण्डियन कॉन्स्टिट्यूशन, 2 भाग

घोष, शंकर : द रिनेशां मिलिमेन्ट नेशनलिज्म इन इण्डिया

हेनरी कॉटन : न्यू इण्डिया

हुमायूं कबीर : मुस्लिम पोलिटिक्स

हार्डग्रेव, रॉबर्ट एल. : इण्डियन गवर्नमेन्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन ए डवलपिंग नेशन्

हान्स, कोहन ए. : ए हिस्ट्री ऑफ नेशनलिज्म इन द ईस्ट

हण्टर, ए. : ब्रिटिश हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, वोल.1

ईश्वरी प्रसाद (डॉ.) : हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न इण्डिया

इकबाल नारायण : डायार्की टू सेल्फ गवर्नमेन्ट

इल्बर्ट, एस.सी. : द गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया

इल्बर्ट, : हिस्ट्रारिकल सर्वे

जोशी, जी.एन. : द कॉन्स्टिट्यूशन ऑफ इण्डिया

जैनिंग्ज, आइवर : सम् केरेक्टरस्टिक्स ऑफ इण्डियन कॉन्स्टिट्यूशन

जॉन के : इण्डियन म्यू-टिनी

जकारिया (डॉ.) : रिनेसेण्ट इण्डिया

जोशी, वी.सी. : राइटिंग्स ऑफ स्पीचेज ऑफ लाला लाजपतराय

जौहरी, जे.सी. : रिफलेक्शन ऑन इण्डियन पोलिटिक्स

जॉनसन : फॉरिश रिलेशन्

जिन्ना, मोहम्मद अली : टाइम एण्ड टाइड

कूपलैण्ड : (i) द कॉन्स्टिट्यूशनल प्रोबलम इन इण्डिया पार्ट (प्रथम)
(ii) द इण्डियन प्रोबलम (1833-1945)
(iii) इण्डिया रिस्टेटमेन्ट

कीथ, ए.बी. : (i) ए कॉन्स्टिट्यूशनल हिस्ट्री ऑफ इण्डियन
(ii) स्पीचेज एण्ड डोकोमेन्ट्स ऑन् इण्डियन पोलिसी, वोल.I एण्ड II
(iii) स्पीचेज ऑन द इण्डियन पोलिटिक्स, वोल.I

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कुलकर्णी, वी.बी. : ब्रिटिश डोमिनिअन इन इण्डिया एण्ड आफटर
खुशवन्तसिंह : गदर, 1915
केरलपुत्र : डायार्की इन इण्डिया
कोठारी, रजनी : पोलिटिक्स इन इण्डिया
काबेल, हरबर्ट : हिस्ट्री एण्ड कॉन्स्टिट्यूशन ऑफ द कोर्टस एण्ड लेजिसलेटिव अथारटीज इन इण्डिया
कुमार, कृष्ण : डेमोक्रेसी एण्ड नान-वायलेंस
कासवेल, डब्ल्यू.ए. : इण्डिया इन्डेपेन्डेन्ट
कर्टिस, एल. : डायार्की
लाला लाज़पतराय : (i) यंग इण्डिया
(ii) अन हैपी इण्डिया
(iii) द पोलिटिकल फ्यूचर ऑफ इण्डिया
लाल बहादुर (डॉ.) : द मुस्लिम लीग
लस्की : हिस्ट्री ऑफ नेशनल कांग्रेस, वोल. द्वितीय
लैकी डब्ल्यू.ई.एच. : द मेप ऑफ इण्डिया
लतीफ अब्दुल : द मुस्लिम प्रोब्लम् इन इण्डिया
लोवेट वर्ने, सर : द हिस्ट्री ऑफ द इण्डियन नेशनलिस्ट मूवमेन्ट
लायल : द राइज ऑफ द ब्रिटिश डोमिनिअन इन इण्डिया
लार्ड एटली : एज इट हैपन्ड
मेलकम ल्यूइन : कॉजेज ऑफ द इण्डियन रिवोल्ट
मजूमदार, आर.सी. (डॉ.) : (i) हिस्ट्री ऑफ द फ्रीडम मूवमेन्ट इन इण्डिया, वोल. 1, 2 एवं 3
(ii) द सीपाय म्यू-टिनी एण्ड रिवोल्ट ऑफ 1857
(iii) इण्डियन नेशनल इवोल्यूशन
(iv) ब्रिटिश पेरामाउन्ट्सी एण्ड इण्डियन रिनेशां
(v) प्री फेजेज ऑफ इण्डियाज स्ट्रगल फॉर फ्रीडम
मोलेसन, जी.बी. : द रेड पेम्पलेंट
मारिसन : इम्पिरिअल रुल इन इण्डिया
मॉरिस जोन्स, डब्ल्यू. एच. : पार्लियामेन्ट इन इण्डिया
मेरी, काउन्टेस ऑफ मिण्टा : इण्डिया, मिण्टो एण्ड मार्ले (1905-19)
मेक्डोनल्ड, आई.आर. : द अवेकनिंग ऑफ इण्डिया
मजूमदार, ए.सी. : इण्डियन नेशनल इवोल्यूशन
मिल एण्ड विल्सन : हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इण्डिया, वोल.II
मुन्सी, के.एम. : (i) एडवेन्ट ऑफ इन्डेपेन्डेन्स
(ii) द मास्टर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(iii) इण्डियन कॉन्स्टिट्यूशनल् डोकोमेन्ट्स वोल. I एवं II वोल

मेनन, वी.पी. : (i) द ट्रान्सफर ऑफ पावर इन इण्डिया
(ii) माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड रिफोर्म्स

माइकेल ब्रेचर : नेहरु ए पोलिटिकल बायोग्राफी

मसानी, आर.पी. : ब्रिटेन इन इण्डिया

मजूमदार, ए.के : एडवेन्ट ऑफ इन्डेपेन्डेन्स

मेहता एण्ड पटवर्धन : द कम्युनल ट्रींगल इन इण्डिया

मिण्टो, काउण्ट ऑफ : लार्ड मिण्टो इन इण्डिया

मार्शमेन : हिस्ट्री ऑफ इण्डिया

मार्ले, वाइकाउण्ट : रिकलैक्शन्स

लार्ड मार्ले : इण्डियन स्पीचेज

मेजर ग्राहम : लाइफ एण्ड वर्क ऑफ सर सैयद अहमद खां

माण्टेग्यू, ई.एस : इन एण्डियन डायरी

मुकर्जी : इण्डियन कॉन्स्टिट्यूशन डॉकोमेन्ट्स वोल. I

मुकर्जी हीरेन्द्रनाथ : इण्डिया स्ट्रगल फॉर फ्रीउम

नेहरु, जवाहर लाल : (i) डिस्कवरी ऑफ इण्डिया
(ii) ऑटो बायोग्राफी
(iii) इन्डेपेन्डेन्स एण्ड आफ्टर, ए कलेक्शन ऑफ स्पीचेज

नेविन्सन : द न्यू स्पिरिट् इन इण्डिया

नेहरु, मोतीलाल : द वॉयस ऑफ फ्रीडम

नोमन : मुस्लिम इण्डिया

नार्मन, डी. पामर : इण्डियन पोलिटिकल सिस्टम

नन्दी, अमर : द कॉन्स्टिट्यूशन ऑफ इण्डिया

पायली, एम.वी. : द कॉन्स्टिट्यूशनल ऑफ इण्डिया

पारदसानी, एन.एस. : हाऊ इण्डिया इज गवर्न्ड

पालन्दे, एम.आर. : इन्ट्रोडक्शन टू इण्डियन एडमिनिस्ट्रेशन

पेण्डरेल, मून : (i) डिवाइड एण्ड क्वीट
(ii) गाँधी एण्ड मार्डन इण्डिया

पत्रिकर, के.एम. : (i) सर्वे ऑफ इण्डियन हिस्ट्री
(ii) दी फाउण्डेशन ऑफ न्यू इण्डिया

पुन्निया, के.वी. : द कॉन्स्टिट्यूशनल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया

पट्टाभि सीतारमैया (डॉ.) : हिस्ट्री ऑफ इण्डियन नेशनल कांग्रेस, वोल.II एण्ड II

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रधान, आर.जी : इण्डियंन स्ट्रगल फॉर स्वराज

प्रधान, जी.पी. : बालगंगाधर लिक

पोलक, एच.एस. : महात्मा गाँधी

प्यारेलाल : महात्मा गाँधी-द लास्ट फेज, वोल II

पामर : मेजर गवर्नमेन्ट्स ऑफ एशिया

पजीबी, के.एल. : इन डॉमिटेबल सरदार

रफीक अफजल : स्पीचेज एण्ड स्टेटमेन्ट्स ऑफ जिन्ना

रॉबर्टस, पी.ई. : हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इण्डिया

रॉबर्टसन, ग्राण्ड : इंग्लैण्ड अण्ड द हनोवरियन्स

रासिन : ब्रिटिश एचीवमेन्ट इन इण्डिया

राविलसन : ब्रिटिश बिगनिंग्स इन वेस्टर्न इण्डिया

रोनाल्ड शे : लाइफ ऑफ लार्ड कर्जन, भाग -II

राजेन्द्र प्रसाद (डॉ.) : (i) ऐट द फीट ऑफ महात्मा गाँधी
(ii) इण्डिया डिवाइडेड
(iii) प्रेसीडेन्टस एड्रेस ऐट बोम्बे

राय,पी.सी. : लाइफ एण्ड टाइम्स ऑफ सी.आर.दास

राय, सत्य एम : पार्टिसन ऑफ द पंजाब

राव, शिवा : फार्मिंग ऑफ द इण्डियाज कॉन्स्टिट्यूशन

राव,सर, बेनेगल : इण्डियाज कॉटिट्यूशन इन द मेकिंग

राय, स्मिथ विलियम : नेश्नलिज्म ऐण्ड रिफोर्म्स इन इण्डिया

रोज, हार्लैंड, जे. : लाइफ ऑफ विलियम पिट, वोल. I

रामगोपाल : (i) ब्रिटिश रूल इन इण्डिया
(ii) हाऊ ब्रिटिश ओक्यूपाइड इण्डिया

रघुवंशी, वी.पी.एस. : इण्डियन नेशनलिस्ट मूवमेन्ट ऐण्ड थॉट

सिंह, जी.एन. : लेडमार्क्स इन इण्डियन कॉन्स्टिट्यूशनल एण्ड नेशनल डवलपमेन्ट, वोल-I

सत्यपाल एण्ड प्रबोध चन्द्र : सिक्स्टी इयर्स ऑफ कांग्रेस

सरकार एण्ड दत्त : मॉडर्न इण्डियन हिस्ट्री

सिंह, हीरालाल : प्रोबलम एण्ड द पोलिसीज ऑफ द ब्रिटिश इन इण्डिया

सीकरी, एस.एल. : ए कॉन्स्टिट्यूशनल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया

स्टेनले, जोन्स (डॉ.) : महात्मा गाँधी एन एण्टरप्रिटेशन

सायमण्डस, आर.ए. : द मेकिंग ऑफ पाकिस्तान

सय्यद, एच.एच. : मोहम्मद अली जिन्ना

शर्मा, एस.आर. (डॉ.) : ए कॉन्स्टिट्यूशनल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शर्मा, एम.पी. : गवर्नमेन्ट ऑफ द इण्डियन रिपब्लिक

शर्मा, बी.एम. : द रिपब्लिक ऑफ इण्डिया

शर्मा, एम. पी. : कॉन्स्टिट्यूशन ऑफ इण्डिया

शर्मा, जगदीश लाल : इण्डियाय स्ट्रगल फॉर फ्रीडम, वोल II (डोकोमेण्ट)

शाहदीन : सर सय्यद अहमद ऐज ऐ पोलिटिकल लीडर

सय्यद अहमद खां : ऑन द प्रेजेन्ट स्टैट ऑफ इण्डियन पोलिटिक्स

श्रीनिवासन, एस.एन. : डेमोक्रेटिक गवर्नमेन्ट इन इण्डिया

शाह, के. टी. : फेडरल स्ट्रक्चर

सीतलवाड़, चिमनलाल : इण्डियाज कॉन्स्टिट्यूशन ऐट वर्क

स्मिथ, वी.ए. (डॉ.) : आक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ इण्डिया

स्मिथ, डब्ल्यू.सी. : माडर्न इस्लाम इन इण्डिया

स्मिथ, डब्ल्यू. आर. : नेशनललिज्म एण्ड रिकार्ग इन इण्डिया

सरकार एण्ड दत्त : मार्डन इण्डियन हिस्ट्री, वोल-II

स्पीअर : (i) एण्डिया : ए मॉडर्न हिस्ट्री
(ii) हिस्ट्री ऑफ इण्डिया

शैलेट, जे.ऐम. : द स्प्रिट ऑफ द कॉन्स्टिट्यूशन

स्प्रे, बी.जी. : द ग्रोथ ऑफ द इण्डियन कॉन्स्टिट्यूशन एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन

सूद, जे.पी. : इण्डियन कॉन्स्टिट्यूशनल डवलपमेन्ट एण्ड नेशनल मूवमेन्ट

सावरकर, बी.डी. : द इण्डियन वार ऑफ द इन्डेपेन्डेन्स

स्कस्टर, सर जार्ज एण्ड विन्ट : इण्डिया ऐण्ड डेमोक्रेसी

सील, अनिल : द इमरजेन्स ऑफ इण्डियन नेशनलिज्म

श्री प्रकाश : पाकिस्तान बर्थ एण्ड अर्ली डेज

तेन्दुलकर : महत्मा गाँधी, वोल.II

थोम्पसन एण्ड गैरेट : राइज एण्ड फुलफिसमेन्ट ऑफ ब्रिटिश रुल इन इण्डिया

थोम्पसन : इन लिस्ट इण्डिया फॉर फ्रीडम

टोपी, टी.के. : कॉन्स्टिट्यूशन ऑफ इण्डिया

टैगोर, सर रवीन्द्रनाथ :- नेशनलिज्म्

टेरेन, जॉन : द लाइफ एण्ड टाइम्स ऑफ लार्ड माउन्टबेटन

वस्ती, एस. आर. : लार्ड मिण्टो एण्ड द इण्डियन नेशनल मूवमेन्ट

वेंकटरमण : ए ट्रेटाइज ऑन सेक्यूलर

□□□

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection.